लोकभारती प्रकाशन

१५ ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद - १

स्वामी रामतीर्थ

जीवन और दर्शन

जयराम मिश्र

प्राक्कथन

स्वामी रामतीर्थ जैसी दिव्य आध्यात्मिक विभूतियाँ शताब्दियों में यदा-कदा ही अवतीर्ण हुआ करती हैं, बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में स्वामी राम ने अपने आध्यात्मिक तेज से समस्त ससार को अभिभूत कर दिया था। वे मत्रद्रष्टा ऋषि और वेदान्त के मूर्तिमान स्वरूप थे। उनकी जीवन-कहानी, भारतीय दर्शन और साधना प्रणाली की जीवन्त कहानी है। तैंतीस वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने जैसी साधना की, वह बहुत कम जीवनो में देखने को मिलती है। वे निष्काम कर्मयोग, राजयोग, भक्तियोग एव अद्वैत वेदान्त के साकार विग्रह थे। उनके हृदय में देशभक्ति, राष्ट्रहित एव मानव सेवा की त्रिवेणी अजस्र रूप में प्रवाहित होती थी। उन्होंने अपने व्यक्तित्व की अप्रतिम गरिमा से भारत का गौरव समस्त ससार की दृष्टि में बहुत ऊँचा उठाया। इसमें रचमात्र संदेह नही कि उनके जीवन, साधना-प्रणाली और आदर्शों से भारत 'श्रेयस्' और 'प्रेयस' दानो प्राप्त कर सकता है। हमारे देश के नवयुवक स्वामी राम के विचारो, उपदेशो एव शिक्षाओ से बलवती प्रेरणा ग्रहण कर सकते है, ऐसी हमारी दृढ धारणा है। महात्मा गाँधी एव महामना मालवीय जी स्वामी राम के इन्ही गुणो पर उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशसा करते थे। लेखक उनकी जीवन गाथा, दर्शन एव आध्यात्मिक साधना प्रणाली का विवेचन करके अपने को कृतकृत्य समझ रहा है। कुछ इस प्रकार की तृप्ति एव आत्म सतुष्टि की अनुभूति हा रही है कि वह इस पुस्तक के प्रणयन द्वारा ऋषि-ऋण से बहुत कुछ मुक्त हो गया।

मेरे अग्रज, श्रद्धेय श्री परमात्मा राम मिश्र, एडवोकेट ने मुझे बलवती प्रेरणा देकर पुस्तक लिखने के लिये उकसाया। मेरे दो भतीजो चिरजीवि डॉ० विभुराम, प्राध्यापक हिन्दी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर कालेज, ज्ञानपुर (वाराणसी) एव चिरजीवि अव्यक्तराम प्राध्यापक, प्राचीन इतिहास विभाग, इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद ने पाण्डुलिपि आदि देखने में पूण सहायता की है। अत ये दोनो ही मेरे आशीर्वाद और स्नेह के पात्र है।

जगदगुरु शकराचाय, ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी शान्तानन्द जी सरस्वती, राम के अनन्य प्रशसक है। वे मुझे पुस्तक लिखने में निरन्तर प्रेरणा और आशीर्वाद देते रहे। श्रीमद्भगवदगीता के अप्रतिम भाष्यकार ब्रह्मलीन दण्डीस्वामी श्री भागवतानन्द जी सरस्वती का यह उपदेश 'सयम, नियम एव दृढ सकल्प से बडे बडे काम भी सहज ही सम्पन्न हो जाते है'—पुस्तक-लेखन-काय में बहुत बडा

सवल हो गया। मेरे पूज्यतम पिताजी ब्रह्मलीन श्री प० रामचन्द्र मिश्र ने स्वामी रामतीर्थ के उपदेशो की लोरियां बाल्यकाल से ही सुना-सुना कर मुझे पुस्तक लिखने में समर्थ बनाया है। उन्होने कतिपय अंशों को बड़े मनोयोग से सुनकर बहुमूल्य सुझाव भी दिये हैं। अत मैं उपर्युक्त तीनो महापुरुषों का रोम रोम से आभारी और ऋणी हूँ।

स्वामी रामतीर्थ की अग्रेजी कविताओ का अनुवाद हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि, डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने किया है, जिनका लेखक ने स्थान-स्थान पर उपयोग किया है। लेखक उनका आभारी है।

स्वामी रामतीर्थ-सम्बन्धी-साहित्य जुटाने में मेरे मित्र श्री नारायणस्वरूप अग्रवाल, लखनऊ एव श्री पन्नालाल नायर, इलाहाबाद ने मुझे अत्यधिक सहायता पहुँचायी है। मैं दोनो सज्जनो का बहुत उपकृत हूँ। लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, के सचालको के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने पुस्तक इतने सुन्दर ढग से प्रकाशित की।

हिन्दी भाषा भाषियो को 'स्वामी रामतीर्थ' पुस्तक देने में मैं परम आह्लादित हो रहा हूँ, अत में मेरी यह शुभकामना है कि हमारे देश के नागरिक इस पुस्तक से प्रेरणा ग्रहण कर अपने जीवन को समुन्नत बनावें तथा राष्ट्र के उत्थान में सहायक हो।

—जयराम मिश्र

शकराचार्य आश्रम
१५, अलोपीबाग, इलाहाबाद—६
मकर-सक्रान्ति, १६७६ ई०

अनुक्रम

पृष्ठ

जन्म और प्रारम्भिक शिक्षा

(१८७३ ई० से १८८८ ई० तक)

भारत की ऋषि-परम्परा निराली रही है। ऋषि मन्त्रद्रष्टा होते थे। मन्त्रद्रष्टा वह होता है, जिसने परमात्मा सम्बन्धी किसी विशिष्ट मन्त्र का अपने जीवन में मनसा वाचा, कर्मणा साक्षात्कार कर लिया हो। स्वामी रामतीर्थ आधुनिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि थे। उनके श्वास प्रश्वास में 'ॐ' महामन्त्र बस गया था। यही 'ॐ' उनका सर्वस्व था। इसी की अजस्र संगीत-लहरी उनके मुख से निरन्तर प्रवाहित होती रहती थी। उनके समीप स्थित जो भी व्यक्ति उस संगीत-लहरी को सुनता था, वह भी आत्मविभोर हो आध्यात्मिक राज्य में विचरण करने लगता था। स्वामी रामतीर्थ का जीवन परम आदर्श और अनुकरणीय रहा। उनके दिव्य जीवन से न मालूम कितने व्यक्तियों ने प्रेरणा ग्रहण की है, कितने ग्रहण कर रहे हैं और कितने भविष्य में ग्रहण करेंगे।

व्यक्ति के चरित्र, संस्कार, भाव, विचार आदि के निर्माण में वंश-परम्परा का विशिष्ट महत्त्व होता है। गोस्वामी रामतीर्थ की उत्पत्ति कुलीन गोस्वामी ब्राह्मण वंश में हुई थी। गोस्वामी लोग अपने वंश का सम्बन्ध वशिष्ठ ऋषि से जोड़ते थे। यह वशिष्ठ वही विवेक वैराग्य एवं ब्रह्मज्ञान सम्पन्न, शक्तियुक्त और प्रसिद्ध ऋषि थे, जिन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र का अज्ञानान्धकार 'योगवाशिष्ठ' के प्रचण्ड ज्ञान-भास्कर से दूर किया था। इसी गोस्वामी वंश में सन्त तुलसीदास अवतीर्ण हुए, जो पंजाब के अत्यन्त प्रसिद्ध अध्यात्मवादी और रहस्यवादी कवि हुए। उनकी आध्यात्मिकता से प्रभावित होकर पंजाब में बहुत से लोग उनके शिष्य बन गए। पाकिस्तान में चितराल के समीप 'रचात' नामक स्थान में उनकी प्रसिद्धि के कारण एक बड़ी भारी गद्दी स्थापित हो गई। कहना न होगा कि सन्त तुलसीदास के कारण गोस्वामी-वंश की पवित्रता और धार्मिकता में चार चांद लग गये।

कालान्तर में उन गोस्वामियों के वैभव और समृद्धि में कमी आने लगी और वे छिन्न भिन्न होकर समस्त भारत में फैल गये। गोस्वामी वंश के कुछ लोग गुजरांवाला जिले में आकर बस गये। उनमें से कुछ व्यक्ति उसी जिले के मुराली-वाला गाँव में आकर रहने लगे। इन्हीं में से एक व्यक्ति थे—हीरानन्द जी। वे

बहुत ही निर्धन थे और पुरोहिती वृत्ति से अपनी जीविका अर्जित करते थे। उन्हें अपनी निर्धनता पर कोई ग्लानि नहीं थी, बल्कि इसके विपरीत वे इसे ब्राह्मणों का आभूषण समझते थे।

इन्हीं गोसाईं हीरानन्द जी की धर्मपत्नी के गर्भ से २२ अक्टूबर, बुधवार के दिन एक शिशु जन्मा। उसका नाम तीर्थराम रखा गया। तीर्थराम के पितामह रामचन्द्र (किसी किसी के अनुसार राममल) अनुभवी ज्योतिषी थे। उन्होंने बालक तीर्थराम की कुण्डली बनाई। कहा जाता है कि कुण्डली की ग्रहदशा पर मनन करके वे पहले तो रो पड़े और कुछ क्षणों के अनन्तर हँसने लगे। समीपस्थ लोगों ने जब इसका कारण पूछा, तो थोड़ी देर मौन रहने के बाद उन्होंने इस प्रकार कहा, "मैं रोया इसलिए कि या तो यह बालक शीघ्र ही मर जायेगा, अथवा इसकी माता का ही देहान्त हो जायगा। और हँसा इसलिए हूँ कि यदि जीवित रहा, तो यह परम विद्वान् और महान धार्मिक नेता होगा। इसका सुयश दिग्-दिगन्तर में व्याप्त होगा।"

बालक तीर्थराम की कुण्डली की ग्रहदशा इस प्रकार थी—
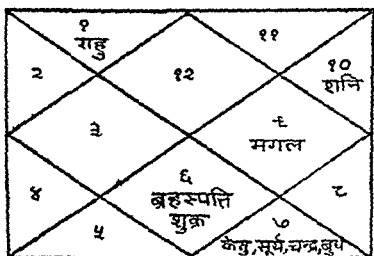
विक्रम संवत् १९३०, शालिवाहन शाक १७९५, दक्षिणायन सूर्य, शरद ऋतु कार्तिक शुक्ल पक्ष १, बुधवार २५ घड़ी, ५५ पल, स्वाति-नक्षत्र, ३१ घड़ी, २५ पल प्रीति योग, २९ घड़ी, ४९ पल, बवकरण २४ घड़ी, ४८ पल, सूर्योदय के अनन्तर लग्न मीन, हीरानन्द (आत्मज रामचन्द्र) के गृह बालक (तीर्थराम) की उत्पत्ति, राशिनाम ताराचन्द।

तीर्थराम की जन्मकुण्डली देखने के बाद अन्य ज्योतिषियो ने भी कुछ इसी प्रकार का भविष्य बतलाया—"वह बालक अपनी युवावस्था में ससार से वीतराग होकर सन्यास ग्रहण कर लेगा। सत्, चित, आनन्द के अपार सागर में निमज्जित होकर दिव्य प्रेम स्वरूप हो जायगा। यह विदेशो की यात्रा करके अपनी मातभूमि के अतीत गौरव की अभिवृद्धि करेगा। यह विस्तृत और गम्भीर ज्ञान प्राप्त करेगा। अपने वैभव युक्त सासारिक जीवन को तिलाञ्जलि देकर परमात्म-साक्षात्कार के लिए जगलो की ओर उन्मुख होगा। ससार के समस्त भागो में इसकी पावन कीर्ति व्याप्त हो जाएगी। तीस और चालीस वर्ष की आयु में इसका देहान्त जल में डूबने से होगा।"

तीर्थराम की अवस्था एक वर्ष से कुछ ही दिन अधिक हुई थी कि (कुछ लोगो के विचार से जन्म के कुछ ही महीना बाद) उनकी माता का देहान्त हो गया। इनके पिता हीरानन्द बडी विषम स्थिति में पड गये। तीर्थराम की बडी बहिन तीर्थदेवी उनसे केवल एक वर्ष बडी थी। दो-दो बच्चो का भार सँभालना पिता के लिए बहुत कठिन था। उन्होने अपनी बहिन धमकौर से अनुनय विनय की कि बच्चो के पालन-पोषण का भार वह अपने ऊपर ले लें। परिणामस्वरूप धमकौर अपने पति, गोसाइ ठाकुरदास के साथ जडियाला को छोडकर मुरालीवाला आ गई और दोनो बच्चो को पालने लगी।

धमकौर अत्यन्त धर्मपरायण महिला थी। वे प्रतिदिन क्षीणकाय शिशु तीर्थ-राम को लेकर मन्दिरो में भगवद्-दर्शन के निमित्त जाया करती थी। बालक तीर्थराम पर वहाँ के वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पडा। तीर्थराम का मन्दिरो में ध्वनित शख ध्वनि से अगाध प्रेम हो गया। इस शख-ध्वनि से उनका इतना दृढ अनुराग हो गया कि यदि वे फूट-फूट कर रोते भी होते तो शखनाद सुनकर एकदम शान्त हो जाते। क्या वह बालयोगी अपने पूर्व सस्कारो के अभ्यासानुसार इस शख ध्वनि में 'अनाहत नाद' सुना करता था, जिससे वह इस नश्वर जगत् से विस्मृत होकर उसी के श्रवण में तन्मय हो जाता था?

हीरानन्द ने राम के कथा-श्रवण-प्रेम की एक अत्यन्त मनोरजक घटना इस प्रकार बतायी थी, "राम का तीसरा वर्ष था। एक दिन सन्ध्या समय मैं उसे लेकर एक कथा में गया। उसके लिए कथा समझना एक प्रकार से असम्भव था, किन्तु वह अत्यन्त शान्त मुद्रा में बैठकर कथावाचक पण्डित की ओर अपलक दृष्टि से देख रहा था। दूसरे दिन जब कथा के प्रारम्भ हेतु शखध्वनि हुई, तो राम फूट-फूट कर रोने लगा। उसे चुप कराने के लिए मिठाइयाँ और खिलौने दिये गये, परन्तु उसने सारी वस्तुयें फेंक दी और उसका रोना चिल्लाना पूर्ववत् जारी

रहा। अन्त में मैं उसे गोद में लेकर कथावाले स्थान की ओर बढा। ज्यो-ज्यो मैं उस स्थान की ओर बढता, त्यो-त्यो वह शान्त होता जाता था। किन्तु ज्यों ही मैं रुक जाता, उसका रोना-चीखना फिर प्रारम्भ हो जाता। अन्त में निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने पर वह अत्यधिक आह्लादित हो गया और एकदम शान्त हो गया। वह शान्त मात्र ही नही हुआ, बल्कि टकटकी लगाकर कथावाचक की ओर देखने भी लगा।"

बालक तीर्थराम का कथा प्रेम निरन्तर बढता गया। चार वर्ष की आयु में तो वे अकेले ही कथा सुनने चले जाया करते थे। उनकी बुद्धि कुशाग्र थी और धारणा शक्ति भी अपूर्व थी। मन्दिर में निरन्तर पुराणो की, विशेषत श्रीमद्भागवत, रामायण, महाभारत की अनेक कथायें सुनने के अनन्तर वे हूबहू उसी रूप में दूसरो को सुना सकते थे। श्रीमद्भगवद्गीता का प्रवचन भी जब-तब हुआ करता था। राम उसे भी तन्मयतापूर्वक सुना करते थे और कुछ श्लोक उन्हें कण्ठस्थ भी हो गये थे। इतनी अल्पायु में ही वे कथा-सम्बन्धी जिज्ञासाओ का समाधान ठीक ठीक कर देते थे। उनकी वृत्ति बचपन से ही अन्तर्मुखी थी। एकान्त से उन्हें परम अनुराग था। जब उनकी अवस्था के अन्य बालक खेल-कूद में व्यस्त रहते थे, तब वे प्राय एकान्त में बैठकर चिन्तन में निमग्न हो जाते थे।

छ वर्ष की आयु में उन्हें गाव की प्रारम्भिक पाठशाला में प्रविष्ट कराया गया। वहाँ उन्होने असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया। पाच वर्ष का पाठ्यक्रम केवल तीन वर्षो में समाप्त कर लिया। वार्षिक परीक्षा में उन्होने प्रथम स्थान प्राप्त किया और उन्हें छात्रवृत्ति भी मिली। इसके अतिरिक्त इसी समय उन्होने फारसी के प्रसिद्ध कवि शेख सादी की कविताओ का अध्ययन किया और उनकी कुछ कवितायें तथा उर्दू के अन्य प्रसिद्ध कवियो की भी रचनायें कण्ठस्थ कर ली। इसी अवस्था में स्वाध्याय के प्रति उनका असीम अनुराग हो गया। प्रात काल का समय वे एकान्त अध्ययन में व्यतीत करते थे और दिन में पाठशाला में पढते थे। विद्यार्थी जीवन में भी उनका कथा-श्रवण के प्रति अनुराग बना रहा। पास की धर्मशाला में प्रतिदिन अपराह्न दो बजे कथा होती थी। एक बार राम ने अपने अध्यापक से कथा सुनने की आज्ञा माँगी। परन्तु उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। इस पर राम अत्यन्त दुखी हुए और उनके नेत्रो में आसू भर आये। उन्होने आर्द्र होकर कहा, "साहब, मुझे कथा में जाने की आज्ञा दीजिये, मैं एक घण्टे वाले अवकाश में पाठशाला का सारा कार्य पूरा कर लिया करूँगा।" उनकी इस निष्ठा से अध्यापक महोदय भी द्रवीभूत हो गये और उन्हें सहर्ष जाने की आज्ञा प्रदान कर दी। वे प्रतिदिन निश्चित समय पर नियमित रूप से कथा सुनने लगे। सन्ध्या

समय भोजनोपरान्त वे सुनी हुई कथा अपने सगे-सम्बन्धियों को सुनाया करते थे।

अपने अध्यापक, मौलवी मुहम्मद अली में उनकी अपार गुरुभक्ति थी। अध्ययन समाप्त करने के बाद, राम के पिता ने तत्कालीन प्रथानुसार मौलवी साहब को दो रुपये देने का विचार किया। किन्तु मौलवी साहब को एक दुधारू गाय की आवश्यकता थी। अत राम ने अपने पिता से अनुनय विनय करके उन्हें अपनी एकमात्र दुधारू गाय दिलवा दी। इस घटना से उनके त्याग और उदारता पर प्रकाश पडता है। साथ ही गुरु के प्रति उनकी अपार भक्ति भी दिखलायी पडती है। उनकी यह निष्ठा प्राचीन गुरु-कुल परम्परा का आदर्श हमारे सम्मुख उपस्थित कर देती है। हमारी गुरुकुल-परम्परा में विद्यादान सदैव 'अक्रेय' माना गया है। इसका जीवन्त उदाहरण राम ने आधुनिक समाज के सामने रखा।

दस वर्ष की अल्पायु में राम का विवाह रामचन्द्र की पुत्री के साथ कर दिया गया। रामचन्द्र, वैराके ग्राम, तहसील वजीराबाद के निवासी थे। सिक्खों के शासनकाल में उनके परिवार की आर्थिक स्थिति सम्पन्न थी। उनका वंश अपनी कुलीनता के लिये भी प्रसिद्ध था। इसी कारण राम की सगाई केवल दो वर्ष की आयु में पक्की कर दी गयी थी। भला दस वर्ष की आयु में वैवाहिक-बन्धन का उत्तरदायित्व तीर्थराम क्या समझ सकते थे? सुस्वादु भोजन, सुन्दर वस्त्राभूषण एवं गाने-बजाने के अतिरिक्त उनकी दृष्टि में विवाह का क्या महत्त्व था? किन्तु जैसे-जसे उनकी आयु बढती गयी और उनकी साधनात्मक वृत्ति में उत्तरोत्तर विकास होता गया, वैसे-वैसे अपने पिता की इस अदूरदर्शिता पर वे अपना क्षोभ प्रकट करने लगे। वे अपने पिता से प्राय कहते थे—'आपने बाल विवाह करके मेरा सत्यानाश कर दिया।' उनके सन्यास ग्रहण करने पर, उनकी स्त्री और बच्चा की क्या दशा हुई होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

गाँव की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद तीर्थराम का आगे के अध्ययन के लिए मुरालीवाला छोडना आवश्यक हो गया। अपनी पहली स्त्री, अर्थात् तीर्थराम की माता के देहान्त के पश्चात हीरानन्द ने अपना दूसरा विवाह कर लिया था। उनके नये ससुर का नाम पंडित नानकचन्द था। वे गुजराँवाला के निवासी थे। हीरानन्द ने तीर्थराम का प्रवेश गुजराँवाला के मिशन हाई स्कूल में कराया और उनके रहने एव खाने-पीने की व्यवस्था पंडित नानकचन्द के यहाँ कर दी। पंडित जी तीर्थराम की पूर्णरूपेण देखभाल करते थे। अत उन्हें नये स्थान में किसी प्रकार की असुविधा नहीं हुई।

गुजराँवाला में हीरानन्द के परम स्नेही मित्र, भक्त धन्नाराम रहते थे। हीरानन्द ने अपने पुत्र तीर्थराम को निर्देश दिया था कि वे भक्त जी से सम्पर्क बनाये रहें।

साथ ही भक्त जी से प्रायना की थी कि वे बालक तीर्थराम पर स्नेहमयी दृष्टि रखकर उसकी रहनुमाई करें। धीरे-धीरे दोनो व्यक्तियो का आध्यात्मिक सम्बध प्रगाढ होता गया। बालक तीथराम पर भक्त जी का अत्यधिक प्रभाव पडा। तीथराम (स्वामी रामतीर्थ) के अनन्य शिष्य नारायण स्वामी ने इस सम्बध में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं, 'भगत जी की अनोखी व निराली प्रकृति और वाणी की सिद्धिया ने भोले भाले बालक तीयराम जी के चित्त पर अजीव प्रभाव डाला। भगत जी से वे ऐसे डरने लगे, जैसे साक्षात परमेश्वर से कोई आस्तिक व्यक्ति डरता है। प्रतिदिन भगत जी की वाणी की सिद्धि और अन्य गुणों को देखकर बालक तीयराम जी के चित्त में यह खयाल पक्का जम गया कि भगत जी ईश्वर के साक्षात अवतार है।'

भगत धन्नाराम की जीवनी के सम्बन्ध में कुछ और बातें जान लेना अप्रासगिक न होगा। भक्त धन्नाराम, जवाहरमल के पुत्र थे और उनका जन्म १८४३ ई० में हुआ था। अल्पायु में ही उनकी माता का देहान्त हो गया था। अत उनका पालन-पोषण उनकी दादी ने किया था। शिक्षा प्राप्ति के लिए उन्हें एक पाठशाला में प्रविष्ट कराया गया। वहा वे अपने विशिष्ट गुणो के कारण अपने अध्यापक के विशेष प्रिय और स्नेहभाजन बन गये। इस बात से उनके अन्य साथी उनमे द्वेष करने लगे। सभी साथियो ने मिलकर धन्नाराम की झूठी शिकायत अध्यापक जी से की। शिकायत की बिना जाच किये अध्यापक महोदय ने उन लडको द्वारा धन्नाराम को तमाचे लगवाये। उन्हें यह अन्याय सहन नही हुआ और क्षोभ एव निराशा से उन्होने पाठशाला की पढाई का सदैव के लिए तिलाञ्जलि द दी। कहते है कि इस घटना के दो महीने बाद ही अध्यापक जी के परिवार के सभी व्यक्तियो का देहान्त हो गया। दूसरी घटना इस प्रकार है। एक बार रतन नाम के एक धनी व्यक्ति ने निरपराध धन्नाराम को पीटा। उस धनी व्यक्ति के परिवार के लोगो की भी वही दशा हुई, जो दशा अध्यापक के परिवार के व्यक्तियो की हुई थी।

धन्नाराम ठठेरे का काय करते थे। अवकाश के समय वे व्यायाम करते थे। कुश्ती लडने का उन्हे बहुत शौक था। उन्नीस वर्ष की आयु में वे एक स्थान की तीर्थयात्रा करने गये और वही बसकर ठठेरे का काय करने लगे। उन्होने उस स्थान पर एक मल्लशाला की स्थापना की, जहाँ नवयुवक आकर कुश्ती लडने का अभ्यास करते थे। धन्नाराम इतनी सुन्दर कुश्ती लडते थे कि यदि उन्हें कोई पहलवान कुश्ती लडने की चुनौती देता, तो वे उसे मिनटा में ही पछाड कर चित कर दते थे।

वे अपनी आय का अधिकाश भाग साधु-सेवा में लगा देते। वे बालब्रह्मचारी थे और हठयोग की कठिन साधना करते थे। शान्त भाव से आत्म चिन्तन में निमग्न रहते थे। जाडो में वे नग्न शरीर रहते और गर्मियो में कपडे लादकर पहन लेते। ऐसी दशा में भी वे प्रसन्न होकर मुक्त हँसी-हँसते थे। वे कथा सुनने और कहने के बडे प्रेमी थे। कथा कहते अथवा सुनते समय वे भाव विभोर होकर अश्रुवर्षा करने लगते थे। वे भावप्रवण कवि भी थे। श्रीकृष्ण भक्ति-सम्बन्धी कवितायें उनके हृदय से सहज भाव से निकलती रहती थी।

योगवाशिष्ठ के अध्ययन से उन्हें अत्यधिक अनुराग था। योगवाशिष्ठ वही प्रख्यात अद्वैत ग्रथ है जिसमें वशिष्ठ ऋषि ने श्रीरामचन्द्र जी को ब्रह्मविद्या का उपदेश देकर, उन्हें अद्वैतभाव में स्थित किया था। बाद में स्वामी रामतीर्थ ने इस ग्रथ की भूरि भूरि प्रशसा की थी। धन्नाराम उस स्थान को भी छोडकर गुजरावाला में आकर रहने लगे। एक अद्वैतवादी महात्मा की कृपा से उन्हें आत्मा-परमात्मा की एकता की अनुभूति हुई और वे पूर्ण ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो गये। कहते हैं धन्नाराम में अलौकिक सिद्धियाँ भी आ गयी थी। उनमें वर और शाप देने की भी शक्ति थी। उनकी ऐसी ही स्थिति में तीर्थराम उनके सम्पर्क में आये।

धन्नाराम के प्रति तीर्थराम की अत्यधिक श्रद्धा थी। वे भगत जी को अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे और अपना शरीर तथा मन पूर्णतया उन्हें समर्पित कर दिया था। राम की भगत जी के प्रति इतनी प्रगाढ श्रद्धा और भक्ति थी कि बिना उनकी अनुमति लिये वे कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नही करते थे। उनकी कविता से भी राम बहुत प्रभावित थे। बाद में उन्होने अपनी डायरी में भगत जी की कविता के सम्बन्ध में इस प्रकार धारणा व्यक्त की थी, 'यद्यपि इन कविताओ के पदो में मधुर स्वर और सुन्दर छन्द इत्यादि अधिक नही हैं, तथापि प्रशसनीय बात यह है कि इनमें परिश्रम का तो नाम तक नही खर्च हुआ, जैसा कि अन्य कवियो के विषय में देखा जाता है। दृष्टान्त रूप से फिरदौसी को लीजिये कि तीस वर्ष में केवल ६० हजार कवितायें बनाने पर भी जिनका परिणाम पाच या छ पद प्रति-दिन होता है, उसमें ये गुण और लक्षण नही पाये जाते।'

भक्त धन्नाराम और तीर्थराम का आध्यात्मिक सग उत्तरोत्तर प्रगाढतर होता गया। उनके साथ निरन्तर सत्सग करने से तीर्थराम को मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य स्पष्ट प्रतीत होने लगा। उनके हृदय की उर्वर भूमि में भक्ति और ब्रह्मज्ञान का अखण्ड और अमर बीज धन्नाराम के सत्सग ने भलीभाँति बो दिया। अब उसे प्रस्फुटित, पुष्पित एव फलित होने के लिए मात्र समय की आवश्यकता थी। भक्त धन्नाराम ने तीर्थराम से भारतीय आध्यात्मिक ग्रथो के बहुमूल्य सिद्धान्तो

की व्याख्या की और अनेक कथाओ के दृष्टान्तो से उनकी पुष्टि की। इस सत्सग के माध्यम मे गुरु और शिष्य में अभेद भावना स्थापित हो गई। तीर्थराम को भगत जी द्वारा सस्कृत, हिन्दी, फारसी, उर्दू और पजाबी की वेदान्त सम्बन्धी सहस्रो कवितायें सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी प्रगाढ भक्ति का उदाहरण उनके एक पत्र से स्पष्ट ज्ञात होता है—

'ग्राम वैरोके

२४ मई, १८८६ ई०

रहनुमाए सालिका व पेशवाए—आरिफां सलामत[1]

आपका कृपापत्र मुझे बद्दोकी के मेले के एक दिन पहले मिला था। उसमें लिखा था कि हम मेले को आवेंगे।' इस वास्ते मैं भी मेले को गया, मगर मुझे आपके दर्शन न हुए। और लिफाफे यहा नही मिलते। इस वास्ते खत में देर हुई। आज केवल एक कार्ड निमित्त वजीराबाद आया हूँ। और मैं तो यहा से ही आपके चरणो में उपस्थित हो जाता, परन्तु रोज किसी न किसी कारण से रुक गया। और मैं यहा बडा उदास रहता हूँ। और लाला रामचन्द्र साहब[2] यहाँ नही है। आशा है कि आजकल में यहा आ जावेंगे। जब वे आयेंगे, मैं वहा आ जाऊँगा। और अगर कोई अपराध हुआ हो, तो क्षमा करें।

आपका दास तीर्थराम'

इस प्रकार उन्हें अपने गुरु धन्नाराम से एक दिन का भी वियोग असह्य और तड़पाने वाला था। इसीलिये गुजरावाला से अपनी ससुराल, वैरोके जाने पर उन्हें यह अनुभूति हुई कि पत्र द्वारा ही गुरु-सान्निध्य में पहुँचा जाय। अत वे कार्ड लेने के लिए वजीराबाद पहुँचे, जो वैरोके से तीन मील पडता था। ऐसी उत्कृष्ट गुरुभक्ति का दृष्टान्त बहुत कम मिल पाता है।

धन्नाराम के लिये राम का उपयुक्त पत्र प्रथम पत्र था। २४ मई, १८८६ ई० और २२ अगस्त १८९८ ई० के बीच तीर्थराम ने भक्त धन्नाराम को ११२४ पत्र लिखे। ये पत्र राम की जीवनी, उनकी आर्थिक दशा, मनोवृत्ति, सयम, नियम, कर्मठता, दृढ सकल्प, भावुकता सहृदयता, प्रेम, सादगी, त्याग आदि पर अत्यधिक प्रकाश डालते हैं। इनमें से कुछ पत्र तो अत्यधिक महत्त्व के हैं।

१—मुक्ति की इच्छा करनेवालों के पथ प्रदर्शक तथा ब्रह्मवेत्ताओ के नेता, प्रणाम।

२—तीर्थराम के श्वसुर।

भक्त धन्नाराम तीर्थराम के आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक मात्र ही नहीं रहे, बल्कि मौके-बेमौके उनकी आर्थिक सहायता भी करते थे। उनकी आर्थिक सहायता करने वालों में से डाक्टर रघुनाथमल का नाम उल्लेखनीय है। डाक्टर साहब हीरानन्द जी के साढ़ू थे। डाक्टर साहब की स्त्री और तीर्थराम की विमाता सगी बहनें थीं। तीर्थराम ने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा १९८८ ई० में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। सारे पंजाब प्रान्त में उनका अड़तीसवां स्थान रहा। उस समय उनकी अवस्था लगभग साढ़े चौदह वर्ष की थी। उन्हें सरकारी छात्रवृत्ति न प्राप्त हो सकी। यदि सरकारी छात्रवृत्ति मिल गयी होती, तो उनके अध्ययन में सुविधा हो गयी होती।

o

की व्याख्या की और अनेक कथाओ के दृष्टान्तो से उनकी पुष्टि की। इस सत्सग के माध्यम से गुरु और शिष्य में अभेद भावना स्थापित हो गई। तीर्थराम को भगत जी द्वारा सस्कृत, हिन्दी, फारसी, उर्दू और पजाबी की वेदान्त सम्बन्धी सहस्रो कवितायें सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी प्रगाढ भक्ति का उदाहरण उनके एक पत्र से स्पष्ट ज्ञात होता है—

'ग्राम वैरोके

२४ मई, १८८६ ई०

रहनुमाए सालिकाँ व पेशवाए—आरिफाँ सलामत[1]

आपका कृपापत्र मुझे बद्दोकी के मेले के एक दिन पहले मिला था। उसमें लिखा था कि 'हम मेले को आवेंगे।' इस वास्ते मैं भी मेले को गया, मगर मुझे आपके दर्शन न हुए। और लिफाफे यहा नही मिलते। इस वास्ते खत में देर हुई। आज केवल एक कार्ड निमित्त वजीराबाद आया हूँ। और मैं तो यहाँ से ही आपके चरणो में उपस्थित हो जाता, परन्तु रोज किसी न किसी कारण से रुक गया। और मैं यहाँ बडा उदास रहता हूँ। और लाला रामचन्द्र साहब[2] यहाँ नही है। आशा है कि आजकल में यहा आ जावेंगे। जब वे आयेंगे, मैं वहा आ जाऊँगा। और अगर कोई अपराध हुआ हो, तो क्षमा करें।

आपका दास तीर्थराम'

इस प्रकार उन्हें अपने गुरु धन्नाराम से एक दिन का भी वियोग असह्य और तडपाने वाला था। इसीलिये गुजराँवाला से अपनी ससुराल, वैरोके जाने पर उन्हें यह अनुभूति हुई कि पत्र द्वारा ही गुरु-सान्निध्य में पहुँचा जाय। अत वे कार्ड लेने के लिए वजीराबाद पहुँचे, जो वैरोके से तीन मील पडता था। ऐसी उत्कृष्ट गुरुभक्ति का दृष्टान्त बहुत कम मिल पाता है।

धन्नाराम के लिये राम का उपयुक्त पत्र प्रथम पत्र था। २४ मई, १८८६ ई० और २२ अगस्त १८९८ ई० के बीच तीर्थराम ने भक्त धन्नाराम को ११२४ पत्र लिखे। ये पत्र राम की जीवनी, उनकी आर्थिक दशा, मनोवृत्ति, सयम, नियम, कर्मठता, दृढ सकल्प, भावुकता, सहृदयता, प्रेम, सादगी, त्याग आदि पर अत्यधिक प्रकाश डालते है। इनमें से कुछ पत्र तो अत्यधिक महत्त्व के है।

१—मुक्ति की इच्छा करनेवालों के पथ प्रदर्शक तथा ब्रह्मवेत्ताओ के नेता, प्रणाम।

२—तीर्थराम के श्वसुर।

भक्त धनाराम तीथराम के आध्यात्मिक पथ प्रदशक मात्र ही नही रहे, बल्कि मौके-बेमौके उनकी आर्थिक सहायता भी करते थे। उनकी आर्थिक सहायता करने वाला में से डाक्टर रघुनाथमल का नाम उल्लेखनीय है। डाक्टर साहब हीरानन्द जी के साढू थे। डाक्टर साहब की स्त्री और तीर्थराम की विमाता सगी बहनें थी। तीथराम ने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा १९८८ ई० में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। सारे पजाब प्रान्त में उनका अडतीसवा स्थान रहा। उस समय उनकी अवस्था लगभग साढे चौदह वप की थी। उन्हें सरकारी छात्रवृत्ति न प्राप्त हो सकी। यदि सरकारी छात्रवृत्ति मिल गयी होती, तो उनके अध्ययन में सुविधा हो गयी होती।

द्वितीय अध्याय

विश्वविद्यालय की शिक्षा

(१८८८ ई० से १८९५ ई० तक)

मैट्रिकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद तीर्थराम और उनके पिता, गोसाइं हीरानन्द के बीच संघर्ष उपस्थित हो गया। अपनी निर्धनता के कारण हीरानन्द तीर्थराम को आगे न पढ़ाकर, उनसे नौकरी कराना चाहते थे। उस समय मैट्रिकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद सरकारी नौकरी का दरवाजा खुल जाता था। किन्तु इसके विपरीत, तीर्थराम की आकांक्षा आगे अध्ययन करने की थी। पिता ने आगे पढ़ाना स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया और इस बात की धमकी भी दी कि अपनी स्त्री के भरण-पोषण का भार अब तीर्थराम अपने ऊपर लें। उनके संकल्प की यह विकट-अग्नि-परीक्षा थी। तीर्थराम अपने संकल्प पर चट्टान की भांति अडिग रहे। साढ़े चौदह वर्ष के बालक की विद्या प्राप्ति के निमित्त यह निष्ठा श्लाघनीय रही। उनके मौसा डाक्टर रघुनाथमल और सम्भवत भक्त धन्नाराम ने आगे पढ़ने की अनुमति भी दे दी थी। नारायण स्वामी के मतानुसार अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध तीर्थराम अध्ययन करने के निमित्त लाहौर गये।

लाहौर पहुँचने पर उन्हें भयावह आर्थिक स्थिति का सामना करना पड़ा। यद्यपि वे बड़ी सादगी से रहते थे और उनकी आवश्यकतायें सीमित थी, तथापि लाहौर ऐसे शहर में उन्हें सामान्य ढंग से रहना भी कठिन प्रतीत हुआ। येन-केन प्रकारेण उन्होंने मई १८८८ ई० में मिशन (फोरमैन क्रिश्चियन) कॉलेज में अपना दाखिला करवाया। इस सम्बन्ध में उन्होंने भक्त धन्नाराम को एक पत्र भी लिखा—

'लाहौर, ८ मई, १८८८

श्रीमान् सद्गुरु महाराज भगत साहब,

मुझ पर खुश रहो।

मैं सोमवार के दिन मिशन कालेज में दाखिल हो गया और एक मकान बच्छोवाली में एक रुपया माहवार किराये पर लिया है। उस मकान का मालिक मदृतावराय मिश्र है। इसलिए मुझे पत्र उसके पते पर लिखा करो। और मेरा वजीफा नहीं लगा और न मैं अव्वल दर्जे में पास हुआ हूँ। मेरा नम्बर पंजाब में

अडतीसवाँ है। यहाँ मिशन कॉलेज में साढे चार रुपये फीस है, इति। ज्यादा आदाब (विशेष सादर प्रणाम)।

आपका दास तीथराम'

उन्हें कुछ रुपये भक्त धन्नाराम से मिल गये थे। उनके मौसा डाक्टर रघुनाथमल ने भी कुछ आर्थिक सहायता की थी और प्रति मास कुछ रुपये भेजने का वचन दिया था। परन्तु लाहौर ऐसे बडे नगर में कॉलेज की पढाई के लिए यह सहायता अपर्याप्त थी। फिर भी उनका सकल्प अटूट और दृढ था। उन्होने अत्यधिक मितव्ययिता बरती। उनकी डायरी में व्यय का विवरण देखने पर, तीथराम के प्रति अत्यधिक करुणा का भाव उत्पन्न होता है। उन्होने प्राप्त धन-राशि में से तीन रुपये में नये कपडे सिलवाये। आठ आने के कैनवस के जूते खरीदे। एक रुपया मकान का किराया अग्रिम दिया। कुछ रुपये कालेज के दाखिले और शुल्क में लगे। पाँच आने देकर चारपाई बुनवाई। शेष रुपयो का अधिकाश भाग पुस्तकें खरीदने में खच हुआ। कुछ पैसे दीपक और तेल पर भी व्यय हुये। सारे खर्च का लेखा जोखा लगाने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि अब केवल तीन पैसे प्रतिदिन के लिए बचे है।

ऐसी अवस्था में भी वे अपने दढसकल्प से रचमात्र विचलित नही हुये। उन्होने उस समय अपने असाधारण त्याग और अनुपम तितिक्षा का परिचय दिया। उसी समय उन्होने अपने शरीर को तपाना प्रारम्भ किया। साढे चौदह वर्ष की अल्पायु में उन्होने अपने मनोबल को ऊँचा रखकर यह निश्चय किया कि दो पैसे की रोटी प्रात खायेंगे। और एक पैसे की शाम को। लेकिन एक दिन ढाबे वाले ने इस सम्बन्ध में आपत्ति कि, 'तुम दाल का तो पैसा देते नही। इस तरह नही चलेगा।' तब राम ने केवल प्रात काल ही भोजन करने का निश्चय किया। शाम का भोजन उन्होने बन्द कर दिया। शरीर पर असाधारण नियन्त्रण करके वे उत्तरोत्तर अपने लक्ष्य की ओर बढने लगे। अदम्य उत्साह, परमात्मा एव सद्गुरु में दढ विश्वास ही उनका सबसे बडा सबल था। गणित में उनकी अपार अभिरुचि थी और वही उनकी अन्तर्मुखता का साधन था। व अपनी सभी बहिर्मुखी प्रवृत्तिया को केन्द्रीभूत करके गणित के प्रश्नो को सुलझाने में तन्मय हो जाते थे। इस अपरा विद्या में तन्मयता के अतिरिक्त उनकी वत्ति का दूसरा अश परा विद्या के अन्वेषण में भी आरूढ हो चला था। ससार की समस्त विद्याओ की गणना अपरा विद्या के अन्तगत की जाती है और परा विद्या वह है, जिसे जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है यही ब्रह्मविद्या है। कृष्ण के प्रति तीर्थराम की अपार

भक्ति थी। उनकी भक्ति की विह्वलता में राम को बराबर अश्रुपात होता था। साथ ही गुरु धन्नाराम में उनकी अपार प्रीति थी, जिससे ब्रह्मविद्या के द्वार की उन्हें कुंजी प्राप्त हो गई थी।

अत्यधिक मितव्ययिता बरतने पर भी राम को खर्च की तंगी पड़ जाती थी और खर्च पूरा करने के लिए उन्हें जब तब दूसरों से उधार लेना पड़ता था। धन्नाराम को लिखे गये निम्नलिखित पत्र से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

'लाहौर, ८ जुलाई, १८८८

श्रीमान् भगत जी महाराज,

आपकी नित्य कृपा बनी रहे।

मत्था टेकने के उपरान्त विनती है कि आपका कृपा पत्र पहुँचा था। बड़ी खुशी हुई और लाला अयोध्या प्रसाद की जबानी मालूम हुआ कि आप किसी दिन आओगे। मैं अब आपसे यह दर्याफ्त किया चाहता हूँ कि आप कृपया मुझे लिखो कि अब मेरा इरादा छुट्टियों में पहले-पहल वहां आने का नहीं रहा क्योंकि २७ जुलाई को हमें छुट्टियां हो जाती हैं, और खर्च के लिए मैंने तीन रुपये अयोध्या प्रसाद से उधार ले लिये हैं और जब आप कृपा पत्र भेजें तो कालेज के पते पर लिखना। इति। अनेक प्रणाम।

आपका दास तीर्थराम।'

इस प्रकार तीर्थराम प्रतिकूल एवं विषम परिस्थितियों से जूझते रहे और अध्ययन की दिशा में निरन्तर प्रगति करते रहे। कभी-कभी ऐसे भी अवसर आ जाते थे, जब उनके पास एक पैसा भी नहीं रहता था। यहां तक कि पोस्टकार्ड खरीदने के लिए भी एक पैसा उधार लेना पड़ता था। उन दिनों एक पैसे में ही पोस्टकार्ड मिलता था।

बच्छोवाली गली के जिस मकान में तीर्थराम रहते थे, वह लाहौर का बहुत गन्दा और अस्वास्थ्यप्रद स्थान था। भक्त धन्नाराम ने जब उन्हें उस स्थान को छोड़ देने की राय दी तब राम ने उन्हें १० जून, १८८८ के पत्र में अपनी मनोवृत्ति का इस प्रकार परिचय दिया "आपने पूछा है कि मैं महाराजा रणजीतसिंह की समाधि के पास वाले मकानों में रहने के लिए क्यों नहीं जाता हूँ? सबसे बड़ा कारण यह है कि मुझे वहाँ न तो उपयुक्त एकान्त ही मिल सकता है और न पठन-पाठन के लिए आवश्यक स्वतन्त्रता।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे पूर्ण रूप से एकान्त सेवन के अनुरागी हो

चुके थे और उस एकान्त में उनके हृदय की आध्यात्मिक कली धीरे धीरे प्रस्फुटित होने लगी।

तीर्थराम हिन्दी भी नही जानते थे। किन्तु वे इतने परिश्रमी और अध्यवसायी थे कि उन्होने एफ० ए० (इन्टरमीडिएट) में सस्कृत ली। १८८८ के अक्टूबर तक उन्हाने हिन्दी पढना और लिखना सीख लिया और नवम्बर से अत्यधिक परिश्रम से सस्कृत पढना प्रारम्भ कर दिया।

उनके जीवन में वीच-वीच में ऐसी घटनायें घट जाती थी जिसमे उनका गुरु एव परमात्मा में अपूव विश्वास उमडने लगता था। पहले बताया जा चुका है कि उन्हें मैट्रिकुलेशन पास करने के बाद छात्रवृत्ति नही मिल पायी थी। इससे वे घनघोर आर्थिक सक्ट में थे। किन्तु लाहौर में लगभग १० महीने रहने के अनन्तर उनके भाग्य में अकस्मात् परिवतन आया। उन दिनो गुजरांवाला, म्युनिसिपिल कमेटी, मैट्रिकुलेशन परीक्षा में सर्वोच्च अक प्राप्त करने वाले छात्र को आठ रुपये मासिक की छात्रवृत्ति प्रदान करती थी। १८८८ ई० वाली छात्रवृत्ति जमीअत राय नामक छात्र को प्राप्त हुई थी! सयोगवश उसने कुछ महीने के बाद अपनी पढाई छोड दी। यह बात जब तीर्थराम को ज्ञात हुई, तो उन्होने इसकी सूचना भक्त धन्नाराम को दी। धन्नाराम तथा कुछ अन्य व्यक्तियो के सत्प्रयास से यह छात्रवृत्ति तीथराम को मिल गई। उस समय आठ रुपये का मूल्य बहुत था। उस आर्थिक सहायता से उन्हे बहुत राहत मिली। तीथराम ने इस सहायता को अपने सद्गुरु एव परमात्मा की अनुकम्पा ही समझा। उनमें तनिक भी अहभाव नही आया। उनके मन में सात्त्विकता की अलौकिक तरगें उठने लगी। एक सामान्य सी घटना भी साधक के अन्त करण को आन्दोलित कर देती है।

अत्यधिक परिश्रम, रसविहीन भोजन एव गन्दे स्थान में रहने के कारण तीथराम का स्वास्थ्य एकदम चौपट हो गया। वे एफ० ए० परीक्षा के प्रारम्भ के पूव कई बार बीमार भी पडे। अतएव इन अडचनो से वे परीक्षा में न बैठने की बात सोचने लगे। किन्तु भक्त धन्नाराम का आतक उनके सिर पर सवार रहा। साथ ही उनकी अनुकम्पा में भी राम की दृढ आस्था बनी रही। उन्होने भगत जी को अपनी मनोदशा इस भाति अभिव्यक्त की थी, '३ फरवरी, १८९०, मुझे इण्टरमीडिएट परीक्षा की फीस भेजनी है। अभी तक भगवानदास से रुपया नही मिला है। मुझे अपने परिश्रम का भरोसा नही, केवल आपकी दया का भरोसा है। यदि आज्ञा करें तो परीक्षा में बठू, अन्यथा नही। आज्ञा बिना न मैं परीक्षा की फीस दूँगा और न परीक्षा में बठूगा।" राम का यह भाव, भगवान् के अनन्य भक्त का यह आर्त्तभाव, हमारे सम्मुख प्रत्यक्ष उपस्थित कर देता है—'मेरो

सब पुरुषार्थ थाको।'—यह आत्मभाव और आत्मसमर्पण पराभक्ति का सर्वोपरि साधन है।

आठ दिनो के अन्दर ही तीथराम को किसी अज्ञात दैवी शक्ति के कारण अपने पहले के विचारो को बदलना पडा। जो साधक पथ से डगमगा रहा था, उसे सद्गुरु एव परमात्मा की कृपा ने पुन सही रास्ते पर लगा दिया। उनके परिवर्तित विचार इस प्रकार है—'११ फरवरी, १८६०, मेरा ख्याल गलत था। मैं अपनी इच्छा से कुछ न कर सका। साहब, कालेज के प्रिंसिपल ने मेरा नाम भेज दिया और आवश्यक कागजो पर हस्ताक्षर करने पडे। अत मुझे परीक्षा में बैठना ही होगा। मुझे उसके लिये भगवानदास से रुपया भी मिल गया। दया कीजिये, दया कीजिये, मैं आपका गुलाम हूँ।' श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय का साठवा श्लोक तीथराम के जीवन में चरिताथ हो गया—

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्ध स्वेन कर्मणा।
कर्तु नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्॥

अर्थात्, 'हे अर्जुन, जिस कम को तू मोह से नही करना चाहता है, उसको भी अपने पूवकृत स्वाभाविक कम से बँधा हुआ परवश होकर करेगा।'

जैसे जैसे परीक्षा के दिन निकट आते गये, वैसे-वैसे तीथराम की गुरुभक्ति और अधिक बढती गयी। वे भक्त धनाराम से मिलने के लिए तडपने लगे। उन दिनो भगत जी को वे नित्य पत्र लिखा करते थे। किसी किसी दिन तो दो-दो पत्र लिखते थे। उन पत्रो से उनकी तडपन का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। उनका एक पत्र इस प्रकार है— 'लाहौर, ११ माच, १८६० ई०

सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म, आनन्दामृत, शान्तिनिकेतन, मगलमय,
शिवरूपम्, अद्वैतम्, अतुलम्, परमेशम्, शुद्धम् अपापविद्धम्॥

लोग कहते है कि ईश्वर, दया और शान्ति का भाण्डार है। फिर आप क्यो क्रुद्ध होते है? आप मुझे क्षमा क्यो नही करते? सोचता हूँ कि शायद ईश्वर के यहा से आपको ज्ञात हुआ हो कि मैं अपने दोषो के कारण भगवान् के दशन पा नही सकता। यही जानकर आप मेरी अवहेलना कर रहे है। अन्यथा लोग हँसेंगे कि तीरथराम तो आपका बडा भक्त था, उसे भी ईश्वर के दशन न हो सके। परन्तु मेरी विनय है कि मुझे क्षमा कीजिये और मेरे दोषो पर ध्यान न दीजिये।

यदि तू मुझे भीतर बुलाये, तो मैं केवल एक ही द्वार जानता हूँ।
यदि तू मुझे बाहर निकाले, तो मैं केवल एक ही द्वार जानता हूँ॥

मुझे किसी और द्वार का पता नहीं,
मैं इस सिर को पहचानता हूँ—
उसके योग्य स्थान है—तेरी देहरी

—(फारसी से अनुवाद)'

१८६० ई० के माच महीने में उनकी इण्टरमीडिएट की परीक्षा समाप्त हो गई। यद्यपि इस वर्ष प्रश्नपत्र कठिन आये थे, फिर भी उन्होने पर्चे ठीक किये। पजाब प्रान्त में उनका पचीसवाँ स्थान था और कदाचित मिशन कालेज (फोरमैन कालेज) में सभी परीक्षार्थियो में उनका प्रथम स्थान रहा। अबकी बार उन्हे विश्वविद्यालय से छात्रवृत्ति भी मिल गई। अतएव उन्हाने आगे अध्ययन करने का निश्चय दढ रखा।

उनके आगे पढने के निश्चय के कारण पिता और पुत्र में फिर सघर्ष उपस्थित हुआ। हीरानन्द जी की इच्छा थी कि तीथराम अपना स्वास्थ्य, शक्ति और धन अध्ययन में बरबाद न करे, बल्कि कही काम धन्धे में लगकर परिवार के आर्थिक बोझ को हल्का करे। किन्तु तीथराम का दृढ़ सकल्प था कि वे विश्वविद्यालय की पूर्ण शिक्षा प्राप्त करें। वे उसके माध्यम से परम सत्य का साक्षात्कार करना चाहते थे। अध्ययन बीच में छोड देना वे अपनी पराजय समझते थे। तीर्थराम ऐसे तन्तुओ से निर्मित थे कि उन्हाने अपने जीवन में कभी भी पराजय स्वीकार नही की। उनके विशुद्ध अन्त करण ने जो आज्ञा दी, उसी का उन्होने मनसा, वाचा, कमणा पालन किया। अत उन्होंने अपने पिता की आज्ञा की अवहेलना कर दी और अपने निश्चय पर अडिग रहे। उन्होंने उसी कालेज में बी० ए० में अपना दाखिला करा लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके पिता आपे से बाहर हो गये। उन्होने तीथराम को सबक सिखाने का निश्चय कर लिया। अतएव यह घोपणा कर दी, 'मैं तुम्हारी पढाई का खच एक पाई भी नही दूँगा। तुम्हें अपनी स्त्री के भरण पोपण का भी भार ग्रहण करना पडेगा। तीथराम के मनोबल और निश्चय की विकट परीक्षा थी।

तीथराम इस भयावह स्थिति से तनिक भी विचलित नही हुये। उन्हाने अपने भावी जीवन की जो रूपरेखा तयार कर ली थी, उसी के अनुसार काय करना प्रारम्भ कर दिया। उन्हाने परमात्मा की इच्छा मानकर इस परिस्थिति को स्वीकार कर लिया।

१८६० ई० में भक्त धन्नाराम को तीथराम की किसी साधारण बात पर कुछ भ्रम हो गया। इससे राम को अत्यधिक आन्तरिक क्लेश हुआ। वे भगत जी को साक्षात परमेश्वर समझते थे। उन्होने धन्नाराम से २४ जून, १८६० ई०

के पत्र में अपना भाव इस प्रकार अभिव्यक्त किया—"आप मेरे ऊपर नाराज हैं। इसका कारण यह है कि आपने मेरे मन की आन्तरिक दशा न समझकर केवल बाहरी व्यवहारो से मेरे सम्बन्ध में बुरी धारणा बना ली। यदि आप मेरे अन्त-करण को देखें तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपकी नाराजगी दूर हो जायेगी। यदि मैं बाह्य रूप से आपकी सेवा करने में समर्थ न हो सका, तो आप कृपया यह न समझें कि आपके प्रति मेरे विश्वास और श्रद्धा में किसी प्रकार की कमी आ गई है। मैं सदैव आपकी सहायता का अभिलाषी हूँ और मेरे मन में आप सदैव विराजमान रहते हैं। मेरे अध्ययन तथा शुभ कर्मों के सम्पादन में आपकी सहायता की नितान्त आवश्यकता है। मेरे सभी प्रयत्नो को सफल करने की आप में अलौकिक शक्ति है। व्यक्तिगत लक्ष्य सिद्धि के लिए अध्ययन में निरन्तर व्यस्त रहने पर आपको भूल जाना निश्चय ही बुरी बात है। पर मैं आपको पूर्णरूप से विश्वास दिलाता हूँ कि अध्ययन के द्वारा मैं आपकी सैकडों, हजारों गुनी और अधिक सेवा कर सकूगा।'

तीर्थराम ने एक पत्र १६ जुलाई, १८६० को भक्त धनाराम को लिखा। उस समय उनकी आयु १७ वर्ष से भी कम थी। परन्तु निष्ठापूर्वक कर्म करते रहने से उनके क्षीण शरीर में अलौकिक तेजस्विता समाविष्ट हो गई थी। उस पत्र में उन्होंने अपनी बात का तर्कयुक्त शैली में, साथ ही विनयपूर्ण शब्दों में प्रतिपादन किया है। यहा कुछ भावुक पाठकों को यह भ्रम हो सकता है कि तीर्थराम ने अपने सद्गुरु की अवज्ञा की है। पर विशुद्ध अन्तःकरण की आवाज सर्वव्यापी परमात्मा की आवाज होती है। इस पत्र में उनके भाव पक्ष और बुद्धि पक्ष, हृदय एवं मस्तिष्क, श्रद्धा एवं विवेक का अपूर्व सम्मिश्रण है। पत्र इस प्रकार है—

'हमारी छुट्टियां पहली अगस्त से प्रारम्भ होगी। आज १६ जुलाई है। कृपा करके आप ऐसा कभी न सोचें कि मैं आपसे विमुख हुआ जा रहा हूँ। जब कोई मनुष्य किसी काम को हाथ में ले लेता है, तो कुछ समय तक उसमें लगे रहने के बाद उसे उसके सारे भेद सूझने लगते हैं और पता चलता है कि वह सर्वोत्तम ढंग से कैसे किया जा सकता है। फिर वह बिना अधिक सोच विचार के ही वैसा काम करने के ढंग और साधन—आदि, भले ही वह उस कार्य प्रणाली का कारण और हेतु न बतला सके, किन्तु दिल में उसे उन्हें ठीक होने का निश्चय रहता है। मैं आपको कारण नहीं बता सकता, वह काम तो विद्वानों का है। हर एक मनुष्य दार्शनिक नहीं होता और अधिकतर व्यक्ति बिना कारण निर्धारित किये ही अपने ढंग से कार्य सम्पादन करते हैं। जब मैं छोटा बच्चा था, तभी मैं कविता के छन्दों के स्वरों और संगीत के विषय में निर्णय रखता था। उस समय

अपनी धारणा के विषय में न मैं तर्क दे सकता था और न उनकी व्याख्या कर सकता था। किन्तु अब दस वर्ष के उपरान्त, जब मैंने छन्दशास्त्र के नियमों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया, तब मुझे मालूम हुआ है कि मेरी धारणायें बिल्कुल ठीक थी। यदि तब मैं ठीक नही बता सकता था, तो उसका अर्थ यह नही कि मेरा निर्णय भ्रमपूर्ण था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यथार्थ बुद्धि वाले व्यक्ति को हर एक बात के लिए आवश्यक कार्य ढढना कोई अत्यन्त आवश्यक नहीं। अत कभी-कभी कारणो पर अधिक जोर दिये बिना ही हमें उसका निर्णय मान लेना चाहिये, यदि हमें यह निश्चय हो कि वह व्यक्ति वास्तव में भला है और अपने शुद्ध अन्त करण के अनुसार चलने वाला है।

"मैं आपकी अवज्ञा करता हूँ, ऐसा विचार ही कभी मेरे मन में नही उठता। आप सदा यही सोचें कि मेरे हर एक काम में आपकी आज्ञाकारिता का सच्चा भाव भरा है।

"आपकी राय में मुझे अपनी छुट्टियाँ गुजरांवाला में आपके साथ बितानी चाहिए। आपकी आज्ञा है तो मुझे आना ही होगा। किन्तु मैं वहाँ सारा समय न बिताऊँ ऐसी मेरी इच्छा है। मैं इसके लिए कुछ कारण उपस्थित कर सकता हूँ। यद्यपि इस तरह की सफाई देने की मेरी रचमात्र भी इच्छा नही होती है। यह तो आपका समय नष्ट करना है। पर आप कही मुझे अवज्ञाकारी न समझ बैठें—यही निश्चय कराने के लिए लिखता हूँ। मेरी विनय यही है कि अपने प्रति मेरी भक्ति में कभी सदेह न करें।

"मेरे कारण ये है—मैंने एक ओर लाहौर में ठहरने और दूसरी ओर अपने घर जाकर इष्टमित्रो एव सम्बन्धियो से मिलने-जुलने का अन्तर समझ लिया है। केवल इतना ही नही कि वहा लिखने-पढने के लिए आवश्यक एकान्त की सुविधा नही होती, वरन मैंने देखा है कि वहाँ चित्त की वह गम्भीरता नष्ट हो जाती है, जो गूढ और कठिन प्रश्नो के हल के लिये अपेक्षित होती है। घर जाकर हम मोटे से हो जाते है और उत्तम विचारो की ग्राहक, चिन्तनशील सूक्ष्मधारा लुप्त-सी हो जाती है। कारण, वहा भौतिक सुखो के स्पर्श से बुद्धि विकृत रहती है और मेरा मन बिगड जाता है। आप कह सकते है—लाहौर कोई जगल नही, वहाँ भी तो मनुष्यो से मिलना-जुलना होता रहता है। यह ठीक है। किन्तु यहा केवल अपरिचितो से मिलना होता है। वहाँ उस गहरे प्रेम से लोगो से मिलना नही होता है, जैसे घर के लोगो से मिलता हूँ। लाहौर में मैं लोगो से मिलता हूँ, किन्तु मेरा ध्यान उनमें जमता नही। केवल ऊपरी ढग से मिलना होता है। अपने लोगो से मिलने में हमें अपना मन उनमें लगाना पडता है। दूसरे लाहौर में मैं केवल विद्यार्थियो को जानता हूँ और उनका सहवास सदैव स्वास्थ्यवर्धक होता है।

"आप यह भी पूछ सकते है कि क्या अन्य विद्यार्थी भी मेरी तरह लाहौर में रुकने वाले ह। रुक्नदीन जो सारे प्रान्त में प्रथम आया, अपने घर एक दिन को भी नही जाता।

"विना मेहनत बिना परिश्रम कोई चमक नही सकता। मैं कडी मेहनत करना चाहता हूँ। यह सच है कि बहुत से कुशाग्रबुद्धि विद्यार्थी घर जायेंगे, किन्तु मेरा विश्वास है कि सम्भवत उन्हे अपने घरो में अध्ययन के लिए आवश्यक सुविधायें मिलती हो। इसके सिवा बहुत से मेरी तरह विवाहित नही है और विवाहित होते पर भी वे प्रबल इच्छाशक्ति वाले हो सकते है, जो अपने मन को बाहरी आमोद के साधना की ओर भटकने से रोक सकते हो। मैं उतना शक्तिसम्पन्न नही। मुझे डर है कि वहा मेरा मन बिगड न जाय।

"जिसे बुद्धि कहते ह वह भी अभ्यास एव परिश्रम से उन्नति करती है। यदि कोई विद्यार्थी बिना मेहनत अच्छे नम्बरो से पास कर लेता है, तो वह परीक्षा भर पास कर लेता है, उसे कभी पढने का मजा नही मिल सकता। क्या आपको याद नही है कि उस बार एक व्यक्ति ने अपने नाम पर आपसे एक कविता बना देने की प्रार्थना की थी ? दुनिया को वह भले ही यह धोखा दे सके कि वही उस कविता का रचयिता है। वह तो कहने सुनने को रचयिता बना था, उस कविता के रचने का सच्चा सुख तो आपने ही भोगा था, वह तो उस आदमी की तरह है, जिसे बिना कमाये ही बहुत सा धन मिल जाता है। ऐसे किसी के पास विशाल सम्पत्ति हो, पर उसे उसका स्वाद कभी नही मिल सकता। स्वाद तो केवल उसे ही प्राप्त होता है जो पसीना बहाकर धन कमाता है।

"दया करके मुझे अपने अध्ययन से वचित न करें। समझ लीजिये मैं कही विदेश में चला गया हूँ। मुझे दो वर्ष की छुट्टी दे दें। जब पुत्र लौटेगा, तो आपका है ही। जब सैनिक अपनी पूरी आत्मा से बढता है, तो उसे यह पता नही रहता कि किसका सैनिक है, उसका स्वामी कहा है अथवा स्वामी के साथ उसका क्या सम्बन्ध है। फिर भी सारे समय वह रहता तो है राजा का ही सैनिक, और अपनी सारी शक्ति के साथ राजा के प्रति अपनी स्वामिभक्ति को चरितार्थ करता ह। यही हाल मेरा है। यह न सोचें कि मैं गुजरावाला न जाकर आपकी अवज्ञा करना चाहता हूँ।'

उपर्युक्त पत्र में राम की आन्तरिक साधना की प्रवृत्ति पूर्णतया प्रस्फुटित हो चुकी है। उनके विशुद्ध अन्त करण में साधना की जो ज्योति उद्भासित हुई ह, वह उन्हें तथा आसपास के समस्त वातावरण को ज्योतित करना चाहती है। सद्गुरु धन्नाराम में जो अनावश्यक मोह राम के प्रति है, उसे भी दूर करना चाहती ह।

राम सैनिक के से अदम्य उत्साह से कर्मक्षेत्र में कूदना चाहते हैं। वे सतत कर्म और अनवरत अभ्यास के पुजारी बन गये हैं। वे एकान्त में रहकर सात्विक साधना के अभ्यास से अपनी बहिर्मुखी वृत्ति को अन्तर्मुखी करना चाहते हैं और अपनी भावना वृत्ति एव तर्कशक्ति से रूठे सद्गुरु को मानना चाहते हैं। उनकी गुरु भक्ति विवेक से परिपूर्ण है। उनकी एकमात्र आकाक्षा है—एकान्त स्थल में समय का अधिकतम सदुपयोग, कम करना, कम करना। वे उस अवसर को भावी जीवन की तयारी का सुनहला अवसर मानते थे। इसीलिए मुरालीवाला अथवा गुजराँवाला नही जानना चाहते थे।

तीयराम निरन्तर अध्ययन में रत रहते थे, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनकी आँखें कमजोर हो गईं। कालेज के प्रिंसिपल ने उन्हे नेत्र विशेषज्ञ डॉक्टर से आखा की परीक्षा कराकर चश्मा लगाने की सलाह दी। आखो का परीक्षण कराने पर डॉक्टर ने उन्ह चश्मा लगाने की राय दी। चश्मे के शीशे बम्बई से पाच रुपये देकर मँगवाये गये, क्योकि उन दिना लाहौर में चश्मे के शीशे तयार नही मिलते थे।

अत्यधिक परिश्रम करने के कारण एव पौष्टिक आहार के अभाव में उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। कालेज के प्रिंसिपल राम के क्षीणकाय होने से चिन्तित थे। अत उन्होने राम को शारीरिक व्यायाम करने को बाध्य किया। इसका सकेत २० फरवरी १८९१ ई० के पत्र में किया है, "प्रिंसिपल ने रुक्नदीन को आज्ञा दी है कि मैं शारीरिक व्यायाम किये बिना घर न जा सकू। वे समझते ह कि मैं बहुत कमजोर और रोगी हो गया हूँ।"

छात्रवृत्ति मिलने पर भी उन्हें सदैव अर्थाभाव बना रहता था। इसी अर्थाभाव के कारण वे पौष्टिक भोजन नही कर सकते थे। किन्तु कालेज के प्रिंसिपल उनके ऊपर कृपालु थे। अत उनकी फीस माफ कर दी थी। इसका विवरण तीथराम के अनुसार—"१८ जनवरी, १८९१, प्रिंसिपल ने मेरी फीस माफ कर दी है। उसके बदले मुझे व्याख्यानो की नकल करने का थाडा काम दिया गया है। मैं उसे करूँगा।'

तीर्थराम का गणित के प्रति स्वाभाविक अनुराग था। विश्वविद्यालय द्वारा गणित का पूर्णाङ्क कम करने पर उन्हें अत्यधिक क्षोभ हुआ था। उनकी मानसिक स्थिति का आभास प्रत्यक्ष प्रकट होता है, "१ अप्रैल १८९१, विश्वविद्यालय के अधिकारी गणित के कुल नम्बरो को घटाकर १५० से १३० करने वाले है और अन्य विषयो के नम्बर में बढाने वाले है। इसका अथ यह है कि वे अन्य विषयो को भी गणित के समान गौरवान्वित करना चाहते है। सचमुच यह भयानक बात

हैं, स्पष्ट ही पापरूप। इसका अभिप्राय है कि वे कम और अकम के बीच का अन्तर धो डालना चाहते हैं। हमारे गणित के प्रोफ़ेसर कह रहे थे कि वे इसके विरुद्ध आन्दोलन करेंगे। क्या परिणाम होगा—ईश्वर जाने।"

आये दिन उन पर आकस्मिक आपदायें आती रहती थी। पता नही भगवान उनके धैर्य की कितनी कठोर परीक्षा लेना चाहता था। उनकी कोठरी में हुई चोरी का व्यौरा उन्ही के शब्दो में पढ़िये—"७ अप्रैल १८९१ मैं सबेरे घूमने गया था। लौटने पर देखा ताला टूटा हुआ है, किवाड खुले हुये हैं और लोटा आदि पीतल के सारे बतन—सब सामान गायव हो गया है। ईश्वर को अनेक धन्यवाद! पूरी पुस्तकें सुरक्षित है। चोर अपनी टोपी यहाँ भूल गया है।"

जिस कोठरी में तीर्थराम रहते थे, उसकी परेशानी उन्हें बराबर बनी रहती थी। उनके शुभचिन्तक उन्हें मकान बदलने के लिए निरन्तर सलाह देते थे। पर नया मकान पाने में अनेक कठिनाइयाँ थी। भक्त धन्नामल को ६ मई, १८९१ को जो पत्र उन्होने लिखा था, उनमें कठिनाइयो का उल्लेख इस प्रकार है, "लाला अयोध्याप्रसाद ने मुझसे कहा है कि उन्होने मेरे लिये दो मकान ढूंढे हैं, एक तो मुझे इसलिये पसन्द नही आया कि हाकिमराय जी आयसमाजी वहाँ रहते ह। दूसरा उतना सुविधाजनक नही है, जितना कि यह, जिसमें मैं रहता हूँ। और एक बडी बुराई यह है कि इस दूसरे मकान के मालिक मुझसे कुछ किराया नही लेना चाहते। किन्तु चाहते हैं कि मैं उनके लडके को प्राइवेट तौर पर पढाया करू। इसका अथ यह होता है कि वे एक रुपया मासिक किराये का मकान देकर और नही तो कम से कम पचीस रुपये मासिक का काम मुझसे लेना चाहते ह। इतना ही क्या, मुझे मुफ्त मकान देने का उनका अनुग्रह मेरे सिर पर लदा ही रहेगा। यही कारण है कि मैं इस दूसरे मकान में रहना पसन्द नही करता हूँ।" नये मकानो में न जाने के लिए जो कारण प्रस्तुत किये है, वे अत्यधिक व्यावहारिक हैं। सगदोष से बचने के लिए वे कितने जागरूक थे। साथ ही मुफ्त के एहसान से भी बचना चाहते थे।

कभी-कभी तीर्थराम का आचरण और व्यवहार निरीह और भोले बच्चो की भाँति होता था। एक बार उन्होने पुरानी चारपाई की मरम्मत करायी थी। इस छोटी सी बात की सूचना अपने गुरु धन्नाराम को देकर अपनी प्रसन्नता अभिव्यक्त की थी, "११ मई १८९१, मेरी चारपायी की बिनाई एकदम टूट गई थी। रस्सियाँ पुरानी हो गई थी। इसलिए मैंने पाच आने की रस्सियाँ लेकर उसे फिर से कसवा लिया है। मेरी चारपाई अब खूब कसी हुई नयी जसी हो गई है। मैं बडा खुश हूँ।" वास्तव में भोलापन सात्विक व्यक्ति का उत्कृष्ट लक्षण है।

तीथराम की सरलता, निष्कपटता से उनके सहपाठी, प्राध्यापकगण एव प्रधानाचार्य अत्यधिक प्रभावित थे। वे सब के सब उनकी रहनी पर सहानुभूति प्रदर्शित करते थे। उन्हें राम का तग और अँधेरी कोठरी में रहना बहुत खलता था। वे चाहते थे कि तीथराम होस्टल में आकर रहें। उन्होंने भक्त धन्नाराम को लिखे गये पत्र में इसका सजीव वणन किया है,—"१६ मई, १८६१, आज जब मैं कालेज गया, तो सभी सहपाठियो ने मुझे घेर लिया और वे मुझसे कहने लगे कि अब तुम्हें कालेज के बोर्डिंग में आकर रहना होगा, प्रिंसिपल साहब ने ऐसी आज्ञा दे रखी है। दो-तीन घण्टे के बाद कालेज के डॉक्टर से मेरी भेंट हुई। उन्होंने भी मुझसे पूछा—'क्या तुमने अपने बारे में प्रिंसिपल की नयी आज्ञा नही सुनी है ?' मैंने कहा, 'मुझे अपने माता पिता से (आपसे अभिप्राय था) परामश लेना होगा। कालेज के डॉक्टर ने उत्तर दिया—'किन्तु हर हालत में प्रिंसिपल का आदेश मानना ही पडेगा।

"कालेज के समय के बाद प्रिंसिपल ने मुझसे कहा—'मैंने यह आज्ञा तुम्हारी भलाई के लिये दी है। तुम कालेज के होस्टल में आकर रहो।' सच्ची बात यह है कि मेरे कुछ साथी एक दिन आये थे और उन्होने जब मुझे इस अन्धी कोठरी में रहते देखा और मेरे खाने-पीने तथा अन्य कठिनाइयों का अनुभव किया—उदाहरणाथ, मुझे प्रतिदिन कालेज आने जाने में जितना चलना पडता है, तो उन्हें दुःख हुआ। उन्ही लोगो ने सहानुभूति में मेरे विरुद्ध यह षडयन्त्र रचा। वे मुझे होस्टल में घसीट ले जाना चाहते है। कहते है कि हम तुम्हें यहाँ नही रहने देंगे। हिसाब लगाकर मुझे बताया गया कि खाना-पीना, किराया आदि सब मिलाकर मुझे कुल तेरह रुपये, नौ आने देने होंगे। यह तो मैं जानता हूँ कि मनुष्य को चाहे जिस परिस्थिति में रहना पडे, यदि वह चाहे तब सभी जगह अपने मन को एकाग्र कर सकता है।' होस्टल पढने लिखने के लिये बुरी जगह नही। प्रान्त के बहुत से विद्यार्थी यही रहकर प्रथम आये है।

'मैंने बारह आने की कुछ पुस्तकें मोल ली है। अब मेरे पास एक पैसा भी नही बचा है। मैं अयोध्याप्रसाद जी के पास जाऊँगा। यदि आपकी यह राय बैठे कि मुझे होस्टल में नही जाना चाहिए, तो कृपया यह लिख भेजें कि मुझे प्रिंसिपल को क्या उत्तर देना चाहिये।"

जिस कोठरी में तीथराम रहते थे, उसमें एक दिन भीषण रोमाचक घटना घटी। इस घटना का उल्लेख उन्होने भक्त धन्नाराम को लिखे पत्र में किया है, "२३ मई, १८६१, कालेज से लौटने पर आज जब मैंने अपनी कोठरी के किवाड खोले, तो एक साप मेरी ओर तेजी से झपटा। वह एकदम काला और विषधर था

मैं सहायता के लिए चिल्लाया और लोगो ने उसे आकर मार डाला। अब कालेज के सभी व्यक्ति मेरे यहाँ रहने के एकदम विरुद्ध हो गये है। सबके सब हास्टल में बुलाना चाहते ह। वे कहते है कि यदि मैं जिस किसी स्थान पर अपने अध्ययन में मन एकाग्र करने की क्षमता नही प्राप्त करूँगा, तो मेरे लिए ठीक ढग स मनुष्यो के बीच रहना ही सभव न होगा। जो तैरना सीखना चाहता है और पानी में बठने मे घबराता है, वह तैरने की कला कसे सीख सकता है?

"लोग कहते ह कि बडे होने पर न मनुष्य को ऐसा एकान्त मिल सकता है और न ऐसा अवकाश ही प्राप्त हो सकता है कि वह अकेले अपने आप में ही निमग्न रहे। इसलिए वे लोग चाहते हैं कि मैं नितान्त एकान्त में रहने के अभ्यास को छोडकर लागो के साथ रहने की प्रवृत्ति बनाऊँ। कालेज के डॉक्टर भी मुझे समझा रहे थे कि मैं शीघ्र ही जनसमूह के बीच अपने अध्ययन पर ध्यान लगाने में अभ्यस्त हो जाऊँगा। केवल यही डर है, अन्यथा मेरा होस्टल में रहना अनिवाय सा है मुझमे उसका विराध न हो सकेगा। आप ऐसा आशीर्वाद दें कि म वहाँ भी अपने अध्ययन में उसी प्रकार दत्तचित्त हो सकू, जैसे यहा हूँ।"

सापवाली घटना से कालेज के लोगो का तीथराम को होस्टल में ले आने का आग्रह और भी अधिक बढ गया और वे भी अपने मन को इस बात के लिये तयार करने लगे। २५ मई १८९१ के पत्र में उन्होने इस बात का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—"मैंने हिसाब लगा कर देख लिया है कि यदि मैं होस्टल में जाता हूँ तो—

(१) मुझे छुट्टी के महीना के लिये किराया कुछ न देना होगा।

(२) भोजन क लिए भी केवल उतने दिनो का व्यय दना होगा, जितने दिन मैं खाना खाऊँगा। यदि कोई अतिथि आ जायेगा, तो उसके लिये उसी हिसाब से व्यय करना होगा।

"मैंने हास्टल के अध्यक्ष म कहा था कि मेरे अभिभावक इतना सारा व्यय देने में असमय है। उन्होंने हिसाब लगाया और बतलाया कि मैं यहाँ जितना व्यय कर रहा हूँ उससे केवल एक रुपया व्यय अधिक बढेगा और जब होस्टल में मुझे अच्छा भोजन मिलने लगेगा, तो उनके कथनानुसार मैं अपने अन्य व्ययो में एक रुपये की कटौती आसानी से कर सकूगा। अन्त में उन्होंने मुझे यह भी आश्वासन दिया कि यदि मुझे वहाँ कोई अडचन प्रतीत हो, तो मैं छुट्टियो के बाद फिर अपना निवास बदल सकता हूँ।"

उन दिनो तीथराम अध्ययन में अत्यधिक निमग्न रहा करते थे। गणित के किसी कठिन प्रश्न का हल करने में दिन दिन भर लगा देते थे। जब प्रश्न हल हो

जाता, तभी चैन की सांस लेते थे। दिसम्बर १८९१ के पत्र से उनकी मन स्थिति पर भलीभाँति प्रकाश पडता है, "मैं आपको पत्र लिखने के लिए पोस्टकार्ड अपने साथ लिए रहा। किन्तु मैं इधर गणित का एक बहुत ही जटिल प्रश्न हल करने में लगा हुआ था। इसलिए उस दिन यह पत्र अधूरा ही मेरी जेब में पडा रहा। कालेज के अन्य विषयो का काम भी अभी बाकी पडा है। पूरे चौबीस घटा के बाद मैं उस प्रश्न का हल कर सका हूँ। अब मैं कालेज के दूसरे कामो में लगूगा।"

आये दिन तीर्थराम को बराबर नयी-नयी मुसीबतो का सामना करना पडता था। चोरा ने उन्हें तक लिया था। ११ फरवरी, १८९२ के पत्र में उन्होने इस दूसरी चोरी और होस्टल में प्रवेश का जिक्र किया है, "मैं अभी तक कालेज के हास्टल में नही जा सका हूँ। शायद गाज चला जाऊँ। मेरे मकान में फिर एक नयी चारी हुयी। मेरा विस्तर, तकिया, गद्दा और कुछ बतन चोरी चले गये। किन्तु पुस्तकें सुरक्षित ह। लाला ज्वालाप्रसाद और भण्डूमल कहते थे कि वे मुझे नये कपडे सिलवा देंगे। उन्हाने मुझे आश्वासन दिया है, "गोस्वामी जी, आप चिन्ता क्यो करते है ? हम सब तरह से आपकी सहायता के लिए तैयार है।"

तीथराम का अनेक विषया का अध्ययन, चिन्तन, मनन अहर्निश चलता रहता था। उन्होने इस सम्बन्ध में एक अत्यन्त मनोरजक घटना का उल्लेख किया है, 'उन दिना राम विद्यार्थी था और बी० ए० परीक्षा की तैयारी में लगा था। मेरे ही कमरे में मेरा एक अन्य साथी रहता था। वह व्यक्ति अत्यन्त विनोदी था। नाचने गाने, खेलने-कूदने में ही वह अपना अधिकाश समय व्यतीत करता था। एक दिन किसी भद्र पुरुष ने पूछा, 'भाई, तुम कितनी देर पढते हो ?' मेरे साथी ने तत्काल मुस्करा कर उत्तर दिया, 'पूरे अठारह घण्टे। उन भद्र पुरुष ने कहा, तुम्हारा क्या अभिप्राय है ? चौबीस घटा में से चार-पांच घटे समय तो तुम मेरे सामने ही नष्ट करते हो, आठ नौ घटे सोते हो। मुश्किल से दस बारह घटे बचे। फिर भी तुम कहते हो कि अठारह घटे पढते हो।' मेरे साथी ने तत्काल उत्तर दिया, 'कदाचित् आपने गणित नही पढा है। मैं इस बात को गणित द्वारा सिद्ध कर सकता हूँ कि मैं अठारह घटे पढता हूँ।' उन भद्र पुरुष ने उत्साह पूवक प्रश्न किया, 'अच्छा, किस प्रकार ?' मेरे साथी का उत्तर इस प्रकार था, 'सुनिये, मैं और राम इसी कमरे में साथ-साथ रहते ह। बात यह है कि मैं बारह घटे पढता हूँ और यह राम दिन रात पूरे चौबीस घटे पढता रहता है। बारह और चौबीस के जोड्ने पर छत्तीस होता है। अनुपात निकालने पर प्रत्येक की पढाई अठारह घटे हो जाती है। इस प्रकार मैं अठारह घटे पढता हूँ।' उस व्यक्ति ने कहा, 'अच्छा यह मान लिया तुम बारह घटे पढते हो, किन्तु इस बात का किस प्रकार

स्वीकार करूँ कि तुम्हारा साथी राम चौबीस घटे पढता है ? यह कैसे सम्भव हो सकता है ? मैं यह भलीभांति जानता हूँ कि राम अत्यधिक परिश्रमी छात्र है। यह भी जानता हूँ कि यह पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अन्य विषयो की तैयारी भी कर रहा है। इसके अतिरिक्त उसे और भी अन्य काय करने पडते है। फिर भी प्रकृति के नियम उसे चौबीस घटे काय किसी भी दशा में नही करने देंगे।' मेरे विनोदी मित्र ने अपने कथन की सार्थकता की इस प्रकार व्याख्या करनी प्रारम्भ की, 'अच्छा, ध्यान देकर सुनिये, मैं अपनी बात सिद्ध कर रहा हूँ। राम जब भोजन पर बठता है, तब भी अपने कार्य में रत रहता है, वह अपने मन को एक क्षण भी इधर-उधर बहकने नही देता। वह अपने साथ कुछ ऐसे कागज रखता है, जिस पर कुछ न कुछ विज्ञान अथवा गणित के प्रश्न अथवा दार्शनिक समस्यायें रहती है। उनके हल करने में वह सदैव रत रहता है। कभी-कभी उसके हाथ में कोई पुस्तक अथवा कविता रहती है, जिसके स्मरण करने में उसका मस्तिष्क व्यस्त रहता है अथवा कभी-कभी कोई कविता ही रचता है। इसी प्रकार वह किसी न किसी काय के सम्पादन में दत्तचित्त रहता है। कहने का अभिप्राय यह कि भोजन करते समय भी किसी न किसी काय में लगा ही रहता है। कपडा पहनते समय भी वह चाक से दीवाल पर कोई न कोई आकार बनाता रहता है। शयन करते समय भी किसी न किसी समस्या के निदान में लगा रहता है। जिस प्रकार वह दिन में प्रतिक्षण कार्य में रत रहता है, उसी प्रकार रात में स्वप्न देखने में उसका काय सदव चलता रहता है। इस प्रकार वह चौबीसो घटे अनवरत काय में लगा रहता है।'

"उसके उपर्युक्त कथन में कुछ सच्चाई थी। जो व्यक्ति अपने अध्ययन में अठारह घटे तक रत रहता है, वह स्वप्न में भी उसी प्रकार का काय करता है, अन्य किसी प्रकार का काय नही।"

कहना न होगा कि तीथराम ने अपने साथी के उस परिहासयुक्त कथन को अपनी साधना का प्रबल अग बना लिया था। आगे चलकर उन्होंने अपने व्याख्यानो में वेदान्त-साधन की प्रणाली में इसकी महत्ता पर बहुत अधिक बल दिया। उन्होंने कहा कि चाहे कोई किसी भी धम का अनुयायी क्यों न हो, उस धम के अनुसार निरन्तर साधना करते-करते वह अपनी इष्ट-साधना में तद्रूप हो जाता है। उदाहरणाथ ईसा का अनुयायी उनके स्वरूप, उनके क्रास एव उनके अलौकिक गुणो का अविरल चिन्तन करते-करते ईसा का साक्षात रूप हो जाता है। इसी प्रकार अन्यान्य धम के अनुयायियों की दशा होती है। तीथराम ने अहर्निश के इष्ट चिन्तन से अपनी लक्ष्य प्राप्ति को सहज साध्य बना लिया। ऐतरेयोपनिषद के शान्ति पाठ के इस अश को—'अनेनाधीतेनाहोरात्रान् सदधामि' अर्थात 'इस अध्ययन के द्वारा

मैं दिन रात एक कर दूँ।' उन्होने अपने पर पूरी तरह चरितार्थ कर दिया था। उनकी सफलता का सबसे बडा रहस्य यही है कि वे जिस भी काय को करते थे, उसके सम्पादन में मन, वाणी और क्रिया को एक कर देते थे।

इसी परिश्रम के फलस्वरूप तीर्थराम ने गणित विषय में इतना अधिक ज्ञानार्जन कर लिया कि उनके प्रोफेसर की बीमारी के समय उन्हें जून १८९१ में अपने सहपाठियो को पढाने का भार सौंपा गया था और उन्होने पूर्ण दक्षता से उस उत्तरदायित्व का निर्वाह किया। यद्यपि गणित के समान उनकी अंग्रेजी उतनी अच्छी नही थी, फिर भी कक्षा की परीक्षाओं में वे अँग्रेजी में भी सर्वोच्च अक पाते थे। किन्तु जब वे बी० ए० की परीक्षा में अंग्रेजी में अनुत्तीर्ण हुये, तो कालेज के प्रिंसिपल तथा सभी प्रोफेसर उनकी इस असफलता पर आश्चर्यचकित हो गये। तीर्थराम स्वय भी स्तब्ध रह गये। हालाकि, सभी विषयो के प्राप्ताङ्कों का योग विश्वविद्यालय भर में सबसे अधिक था। वे केवल अँग्रेजी विषय में थोडे अको से अनुत्तीर्ण थे। जिस परीक्षार्थी को अँग्रेजी के प्रोफेसर परीक्षा में प्रविष्ट होने से रोकना चाहते थे, उसके अँग्रेजी के प्राप्ताङ्क सर्वोच्च थे। ऐसी स्थिति में कालेज के प्रिंसिपल और अन्य प्रोफेसरो ने तीर्थराम की अंग्रेजी की उत्तर पुस्तकें पुनर्निरीक्षित करवाने का अत्यधिक प्रयास किया, किन्तु वे अपने प्रयत्न में असफल रहे। विश्व-विद्यालय के अधिकारीगण इस बात मे सहमत नही हुये। उन दिनो लाल फीता शाही शासन में इस प्रकार के अन्याय प्राय होते ही रहते थे और उनकी कुछ भी सुनवाई नही होती थी।

तीर्थराम की इस असफलता के कारण विश्वविद्यालय के प्रिंसिपल और प्रोफेसरो ने उसके नियमो के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई। परिणाम यह हुआ कि विश्वविद्यालय के अधिकारियो को परीक्षा-सम्बन्धी नियमो में सशोधन करना पडा और उन्होने ऐसा नियम बनाया कि जो परीक्षार्थी केवल एक विषय में पाँच अको तक से अनुत्तीर्ण हो, उसकी उत्तर पुस्तका का पुनर्मूल्याकन किया जा सकता है।

इस असफलता से भावुक तीर्थराम को अत्यधिक ठेस पहुँची। उनके अनुत्तीर्ण होने के कारण उन्हें वह सरकारी छात्रवृत्ति न प्राप्त हो सकी, जो बी० ए० परीक्षा में गणित विषय में सर्वोच्च अक प्राप्त करने पर इक्कीस वर्ष तक की आयु वाले छात्र को दी जाती थी। वह छात्रवृत्ति विदेश में पढने के निमित्त दी जाती थी। यह निश्चित था, कि उत्तीर्ण होने पर वह छात्रवृत्ति उन्हीं को मिलती। यह थी भाग्य की विडम्बना। पर दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो परमात्मा के इस विधान में उनकी महती अनुकम्पा अन्तर्निहित थी। सभव है कि छात्रवृत्ति पाकर विदेश जाने

पर सासारिक वैभवों की चकाचौंध में पडकर, वे अपने जीवन की दूसरी ही दिशा चुनते।

अब तीर्थराम के सामने विकट समस्या उपस्थित हो गई। उन्हें जो छात्रवृत्ति मिलती थी वह समाप्त हो गई। उनका कोई आर्थिक साहाय्य न रहा। किन्तु उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखने का दृढ सकल्प किया और ऐसा न हो पाने पर उन्होंने अपने जीवन तक को समाप्त कर देना चाहा। कितना भी महान् सकल्प क्यो न हो, उदरपूर्ति का प्रश्न तो साथ-साथ बना ही रहता है। कई दिनो तक उन्हें भूखा ही रहना पडा। आखिरकार, पूर्व सस्कारो एव प्रारब्धानुसार उन्हें नई दिशा खोजनी पडी। उस सर्वशक्तिमान परमात्मा ने उन्हें शाश्वत आनन्द की प्राप्ति हेतु उनके उज्ज्वल सासारिक ऐश्वर्यमय जीवन में व्यवधान डाला। वह अपने साधको को किस मार्ग से अपने पास बुलाता है, यह वही जान सकता है। राम का अब उसके अतिरिक्त कोई अन्य सहायक न रहा। भव्य लाहौर नगर की तग और अँधेरी कोठरी में आत्तभाव से उन्होंने उस परम कृपालु की पुकार की—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

बी० ए० परीक्षा की असफलता ने उनकी जीवन दिशा को नया मोड दिया। परमात्मा में आत्मसमर्पण भाव पूर्ण रूप से जाग उठा। आत्मसमर्पण भाव साध्य और सिद्धि दोनो है। वह पराभक्ति की प्रथम और अतिम मजिल दोनो ही है। वे उन दिनों इसी भाव से एकान्त में प्रार्थना करके अश्रुवर्षा करते थे—

"हे प्रभु, तुम्ही मेरे रक्षक हो। मैं तुम्हारा हूँ, एकमात्र तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो। तेरी इच्छा मेरे जीवन के श्वास प्रश्वास में पूरी हो। मैं तेरे ही चिन्तन में अनुरक्त रहूँ। आत्मज्ञान द्वारा तेरी ही उपासना करूँ। तू ही मेरे इस सकल्प की पूर्ति में सहायक बन। मैं पूर्णतया तेरा हूँ, तेरा हूँ, तेरा हूँ। तू मुझे चाहे तो जीवित रख अथवा यदि तेरी इच्छा हो, तो इस ससार से उठा ले। मेरे जीवन में तेरी इच्छा पूर्ण हो।'

वे एकान्त में रोये और बुरी तरह से रोये। उन्होंने अपने अश्रुपात की अविरल धार से अपने इष्टदेव का पद प्रक्षालन किया। आखिर वह सर्वज्ञ कृपालु परमात्मा अपने अनन्य भक्त तीर्थराम पर द्रवीभूत हो गया। उसने भक्तों के प्रति की गयी अपनी इस प्रतिज्ञा को पूर्ण किया—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते।
तेषा नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ९, श्लोक २२।

अर्थात्, "जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुये भक्तजन मुझ परमेश्वर का चिन्तन करते हुए, निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य एकीभाव से मेरे में स्थिति वाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।"

अन्तर्यामी परमात्मा ने तीर्थराम के किसी प्रकार दुबारा दाखिला लेने पर झडूमल हलवाई के हृदय में प्रविष्ट होकर उसे उनके पास पहुँचा कर कहलाया, "गोस्वामी जी आप कम से कम एक वर्ष तक मेरी सेवा स्वीकार कीजिये। मेरे ही यहा भोजन किया कीजिये। मैं आपकी इस कृपा के लिए अपने को धन्य समझूगा।"

इसी प्रकार की एक अन्य आर्थिक सहायता उन्हें परमात्मा के अनुग्रह से अप्रत्याशित रूप से प्राप्त हुई। उनके ११ जून, १८९२ के एक पत्र से यह बात भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है, "आज कोई सज्जन मुझे देने को प्रिंसिपल साहब को तिरपन रुपये दे गये। प्रिंसिपल महोदय ने मुझे बुलाकर कहा, 'ये रुपये ले जाओ।' मैंने उस दाता का नाम पूछना चाहा किन्तु प्रिंसिपल ने उन सज्जन का नाम नही बतलाया। मेरा ऐसा अनुमान है कि शायद प्रिंसिपल साहब ने स्वयं ही यह रकम मुझे दी है। तब मैंने उनसे प्रार्थना की आप आधी रकम कालेज की फीस आदि के लिये सुरक्षित रख लें और आधी मुझे दे दें। पर उन्हें यह प्रस्ताव पसन्द न आया। इसलिये मैंने वह रकम लेकर लाला अयोध्याप्रसाद जी को दे दी है।"

एक दिन बडी मनोरंजक घटना घटी। इस घटना से तीर्थराम के भोले स्वभाव एवं शरीर के प्रति उनकी अनास्था पर प्रकाश पडता है। उन्होंने भक्त धनाराम के पत्र में उसका जिक्र इस भांति किया है '९ जुलाई, १८९२, पिछली रात जब मैं थोडा दूध पीने के लिए बाजार गया, तो मेरा एक जूता खो गया। वह अवश्य नाली में बह गया। मैंने उसे ढूढने की बडी कोशिश की, परन्तु वह मिला नही। प्रात काल मुझे एक अपने जूते को और एक पुराने जनाने जूते का जो सयोगवश घर में पडा हुआ था पहन कर कालेज जाना पडा। मेरा यह जूता भी बहुत पुराना हो गया था। इसलिये मैंने बाजार से एक नया जोडा सवा नौ आने में मोल लिया है।"

उपर्युक्त घटना से उनकी निशंकता और निर्भयता का भी पूरा आभास मिल जाता है। उन्हें इस बात की तनिक भी परवाह नही थी कि इस विचित्र क्रिया पर उनके सहपाठी कितना अधिक हँसेंगे। इससे उनकी भावी सन्यास वृत्ति और अहंकार शून्यता का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

तीर्थराम का दैनिक खर्च किसी न किसी प्रकार चलता रहा। कालेज के हलवाई झण्डमल के यहा वे नित्य भोजन करने लगे। २ अगस्त, १८९२ के पत्र में उन्होने इस बात का सकेत किया है, "मैं पुन कालेज में भर्ती हो गया हूँ। कालेज के झडूमल हलवाई ने बडे आग्रह से मुझे नित्य अपने घर भोजन करने का निमत्रण दिया है। उसके आग्रह को मैं टाल न सका। इसलिये उसके आतिथ्य को मैंने स्वीकार कर लिया है। मैं देखूगा कि इसका मेरे ऊपर कैसा प्रभाव पडता है। यदि भली भाति ठीक सिद्ध हुआ तो उसके घर पर भोजन करता रहूँगा।"

झडूमल के आतिथ्य-सत्कार से तीर्थराम को पूर्ण सन्तोष था। उन्होंने अपनी सतुष्टि की अभिव्यक्ति ९ अगस्त, १८९२ के पत्र में इस प्रकार की है, "मैं झडूमल के यहा भोजन कर रहा हूँ। यह प्रेम की रोटी खिलाता है। जब आप यहाँ आयें और मेरे लिये उसका आतिथ्य स्वीकार करना उचित न समझें तो मैं खाना छोड दूँगा।"

तीर्थराम अपनी आर्थिक परिस्थिति से नित्य जूझते रहे। वे निरन्तर इस चक्कर में पडे रहते कि कोई न कोई कार्य करके स्वय अपने खर्च के लिये धनो पार्जन करें। ८ अक्टूबर के पत्र से उनकी इस मानसिक वृत्ति का बोध होता है, "आज से कालेज का नव वर्ष प्रारम्भ होता है। किसी प्रोफेसर से अपनी ट्यूशन प्राप्ति के सम्बन्ध में बात न कर सका। बहादुरचद से भेंट हुई थी। उन्होंने मुझे बताया कि लद्धाराम, एक्जीक्यूटिव इजीनियर अपने लडके के लिए प्राइवेट ट्यूटर चाहते हैं। उसे दो घटे पढाने के बदले, मुझे पन्द्रह रुपये मासिक मिल जायेंगे। मुझे पूरी आशा है कि ईश्वर कोई न कोई मार्ग निकाल ही देगा।"

तीर्थराम पर निरन्तर नयी-नयी कठिनाइया आती गई और वे भी उन्ही के बीच अपना अप्रतिम व्यक्तित्व का निर्माण करते रहे। ऐसे अवसरो पर बराबर किसी न किसी को माध्यम बनाकर परमात्मा उनकी सहायता करता रहा—"९ अक्टूबर १८९२, जिस घर में मैं रहता था, घनघोर जलवृष्टि के कारण, वह अकस्मात गिर पडा। झडूमल ने किसी प्रकार मेरी पुस्तकें व अन्य सामान बचा लिये हैं। अभी मुझे दूसरा मकान नही मिल पाया है। मैं पिछली रात झडूमल के घर सोया और उन्ही के साथ भोजन किया।"

तीर्थराम अपने प्रोफेसरो के अत्यधिक स्नेहपात्र थे। वे सब उनकी प्रतिभा से पूर्णरूप से परिचित थे। साथ ही उनके भविष्य के सम्बन्ध में भी चिन्तित थे। उन लोगो की यह हार्दिक इच्छा थी कि तीर्थराम डटकर मेहनत करें और परीक्षा में सम्मान सहित उत्तीर्ण हो। अत जब तीर्थराम ने उनसे ट्यूशन दिलाने की बात कही तो उन लोगो ने इसका विरोध किया—"मैंने अपने प्रोफेसरो से ट्यूशन के

बारे में बात की। उन्होंने मुझे सलाह दी है, इस तरह मेरा बहुत सा समय नष्ट होगा और विशेषकर तब, जब परीक्षा इतने समीप हैं। उनका कहना बहुत ठीक मालूम होता है, क्योंकि पन्द्रह रुपये मासिक प्राप्त करने की अपेक्षा, मेरा समय अधिक कीमती है।

"आपको सूचना देते हुये मुझे दुःख होता है कि हाल ही मेरे दो मित्रों की मृत्यु हो गयी है। उनमें से एक है खलीलुरहमान बी० ए० और दूसरे हैं लाला शिवराम बी० ए०। परमात्मा उनके परिवार वालों पर दया करे। ये दोनों ही घटनायें बडी दुखद हुई है।'

पत्र के दूसरे अंश से उनकी मित्रों के प्रति अपूर्व ममता और स्नेह का आभास प्राप्त होता है।

आखिरकार तीथराम ट्यूशन पा गये और अत्यन्त मनोयोग से पढाने लगे—"३१ दिसम्बर १८९३ मेरी ही कक्षा का एक छात्र मुझसे गणित पढने लगा है। मैंने अपने पारिश्रमिक के विषय में उससे कोई बात नही की, किन्तु वह बडा सज्जन है। अतः किसी न किसी प्रकार मेरे श्रम को भरपाई कर ही देगा।"

"३ जनवरी, १८९३, सरदार अब कुछ दिनों बाद अपनी परीक्षा समाप्त कर लेगा। जिस परीक्षार्थी को मैंने पढाना प्रारम्भ किया है वह मेरी अध्यापन प्रणाली मे बहुत प्रसन्न है। वह कम से कम मुझे इतना तो देगा ही जिससे मैं अपने मकान का किराया और दूध का व्यय चुका सकू। इसके अतिरिक्त सरदार मुझसे अपने साथ रहने के लिए कह रहा था। जब आप यहा पधारेंगे, तो आपके आदेशानुसार कार्य करूँगा।"

तीथराम सयम और सादगी की प्रतिमा थे। वे अपने ऊपर आवश्यकता से अधिक व्यय नही करते थे। वें शुद्ध पजाबी खद्दर के वस्त्र पहनते थे। उन वस्त्रों को उनकी स्त्री सीती थी। वे देशी जूता ही पहनते थे।

जब परीक्षा शुल्क भेजने का समय आया, तो राम के पास कालेज का दो महीने का अग्रिम शुल्क जमा करने के लिए पैसे न थे। किन्तु अप्रत्याशित और अयाचित सहायता फिर परमात्मा ने दिलायी। इसका उल्लेख राम ने अपने पत्र में इस प्रकार किया है—

"२३ जनवरी, १८९३ जब मैं कालेज पहुँचा, तो कालेज के चपरासी ने मुझसे कहा कि प्रोफेसर गिल्बटसन ने मुझे बुलाया है। क्लास की घण्टी बज चुकी थी। मैं दौडा हुआ प्रोफेसर साहब के पास पहुँचा। उन्होंने मुझे छोटी सी एक पुडिया दी। उसे लेकर मैं दौडकर क्लास में पहुँचा। आज मेरे पास एक भी पैसा न था। तीन घटे बाद जब मैंने वह पुडिया खोली, तो देखा कि उसमें तीस रुपये

लिपटे हुये हैं। मैं पुन उन कृपालु प्राफेसर के पास गया और उनसे प्रार्थना की कि मुझे इतने रुपया की आवश्यकता नही है। मैंने चाहा कि बीस रुपये उन्हें लौटा दूँ, किन्तु वे पूरी रकम लेने के लिए आग्रह करने लगे। अब यदि आप आ जाय तो इन बीस रुपया का बाझ मेरे सिर से उतार दें। यदि आप उचित समझें तो इनमें कुछ, जितना आप चाहें मेरी माँ को दे दें। मैं डाक से रुपये इसलिए नही भेजता हूँ कि आपके दर्शन करना चाहता हूँ। मैं दस रुपये इसलिए अपने पास रखना चाहता हूँ कि मुझे दो मास की फीस देनी है। अपने दैनिक व्यय के लिय तो ज्वाला प्रसाद जी का मुझे सहारा है ही।"

उपर्युक्त पत्र से यह भलीभाति स्पष्ट हो जाता है कि तीर्थराम अपने पास खच से अधिक रुपये नही रखते थे। उनका विश्वास था कि जैसे निर्झर से प्रतिक्षण नवीन जल प्रवाहित होता रहता है उसी प्रकार आवश्यकता पडने पर पैसा भी आता जाय। ऐसी वत्ति से काचन में आसक्ति नही होती। कृपालु प्राफसर ने जब राम से अतिरिक्त रुपये वापस लेना अस्वीकार कर दिया तो राम ने उन रुपयो को भक्त धन्नाराम को दे दिया।

१२ फरवरी १८९३ के पत्र में राम ने इस प्रकार लिखा है, "मैं होस्टल में आ गया हूँ। मैं प्रात का भोजन होस्टल में करूँगा और सायकालीन भडूमल क यहा। भडूमल जी ने बडी कठिनाई से मुझे प्रात काल हास्टल में भोजन करने की अनुमति दी है। मैं अपनी जन्मभूमि 'मुरालीवाला' को अब से 'मुरारीवाला' कहा करूँगा। 'मुरारी' कहने पर कृष्ण की स्मृति आवेगी।'

उपर्युक्त पत्र का अन्तिम वाक्य महत्त्वपूर्ण है। इससे उनकी प्रवृत्ति की सुन्दर झाकी मिलती है।

कालेज की होम परीक्षा में तीर्थराम ने गणित विषय में १५० अको में से १४८ अक प्राप्त किये। सभी विषयो के प्राप्ताङ्को का योग प्रथम श्रेणी से ६० अक अधिक था।

१८९३ ई० की बी० ए० की परीक्षा में उन्हें अप्रतिम सफलता प्राप्त हुई। गणित के परीक्षक ने तेरह प्रश्न दिये थे, जिनमें से केवल नौ प्रश्न करने का निर्देश था। राम ने तेरहो प्रश्न को ठीक-ठीक हल करके, स्वय भी परीक्षक को यह निर्देश लिख दिया, "तेरहो किये गये प्रश्नो में से किन्ही नौ को जाँचने की अनुकम्पा कीजिए।" उन्होने बी० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और समस्त विश्वविद्यालय में उनका प्रथम स्थान रहा। उन्हें विश्वविद्यालय का 'सुवर्ण पदक' एव पचास अतिरिक्त पुरस्कार प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त पैंतीस एव पचीस रुपया की पृथक्-पृथक् दो छात्रवृत्तियाँ भी मिली।

मिशन (फोरमैन क्रिश्चियन) कालेज में केवल बी० ए० तक की पढाई होती थी। अत मई, १८९३ में उन्होने अपना अत्यन्त प्रिय विषय गणित लिया। अब उनकी आयु साढे उनीस वर्ष के लगभग थी। उस समय उन्हाने भक्त धन्नाराम को जो पत्र लिखे, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे अपनी समस्त सत्ता को मनसा, वाचा, कर्मणा परमात्मा में समर्पित करने का अनवरत प्रयास करने का अभ्यास कर रहे थे। उन्हाने 'समर्पण भाव' का रहस्य भलीभाति समझ लिया था। जिस प्रकार नदी समुद्र से मिलने के लिए आतुर होती है, उसी प्रकार वे भी पूण ब्रह्म से मिलने के लिए व्याकुल हो रहे थे। जिस प्रकार नदी समुद्र में मिलकर अपने नाम और रूप को मिटाकर समुद्ररूप हो जाती है, उसी प्रकार राम भी अपने नाम और रूप को मिटाकर-जीवनभाव को सवथा मिटाकर—पूण ब्रह्म हो जाना चाहते थे। उन्होने अपनी समस्त वाह्य आवश्यक्ताओ की पूर्ति के लिये एकमात्र परमात्मा का आश्रय लेने की चेष्टा प्रारम्भ की। उनकी पयवेक्षण शक्ति और अभिव्यक्ति शैली में आकपण और चमत्कार आने लगा था। इसी वल पर उन्हाने अपनी वाणी में प्रकृति का भव्य चित्रण करना भी प्रारम्भ कर दिया। उनकी वाणी में प्रकृति साकार रूप धारण कर अभिव्यक्त हाने लगी। प्रसुप्त प्रतिभा परमात्म चिन्तन से जाग पडी। १० जुलाई, १८९३ के पत्र म यह वात पूणरूप से सिद्ध हो जाती है—

"कल भापण वर्षा हुई। कालेज से लौटते समय मैं प्रकृति का अलौकिक आनन्द ले रहा हूँ। यह समय अत्यन्त आह्लादमय एव आकर्षक है। जहाँ कही भी मेरी दृष्टि जाती है, वहाँ या तो जल दिखाई पडता है अथवा हरित तृण भूमि। ठडी वायु मेरे हृदय को गुदगुदाकर आह्लादित कर रही है। आकाश के बादल सूरज के साथ आँखमिचौनी खेल रहे ह। नाले-नालिया में जल वह रहा है। गोलबाग के वृक्ष फूला से लद है। फलो से लदी वृक्षा की डालियाँ झुककर पृथ्वी का स्पश कर रही हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो वे अनारो, आमा और नाशपातिया की राशि वसुधरा को अर्पित कर रही ह। कबूतर, कौवे, चीलें आकाश में आह्लाद से उड रहे ह। वृक्षा पर बठे पक्षीगण कलरव गान कर रहे हैं। नाना भाँति के प्रस्फुटित पुष्प माना आनन्दित नेत्रो मे मेरा स्वागत कर रहे है। भूमि ने हरी-हरी घास का मखमली गलीचा मेरे चलने के लिए बना दिया है। सरो और सफेदा वृक्ष स्नान करने के अनन्तर अपने एक एक पाँव पर खडे होकर सूर्याभिमुख होकर, ध्यान में निमग्न होकर परमात्मा की उपासना कर रहे हैं। श्वेत (बादलो के कारण) और नील गगन परम सुहावना लग रहा है। मानसून आने पर मेढक प्रसन्नता के कारण उछल-कूद रहे हैं, मानो धरती और आसमान का विवाह हो रहा है। मैं अब अपने मकान पर पहुँच गया हूँ और आपका

पत्र पाकर आनंदित हुआ हूँ। रास्ते में यह पत्र पेंसिल से लिखा गया था। अब मैं पोस्टकार्ड पर इसकी नकल कर रहा हूँ।"

प्रकृति और परमात्मा के असीम अनुराग की अभिव्यक्ति का श्रीगणेश तीर्थराम के उपर्युक्त पत्र से प्रारम्भ हुआ। यही अनुराग निकट भविष्य में राम के व्यक्तित्व का प्रमुख अंग बन गया।

सेवा भाव का प्रारम्भ भी इन्ही दिनो हुआ। उनके पास अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त अर्थ का अभाव रहता था। किन्तु ऐसी परिस्थिति में भी वे भक्त धन्नाराम की निरन्तर सहायता करते रहते थे। वे अपने अर्जित ज्ञान द्वारा अपने सहपाठियो एव अन्य छात्रो की सेवा करते थे। जब वे बी० ए० नही थे, तभी अपने अध्ययन का त्याग करके, अपने सहपाठियो को गणित पढाते थे। ग्रैजुएट होने के बाद उनका व्यक्तिगत अध्यापन और भी व्यापक हो गया। उन्होने सोचा अब दैनिक खर्च के लिए कुछ धनोपार्जन करना चाहिए। अत डी० ए० वी० कालेज में गणित के प्राध्यापक के रिक्त स्थान के लिए आवेदनपत्र दिया। किन्तु उन्हे सफलता नही मिली। जब वे रावलपिण्डी आर्ट्स कालेज के गणित के प्राध्यापक पद के लिए प्रयत्नशील थे, उसी समय मिशन (फोरमन क्रिश्चियन) कालेज के गणित के प्राध्यापक ने एक वर्ष का अवकाश ग्रहण कर लिया था। मात शिक्षण-सस्था के प्रति तीव्र अनुराग एव उसका ऋण चुकाने के लिए उन्होने अवैतनिक रूप से प्राध्यापक-पद के लिए अपने को अर्पित किया। उनकी सेवा स्वीकार कर ली गई। क्या भूखे राम को रुपयो की आवश्यकता नही थी? किन्तु उनके रचयिता परमात्मा ने उनकी आवश्यकताओ को अनुभव किया और उनकी पूर्ति भी की।

परमात्मा की नियति में गत्यवरोध के लिए कोई स्थान नही। वह अपने स्वाभाविक ढग से व्यक्ति का विकास करती है। उसे व्यक्ति की असफलताओं और निराशाओ की कोई परवाह नही रहती। परमात्मा की इच्छा प्रत्येक परिस्थिति में अपनी अनवरत लीला करती रहती है। परमात्मा अपनी माया से प्रारब्धानुसार सभी प्राणियों को भ्रमाता रहता है। तीर्थराम का जीवन तो परमात्मा की लीला का अप्रतिम उदाहरण है। उनका जीवन तो आध्यात्मिक उपदेशक के रूप में निर्मित होना था। अत सर्वशक्तिमान् परमात्मा शनै शनै दृढतापूर्वक तीर्थराम को उसी दिशा में ले जा रहा था। इसीलिए सासारिक सफलता एव समृद्धियाँ उन तक पहुँचते-पहुँचते उनके हाथों से निकलती गई। अभी हम देख चुके है कि उन्होने प्रयास तो किया वैतनिक प्राध्यापक होने के लिए, किन्तु स्थान पाया अवैतनिक प्राध्यापक का।

उन दिनो पजाब सरकार अपने विश्वविद्यालय के सवश्रेष्ठ ग्रैजुएट को आई० सी० एस० परीक्षा में प्रविष्ट होने के लिए इग्लैण्ड जाकर पढने के लिए २०० पौण्ड वार्षिक छात्रवृत्ति प्रदान करती थी। तीर्थराम उस वर्ष के निश्चित रूप से सवश्रेष्ठ छात्र थे। श्री बेल महोदय ने, जो मिशन कालेज के प्रिंसिपल थे, विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार की हैसियत से उस छात्रवृत्ति की प्राप्ति के लिए उनकी उत्तम सस्तुति की थी। श्री बेल, राम की प्रतिभा तथा चरित्र से भलीभाति विज्ञ थे। उनकी प्रवल इच्छा थी कि तीथराम पजाब प्रान्त में असिस्टैंट कमिश्नर के पद पर नियुक्त हो। उच्च गणित का अध्ययन करने के लिए राम स्वत इग्लैण्ड जाने को परम उत्सुक थे। इस छात्रवृत्ति के मिलने में किसी प्रकार की अडचन नही दिखाई पडती थी। पर भाग्य विधान से वह छात्रवृत्ति किसी अन्य अभ्यर्थी को मिल गई।

इस समय तो तीथराम की मनोवृत्ति कुछ ऐसी बन गई थी कि छात्रवृत्ति न प्राप्त होने पर उन्हें तनिक भी निराशा नही हुई। उनका मन किसी अन्य धरातल पर विचरण कर रहा था। वे सासारिक पद, ऐश्वर्य एव समृद्धि के सीमित वृत्त से बाहर निकल चुके थे। जब श्री बेल महोदय ने राम से पूछा, "तीथराम अब क्या करने का इरादा है ?" तो उन्होने उत्तर दिया, "मैं या तो प्राध्यापक या धर्मोपदेश बनना चाहता हूँ।' उनकी वाणी में परमात्मा स्वय वोल रहा था। उनकी दृष्टि में आई० सी० एस० के पद अथवा किसी भी सासारिक पद का आकर्षण नही रह गया था। सासारिक पद-प्रतिष्ठा की बाह्य चकाचौंध उनकी दृष्टि में मृग-मरीचिका बन चुकी थी।

इस घटना के पूव के एक पत्र में तीथराम के उद्देश्य का स्पष्ट बोध होता है। पत्र प्रकार है—

"१७ जुलाई, १८९३, आज मैं नदी किनारे घूमने गया था। जब मैं नावो के पुल के पास टहल रहा था, तब भाग्य से मिस्टर बैल, गवनमेण्ट कालेज के प्रिंसिपल उधर से निकले। वे बडे उत्साह और प्रेम के साथ मुझसे मिले। बडी देर तक मुझसे बातें करते रहे। पहले मेरे चश्मे के बारे में पूछा था और फिर पूछा कि मैं छाता क्यो नही लगाता ? इसी तरह की अनेक बातें करते रहे। रिमझिम रिमझिम बूदें पड रही थी। इसीलिए उन्होने छाते के बारे में पूछा था। फिर उन्होने मुझे अपनी गाडी में बैठा लिया और गवनमेण्ट कालेज तक ले आये। गाडी में मैंने उन्हें अंग्रेजी की अनेक कण्ठाग्र कवितायें सुनायी। मैंने उन्हें यह भी बताया कि मैं अपनी पाठ्य-पुस्तको के अतिरिक्त प्रत्येक विषय की पाँच-छ पुस्तकें और भी पढा करता हूँ। मेरे विषय में ये सारी बातें सुनकर वे बडे प्रसन्न हुये।

उन्होंने मेरे माता पिता के सम्बन्ध में भी पूछा, 'ये लोग काफी धनी हैं या नही ?' मैंने कहा वे तो बड़े गरीब हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं परीक्षा के पश्चात क्या करना चाहता हूँ ? मेरा उत्तर था—'भविष्य के सम्बन्ध में मैंने कोई योजना नही बनाई है। हा, यदि कोई इच्छा है, तो केवल यही कि मेरा समस्त जीवन और उसकी एक-एक श्वास ईश्वर की सेवा तथा मनुष्य की सेवा में लग जाय। मेरी समझ में मनुष्य की सेवा ही ईश्वर की सच्ची भक्ति है और लोगो को गणित *की शिक्षा देकर ही, मैं लोगो की सबसे उत्तम सेवा कर सकता हूँ।'*

"यही बातें करते-करते हम लोग गवनमेण्ट कालेज के अहाते में उनके घर पहुँचे। वहाँ वे मुझे व्यायामशाला में लिवा ले गये। वहा बहुत से लडके तरह-तरह के व्यायाम करते थे। उन्होंने मुझसे पूछा, 'तुम कौन व्यायाम करते हो ?' मेरा उत्तर था—'मैं तो चारपाई से व्यायाम करता हूँ, अर्थात मैं चारपाई ऊपर नीचे उठाकर व्यायाम कर लिया करता हूँ।' उन्होंने तुरन्त एक चारपाई मँगवाई। मैंने अपने ढग से उसके दो पाये पकडकर उसे सौ बार ऊपर-नीचे उठाया। तब उन्होंने अन्य लडको से भी उसी प्रकार चारपाई उठाने के लिये कहा। वे बीस बार से अधिक न उठा सके। इस प्रकार लडको की अनेक प्रकार की कसरतें देखकर अन्त में उन्होंने हर एक से सलाम किया और अपने घर चल दिये। उन्हें जाता हुआ देखकर मैं आगे बढा और कहा, 'श्रीमान जी, मैं आपके इस सौजन्य के लिये धन्यवाद दे रहा हूँ। मेरा धन्यवाद और अभिवादन स्वीकार करते हुए, वे हँसते हुए विदा हो गये।"

१८९३ ई० के अगस्त के लगभग तीर्थराम की आध्यात्मिक साधना में एक बात महत्वपूर्ण दिखायी पडती है। उन्हें योग-साधना की सहज क्रिया में दिव्यानन्द की प्रतीति होने लगी। 'अनाहत नाद' का सहज भाव से श्रवण उत्कृष्ट योगी का लक्षण है। इसके प्रति अद्वैत वेदान्त के प्रति भी उनकी निष्ठा बढी। 'योगवाशिष्ठ' अद्वैत सिद्धान्त का अपूर्व ग्रंथ है। उस ग्रंथ का अध्ययन तीर्थराम ने प्रारम्भ कर दिया। उनके दो पत्रों से ये बातें स्पष्ट सिद्ध हो जाती है—

"४ अगस्त, १८९३, मुझे यहाँ अनहद शब्द बहुत सुनाई पडता है। यह स्थान दिव्यानन्द से भरा मालूम होता है।"

"१८ अगस्त, १८९३, मैंने योगवाशिष्ठ पढना प्रारम्भ किया है।"

सासारिक टीमटाम, प्रदर्शन, सजावट आदि के प्रति उनकी वैराग्यवृत्ति बढने प्रारम्भ हो गई। सासारिक ऐश्वर्य उनकी दृष्टि में क्षणभगुर प्रतीत होने लगे। वे भलीभाँति इसकी निस्सारता समझने लगे। एक पत्र से उनकी वैराग्य भावना पर भलीभाँति प्रकाश पडता है—

"२५ दिसम्बर, १८९३, आज दादा भाई नौरोजी, मेम्बर ब्रिटिश पार्लियामेण्ट, ३ बजे की गाडी से यहाँ आये। शहर ने उनका अत्यन्त भव्य स्वागत किया। लोगो मे उत्साह की कोई सीमा नही। काग्रेस वाला ने उन्हें वही गौरवास्पद स्थान दे रखा है, जो हमारे यहाँ ब्रह्मा और विष्णु का है। शहर में स्थान-स्थान पर अनेक सुनहरी मेहराबें बनायी गई हैं। पत्र लिखने के समय से शहर से उनका जुलूस निकाला जा रहा है। हजारो की भीड है। लोगो की प्रसन्नता का ठिकाना नही, हृदय उमडा पड रहा है। किन्तु मेरा हृदय अविचल और शान्त है। आखिर, यह आह्लाद किस लिये? ईश्वर को अनेक धन्यवाद कि मेरा चित्त विचलित नही हैं।"

तीर्थराम की गुरु निष्ठा अद्वितीय थी। भक्त धन्नाराम के किंचित रोष से काप उठते थे। सासारिक महान व्यक्तियो के प्रति भी उनका कोई आकर्षण नही रह गया था। वे यह भलीभाति समझने लगे थे कि ये लोग माया के आकर्षणो में ही दत्तचित्त है। उसी की चमक-दमक में रँगरेलियाँ कर रहे हैं। सत्य वस्तु से दूर हैं, क्योकि सत्य वस्तु के स्पर्शमात्र से लोकेषणा, वित्तेषणा समाप्त हो जाती है। २६ दिसम्बर, १८९३ के पत्र में उन्होने इस बात का इस तरह सकेत किया है—'महाराज जी, जब आपका पत्र मुझे मिला, अत्यन्त खुशी हुई। मगर पत्र पढकर चित्त अति शोकातुर हुआ, क्योकि आप दास पर खफा हैं। आप अब क्षमा करियेगा, क्योकि मेरे जैसे नातजुरुवेकार से भूल-चूक बहुधा हो जाती है। 'मनुष्य गिर गिर कर सवार होता है' और कई बार बडे-बडे सयाने भी चूक जाते हैं। 'तारू (तैराक) डूबते आये है।' अब आप यहा कब पधारेंगे। जब तक आपका खुशी का पत्र या आप स्वय यहाँ न आयेंगे, मुझे बडी चिन्ता रहेगी। मुझे मालूम है कि इन दिनो आपको तगी होगी, इसलिये यदि आप आज्ञा दें, तो मैं यहाँ से कुछ अर्ज करूँ,[१] अर्थात सेवा में कुछ भेजू। अपने दास पर किसी प्रकार रुष्ट न होना। इस वर्ष मैंने ऐसी एक भी पुस्तक नही खरीदी, जो मेरी वार्षिक परीक्षा में उपयोगी न हो। पहले यह स्वभाव मुझे था, पर अब आपकी दया से दूर हो गया है। खर्च मुझसे निस्सन्देह बहुत अधिक हो जाया करता है और मैं प्रयत्न कर रहा हूँ कि कम हो। वह खर्च दूध आदि में होता है। मैं जब काग्रेस का उत्सव देखने गया था, तो इस उद्देश्य से गया था कि वहाँ जो बगाल, मदरास, बम्बई, मध्यप्रान्त, दक्षिण इत्यादि से अव्वल दर्जे के वक्ता आये हुये हैं, उनके व्याख्यान की विधि

१—धन्नाराम भक्त को भेंट में जब कुछ रुपये भेजना चाहते थे, तो उसके लिए 'अर्ज करूँ' का सकेत तीर्थराम ने बना रखा था।

आदि देखू । नौरोजी के आने के दिन मैंने इस बात का धन्यवाद दिया था कि लोगो को जोश-खरोश में देखकर मुझे जोश नही आया, सो अब भी मैं आपके चरणो को धन्यवाद देता हूँ कि इन सब बोलने वालो को सुनकर मुझे जोश न आया ।'

उस समय तो तीर्थराम की दशा योगियो के समान हो चली थी । भला जो योगी 'अनाहत शब्द' के श्रवण में तन्मय था, उसे महान् से महान् सासारिक पुरुष की वाणी कैसे आकर्षित कर सकती थी ? वे अपने और भी उज्ज्वल आध्यात्मिक भविष्य के प्रति जागरूक हो चले थे ।

१८९४ के जनवरी मास के द्वितीय सप्ताह में उन्होने अपनी बडी बहिन, तीर्थदेवी के देहान्त का समाचार पाया । भावुक राम इस भीषण समाचार को सुनकर अत्यधिक दुखी और विचलित हुये । वे एकान्त में फूट-फूट कर रोय और परमात्मा से धैर्य पाने की प्रार्थना की—

"१० जनवरी, १८९४, अपनी बहिन की मृत्यु का सवाद मिला । मुझे बहुत दु ख हुआ । किन्तु अपने दु खो की चर्चा करना ठीक नही मालूम होता । मैं फूट फूट कर घटो तक रोता रहा । मैं उसे जितना प्यार करता था, उतना और किसी को नही ।"

तीथराम की चिर-सहचरी दरिद्रता ने उनका पल्ला कभी नही छोडा । नीच के दो पत्रो से यह बात पूणरूप से सिद्ध हो जाती हैं—

"१६ नवम्बर, १८९४, मैं आपको नही लिख सका, क्योकि मेरे पास कार्ड लेने को दो-एक पैसा भी न था । आज रात दस बजे मैं लाला जी के दफ्तर से आया हूँ और वहा से यह कार्ड लाया हूँ । मैंने सिले सिलाये कपडे खरीद लिये हैं। साथ में एक दुकानदार लिवा गया था । कपडे काफी अच्छे ह ।"

"७ दिसम्बर, १८९४, पत्र में देरी का एकमात्र कारण था कि मेरा हाथ बिल्कुल खाली था । मैंने एक पैसा किसी से भी उधार भी नही लिया, यह सोचकर कि मुझे समय पर वजीफा मिल जाएगा । पर जब वजीफा अभी तक नही मिला, तब मैंने इस कार्ड के लिए एक पैसा उधार लिया हैं ।"

यद्यपि तीथराम की छात्रवृत्ति से मासिक आय साठ रुपये थी, पर वे स्वय बडी कठिनाई से खा-पहन सकते थे । वे पुस्तकें खरीदने के बडे प्रेमी थे, किन्तु एम० ए० में प्रवेश लेने पर इस 'बुरी आदत' को भी छोड दिया । उनकी छात्रवृत्ति की आय उनकी स्त्री पिता एव भक्त धनाराम के भरण-पोषण में खर्च हो जाती थी । यदा-कदा उसी से निधन छात्रो की भी सहायता करते थे । उनका आहार अत्यन्त सतुलित और सयमित था । कभी-कभी तो हफ्तो दूध मात्र पर रहते थे और अन्न का एकदम परित्याग कर देते थे । सात्विक आहार ग्रहण करने से दुबर

होते हुए भी वे पूर्ण स्वस्थ थे। बीस से तीस मील तक पैदल चलते थे। वस्त्र पहनने में भी सादगी बरतते थे। इतनी मितव्ययिता करने पर भी परीक्षा शुल्क जमा करने के लिए उन्हें पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ा। धन्नाराम भक्त को लिखे गये पत्र से उनकी कठिनाई का अनुमान लगाया जा सकता है—

"१३ नवम्बर, १८९४, मेरे पिता ने लिखा है कि मैं अपने छोटे वजीफे में से पचीस रुपये बचाऊँ और दूसरे वजीफे में से दो महीने तक पाँच-पाँच रुपये बचाऊँ। इस तरह दस रुपये हो जायेंगे। इन पैंतीस रुपयों के होने पर पन्द्रह रुपये वे भेजेंगे। इस प्रकार मेरी परीक्षा-फीस के पचास रुपये पूरे हो जायेंगे। किन्तु मेरा निवेदन यह है कि पचीस रुपयों में से सवा बारह रुपये तो मासिक फीस के कट जाते हैं और छ रुपये उन दिनों की गरहाजिरी के कारण देने होंगे जब मैं रोग-शय्या पर था। इसके अतिरिक्त मुझे जाड़े के कपड़े बनवाने हैं तथा खाना-पीना है। ओह, ऐसी हालत में मैं पाँच रुपये मासिक कैसे बचा सकूँगा ? कल मैंने जाड़े की पोशाक मोल ली—ड्रिल का एक पाजामा, एक वास्कट और कश्मीरे का एक कोट। इन सब में मेरे सात रुपये बारह आने खर्च हुये।

"किन्तु ये सब बातें मैं पिताजी को नहीं समझाना चाहता। मुझे विश्वास है कि मेरे मौसा और मेरे श्वसुर मेरी सहायता करेंगे। किन्तु परवाह किसी की नहीं। ईश्वर तो मेरी सहायता करेगा ही, जैसा कि अब तक करता आया है।"

सचमुच परमात्मा ने तीर्थराम के प्रबल विश्वास और दृढ निष्ठा के अनुरूप ही उनका योगक्षेम वहन किया। भक्त धन्नाराम का पत्रोत्तर पाने के पूर्व उनके मौसा (डॉ० रघुनाथमल) ने बड़े आग्रह और स्नेह से उन्हें परीक्षा शुल्क के लिए रुपये दिये।

एम० ए० की पढ़ाई में उन्होंने अत्यधिक श्रम किया। उनमें अपूर्व लगन थी। जिस कार्य में जुट जाते थे, उसमें मनसा, वाचा, कर्मणा एक हो जाते थे और अपनी सारी सत्ता उसी में निमज्जित कर देते थे इस प्रकार उनके व्यक्तित्व में कर्मयोग का अद्भुत विकास हुआ, जैसा कि नीचे के पत्र में देखा जा सकता है—

"८ फरवरी, १८९४, आपका कृपापत्र इस समय और मिला। अत्यन्त खुशी हुई। मैं आजकल लगभग पाँच बजे प्रातःकाल उठता हूँ। और सात बजे तक पढ़ता रहता हूँ। फिर शौच इत्यादि जाकर स्नान करता हूँ और व्यायाम करता हूँ। तत्पश्चात पंडित जी की ओर जाता हूँ। मार्ग में पढ़ता रहता हूँ। वहाँ एक घंटे के बाद भोजन करके उनके साथ गाड़ी में कालिज जाता हूँ। कालिज से डेरे आते समय रास्ते में दूध पीता हूँ। डेरे में कुछ मिनट ठहर कर दरिया रावी जाता हूँ। वहाँ जाकर दरिया किनारे कोई आध घंटे के लगभग टहलता रहता हूँ। वहाँ

मे वापस आते समय सारे नगर के इद गिद बाग में फिरता हूँ। वहाँ से डेरे आकर कोठे (छत) पर टहलता रहता हूँ। इतने में अँधेरा हो जाता है। (मगर यह याद रहे कि चलते फिरते पढता बराबर रहता हूँ) अँधेरा पडने पर व्यायाम करता हूँ और लैम्प जलाकर सात बजे तक पढता हूँ। फिर भोजन पाने जाता हूँ और प्रेम (प्रेमनाथ) की तरफ भी जाता हूँ। वहाँ से आकर कोई दस-बारह मिनट अपने मकान के बल्ले के साथ व्यायाम करता हूँ। फिर कोई साढे दस बजे तक पढता हूँ और लेट जाता हूँ। मेरे अनुभव में यह आया है कि यदि हमारा मेदा (उदर) ठीक निरोगावस्था में हो, तो हमें अत्यन्त शान्ति, एकाग्रता, ईश्वर स्मरण और अन्त करण की शुद्धि प्राप्त होती है। बुद्धि और स्मरण शक्ति का बल अति तीव्र हो जाता है। प्रथम तो मैं खाता ही बहुत कम हूँ, द्वितीय जो खाता हूँ, पचा लेता हूँ।'

इसी प्रसग में इस बात का जिक्र कर देना अप्रासगिक न होगा कि तीथराम की साधना प्रणाली में भारतीय साधना-परम्परा के कमयोग, हठयोग, ज्ञानयोग, और भक्तियोग का समन्वयात्मक विकास होता गया। चारो साधनाएँ मिली-जुला सी ह। इनके फलस्वरूप उन्हें निजी अनुभूतियाँ भी प्राय होने लगी। बिना अनुभूति और प्रतीति के व्यक्तित्व में आध्यात्मिक तेजस्विता नही आ सकता। मनुष्य मात्र में यह अनुभूति अपने अपने ढग से होती ह। चाहे ससार सम्बन्धी हो अथवा अध्यात्म सम्बन्धी प्रत्येक अनुभूति का पथक-पथक् महत्त्व है। तीथराम की ये अनुभूतिया साधको को बलात अपनी ओर आकृष्ट कर लेती ह।

इस सम्बन्ध में अपने भक्त पूर्णसिह को उन्होने अपने जीवन की एक आश्चर्य मयी और रोमाचकारी अनुभूति सुनाई थी। उसका यहाँ उल्लेख कर देना अनुपयुक्त न होगा—"एक रात को राम ने उच्च गणित के कुछ बहुत ही कठिन और जटिल प्रश्न हल करने का निश्चय किया और मन में यह प्रतिज्ञा कर ली कि सूर्योदय के पूर्व इन्हें हल कर डालूगा और यदि हल न कर सका, तो यह शिर इस तन से पथक् कर दूँगा। इसी अभिप्राय से राम ने अपने आसन के नीचे एक तेज खजर भी रख लिया। निस्सन्देह यह काम उचित नही कहा सकता। किन्तु सही हो या गलत, राम तुम्हें बताना चाहता है कि ऐसे ही कठोर अनुशासन एव साधना मे राम ने उस ज्ञान का अर्जन किया है, जो तुम इस समय उसके पास देखते हो। अच्छा, सुनो, उन चार प्रश्नो में से तीन तो आधी रात तक हल हो गये। किन्तु चौथा—चौथा बडा ही जटिल था, और वह चक्कर में डाले था। राम उसे किसी प्रकार हल न कर सका और उषा की प्रथम रश्मियाँ वातायन से झाँकने लगी। अपने प्रण का व्रती राम उठा और तेज खजर लेकर मकान की

छत पर जा चढा। इतना ही नही उसने खजर की बारीक नोक अपने गले पर रख दी। तेज खजर की धार ने गले पर रखते ही, तुरन्त ही हल्की सी एक खराच वना दी और बूद-बूद करके लोहू टपकने लगा। किन्तु अहा, राम आश्चय विभोर हो गया—प्रश्न का हल आकाश में सुनहले अक्षरो से लिखा हुआ चमक रहा था! राम ने उसे दखा और नीचे आकर कागज पर उसे लिख लिया। यह अत्यन्त मौलिक काय था, इस प्रकार की मौलिक देन शायद ही कभी मिली हो। गवनमेण्ट कालेज के प्रोफेसर मुकर्जी तो इस प्रश्न के हल से आश्चय में डूब गये। राम के साथ इस प्रकार की घटनाएँ अनेक बार घटित हुई हैं। ऐसे कठिन श्रम से उसने गणित का अगाध ज्ञान प्राप्त किया है।"

तीथराम की प्रतिज्ञा-सम्बन्धी उपर्युक्त घटना अत्यधिक विस्मय कारिणी है। पर विशुद्ध अन्त करणवाले साधको के जीवन में मवशक्तिमान और अघटित को घटित कर दिखाने वाला परमात्मा ऐसे प्रसग उपस्थित करके अपने में दढ अनुराग और विश्वास उत्पन्न करा देता है। तीथराम भावुक होने के साथ अत्यन्त मनन-शील और तार्किक थे। उनके मन में यह धारणा अवश्य बनी होगी कि 'जिस जटिलतम प्रश्न का तीथराम की—महान से महान गणितज्ञ की बुद्धि हल न कर सकी, उसे सवचैतन्य सत्ता ने बिना प्रयास ही आनन-फानन हल कर दिया। उसके सामीप्य से अनसुना सुना हो जाता है और अविज्ञात विज्ञात हो जाता है।' उसी अदृश्य शक्ति एव साथ ही साथ अपने अदम्य पुरुषाथ का सबल लेकर, वे तीव्र गति मे आत्म-साक्षात्कार की ओर अग्रसर होने लगे।

जैसे-जैसे तीथराम की मानसिक प्रगति होती गई, वैसे-वैसे अपने गुरु भक्त धन्नाराम एव परमात्मा में आत्मसमपण की भावना भी बढती गयी। हालाकि, भक्त धन्नाराम एक प्रकार से अनपढ थे, किन्तु राम उनके इतने प्रगाढ भक्त और आज्ञाकारी थे कि बिना उनकी आज्ञा के कोई भी कार्य नही करते थे। वे अपने समय और रुपयो का लेखा जोखा उन्हें बराबर देते रहते थे। राम स्वय आर्थिक विपन्नता सहन करके, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखते थे, फिर भी भक्त जी उनके प्रति अपना मानसिक सन्तुलन खो बठते थे। ऐसी परिस्थिति में भी राम साम्यावस्था में रहते। परमात्मा के प्रति असीम प्रेम और आत्मसमपण भाव ने उनके अन्त करण को निमल बनाना प्रारम्भ कर दिया था। परिणाम स्वरूप अपने अन्त करण के सात्विक प्रकाश में भक्त धन्नाराम भी उन्हें विचलित होते दिखाई पडे। ऐसे अवसर पर तीथराम ने अपने गुरु को भी सावधान किया। ७ फरवरी, १८९४ के पत्र से यह बात भलीभाति स्पष्ट हो जाती है—"आप अपने वास्तविक स्वरूप की ओर ध्यान करने का प्रयास करें। सम्बन्धियो की

किंचित् मात्र परवाह न करें। सत्सग, उत्तम-पुस्तक, एकान्त-सेवन के द्वारा अपने स्वरूप में निष्ठा होती है। और अपने स्वरूप में निष्ठा होने से सारा ससार दास बन जाता है।"

दस दिनों के पश्चात पुन इसी प्रकार की बात, भक्त धन्नाराम को लिखी—"१७ फरवरी, १८९४, ससार की कोई वस्तु एतबार (विश्वास) और भरोसा (आश्रय) करने के योग्य नही है। अत्यन्त कृपा परमेश्वर की उन लोगों पर है, जो अपना आश्रय और विश्वास केवल एक परमात्मा पर रखते हैं और चित्त के सच्चे साधु हैं। ऐसे महापुरुषो के चरणो की परमेश्वर की सारी सृष्टि सेवा करती है, अर्थात आज्ञाधीन रहती है।"

१६ मार्च, १८९४ को फिर सकेत करते हैं, "सत्सग, उत्तम ग्रथ और भजन—ये तीनो चीजें तीन लोको का राजा बना देती हैं और हमारा कुसग परमेश्वर को हमसे कुपित करवा देता है। जिसके कारण हम पर नाना प्रकार के कष्ट आ जाते हैं। एकान्त सेवन और थोडा खाने से परमात्मा आप आकर हमारा सग अगीकार करते हैं।"

२ जून, १८९४ के पत्र में तीर्थराम लिखते हैं—"वास्तव में जगत् की कोई भी वस्तु स्थायी नही है। जो मनुष्य इन वस्तुओ पर आश्रय करता है (और अपने आनन्द का आधार परमात्मा पर नही रखता), वह अवश्य हानि उठाता है। ससार के धनाढ्य पुरुष नगे (खाली) और दराजे-दामन (लम्बे आचलवाले) पुरुषो के सदृश हैं। अर्थात् ये लोग हैं तो बिल्कुल नगे और कगाल, मगर अपने आपको बडे लम्बे आँचलवाला, अर्थात वस्त्रोवाला ख्याल करते हैं। ऐसे नगे व लम्बे आँचलवालो से हमें क्या सुख मिल सकता है, अर्थात् कुछ भी नही।"

९ मई, १८९४ का पत्र भी इसी भाव से भरा है—"इस ससार में कोई चीज हमारी नही है। अगर हम सुख चाहते हैं तो हमें चाहिए कि ससार के काम-काज करते समय इस शरीर आदि को केवल परमात्मा का समझ कर विचरें और इसमें राग-द्वेष न करें।"

वास्तविक बात तो यह है कि उन दिनो भक्त धन्नाराम का उनके सम्बन्धियो से झगडा चल रहा था। धन्नाराम अपने सम्बन्धियो पर बहुत क्षुब्ध थे और उन्होने उनकी शिकायत तीर्थराम से की थी। उस समय राम परमात्मा के प्रेम में डूबे थे और अपार शान्ति का अनुभव कर रहे थे। अत अपनी दिव्यानुभूति द्वारा अपने गुरु को भी उपदेश दे रहे थे। यह उनकी सशय विहीन-वृत्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्होने ४ जून, १८९४ के पत्र में कीडिया (चीटियों) की मनोहर बातचीत के माध्यम से अध्यात्म रहस्य-मीमासा विशद रूप में की है—

"महाराज जी! परमेश्वर बडा ही चगा (भला) है, मुझे बडा ही प्यारा लगता है। आपके उसके साथ सुलह (मैत्री) रखा करें। आपके साथ जो कभी-कभी कठोरता बरतता है, ये उसके विलास है। वह आपके साथ हँसी मखौल करना, हँसना-खेलना चाहता है। हमें चाहिये कि हँसने वाला से खफा न हो जायें। किसी और पत्र में आपकी सेवा में उसकी कई बातें बताऊँगा। वास्तव में वह ईश्वर बडा ही मोतिया वाला है।

"यह पत्र मैं मेज पर रखकर लिख रहा हूँ। यहा प्रात थोडी सी खाड गिर पडी थी। उस खाड के पास मेज पर चार-पाँच कीडिया (चीटिया) एकत्र हो रही है, और वे सब मेरी लेखनी की ओर तक (देख) रही ह और परस्पर बडी बातें कर रही है। जितनी बातचीत मैंने उनसे सुनी, वह विनयपूर्वक लिखता हूँ।

"परन्तु पहले मैं यह विनय करना चाहता हूँ कि चाहे मेरे अक्षर बहुत ही बुरे और निषिद्ध तथा कुरूप हा, पर उन कीडियो (चीटियो) की दृष्टि में तो चीन देश के नक्शोनगार (सुन्दर तथा आकर्षक चित्रो) से कम नही। जो कीडी सबसे पहले बोली, वही बडी अनजान और निर्दोष बच्ची थी। अभी बहुत छोटी बच्ची थी।

"पहली कीडी कहती है—'देख, बहन, इसे लेखनी की कारीगरी (चित्रकारी)। कागज पर क्या गोल-गोल घेरे चित्र या वृत्त डाल रही है। इसकी डाली हुई लकीरो अर्थात् अक्षरा को सब लोग बडी प्रीति से अपने नेत्रो के पास रखते हैं, अर्थात् पढते ह, और जिस कागज पर यह लेखनी चिह्न कर द अर्थात् लिख दे, उस कागज को लोग हाथो में लिये फिरते ह। कागज पर मानो मोती डाल रही है, क्या रगामेजिया है। बाज-बाज अक्षर तो विशेष करके हमारी और हमारी मौसी के पुत्रो (चीटो) के रूपो के समान दिखाई देते है। क्या ही सुन्दर है।

क़लम गोयद कि मन शाहे—जहानम।
क़लमकश रा बदौलत मे रसानम॥

अर्थात्, लेखनी कहती है कि मैं जगत की अधिष्ठात्री हूँ और लेखक को कुबेर भडारी बना देती हूँ। इस लेखनी में जान नही है, परन्तु हमारे जैसे जानदारो (प्राणियों) बीसियों बार उत्पन्न कर सकती है।' इतना कहकर पहली कीडी चुप हो गयी।

"अब दूसरी बोली। यह कीडी पहली से कुछ बडी थी और उसमे अधिक दीर्घ दृष्टि रखती थी। उसने कहा, 'मेरी भोली बहन, तू देखती नही है कि

लेखनी तो बिल्कुल मुरदा शै (वस्तु) है, वह तो बिल्कुल कुछ काम नही कर सक्ती। वे उँगलियाँ उसे चला रही ह। जितनी प्रशसा तूने लेखनी की की है, वह सब उँगलियो की ही जाननी चाहिये।"

"अब इन दोनो से बडी और सयानी तीसरी कीडी बोली, 'तुम दोनो अभी अनजान हो। उँगलिया तो पतली-पतली रस्सियो की तरह है, वे क्या कर सकती है। वह मोटी बीनी (बाह, भुजा) हाथ ही इन सबसे काम ले रही है।'

"अब इन कीडिया की मा बोली, 'ये सब लेखनी, उँगलिया, बीनी (भुजा) इत्यादि इस बडे मोटे धड के आश्रय से काम कर रहे है। यह सब प्रशसा उस धड के योग्य है।'

"इतना कहकर कीडिया जब जरा-चुपकी हुइ, तो मैंने उनको यह कहा, 'ए मेरे दूसरे स्वरूपो, यह धड भी जड रूप है। इसको एक और वस्तु का आश्रय है, अर्थात प्राण का। इसलिए यह सब प्रशसा उस प्राण के ही याग्य है।

"जब मैंने इतना कहा तो मेरे दिल में आपकी तरफ से आवाज आई और वह आपके वचन भी मैंन उन कीडियो को सुना दिये। उनका सार मैं लिखता हूँ—'मनुष्य क प्राण से परे भी एक वस्तु है अथात परमात्मा। उस वस्तु के आश्रय से सब भूत चेष्टा करते ह। ससार में जो कुछ होता है, उसी की मरजी से होता है। पुतलिया बिना तारवाले (पुतलीगर) के नही नाच सकती। बाँसुरी बिना बजाने वाने के नही बज सकती। इस प्रकार ससार के लोग बिना उस ईश्वर की आज्ञा के कोई काम नही कर सकते। जैसे तलवार का काम यद्यपि मारना है, मगर वह बिना चलान के नही चल सकती। इसी प्रकार चाहे कुछ कुछ मनुष्यो का स्वभाव बहुत ही खराब क्या न हो, जब तक उन्हें परमेश्वर न उक्साये, वे हमें कष्ट नही पहुँचा सकते। जैसे महाराजा के साथ सुलह करने से सब अमला (राज्याधिकारी) हमारे मित्र बन जाते ह, इसी प्रकार परमात्मा को राजी रखने से सारी सृष्टि हमारी अपनी हो जाती है।'

"महाराज जी, आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ था, अत्यन्त हष का कारण हुआ था। महाराज जी, अगर आप यहा रहना चाहें, तो बडी खुशी की बात है। और यहा अगर एक आदमी रखना चाहें तो आप अपनी सेवा के लिए निस्सन्देह रख लें। जहाँ इतना खच हो रहा है, वहा और एक आदमी का खच भी परमात्मा बडी अच्छी तरह स दे देंगे। मेरी तरफ से कोई फक, कमी या रोक नही। जिस प्रकार जी चाहे, आप करें।

"मुझे किसी पर किंचित क्रोध नही है। मैं बडा खुश हूँ। बहुधा क्रोध में आकर मनुष्यो के मुख स कई बातें निकल जाती ह, हमें सब मुआफ़ कर देनी

चाहिये, आप भी क्षमा कर दें। आप उनसे सुलह कर लें। खाना आप उनका चाहे खायें, चाहे न खायें, मगर सुलह अवश्य कर लें, और सब अपराध क्षमा कर दें। साधुओं का क्षमा भूषण होता है।

"आप इन दिनों कुछ अचाह (इच्छारहित) हुये थे, इसलिए आपके पिताजी आपके पास आये थे। यह पत्र बेइख्तियार इतना लम्बा हो गया। क्षमा करना। परमेश्वर आपको बड़ी खुशी देगा।"

उपर्युक्त पत्र में तीर्थराम ने अत्यन्त सावधानी से अपने गुरु को उपदेश दिया है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गुरु के प्रति आदर और विनय भाव ज्यों का त्यों है। राम सभी भांति से गुरु-सेवा में तत्पर दिखाई पड़ते हैं, किन्तु उन्होंने गुरु की कमियों को बड़ी मृदुता से प्रदर्शित किया है, ताकि उनकी मनोवृत्तियों को किसी प्रकार की ठेस न पहुँचे।

यह विचारणीय है कि इस बीच जितने भी पत्र लिखे गये थे, उनमें से अधिकांश से उनकी अखण्ड भगवद्-वृत्ति का पता चलता है। उनका अध्ययन, मनन, चिन्तन सब कुछ परमात्म साक्षात्कार के ही निमित्त हो रहा था। नीचे उद्धृत कुछ पत्र इसकी पुष्टि करते हैं—

"६ जून, १८९४, थोड़े दिन हुये मैंने भी गीता का एक भोग पाया था। अत्यन्त ही उत्तम ग्रंथ है। इसको समझकर पढ़ने से परमेश्वर के ऊपर इतना विश्वास हो जाता है, जितना संसारी लोगों का अपने शरीर पर होता है।"

"८ जून, १८९४, मैं बड़े आनन्द में हूँ। 'मेरी इच्छा है कि उसके चरणों की रज मेरी आँखों का काजल बन जाय।"

"११ जून, १८९४, अपने चारों ओर आकाश के समान मैं घूमता हूँ, अपने से बाहर मैं नहीं टहलता। मैं सदा शोकपरायण हृदय को नखों से छीलता रहता हूँ। अर्थात् शोकों को हृदय से बाहर करता रहता हूँ, ताकि अपने स्वरूप (अथवा प्यारे) के विचार से अतिरिक्त विचारों को हृदय से बाहर निकाल दूँ।'

'दिल के आईने में है तस्वीरे-यार।
जब जरा गरदन झुकाई देख ली।।'

अर्थात 'अन्तःकरण के दर्पण में अपने प्रियतम का चित्र है। जब भी किंचित सर झुकाया, तब उसे देख लिया।

"३० अगस्त, १८९४, यहाँ मैं एकान्त में हूँ। और जो मुझे एकान्तता में आनन्द है, उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। अगर आप जितना भी हो सके कोठे (छत) पर रहने का स्वभाव डालें, तो आपका पूर्ण आनन्द होगा। और मुझे

भी इसमें बडी खुशी होगी। एक स्वभाव को बदलकर दूसरा स्वभाव डालना कठिन तो है, अगर आप यह स्वभाव कोठे (छत) पर रहने का डाल लेंगे, तो आप बहु खुश रहा करेंगे। कोठे पर रहकर तत्त्व विचार की पुस्तक, वाशिष्ठ आदिक पढ़ने से लाभ होगा। नीचे यह पुस्तक विचारी ही नही जा सकती।"

"१६ सितम्बर, १८६४, ईश्वर भक्त निर्धन तथा अन्य सामग्री रहित अवस्था में भी बादशाहिया करते ह, अर्थात आनन्द भोगते ह। द्रव्य इत्यादि से रहित रहने की प्रीति दोनो लोका (लोक-परलोक) का अधिकारी बनाती है।

"प्रारब्ध की उत्तमता से मैं कथा (गुदडी) में भी राज्य करता हूँ। ऐसे आकाश पर सवारी करने वाला मेरा प्रारब्ध न बादशाह जमशेद रखता है और न कैकाऊस, ईरान देश के बादशाह का भी ऐसा उत्तम प्रारब्ध नही।

'बुदबुदा के सदश हमने अपना काम तमाम कर दिया है। अर्थात निजानन्द के समुद्र में हमने अपने तुच्छ अहकार रूपी बुदबुद को फोड दिया है, और इस आनन्द-समुद्र में अपने शरीर रूपी प्याले को अहकार रूपी बिन्दु (बुदबुदा) से रहित कर दिया है।'

'२६ सितम्बर १८६४, परमात्मा बडा ही कारसाज है और सब पर अत्यन्त कृपालु है। हमारे चित्त की सब बदमाशियाँ (दुवृ तिया) ह कि परमात्मा पर विश्वास न लाकर हमें दुखी पडा करती ह। यह चित्त अभ्यास करने स वश में आता है। अच्छी, उत्तम पुस्तक वासिष्ठ आदिक ऐसे समय पर विचारनी चाहिए। और सबसे जरूरी बात यह है कि आहार अल्प कर देना चाहिए। यह ऋतु बडी सत्त्वगुणी है। अब अगर आप योगवासिष्ठ पढ़ें, ता मुझे बडी खुशी हो। तुलसी दास लिखते है—

'जब दांत न थे, तब दूध दियो,
अब दात भये सब अन्न न देहैं।"

"२६ सितम्बर, १८६४, कबीर का यह वाक्य क्या ही अच्छी अवस्था को प्रकट करता है—

'मन ऐसो निमल भयो, जैसे गगा नीर।
पीछे पीछे हरि फिरैं, कहत कबीर कबीर।' "

उपर्युक्त पत्रा के उद्धरण से तीर्थराम की ईश्वर भक्ति, गुरु निष्ठा, त्याग, सयम, स्वाध्याय, कार्यतत्परता, वैराग्य वृत्ति आदि सात्विक गुणो पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। उनके जीवन का भावी लक्ष्य क्या है, यह भी इन पत्रा से प्रकट है।

ऐसी परिस्थितियों में तीर्थराम ने अप्रैल, १८९५ में एम० ए० (गणित)

परीक्षा उत्तीण की यह बात विचारणीय है कि उन दिनो भारत के विश्वविद्यालय में गणित लेकर एम० ए० बहुत कम छात्र करते थे। पजाब विश्वविद्यालय से गणित लेकर एम० ए० करने वाला में तीर्थराम अकेले थे। इनके पूर्व वर्षों में गणित में कोई भी परीक्षार्थी उत्तीण नही हुआ था। सन् १८९१ में केवल एक परीक्षार्थी उत्तीर्ण हुआ था। अतएव जब तीर्थराम बहुत अकों से—सम्मान सहित—प्रथम श्रेणी में उत्तीण हुये, तो स्वय उन्हें, उनके सम्बन्धियो, उनके गुरु, उनके प्राध्यापकों एव गवर्नमेण्ट कालेज के प्रिंसिपल, बल साहब को जो अपार प्रसन्नता—हुयी होगी, उसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। पर तीर्थराम का परमात्म-समपण भाव इतना अधिक बढ गया था, कि उन्होंने इस महती सफलता का समस्त श्रेय ईश्वर की असीम अनुकम्पा को ही दिया। उनमें अपनेपन का का भाव रच मात्र भी नही जगा। उनकी सफलता का यह महान् रहस्य माना जा सकता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने मौसा (डाक्टर रघुनाथमल) को जो पत्र लिखा उससे उनकी अहभावशून्यता पूर्णरूप से सिद्ध हो जाती है, "परमात्मा की कृपा से मैं उत्तीण हो गया। परीक्षा अत्यधिक कठिन थी। आज तक हिन्दुस्तान के किसी भी विश्वविद्यालय में गणित के इतने कठिन परचे नही आये थे। मेरी सफलता केवल परमात्मा की कृपा और आपके आशीर्वाद से हुई है।"

गणित में एम० ए० सम्मान सहित उत्तीण करने के अनन्तर तीर्थराम के सामने नौकरी की समस्या आ खडी हुई। उनके सभी सम्बन्धी हितयी यह चाहते थे कि उनकी योग्यता के अनुरूप काम मिल जाय। मैकाले द्वारा स्थापित भारतीय शिक्षा-प्रणाली पूरे जोर पर थी। इस शिक्षा प्रणाली से अच्छी से अच्छी प्रतिभाओ का शोषण और दुरुपयोग हो रहा था। उसका उद्देश्य था अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने वाले भारतीय, 'अभिरुचि-सम्मति, नतिक आदश और बुद्धि आदि सभी दृष्टियो से अँग्रेज बनें, ताकि अँग्रेजी शासन और उसकी महत्ता चिरस्थायी रूप से भारत में कायम रहे।' तीर्थराम की अभिरुचि प्राध्यापक बनने की प्रारम्भ से ही थी। वे शिक्षक-वृत्ति को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। इसलिये काय खोजने में दत्तचित्त हुये। रात दिन के अनवरत प्रयास से निराशा ही उनके हाथ लगी। गवर्मेण्ट कालेज के प्रिंसिपल, बैल साहब उनसे बहुत प्रभावित थे और अत्यधिक स्नेह करते थे। एक दिन प्रिंसिपल महोदय ने उन्हें बुलाकर कहा, "तीर्थराम, यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम्हारा नाम प्रान्तीय प्रशासकीय सेवा (Provincial Executive Service) के निमित्त नामाकन हेतु भेज दूँ परन्तु तीर्थराम की अभिरुचि इस प्रकार की नौकरियों में रचमात्र नही थी। अत उन्होने सिर नीचा करके आँखों में आँसू भरकर मृदु शब्दो में उत्तर दिया, "साहब आपकी इस कृपा के लिए अनेक

धन्यवाद। किन्तु मेरी प्रार्थना यह है कि मैंने ज्ञानार्जन इसलिए नहीं किया कि उसे बेचूं। मैं तो इसे वितरित करना चाहता हूं। मैं अफसर होने की अपेक्षा शिक्षक बनना अधिक पसन्द करता हूं।'

शिक्षक का पद पाने के लिए उनका प्रयत्न प्रारम्भ हो गया। पहले वे मेरठ कालेज में प्रोफेसर के स्थान के लिए आवेदन-पत्र देना चाहते थे। वहां का वेतन डेढ़ सौ रुपये मासिक था। किन्तु भक्तधन्नाराम की सम्मति नहीं थी, अतः उन्होंने इस विचार का परित्याग कर दिया। इसी प्रकार एक प्रोफेसर का स्थान बरेली के एक कालेज में रिक्त था। पर राम के मित्रों की यह राय नहीं हुयी कि वे पंजाब प्रान्त छोड़ें। इतने पर भी उन्होंने वहां प्रोफेसर की पद प्राप्ति के निमित्त आवेदन पत्र दिया था पर वहाँ कार्य करने की कोई सूचना प्राप्त नहीं होती।

पहले यह बताया जा चुका है कि बी० ए० उत्तीर्ण करने के बाद तीर्थराम ने पंजाब सरकार की छात्रवृत्ति पाकर इंगलैण्ड जाने का प्रयास किया था। पर वे उसमें कृतकार्य न हो सके थे। एम० ए० पास करने के बाद उनके मन में फिर विचार आया और उन्होंने छात्रवृत्ति प्राप्ति के लिए आवेदन पत्र भेज दिया। परन्तु अब की बार भी वे अपने मनोरथ में असफल ही रहे। वह छात्रवृत्ति किसी अन्य व्यक्ति को मिल गई। यदि वह छात्रवृत्ति उन्हें मिल गई होती, तो कदाचित उनका जीवन दूसरी ही ओर मुड़ गया होता।

अमृतसर कालेज के गणित के प्रोफेसर ने अवकाश-प्राप्ति के लिए आवेदन-पत्र दिया, वे रिटायर होना चाहते थे। तीर्थराम ने उस पद के लिए चेष्टा की। उनके अध्यापकों ने भी पर्याप्त सहायता की। किन्तु वहां के गणित के प्रोफेसर का कार्य-काल एक वर्ष के लिए और बढ़ा दिया गया। अतः वे उस स्थान को भी न पा सके।

पेशावर के एक हाईस्कूल में प्रधानाचार्य का स्थान रिक्त था। वहां का वेतन पचास अथवा साठ रुपये मासिक था। तीर्थराम ने वहाँ जाने का विचार किया। किन्तु उनके प्रिंसिपल, बेल साहब ने उन्हें वहाँ जाने से रोक दिया। प्रिंसिपल महोदय ने राम को यह बताया कि डिपुटी कमिश्नर, इन्सपक्टर ऑफ स्कूल्स एवं डाइरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन्स सभी उस स्कूल के विरोध में हैं। अतएव उन्होंने वहाँ जाने का विचार छोड़ दिया।

तीर्थराम ने पंजाब प्रान्त के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर के नाम आवेदनपत्र दिया कि वे शिक्षा विभाग में सेवा करना चाहते हैं। उनके आवेदन की प्रबल सस्तुति, बैल साहब ने भी की थी, किन्तु उसका भी कोई फल नहीं निकला।

इस प्रकार चारों ओर से उन्हें असफलता ही मिल रही थी। अब प्रिंसिपल

बैल की सलाह से उन्होने गणित विषय की प्राइवेट कक्षाएँ चलाने की योजना बनाई। प्रिंसिपल महोदय ने अपने खर्च से विज्ञापन निकलवाया। उस विज्ञापन में इण्टरमीडिएट कक्षा के लिए दस तथा बी० ए० के लिए पन्द्रह रुपये मासिक फीस रखी गयी थी। कम से कम दस छात्र होने पर कक्षायें चालू कर दी जाती। विज्ञापन नगर के प्रमुख स्थाना, चौराहो और बाजारो में लगाये गये।

गणित शास्त्र की महत्ता पर एक दिन जनसभा में तीथराम का भाषण भी हुआ। लोगो ने उनके भाषण की बहुत सराहना भी की। दूसरे दिन ही एक प्रोफेसर उनसे गणित पढने आने लगे। उनके अतिरिक्त दो अंग्रेज बालक भी पढने के लिये आने लगे। पर कक्षाएँ चलाने की योजना, योजना मात्र रह गई, वह कारगर न हो सकी।

इस प्रकार उनके मनोबल और धैय की परीक्षा के निमित्त निराशा पर निराशा आती गई। पर वे रचमात्र भी डिगे नही। उनका परमात्मा के प्रति विश्वास और अधिक बढता गया, उनकी समझ में यह भलीभाति आ गया था कि जगत रचमच है और उस पर सभी प्राणियो को अपने अपने अभिनय करने हैं। जिस भाग्यशाली पुरुष को यह प्रतीति हो जाती है, वह जगत् के सुख-दु ख के बीच अपनी चित्तवृत्ति की साम्यावस्था बनाये रखता है। इस स्थल पर यह स्पष्ट करना समीचीन प्रतीत होता है कि तीर्थराम ने योगवाशिष्ठ का अध्ययन मननपूर्वक किया था। एकान्त में उसका निदिध्यासन भी किया था। उन्होने उस विलक्षण ग्रन्थ का आत्मसात् कर लिया था। इस ग्रन्थ में ऐसे-ऐसे विचित्र आख्यान हैं कि उनका एकान्त में मननपूवक अध्ययन करने से हृदय की समस्त ग्रन्थियाँ खुल जाती है। ससार के राग-द्वेष, हर्ष विषाद, आशा निराशा आदि द्वन्द्व समाप्त हा जाते हैं। उन्होने अपने सदगुरु धन्नाराम को पारिवारिक विग्रहो में अनुरक्त और दुखी तथा क्षुब्ध जानकर उन्हें एकान्त में योगवाशिष्ठ पढने की राय दी थी। तीथराम की यह सबसे बडी विशेषता थी कि वे जो कुछ भी स्वाध्याय करते थे, उसे अपने नित्य के जीवन में व्यवहृत करने की चेष्टा करते थे।

उस समय के लिखे गये पत्रो को देखने से उनकी उपर्युक्त वृत्ति का सुन्दर बोध होता है—

"१३ जून, १८९५, ईश्वर पर भरोसा करने वाले पशुओ के लिये भी परमेश्वर आप रसोइया बना रहता है।

ईश्वर-कृपा का द्वार खुला हुआ है। कठिनाइयो के भय से यहा निराश होकर मत बैठ। बीज के समान प्रत्येक रहस्य की ग्रन्थि यहाँ उत्पन्न हुई है।

"आपकी दया से चित्त बहुत आनन्द में है। आप इसी प्रकार कृपादृष्टि रखा करें—

भीखा भूखा कोई नहीं, सबकी गठरी लाल।
गिरह खोल नहिं जानते, तातें फिरत कँगाल॥
सात गाठ कौपीन में, साध न माने सक।
राम अमल माता फिरे, गिने इन्द्र को रक॥"

"६ जुलाई, १८६५, किसी कदर कोशिश भी की जाती है। और साहबो से मिलने-जुलने जाता हूँ। मगर दिल ख्वाहिशो (इच्छाओं) से पाबन्द (बद्ध) नहीं।

"मैं इच्छाओं की स्थिति से ऊपर उठ चुका हूँ, मेरी समस्त इच्छाओं की समाप्ति हो चुकी है। ये इच्छायें ही इच्छित वस्तु की प्राप्ति में बाधायें है।"

इस प्रकार तीर्थराम निस्सन्देह पूर्ण मानसिक शान्ति में निमग्न थे और मन पूर्णतया उनके नियन्त्रण में था। किन्तु राम अपने प्रारब्ध के द्रष्टा और साक्षी हो चुके थे। प्रकृति के व्यापक नियमों से शरीर सचालित होता है। ये नियम ज्ञानी अज्ञानी, राजा रक, पंडित मूर्ख, सबके ऊपर समान रूप से शासन करते हैं। उन दिनो राम अत्यधिक शारीरिक और मानसिक श्रम कर रहे थे। अर्थोपार्जन के निमित्त अनेक ट्यूशनों के भार से दबे थे, साथ ही अपने प्रोफेसरों की उनके कार्य में सहायता करते थे। इसके अतिरिक्त पर्याप्त स्वाध्याय भी करते थे। ग्रीष्म ऋतु की भीषण धूप में काम धाम की तलाश में लाहौर के स्थान-स्थान का चक्कर लगा रहे थे। उन्हें पर्याप्त पौष्टिक आहार का भी अभाव था। इन कारणों से उनका शारीरिक स्वास्थ्य बहुत गिर गया। स्वास्थ्य-सुधार के लिए वे अपने गाँव मुरारीवाला[1] गये। कुछ सप्ताह तक विश्राम लेने से वे पूर्ण स्वस्थ हो गये और जुलाई के प्रारम्भ में फिर लाहौर लौट आये।

●

---

१ उनके गाँव का नाम यद्यपि 'मुरालीवाला' था, किन्तु कृष्णप्रेम के आधिक्य के कारण राम ने उसे 'मुरारीवाला' सज्ञा दी थी, ताकि उन्हें कृष्ण-स्मृति बनी रहे।

तृतीय अध्याय

प्रेम के प्राङ्गण में

(१८९६-९७)

अपनी जन्मभूमि से लौटने के बाद तीर्थराम ने यह विचार किया कि नौकरी पाने के लिए भाग-दौड मचाना व्यथ है। अत उन्होने जनसेवा के कार्यों में अपने को नियोजित करने का सकल्प किया। लाहौर आने के थोडे ही दिना के पश्चात् सनातन धर्मसभा के सदस्यो ने उन्हें अपनी शिक्षा-समिति का सभासद चुन लिया। सनातन धर्म-सभा अपनी ओर से लाहौर में एक स्कूल का सचालन कर रही थी। उस स्कूल के गणित एव विज्ञान विभाग के कार्यों के सुचारु रूप से सचालन एव निरीक्षण के लिए सभा ने तीर्थराम को नियुक्त किया। तीथराम ने बहुत मनोयोग से इस उत्तरदायित्व का निर्वाह किया और उसका परिणाम यह हुआ कि उन विभागो के अध्ययन-अध्यापन में नयी जान आ गई। इन्ही दिना उनकी वृत्ति चित्रकला सीखने की ओर झुकी। डी० ए० वी० कालेज के प्रिंसिपल, हसराज ने अपने कालेज में नि शुल्क चित्रकला सीखने की उन्हें आज्ञा प्रदान कर दी।

अब राम अर्थोपाजन के प्रति उदासीन से हो गये थे। उनकी यह निष्ठा अत्यधिक प्रबल हो चुकी थी कि जो 'विश्वम्भर' समस्त जगत् का भरण-पोषण करता है वही आवश्यकतानुसार मुझे भी रोजी रोटी देता रहेगा। उनको प्रबल निष्ठा ने सूत्रधार परमात्मा का आसन डिगा दिया। परिणाम यह हुआ कि बिना तीथराम की आकाक्षा के, और बिना उनके आवेदन पत्र दिये, मिशन हाई-स्कूल स्यालकोट के सेकेण्ड मास्टर (द्वितीय मुख्याध्यापक) के पद पर नियुक्ति के लिए उनका बुलावा आ गया। उन्होने उस पद को स्वीकार कर लिया और १६ सितम्बर, १८९५ को कायभार ग्रहण कर लिया। स्यालकोट जाते समय स्थानीय सनातन धम सभा द्वारा आयोजित वजीराबाद की एक जनसभा में उन्होने भाषण दिया।

मेधावी एव अद्भुत गणितज्ञ के रूप में उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। फलस्वरूप निकट दूर के अनेक गणितज्ञ उनके पास आकर अपनी कठिनाइयो को पूछने लगे। राम को उनकी सहायता में परम तृप्ति मिलती थी। स्कूल से उन्हें अस्सी रुपये मासिक प्राप्त होते थे। किन्तु अपने अल्प वेतन से वे निर्धन छात्रो की सहायता करने लगे। उन्हें अपना-पराया विस्मृत हो गया। सारे विश्व के प्राणी

अपनी ही आत्मा प्रतीत होने लगे। एक ही ब्रह्म का विस्फुलिंग समस्त प्राणियों में दिखाई पड़ने लगा। कोई भी विद्यार्थी दूध वाले से दूध लेकर तीर्थराम के उधार खाते में अपना नाम लिखा देता था और तीर्थराम उनके पैसे को चुका देते थे। उनकी महती उदारता का एक उदाहरण यह है कि उन्होंने अर्थाभाव के कारण किसी समय एक व्यक्ति से दस रुपये उधार लिये और उन दस रुपयों को उसे कई बार देने पर भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ।

तीर्थराम स्यालकोट की स्थानीय सनातन धर्म सभा से सम्बन्ध स्थापित करके उसके सक्रिय कार्यकर्त्ता हो गये। उनके व्यक्तित्व का आकर्षण इतना जबरदस्त था कि जो कोई उनके सम्पर्क में आता, आकर्षित हुये बिना न रहता। यह उनकी साधना की अद्भुत चुम्बक शक्ति थी। वे इसी विलक्षण शक्ति से लोगों के हृदय में बलात प्रविष्ट हो जाते थे। उनके सामीप्य में आने वाला व्यक्ति उन्हें अपने से भी अधिक चाहने लगता था। उनके अन्तर का अलौकिक प्रेम सात्विक किरणें बिखेर कर आसपास के समस्त वातावरण को प्रेममय बना देता था। उनकी आन्तरिक साधना की सुगन्धि से लोगों का हृदय पुलकित हो उठता था। वे स्वयं आनन्द निमग्न थे और दूसरों को भी आनन्दमय करते थे। मेरी राय में उनके भावी धर्म प्रचारक रूप का यहीं से सूत्रपात हुआ। तीर्थराम ने भक्त धनाराम को लिखे गये अपने एक पत्र में एक व्याख्यान के प्रभाव का इस प्रकार वर्णन किया है—

'२१ अक्टूबर, १८९५, कल उन्होंने (सनातन धर्म सभा के लोगों ने) मेरे व्याख्यान का विज्ञापन नहीं दिया था, पर आपकी कृपा से मेरे बोलते-बोलते सनातन धर्म मन्दिर का मैदान मनुष्यों से बिल्कुल भर गया था। डिप्टी साहब और बड़े-बड़े राज्याधिकारी भी थे। देश पर भी बोला था। लोगों के नेत्र अश्रुओं से भरे दिखाई देते थे और तालियां भी बहुत बजी थीं।''

सनातन धर्म सभा के कार्यकर्त्ता की हैसियत से उनका कार्यक्षेत्र केवल स्यालकोट तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि अनजान में ही उसका विस्तार बढ़ने लगा। गुजरात (पंजाब), वजीराबाद और जम्मू आदि स्थानों पर वे भाषण करने के निमित्त जाने लगे। कभी-कभी तो हजारों की भीड़ में चार-चार घंटे तक अविराम बोलते थे। उनकी वाणी में वह जादू था कि श्रोतागण मंत्रमुग्ध होकर उनका भाषण सुनते रहते, और हिलने-डुलने तक का नाम नहीं लेते थे। अधिकारी श्रोतागण तो नाम रूप की सत्ता खोकर समाधिस्थ हो जाते थे। उनके पत्रों से यह बात आसानी से समझी जा सकती है—

६ फरवरी, १८९६, आज मैं घड़तल गया था। वह ग्राम मुरारीवाले से कुछ बड़ा है। घर सब पक्के हैं। वहाँ की सभा में लाहौर की सभा से भी अधिक

रौनक आई। दो बजे से कुछ पीछे से लेकर छ बजे के लगभग तक मेरा व्याख्यान होता रहा। लोग जम्मू की अपेक्षा से भी अधिक प्रसन्न हुये।"

"१४ फरवरी १८९६, आपकी कृपा से पूर्ण आनन्द रहता है। कल यहाँ सत्सग था। पूरे दो घटे तो निर्विकल्प शान्तात्मा होकर चुपचाप सब समाधि में बैठे रहे। फिर दो घटे मैं कुछ कहता रहा। आप कृपादृष्टि रखा करें। सब आपका ही जहूरा (चमत्कार) है।"

तीर्थराम ने अपने मौसा को लिखे गये एक पत्र में कर्मयोग के सम्बन्ध में अपनी प्रत्यक्ष अनुभूति इस भाँति बताई है, "जब मैं अपना कोई कार्य अपनी पूर्ण योग्यता और क्षमता से कर लेता हूँ, तो मुझे विलक्षण आनन्दानुभूति एव सन्तोष होता है। उस आनन्द की समानता में राज्य-कोषागार का भी कोई मूल्य नही है। यहाँ के सभी भारतीय एव विदेशी मुझसे अत्यधिक प्रेम करने लगे है।"

वास्तव में राम ने कर्मयोग का वास्तविक रहस्य निष्काम कर्मोपासना द्वारा भलीभाँति समझ लिया था। उनके समस्त कर्मों के बीच ईश्वरार्पण की भावना प्रबल रूप से प्रज्वलित हो उठी थी। वे शुद्ध कर्मानुष्ठान से अपने प्रारब्ध कर्मों का क्षय कर रहे थे। वे श्रीमद्भगवद्गीता के इस आदर्श को चरितार्थ कर रहे थे—

'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥'

—अध्याय ९, श्लोक २७

अर्थात्, "हे अर्जुन, तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वधर्माचरणरूप तप करता है, वह सब मेरे में अर्पण कर।"

अपने अध्यापन काल के पहले ही वर्ष में तीर्थराम इन्ट्रैन्स परीक्षा के गणित विषय के परीक्षक नियुक्त किये गये। उन्हें लगभग दो हजार उत्तर पुस्तकें जाचने को मिली।

स्यालकोट मिशन स्कूल के बोर्डिङ्ग हाउस के अध्यक्ष होने की घटना भी उल्लेखनीय है। इसका विवरण उनके एक पत्र से जाना जा सकता है—

"५ मार्च १८९६, हमारे स्कूल के बोर्डिङ्ग हाउस का अध्यक्ष (सुपरिंटेण्डेण्ट) पहले एक मुसलमान अध्यापक था। पिछले दिन उसने यहा एक अत्यन्त अनुचित चेष्टा की (अर्थात हिन्दू जिस प्राणी की शपथ खाते हैं, उसका मास बार्डिङ्ग में मँगवाया)। इस बात की खबर हो गई सो वह निकाल दिया गया। अब बोर्डिङ्ग का मुख्याधिकारी मेरे अतिरिक्त और कोई अध्यापक नही बन सकता। इसलिए

मुझको प्रवन्ध सँभालना पडा है । आज वहाँ (बोर्डिंग में) चले जाना होगा । जो जगह मैंने वहाँ ली है, वह इस स्थान से बहुत अच्छी है ।"

इतने अल्पकाल की सेवा में बोर्डिंग का अध्यक्ष बनना उनकी लोकप्रियता एव कार्यपटुता का प्रत्यक्ष प्रमाण है । वहाँ का कार्यभार ग्रहण करने पर, तीर्थराम को भोले-भाले एव उत्साही छात्रो के निकटतम सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ । वहा के छात्रो को अपना अलौकिक स्नेह देकर वे उनके सच्चे अभिभावक एव पथ प्रदर्शक बन गये । कुछ ही दिनो में उन्हें वहाँ के छात्रो द्वारा श्रद्धा और भक्ति से पूजा जाने लगा । तीर्थराम के भावुक हृदय को सात्विक तरगें उन्हें सहज भाव से अपनी ओर आकृष्ट करने लगी ।

स्यालकोट में रहते समय उनकी विमाता और श्वसुर का दहान्त हो गया । हालाँकि, वे प्रतिदिन नियमित रूप से व्यायाम करते थे और प्रात काल पैदल नदी में स्नान करने के लिये जाते थे किन्तु स्यालकोट को जलवायु उनके स्वास्थ्य के अनुकूल नही पडी । उनका स्वास्थ्य निरन्तर बिगडता गया । वे इतने कमजार हो गये थे कि ३ दिसम्बर, १८९५ को जब स्कूल से पढाकर लौटे, तो बेहोश हो गये । वे अपनी आखो और पेट से सदा परेशान रहे । अन्न परित्याग एव दुग्ध-सेवन से व रोगो का उपचार करना चाहते थे । इसका सकेत उन्होने अपने पत्र में इस प्रकार किया है—

"२२ दिसम्बर, १८९५, मुझे आठ दिन अन्न (रोटी) खाये हो गये ह । केवल दूध पीता हूँ । किन्तु आज पूरे तीस मील का चक्कर सैर (भ्रमण) की रीति से लगा आया हूँ और जरा मालूम तक भी नही हुआ ।"

दैवीय विधान से उन्हें स्यालकोट में अधिक नही रुकना पडा । उनकी नियुक्ति अप्रैल, १८९६ से उन्ही की मात शिक्षण सस्था, मिशन (फोरमैन क्रिश्चियन) कालेज, लाहौर में हो गई थी । इसकी चर्चा उन्होंने भक्त धन्नाराम के पत्र में की थी—"२१ दिसम्बर, १८९५ लाहौर से आपकी कृपा और दया के कारण पत्र आया है कि मिशन कालेज वालो की समिति ने मुझे गणित शास्त्र के बडे प्रोफेसर को पदवी देना स्वीकार कर लिया है । और प्रिंसिपल साहब ने मुझसे पूछ भेजा है कि वह मुझको स्वीकार है या नही । अप्रैल के अन्त से लेकर वहाँ काम करना है । पहले वष वेतन एक सौ रुपये, तत्पश्चात् अधिक । इस शुकराने (कृतज्ञता) में परमात्मा का भजन अधिक करना । और मेरी मद मति में यह उचित है कि इस बात की चर्चा अभी सर्वसाधारण से नही करनी चाहिए । इस बात की स्वीकृति में पत्र का उत्तर मैं आज लाहौर लिखने लगा हूँ ।" प्रोफेसर गिल्बर्टसन के स्थान पर उनकी यह नियुक्ति हुई थी । वे अपने काय भार से अवकाश ग्रहण कर रहे

थे। प्रोफेसर साहब तीथराम के बडे प्रशसक और स्नेही थे और उनकी बराबर सहायता करने का प्रयत्न करते थे।

१८६६ ई० के माच में तीर्थराम ने मिशन हाई-स्कूल, स्यालकोट के कार्यभार स अपना त्याग पत्र दे दिया। वहाँ के सहयोगियो और छात्रो का इतना अधिक ममत्व हो गया था कि वे सब तीथराम के त्याग पत्र से बहुत दुखी हुए। तीथराम जब स्यालकोट मे रवाना हुए, तो उनके स्कूल के सहयोगी, छात्रगण, सनातन धम सभा के कायकर्त्ता और सदस्य तथा अन्य स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति रेलवे स्टेशन तक उन्हें विदा करने गये। स्कूल के अमेरिकन हेडमास्टर भी तीथराम से बहुत प्रभावित रहे। बाद में उन्हें जब किसी कायवश लाहौर जाना पडता था, तो वे तीथराम के पास ही रुकते थे।

तीथराम ने १८६६ ई० के अप्रैल में नये पद का भार मिशन (फोरमैन क्रिश्चियन) कालेज में ग्रहण किया। पहले उनकी नियुक्ति कनिष्ठ प्राध्यापक के रूप में हुई थी। किन्तु उनकी कार्य प्रणाली से सतुष्ट होकर, कालेज की काय-कारिणी समिति ने एक महीने के बाद (कुछ व्यक्तियो के अनुसार कुछ महीना बाद) उन्हें वरिष्ठ प्रोफेसर का पद द दिया। मिशन कालेज में स्यालकोट स्कूल की अपक्षा काफी कम समय देना पडता था। इसलिये उन्होने समय के सदुपयाग के लिये डी० एस-सी० करने की इच्छा की। इस डिग्री में नवीन अनुसन्धान की आवश्यक्ता थी। गणित का अध्यापन काय उनके मनानुकूल था। साथ ही कालेज में जो विषय उन्हें पढाने के लिए निर्धारित किया गया था, उस पर उनका पूण अधिकार था, विशेष तैयारी करने की आवश्यकता नही थी। परन्तु धार्मिक कार्यो में अधिक समय देने से और आध्यात्मिक अध्ययन में अधिक रुचि के कारण, उन्हे डी० एस-सी० करने का विचार छोडना पडा।

अब तीथराम आध्यात्मिक साधना करने के लिए पूण स्वतन्त्र थे। वे मनसा, वाचा कर्मणा साधना में तत्पर हो गये। इसका प्रभाव उनके दैनिक जीवन पर उत्तरोत्तर पडता गया। सासारिक पद, मान-सम्मान के होते हुये भी, वे इनसे वीतराग हो रहे थे। उनका लक्ष्य था—ईश्वर प्रेम में पूणतया डूब जाना, एकमात्र सवशक्तिमान परमात्मा की आराधना एव चिन्तन में अनुरक्त रहना। गणित के प्रोफेसर होने के नाते वे किसी वस्तु के तार्किक विश्लेषण में पूर्ण दक्ष हो चुके थे। उन्होने तक, युक्ति, शास्त्राध्ययन एव स्वानुभूति से यह निश्चय कर लिया कि ससार के ऐश्वय, समृद्धि यश, मान मर्यादा, गौरव सभी निस्सार है। ससार की महान् मे महान विभूतियाँ बिजली की चमक के समान क्षणभगुर है। अत वे धन आदि के प्रति भी विरक्त होने लगे। धन-सग्रह के प्रति तो उनकी सदैव से

अनासक्ति थी। धन प्राप्त होने पर, भी उनकी वैराग्य-वृत्ति में और प्रगाढता होती गयी। परिणाम यह हुआ कि जब उन्हें मासिक वेतन अथवा परीक्षकत्व आदि का पारिश्रमिक मिलता था, तो वे तत्काल असहायो, निधनो और जरूरतमन्दो को बाट देते थे। अपने खर्च के लिए वे बहुत कम धनराशि रखते थे। कभी-कभी उस भी लुटाकर फकीर के फकीर बने रहते थे। दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये रुपयो की नितान्त आवश्यकता होती है। पर राम अपने लिए उनका महत्व बिल्कुल नही समझते थे। उनकी यह वैराग्यवृत्ति उन्हें एक दूसरी ही दिशा में ले जाने की तैयारी कर रही थी। प्रवृत्ति मार्ग से उनका सहज वैराग्य शनै शनै वढता जा रहा था। उस समय के लिखे गये पत्र उनकी वैराग्य वृत्ति पर सुन्दर प्रकाश डालते है—

"४ जून १८९६, किसी वस्तु को अपना नही समझा हुआ, सासारिक धन को एकत्र करना नही समझा हुआ। न गहना (भूषण) बनाने का और न पदार्थो के उपार्जन करने का खयाल है। आपकी कृपा से वृक्ष की छाया अगर घर के बदले भस्म वस्त्रो के बदले भूमि शय्या के बदले और भिक्षान्न खाने के लिए यदि मिल जाय, तो भी बडा आनन्द माना हुआ है। किस धन के लिए मैं आपका रुष्ट कर दूँ? यदि भिक्षुओ की तरह रहने की मुझे आज्ञा दो, तो मैं तैयार हू सब कुछ छोडकर साधुओ के समान रहने को। कालिज में काम भी करता रहूँगा, जो कुछ वहा मिले, जिस तरह आपका चित्त चाहे वरत लिया करना। हमारे घर भी जो कुछ उचित समझें दे दिया करना। यह दीन सेवक तो केवल काम करने और परमात्मा को चित्त में धारण रखने से वह सुख पाता है कि जो किसी बाह्य विषय सुख अथवा आडम्बर और ठाटबाट की किंचित भी आवश्यकता नही रखता। मुझे तो जो ईश्वर निमित्त काम करने से सुख होता है, वही काफी वेतन है। मेरा वेतन जानें और आप जानें। मेरी आत्मा तो इन चीजो से न घटती है न वढती है। सदा आनन्दरूप है। यह सब आपकी कृपा का फल है।"

'११ जून १८९६, आपके दो कृपापत्र प्राप्त हुये, वडा आनन्द हुआ। चाचा जी (यहा उनके पिताजी से अभिप्राय है) बहुत तो खफा नही हुये। और होते क्योंकर? मैं तो शरीर से बाहर स्थिति रखता था। परन्तु पचास रुपये जो मेरे पास बचे थे, वह उनकी सेवा में भेंट किये गये। अब मैं उधार लेकर काम चला रहा हूँ। आनन्दित हूँ।"

जब तीर्थराम गणित के प्रोफेसर हो गये, तो उन्होने सबसे पहले एक पुस्तिका लिखी। उसका शीर्षक रखा 'गणित का अध्ययन कैसे करना चाहिये? उसमें उन्होंने यह बताया है कि बराबर चिकना-चुपडा, माल मसालेदार भोजन पर मैं

ठूँसते रहने से तीक्ष्ण बुद्धि छात्र भी अयोग्य और प्रमादशील हो जाता है। इसके विपरीत हल्के और सुपाच्य भोजन से मस्तिष्क सदैव स्वतन्त्र और खुला हुआ रहता है और यही सफल विद्यार्थी जीवन का गुप्त रहस्य है। दूसरी परमावश्यक बात यह है कि छात्र को अपने कार्य पर समुचित ध्यान केन्द्रित करने के लिये अपने हृदय को पूर्णत वासना-रहित रखना चाहिये।' तीर्थराम के अनन्य प्रशसक सरदार पूर्णसिंह ने इस सम्बन्ध में अपना भाव इस भाँति अभिव्यक्त किया है— "इस प्रकार अपने विद्यार्थी-जीवन के अनुभवों का सार निचोडकर उन्होंने हमें उक्त छोटी सी पुस्तिका में अनेक सीधे-सादे उपदेश दिये हैं। वे केवल लेखक बनने के लिए न कभी लिखते है और न कभी वक्ता बनने के लिये बोलने खडे होते हैं। किन्तु जब सचमुच उनके पास दूसरो को देने योग्य कोई चीज होती है, तभी वे कलम उठाते या ग्राठ खोलते है।"

तीर्थराम अपने छात्रों में अत्यधिक लोकप्रिय और विख्यात थे। कालेज के समस्त छात्र उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उनकी नियुक्ति के तीन महीने पश्चात होस्टल के छात्रों ने उन्हें निमन्त्रित कर उनका भव्य अभिनन्दन किया। इस अवसर पर उन्होंने भक्ति के सम्बन्ध में उनसे बातें की। छात्रगण उनकी वार्ता सुनकर भक्ति के रस में डूब गये।

मनुष्य की मानसिक अवस्था सस्कार, योग्यता, क्षमता आदि को ध्यान में रखते हुए, भारतीय मनीषियो ने परमात्म-साक्षात्कार के लिये विभिन्न मार्गों का अन्वेषण किया है। यद्यपि उन मार्गों की सख्या निर्धारित करना टेढी खीर है, किन्तु मोटे रूप से हरि-प्राप्ति के चार मार्ग प्रधान माने गये है—कर्मयोग, राजयोग, भक्तियोग एव ज्ञानयोग। मनुष्य स्वभावत क्रियाशील, भाव प्रधान एव विचार-युक्त होते है। प्रत्येक मनुष्य में उपर्युक्त गुणों में से किसी एक गुण की प्रधानता और विशिष्टता होती है। क्रियाशील मनुष्य के लिए कर्मयोग और राजयोग का साधना अनुकूल होती है, भावप्रवण व्यक्ति के लिये भक्तियोग उत्कृष्ट मार्ग है और विचार प्रधान साधक ज्ञानयोग का आश्रय लेता है। ससार में कुछ बिरले ही साधक इस प्रकार के होते है जिनमें कर्म, भाव एव विचार, इन तीनों का सानुपातिक मिश्रण होता है। कहना न होगा कि तीर्थराम में इन तीनो गुणो का समावेश उनके बाल्यकाल से ही पाया जाता है। वे कर्मठता, भक्ति एव विचार के मूर्तिमान स्वरूप थे। उनके जीवन में तीनो साधनायें साथ चलती थी। हाँ, यह बात दूसरी है कि अवसर विशेष पर किसी की विशेषता हो जाती थी। यदि हम तीर्थराम के विद्यार्थी-जीवन पर दृष्टि डालें, तो यह भली भाँति सिद्ध हो जायेगा कि उनकी समन्वित साधना एक साथ चल रही थी। विद्यार्थी-जीवन में अत्यधिक

श्रम करना, यह कर्मयोग है, अपने गुरु भक्त धनाराम एव ईश्वर में अपूर्व निष्ठा और आत्मसमर्पण, यह भक्तियोग है, एकान्त में अनाहत शब्द का श्रवण करना यह योग सम्बन्धी साधना है। योगवासिष्ठ आदि अद्वैत ग्रन्थो के अध्ययन चिन्तन और निदिध्यासन के फलस्वरूप बार-बार यह विचार आना कि 'ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या है', यह ज्ञानयोग है। अत हमारे अनुमान से उनकी साधना चतुर्मुखी थी। परमात्मा जब अपने भक्तो पर कृपा करता है, तो ऐसी विलक्षणता दिखाता ह।

इन दिनो राम की भक्ति भावना प्रधान हो गयी थी विशुद्ध कर्मों का निष्ठा पूर्वक सम्पादन करने से, उनका अन्त करण परम निर्मल हो चुका था। उन्हें अब अपने लिये कर्म का आचरण करना भार प्रतीत होने लगा। उन्होंने इस बीच श्रीमद्भगवदगीता का बार-बार मननपूर्वक अध्ययन किया। परिणाम यह हुआ कि वे श्रीकृष्ण के पीछे उन्मत्त हो गये। उनका भाव पक्ष अत्यधिक प्रबल हो गया। उन दिनो उनमें चैतन्य महाप्रभु की-सी भाव प्रवणता आ गई। 'कृष्ण नाम के उच्चारण मात्र से वे भाव-समाधि में स्थित हो जाते थे। किसी व्यक्तिद्वारा बजायी बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर उन्हें ससार की समस्त वाह्य वस्तुयें विस्मृत हो जाती थी। वे भाव विभोर होकर सज्ञाविहीन हो जाते और उस अवस्था में उनकी आखें मुद जाती, उनके कपोल प्रियतम कृष्ण के मिलने से आरक्त हो जाते और नेत्रो से अश्रुवर्षा की झडी लग जाती। उस समय वे भाव के साकार विग्रह बन गये थे। उन्हें ससार की सामान्य बातें रुचिकर नही प्रतीत होती थी। बहुत कम बोलत थे। यदि बोलते थे तो धर्म अथवा अध्यात्म पर। प्रात काल रावी के तट पर प्रियतम कृष्ण के भाव में घटो भ्रमण करते रहते। तीर्थराम के निकटतम समीप-वर्त्ती मित्र ने उनकी इस भावावस्था के सम्बन्ध में सरदार पूर्णसिंह को बताया था। पूर्णसिंह ने अपनी अँग्रेजी पुस्तक 'दी स्टोरी आफ स्वामी राम में उनका उल्लेख इस प्रकार किया है—

"एक बार मैंने स्वामी राम (तब तीर्थराम) को रावी नदी के किनारे देखा। आकाश में रग बिरगे बादल छाये थे। स्वामी राम जोर-जोर से चिल्ला रहे थे— 'देखो, देखो वही तो मेरा कृष्ण है। ऐ काले रग वाले बादल मेरे ईश्वर, मेर कृष्ण का रग भी तेरे जैसा है। तू मुझे क्या पागल बना रहा है ? तूने क्या मेर कृष्ण को छिपा रखा है ? अरे कृष्ण तू कहाँ है ? ओ बादल, तू मुझे उसका पता क्यों नही देता ? तू तो आकाश में उड रहा है क्या तुझे मुझसे अधिक पता नही ? बता द, मुझे बता द, मेरा कृष्ण कहाँ छिपा है ? ओ हा तू तो और काला होता जाता है। ऐ बादल, क्या सचमुच तुझे मेरे कृष्ण का पता नही ? क्या तू भी उसके वियोग में काला पड गया है ? आ भगवान्, क्या मुझे तेर दर्शन न होंग ? दुनिया

मुझे काटने दौडती है और तू दिखायी नही देता ! बताओ कहाँ जाऊँ और किसे अपना दुखडा सुनाऊँ ! ओ कृष्ण, तेरे लिए ही तो मैंने अपने सगे-सम्बन्धी और इष्टमित्र छोडे, तेरे लिये ही मैंने झूठी प्रतिष्ठा और झूठी लज्जा छोडी, पर तू है कहाँ ?' बादला को फटता हुआ देखकर राम फिर रो पडे और चिल्लाने लगे— 'ऐ बादल तुम तो मेरे भाई हो, जाते हो तो जाओ, पर मेरे कृष्ण से कहना अवश्य कि आकर दखें तो सही कि उनके वियोग में राम की आँखा में कैसी झडी लगी है। देखो उनसे यह कहना मत भूलना कि—

> यदि लूटना हो तुझे वर्षा का मजा—
> तो आ, मेरी आँखों में बैठ
> यहाँ काले, भूरे और लाल, तरह-तरह के बादल
> सदा झडी लगाये रहते हैं।

आह मेरा जीवन ! कितना छोटा, और कितना बडा है तू ! मैं तो अधीर हो रहा हूँ। या तो मेरी प्यास बुझा दे या फिर मुझे मार डाल ! तू तो सूर्य को चमक देता है, चन्द्रमा को सौन्दर्य, फूला को सुन्दर रग और सुगन्ध, फिर मुझे दर्शन और ज्ञान देने में क्या कृपण बनता है ? इस प्रकार कृष्ण की रट लगाते हुये वे अन्त में बेसुध हो गये।'

फारसी का एक शेर, उनकी इस प्रेमावस्था पर अक्षरश चरितार्थ होता है—

> आशिकाने नौ निशानी ऐ पिसर,
> इन्तजारी, बेकरारी बेखबर,
> आहे-सर्द, मुखे-जद, चश्मे तर,
> कम खुरो, कम गुफ्तगू, ख्वाबे हराम।

अर्थात्, "ऐ पुत्र, सच्चे प्रेमियो के नौ लक्षण होते हैं—प्रियतम की प्रतीक्षा, व्यग्रता, बेखबरी, ठडी और लम्बी आहें पीला मुख अश्रुयुक्त आखें, अल्पाहार, कम वार्तालाप और अनिद्रा।"

रामकृष्ण परमहस का यह कथन था कि ईश्वर-प्राप्ति के निमित्त उसी प्रकार की छटपटाहट होनी चाहिये, जिस प्रकार की छटपटाहट पानी में डुबोये हुए व्यक्ति की उससे तुरन्त निकलने की होती है। तीर्थराम की दशा ठीक उसी प्रकार की थी।

पहले-पहल तो उनके कुछ अन्तरग मित्रो को ही उनकी इस प्रेमावस्था का ज्ञान था, किन्तु मीराँबाई की भांति उनका प्रेम भी जन-साधारण को ज्ञात होने लगा—'अब तो बात फैलि गई जानत सब कोई' की स्थिति आ गई। एक दिन

दे। यदि इसके लिए मेरे जीवन का मूल्य चाहता है, तो ले, मेरा समस्त जीवन तुझे अर्पित है।" ऐसा कहते हुए राम बेसुध हो गये, उनकी आँखो से अश्रुवर्षा होने लगी और उनकी कमीज अश्रुधार से तर-बतर हो गई। जब वे भाव-समाधि से बाह्यावस्था में आये, तो उन्होंने फन उठाये एक विषधर को अपनी ओर आते देखा। वे स्वय उनकी ओर लपक पडे, "ओ प्रभु आ! आ!! तू मेरे पास सपरूप में आ रहा है।" इतना कहते हुये वे बेसुध होकर गिर पडे। जब उन्होंने अपनी आँखें खोली, तो उन्हें ज्ञात हुआ कि साप वहाँ से चला गया है। राम फिर रोकर कहने लगे, "हे प्रभु मैं तेरा वह प्रज्वलित सौन्दय देखना चाहता हूँ, जिस पर गोपिकायें दीन-हीन पतगो की भाति टूटती थी।" इतना कहते-कहते पुन भाव समाधि में स्थित हो गये।

इनका एक मित्र सब कुछ देख रहा था। उसने तुरन्त ही उनके कमरे में प्रविष्ट होकर कहा, 'गोसाइ जी, तुम्हारी माता तुम्हे जन कर कृतकृत्य हो गई।' राम अब पूण चैतन्य हो गये थे। उन्होने चिल्ला कर कहा, "हाय, मेरा प्रियतम कहाँ चला गया? वह अभी अभी मेरे पास था! उसके बिना मेरा जीवन बेकार है।" मित्र ने कहा, "गोस्वामी, कृष्ण तो तुम्हारे भीतर ही है। उन्हें बाहर क्या खोज रहे हो?'

राम पागलो की भाँति चिल्ला उठे, "मुझ में!' इतना कहते-कहते अपनी कमीज फाड डाली और अपने नाखूनो से अपनी छाती नोचने लगे। छाती से रक्त बहने लगा। वे फिर चिल्लाकर पुकारने लगे, "मनमोहन, यदि तू मेरे हृदय में है, तो बचकर कहा जा सकता है? मैं तुझे अभी ढूढ निकालता हूँ।' उनके मित्र ने उनके हाथो को पकडकर कहा, "गोसाई जी इतने अधीर मत हो! कृष्ण तुमसे अवश्य मिलेंगे।' राम चिल्ला पडे, 'अरे प्यारे, क्या तू निकल आया? यदि तू तनिक भी देरी करता, तो मैं तुझे खीचकर बाहर निकाल लेता।" इतना कहते-कहते वे गभीर भाव-समाधि में स्थित हो गये और उनका बाह्य जगत विलीन हो गया।

इस प्रकार राम कृष्ण भक्ति में पूर्णत निमग्न हो गये। कृष्ण के बिना उनका जीवन असह्य और दारुण हो गया। सन १८९६ के अगस्त में उन्होने पडित दीनदयाल शर्मा के साथ वृन्दावन की यात्रा की। शर्मा जी सनातनधर्म के माने-जाने धर्मोपदेशक समझे जाते थे और साथ ही उत्कृष्ट वक्ता भी थे। वे प्राय मथुरा और वृन्दावन जाया करते थे। वृन्दावन कृष्ण भगवान् की लीलाभूमि है और मथुरा उनका कर्मक्षेत्र। वृजभूमि के वृक्ष, लता, पत्र, पुष्प, झरने, लीला-स्थल देखकर राम का कृष्ण प्रेम और अधिक उद्दीप्त हो गया। उनके प्रेम में गोपियां

एक पण्डित जी, किसी मन्दिर में गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' पर प्रवचन कर रहे थे। प्रवचन के समय कुछ ऐसा भावपूर्ण प्रसग आया कि उसे सुनकर तीथराम भाव विह्वल होकर फूट-फूट कर रोने लगे। कथावाचक पडित जी तथा श्रोताओ ने उन्हें चुप करने की लाख चेष्टा की, किन्तु वे चुप न हो सके उनकी भाव-वृत्ति इतनी तीव्र हो गई थी कि लोक मर्यादा का अपने आप परित्याग हो गया। अन्त में विवश होकर उस दिन पडित जी को प्रवचन स्थगित करना पडा।

कथा सुनते समय वे प्राय भाव विभोर होकर रोने लगते और इस प्रकार अपने उदगार अभिव्यक्त करते, कृष्ण मुझ पर कृपा करो। अपना मनोहर मुखडा ता दिखाओ क्या मै किष्किधा के बन्दरा से भी गया-गुजरा हूँ? क्या मैं भिल्लनी से भी नीच हू? यदि तुम मेरे पास नही आते, ता मेरा शरीर, मान मर्यादा ज्ञान विज्ञान सब कुछ व्यथ है। वे सब जलकर खाक हो जायें, पर तुम आओ।"

ग्रीष्मावकाश में एक दिन प्रात काल तीथराम रावी के तट पर भ्रमण करने गये। कृष्ण की स्मति में वे तन्मय थे। इतने में अकस्मात एक कोयल कूक उठी उसकी मधुर कूक से राम बाह्यावस्था में आ गये। वे उसे सम्बाधित करके कहने लगे, "अरी कोयल तूने इतना मधुर और आकपक स्वर कहा पाया? क्या तूने मेरे बासुरीवाले (कृष्ण) को देखा है? कदाचित तूने उसी से यह मधुर स्वर लिया है। तूने निश्चित मेरे प्यारे कृष्ण को देखा हैं। तू ही बता मुझे उस निर्मोही का दशन कब होगा?

'अरी आखा! तुम्हारा क्या होगा? यदि कृष्ण क दशन नही कर सकती, तो बन्द हो जाओ, सदा के लिए मुद जाओ। ओ हाथ! यदि तुमने भगवान के चरणकमला का स्पश नही किया तो फिर मेरे किस काम के? सूख जाओ, लुजपुज क्यो नही हो जाते, हे प्रभु, यदि जीवन के बलिदान से ही तुम्हारे दशन होते ह, तो ये प्राण भी तुम पर न्यौछावर ह।

इस घटना क एक महीने पश्चात वे फिर भाव विभोर होकर प्रलाप करने लगे, 'हे प्रभु, एक दिन और बीत गया, मैं तुझे न देख पाया! क्या मेरा जीवन तेरे बिना इसी भाति बरबाद होगा? मैंने अपनी समझ में तेरी किसी भी आज्ञा का उल्लङ्घन नही किया है फिर क्या अपने वियोग क दु ख में मुझे तडपा रहा है (मान ले मैं पापी ही हूँ किन्तु मैंने अपने को तेरे चरणो में समर्पित कर दिया है। मेरे समस्त अपराधो को क्षमा कर दे। अपने चेहरे की एक झलक ता दिखा

दे। यदि इसके लिए मेरे जीवन का मूल्य चाहता है, तो ले, मेरा समस्त जीवन तुझे अर्पित है।" ऐसा कहते हुए राम बेसुध हो गये, उनकी आँखों से अश्रुवर्षा होने लगी और उनकी कमीज अश्रुधार से तर-बतर हो गई। जब वे भाव-समाधि से बाह्यावस्था में आये, तो उन्होंने फन उठाये एक विषधर को अपनी ओर आते देखा। वे स्वयं उनकी ओर लपक पड़े, "ओ प्रभु, आ! आ!! तू मेरे पास सर्परूप में आ रहा है।" इतना कहते हुये वे बेसुध होकर गिर पड़े। जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं, तो उन्हें ज्ञात हुआ कि साँप वहाँ से चला गया है। राम फिर रोकर कहने लगे, "हे प्रभु मैं तेरा वह प्रज्वलित सौन्दर्य देखना चाहता हूँ, जिस पर गोपिकायें दीन-हीन पतंगों की भाँति टूटती थीं।" इतना कहते-कहते पुनः भाव समाधि में स्थित हो गये।

इनका एक मित्र सब कुछ देख रहा था। उसने तुरन्त ही उनके कमरे में प्रविष्ट होकर कहा, "गोसाईं जी, तुम्हारी माता तुम्हें जन कर कृतकृत्य हो गई।' राम अब पूर्ण चैतन्य हो गये थे। उन्होंने चिल्ला कर कहा, 'हाय, मेरा प्रियतम कहाँ चला गया? वह अभी अभी मेरे पास था! उसके बिना मेरा जीवन बेकार है।" मित्र ने कहा, "गोस्वामी, कृष्ण तो तुम्हारे भीतर ही है। उन्हें बाहर क्या खोज रहे हो?"

राम पागलों की भाँति चिल्ला उठे, 'मुझ में!" इतना कहते-कहते अपनी कमीज फाड़ डाली और अपने नाखूनों से अपनी छाती नोचने लगे। छाती से रक्त बहने लगा। वे फिर चिल्लाकर पुकारने लगे, 'मनमोहन, यदि तू मेरे हृदय में है, तो बचकर कहाँ जा सकता है? मैं तुझे अभी ढूंढ निकालता हूँ।' उनके मित्र ने उनके हाथों को पकड़कर कहा, 'गोसाईं जी इतने अधीर मत हो! कृष्ण तुमसे अवश्य मिलेंगे।' राम चिल्ला पड़े, "अरे प्यारे, क्या तू निकल आया? यदि तू तनिक भी देरी करता, तो मैं तुझे खींचकर बाहर निकाल लेता।" इतना कहते-कहते वे गंभीर भाव-समाधि में स्थित हो गये और उनका बाह्य जगत् विलीन हो गया।

इस प्रकार राम कृष्ण भक्ति में पूर्णतः निमग्न हो गये। कृष्ण के बिना उनका जीवन असह्य और दारुण हो गया। सन् १८९६ के अगस्त में उन्होंने पंडित दीनदयाल शर्मा के साथ वृन्दावन की यात्रा की। शर्मा जी सनातनधर्म के माने-जाने धर्मोपदेशक समझे जाते थे और साथ ही उत्कृष्ट वक्ता भी थे। वे प्रायः मथुरा और वृन्दावन जाया करते थे। वृन्दावन कृष्ण भगवान् की लीलाभूमि है और मथुरा उनका कर्मक्षेत्र। व्रजभूमि के वृक्ष, लता, पत्र, पुष्प, झरने, लीला-स्थल देखकर राम का कृष्ण-प्रेम और अधिक उद्दीप्त हो गया। उनके प्रेम में गोपियाँ

का प्रेम समाविष्ट हो गया। कृष्ण के प्रेम में तन्मय होकर सदैव किसी न किसी स्तुति का गान करते रहते थे। कृष्ण भगवान् की लीला से सम्बन्धित किसी भी स्थल को देखकर वे भाव-समाधि में निमग्न हो जाते थे। पडित दीनदयाल शर्मा अत्यन्त भाव प्रवण थे। उनका यह विचार हुआ कि तीर्थराम की इस पवित्र तीव्र भक्ति का रसास्वादन मथुरा के लोग भी करें। इसी भाव से उन्होंने वहाँ एक जन सभा का आयोजन किया और उसका प्रमुख वक्ता राम को बनाया। उनका व्याख्यान कृष्णभक्ति से ओतप्रोत था। उनके प्रत्येक शब्द, प्रत्येक वाक्य से कृष्णा मृत बरसने लगा। उस समय उन्हें सब कुछ कृष्णमय प्रतीत होने लगा। आनन्द मग्न होकर उनके नेत्रो से अविरल अश्रुवर्षा होने लगी। उन्होंने कृष्ण की भांति सब श्रोताओ को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। श्रोतागण कृष्ण प्रेम में एकदम डूब गये। राम के प्रेम का नशा उन पर भी छा गया। सबके नेत्रो से आसुओं की झड़ी लग गई। कहने का अभिप्राय यह कि राम के दिव्य प्रेम ने वहा के सभी लोगो को कृष्ण के प्रेम में रँग दिया।

अन्त में उनकी कृष्ण मिलन की उत्कट अभिलाषा पूर्ण हुई। इसका जिक्र राम ने अपने अनन्य शिष्य नारायण स्वामी से इस प्रकार किया है, "अहा, आज मैंने कृष्ण भगवान् का दर्शन पाया। मैं जब स्नान कर रहा था, तो वे मेरे पास आये। मैंने उनका प्रत्यक्ष दर्शन किया। परन्तु वे आकर, तुरन्त ही अन्तर्हित हो गये। मेरे हृदय का घाव जैसे का तैसा बना रहा। उनके लिये मेरी तड़पन और बढ गई।'

लाहौर की सनातन धर्म सभा के तत्वावधान में उनके कृष्ण भक्ति सम्बन्धी भाषणो की सामान्य जनता में बड़ी चर्चा रही। मीराबाई और सूरदास के भक्ति सम्बन्धी गीतो की भांति उन्होंने जनता का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। मन्त्रमुग्ध की भांति लोग उनका भाषण सुनते थे। और बड़ी से भीड में हिमालय की सी शान्ति रहती थी। भाषण करते समय भावातिरेक से तीर्थराम का गला भर जाता था और उनकी आखो में आसुओ की झडी लग जाती थी। एक बार भाषण देते समय राम ने अपना उद्गार इस भांति अभिव्यक्त किया—"हाय, लोग कहते है कि मेरा कृष्ण काला है। वैसा ही काला मेरा हृदय भी है। अरे प्यारे कृष्ण, फिर तू मुझसे क्यो नही मिलता?' इतना कहकर वे फफक-फफक कर रोने लगे और उस दिन उसी स्थल पर उनका भाषण समाप्त हो गया।

अमृतसर में राम के इसी प्रकार के एक भावपूर्ण भाषण से नारायण स्वामी अत्यधिक प्रभावित हुये। बात यह है कि राम का कार्यक्षेत्र लाहौर तक ही सीमित नही रह गया था। उत्तरोत्तर उनका विकास बढ रहा था। वे आये दिन अजमेर,

शिमला, स्यालकोट, पेशावर, जम्मू आदि स्थानो पर व्याख्यान देने जाया करते थे। अमृतसर का भाषण भक्ति-भावना से इतना ओतप्रोत था कि नारायण स्वामी उनकी ओर आकृष्ट हो गये। पहले वे (नारायण स्वामी) आर्य-समाजी विचार-धारा के प्रभाव में थे और अवतारी लीलाओ के प्रति उनकी न रचमात्र प्रतीति थी और न श्रद्धा। भाषण के अनन्तर नारायण स्वामी ने राम के सम्मुख अपने सशय प्रस्तुत किये। उन्होने भावपूर्ण तर्कों एव युक्तिया से उनकी समस्त शकाओ का समाधान कर दिया। अत में नारायण स्वामी ने राम के कमल-चरणा में शरण ले ली।

●

चतुर्थ अध्याय

तमेवैक जानथ ग्रात्मानम्

(१८९७ ९८)
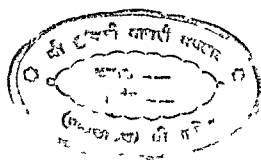
निष्काम कमयोग एव ग्रनन्य भक्ति की साधना साधक को ब्रह्मज्ञान के द्वार पर ला खडा कर दती है। ज्ञान के प्रचण्ड भास्कर क प्रकाशित होने पर ससार का प्रबल अविद्या अधकार तत्क्षण उसी प्रकार विलीन हो जाता है, जिस प्रकार रस्सी के वास्तविक बोध से सप-भावना। उस ज्ञान में सार विभेद, सारी ग्रनकतायें ग्रात्मरूप हो जाती है। ग्रात्म प्रकाश से जगत की सारी सत्ता प्रकाशित प्रतीत होती है। वह 'ग्रवाडमनसगोचर' है। वहाँ कर्णेन्द्रिय, त्वचा इन्द्रिय, नेत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय ग्रौर रसनेन्द्रिय, मन, वाणी, बुद्धि एव ग्रहकार की गति नही है। वहाँ पहुँच कर वे सब ग्रपनी सत्ता खो दते ह। तीथराम की ज्ञान प्राप्ति का ग्रवसर सहज भाव मे उपस्थित हो गया। उन्होने निष्काम कमयोग की प्रबल साधना स अपने सस्कार जनित समस्त मल का नाश कर दिया था। ग्रनन्य भक्ति में, कृष्णोपासना से अपने समस्त विक्षेपा की निवृत्ति कर दी थी। ग्रब ज्ञान के दिव्य प्रकाश से ग्रावरण मिटने की बारी थी। राम ग्रब भक्ति के प्राङ्गण से निकलकर ज्ञान की उच्च भूमि पर ग्रासीन होने वाले थे। ग्रब उन्हें एक ऐसे पथ प्रदशक की ग्रावश्यकता थी जो उन्हें भक्ति की तरगा से निकालकर, ग्रद्वैतज्ञान की भूमि पर बठा दे, उनकी तीव्र भावुकता को लोक-कल्याण ग्रौर जन-सेवा में परिणत कर दे। सयाग वश उन्ही दिनो द्वारका मठ के शकराचाय, जगदगुरु ग्रनन्तश्रीविभूषित माधवताथ जो महाराज पथ प्रदशक के रूप में राम के सम्मुख प्रकट हो गये। वे ग्रद्वत निष्ठ महापुरुष थे ग्रौर स्थान-स्थान पर ग्रद्वैत मत का प्रचार करते रहते थे।

ग्रद्वैत मत के प्रचार के निमित्त उन्होने लाहौर में पदापण किया। सनातन धम सभा का मन्त्री एव उस सस्था का प्रमुख कार्यकर्त्ता होने के कारण, शकराचाय को ठहराने, सेवा-परिचया का भार तीथराम के कधो पर डाला गया। जगदगुरु ने ग्रपनी दिव्य दष्टि से तीर्थराम के ग्रान्तरिक तेज को तुरन्त दख लिया। ग्रत वे इस भावी होनहार नवयुवक पर विशेष कृपादृष्टि रखने लगे। यद्यपि वे कार्यों

में अत्यधिक व्यस्त रहते थे, फिर भी अपने बहुमूल्य समय में स उन्होंने कुछ समय तीथराम के लिए निर्धारित कर दिया था। तीर्थराम को विशिष्ट एव तीव्र साधक समभकर शकराचार्य उनसे उपनिषद, ब्रह्मसूत्र एव अद्वैत सम्बन्धी अन्य प्रसिद्ध ग्रथा की व्याख्या करके अद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन करते थे। इसके अतिरिक्त राम की व्यक्तिगत शकाओ का समाधान भी करते थे। जब शकराचाय जी जम्मू की यात्रा पर जाने वाले थे, तो उन्होने राम को भी अपने साथ चलने को कहा। पर उस समय राम के ऊपर कालेज का भार बहुत अधिक था, अत उनका साथ न द सके। किन्तु शीघ्र ही उन्होने जगदगुरु की आज्ञा मान ली, हालाकि यह साथ केवल एक दिन के लिए था। उनके सम्पर्क से तीथराम की उत्कट कृष्णभक्ति ने आत्म-साक्षात्कार की दिशा में मोड लिया। जो राम कृष्ण मिलन के लिए तडपते थे, वही राम अब आत्मानुभव की प्राप्ति के लिये छटपटाने लगे। उनके तीव्रभाव में तन्मयता तो वही थी, पर लक्ष्य परिवर्तित हो गया था। अब वे इस साधना में तन्मय हो गय—'सारी बातो को छोडकर एकमात्र अपने वास्तविक स्वरूप—आत्मस्वरूप को जानो।' अब तव तीर्थराम छुट्टिया में प्राय वृन्दावन और मथुरा आदि तीथस्थाना की यात्रा करते थे, किन्तु अब उनका मन उत्तराखण्ड के एकान्त की ओर उन्मुख हुआ। उन्हें वृन्दावन अथवा मथुरा की भीडभाड जनरव से विरक्ति होने लगी और आत्मानुसन्धान के लिये एकान्त, निर्जन, कोलाहलशून्य स्थान प्रिय लगने लगा। एक पत्र उनकी इस मनोदशा को भलीभाँति अभिव्यक्त करता है—

"२१ फरवरी १८९७, जब अवकाश मिलता है, वेदान्त ग्रन्थ अंग्रेजी में देखता हूँ और छुट्टी के दिन चित्त एकाग्र करने का भी समय मिलता है। आनन्द केवल अपने स्वरूप में स्थित होने में है। और अधिकार भी समस्त जगत पर अपना ही है। व्यथ हम अपने आपको औरो (अफसरो इत्यादि) के अधीन मान लेते है।'

उनके चित्त की एकाग्रता और अभ्यास की तन्मयता इतनी अधिक बढ रही थी, कि अपने गुरु भक्त धन्नाराम को पत्र लिखते समय एकाध बार केवल शीर्षक डालकर आत्मानुसन्धान में तन्मय हो गये।' उनके एक पत्र से उनकी स्थिरता भली भाँति विदित हो जाती है—

"१२ मार्च १८९७, जिस समय आपने खत लिखा था, मैं भी उस समय ठीक उसी अवस्था में था, जिसमें आप थे। और आपकी ओर लिखने के लिये यह काड उठाया था। पर फिर सिरनामा (शीर्षक) लिखकर रख छोडा था। आपकी दया से अब भी अत्यन्त आनन्द है। बडे अच्छे भाग्य होने से चित्त स्थिर होना

मीखता है ।"[१]

भक्त धन्नाराम स्वय वेदान्ती थे । वे राम को वेदान्त के गहरे अभ्यास के लिय प्रेरणा देते रहते थे । तीथराम ने अपनी साधना के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

"२३ जन १८९७, वेदो का केवल पाठ मात्र सुनने से मेरे चित्त को समाधि की दशा प्राप्त हा जाया करती है और अत्यन्त आनन्द की दशा आच्छादित हो जाती है । यह अति उत्तम काग है ।"

सरदार पूर्णसिह ने अपनी पुस्तक 'दी स्टोरी आफ स्वामी राम' में उनकी इस अभ्यासावस्था का बडा सुन्दर चित्रण किया है—"ग्रीष्म ऋतु में जब राम लाहौर की जलती हुई सडक के फर्श पर घूमकर वापस आते थे, तो वे जो उनके चरणो का स्पश करते थे, उन्हें बिल्कुल ठडा पाते थे । 'मैं कभी गरम लाहौर में नही घुमता, मैं तो सदा गगा की पीयूष धारा में विचरता हूँ जिसकी रजत लहरिया मेरे पैरो को स्पर्श करती है और मुझे आनन्द से सराबोर कर देती हैं ।' ऐसा कहकर वे प्रश्न कर्त्ता से प्रश्न पूछते थे—'क्या गगा की धार सवत्र प्रवाहित नही हो रही ह ?' सदा भाव निमग्न, भोजन-वस्त्र से निर्द्वन्द्व, निमल अश्रुप्रवाहयुक्त स्वामी जी लाहौर में रहते हुए भी सदा नक्षत्रा के पालने में भूला करते थे और नील वण आकाश में उन्हे वही पुरातन कदम्ब वृक्ष दिखलायी पडता था जिसकी शाखाओं पर बठकर द्वापर में श्रीकृष्ण ने वशी बजायी' थी ।"

राम 'वाटर वक्स' के समीप रहते थे । वह स्थान बहुत व्यस्त और कोलाहल

---

१ भगत धन्नाराम का उन दिनो यह अभ्यास था कि जिस किसी से कोई काम कराना हो, वह व्यक्ति चाहे कितनी ही दूरी पर क्यो न हो, अपनी आध्या त्मिक शक्ति से वे उससे वह काम करा लिया करते थे । इस बार तीथरामजी से उन्होंने वही विषय लिखवाना चाहा जो आप स्वय तीर्थराम को लिखकर स्वय भेज रहे थे । इस पत्र में तीर्थराम जी ने स्वय स्वीकार भी किया है कि उनके भीतर भी उसी विषय पर लिखने की प्रेरणा हुई है । यह दो चित्तो की अभेदता का प्रत्यक्ष प्रमाण है । इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि दो मनुष्य हजारो मीलों की दूरी पर रहते हुये भी अपने चित्त की अभेदता द्वारा बिना बाह्य साधनो के परस्पर एक दूसरे के विचार जान सकते है । यह एक प्रकार का मौन सम्भापण है । यह एक प्रकार की छोटी-मोटी सिद्धि है । इससे आत्मानुभव से कोई सम्बन्ध नही है । जीवन्मुक्ति के लिये ऐसी सिद्धियाँ कभी-कभी महान् बाधक हो जाता है । अत सच्चे साधकों को इस प्रकार की सिद्धियों के चक्कर में नही पडना चाहिये ।

पूण था। अब उनकी साधना के लिये शान्त एकान्त की आवश्यकता थी। उन्होंने 'हरिचरण की पौडियाँ'[1] नामक गली में एक अच्छा-सा मकान किराये पर ले लिया। पहली अगस्त, १८९७ को वे उस मकान में चले गये। उसी समय भक्त धन्नाराम को यह पत्र लिखा—"हम इस नये मकान में आ गये हैं। यह हरिचरण की पौडियो में है। हरिचरणो (तीर्थ) में श्री गगा जी का निवास है और तीथ (राम) को भी हरिचरणो में रहना उचित है। यहाँ जब से आया हूँ, हरिचरणा में ही ध्यान है। और अपने स्वरूप के श्रीगगाजल में आपकी दया से स्नान कर रहा हूँ।"

अब राम ने अद्वैत वेदान्त के अध्ययन और साधना में अपने को पूणतया निमग्न कर दिया। उन्होंने अपनी साधना की प्रवृत्ति इस प्रकार बताई है—

"५ अगस्त, १८९७ आजकल तो वेदान्त विचार, भजन और एकान्त-सेवन ही को कुछ समय देता हूँ। इसमें वह आनन्द है कि छोडने को जी नही चाहता।"

"७ अगस्त, १८९७ यदि व्यवहार-काल में चलते फिरते और सब काम करते हमारी वृत्ति ब्रह्माकार रहे और चित्त अर्शे आला (सबसे ऊँचे आकाश अर्थात उच्च अवस्था) से कभी न उतरे, तो धन्य है हमारा जीवन, नही तो मनुष्यदह निष्फल खा दिया।"

"९ अगस्त, १८९७ वास्तव में किंचित-मात्र अभ्यास करने से शास्त्रो के बिल्कुल अनुमार फल प्राप्त होते हैं। ससार में यदि कोई वस्तु सत्य है तो वेदान्त शास्त्र है।"

"वेदान्त-शास्त्र के सम्बन्ध में अँग्रेजी में बहुत से ग्रथ पढता हूँ। मगर पढने में वह आनन्द नही आता, जो उनको एकान्त में बैठकर विचारने और अपने भीतर धारण करने में आता है। जो कुछ इस प्रकार आपकी दया से प्राप्त होता है, वह बहुधा जिज्ञासुओ का अँग्रेजी में उपदेश भी कर देता हूँ। जी चाहता है कि इसी आनन्द में छुट्टियाँ व्यतीत करूँ।"

इन दिनो तीथराम पर अद्वैत भाव का नशा हर क्षण सवार रहता था। वे अद्वैत में इतने में तन्मय रहते थे कि यदि कोई व्यक्ति उनसे यह पूछता, "आपकी घडी में क्या बजा है ?" तो ध्यानपूवक घडी देखकर, [समय चाहे जो हो, यही उत्तर देते, "प्यारे ठीक एक है।' इतना कहकर प्रश्नकर्त्ता को अपनी घडी दिखा देते। कई लोगा ने राम से यह प्रश्न विभिन्न समयो में किया था और यही उत्तर

[1]—लाहौर नगर में बच्छोवाली बाजार के समीप एक गली है, जिसका नाम 'हरिचरण की पौडियाँ' है।

पाया था। एक दिन कुछ व्यक्तियो ने उनसे प्रश्न किया, "गोस्वामी जी, बडी विचित्र बात है। हम सब चाहे प्रात काल, दोपहर, शाम अथवा आधी रात्रि को जब पूछते ह कि क्या बजा है, तब आप सदैव एक ही बजा बताते हैं।' उनकी इस जिज्ञासा से राम अट्टहास करने लगते और यह उत्तर देते, "अरे प्यारो, राम की घडी ही ऐसी है। उसमें सदैव एक ही रहता है दूसरे के लिये कोई गुजाइश ही नही रहती।"

अध्यापन-काय से उन्हें अपने स्वाध्याय में किसी प्रकार की बाधा नही पहुँचती थी। अध्यापन-काय का समय थोडा था, अत उन्हें स्वाध्याय के लिये पर्याप्त समय मिल जाता था। उनके एक पत्र से उनकी स्वाध्याय-वृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है—

"८ सितम्बर, १८९७ मैंने लाहौर में रहकर बीस से अधिक पुस्तकें अंग्रेजी में वदान्त की देखी और विचारपूव पढी ह। इन पुस्तका में उपनिषदो और अय प्रामाणिक ग्रथो के भाग प्राय दिये हुए थे। ग्रथो के सत्सग से धारणा बहुत बढती है और वास्तविक आनन्द धारणा ही में है। स्फुरणा और सकल्प रोकने से सकल्प सिद्धि होती है, जैसे बीज पृथिवी में दाबने (गाडने) से उगता है। आपका इस विषय में बहुत अनुभव है। माया और जगत से चित्त हट जाने (उपराम हाने) से जगत् सेवक बन जाता है, जसे छाया की ओर पीठ करके सूय की ओर जाने से छाया पीछे-पीछे जाती है।"

तीथराम का वेदान्त विषयक अभ्यास और धारणावृत्ति उत्तरोत्तर बढ रही थी। एक पत्र से उनकी मनोदशा का ज्ञान होता है—

'१८ अक्टूबर, १८९७ आजकल इस पर अभ्यास है—'तमेवक जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैव सेतु ।

(मुण्डकोपनिषद)

अथात, 'एकमात्र परमात्मा को जानो, इसके सिवा और कोई वार्ता कदापि मत करा, सुना। यही अमृत का सेतु है।"

इस अभ्यास और धारणा के फलस्वरूप उनकी वृत्ति नितान्त अन्तर्मुखी हो गई। परिवार एव अन्य सम्बन्धियो के प्रति उनका वराग्य हो गया। जिस प्रकार समय आने पर सर्प के शरीर से केंचुली अपने आप उतर जाती है अथवा जसे पक जाने पर फल अपने आप टहनी को छोड देता है ठीक उसी प्रकार तीथराम के नाते रिश्ते स्वत टूटने लगे। इस सम्बन्ध में उन्होने अपने पिताजी को जो पत्र लिखा था, वह उल्लेखनीय है—

"२५ अक्टूबर, १८९७

मेरे परम पूज्य पिताजी महाराज !

आपकी कृपा मुझ पर नित्य रहे। चरण-वन्दना। आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ, अत्यन्त आनन्द हुआ। आपके पुत्र तीथराम का शरीर तो अब बिक गया। बिक गया राम के आगे। उसका अपना नही रहा। आज दीपमाला (दीवाली) को अपना तन हार दिया और महाराज को जीत लिया। आपको धन्यवाद हो। अब जिस वस्तु की आवश्यकता हो, मेरे मालिक (स्वामी) से मागो। तत्काल स्वय देंगे, या मुझसे भिजवा देंगे। पर एक वार निश्चय के साथ उनसे मागो तो सही। उन्नीस-बीस (१९-२०) दिन से मेरे सारे काम बडी निपुणता से अब आप करने लग पडे है, आपने क्या न करेंगे? घबराना ठीक नही। जैसी उसकी आज्ञा होगी, वैसा वर्ताव में आता जायगा। महाराज ही हम गुसाइयो के धन है। अपने निज के सच्चे और अमूल्य धन को त्यागकर ससार की झूठी कौडियो के पीछे पडना हमको उचित नही। और उन कौडिया के न मिलने पर शोक करना ता बहुत ही वुरा है। अपने वास्तविक धन और सम्पत्ति का आनन्द एक वार ले तो देखो।"[1]

इसी प्रकार एक और पत्र उनकी मनोदशा पर प्रकाश डालता है—

"८ नवम्बर, १८९७, यद्यपि मैंने इतने दिन पत्र नही लिखा, परन्तु आपके स्वरूप में स्थित रहने के अतिरिक्त और कोई काम भी नही किया। अब अपना आप हो गये, तो पत्र किसको लिखें?"

तीथराम का अपने सद्गुरु भक्त धन्नाराम में पूर्ण विलीनीकरण हो गया। गुरु और शिष्य ज्ञान-जगत् में एक हो गये। इस सम्बन्ध में कबीर का एक दोहा स्मरण आता है—

"पिय सन कहूँ संदेसड़ा, जो कहूँ होय विदेस।
तन में, मन में बैन में, तासों कहा सदेस॥"

१८९७ के नवम्बर महीने में स्वामी विवेकानन्द जी ने अपनी अमेरिकन शिष्य मण्डली सहित लाहौर पदार्पण किया। सनातन धर्म-सभा की ओर से तीयराम के ही कन्धो पर उनके आतिथ्य-सत्कार आदि का भार डाला गया।

---

१ यह पत्र गोस्वामी तीर्थराम ने अपने पिताजी को भेजा था। पर पिताजी ने इस पत्र पर निम्नलिखित टिप्पणी लिखकर भगत धन्नाराम के पास भेज दिया— "भगत जी, आपके सगत से आज टब्बर नू (सारे कुटुम्ब को) जवाब मिला है। हमने आपको बुद्धिमान् समझकर इसको आपको सिपुर्द किया था। पर यह परिणाम निकला।' यह पत्र भी, भगत धन्नाराम के पत्रा के साथ मिला था।

शकराचाय (द्वारकापीठाधीश्वर) का आतिथ्य वे पहले कर चुके थे। स्वामी विवेकानन्द जी अपने शिष्या सहित राजा ध्यानसिंह की हवेली में ठहराये गये। लाहौर पहुँचकर स्वामी विवेकानन्द जी ने पजाब-निवासियो में एक नयी जान सी फूक दी। उनका दिव्य धाराप्रवाह भाषण, उनका महान त्याग, उनकी अलौकिक शक्ति, उनका चुम्बकीय व्यक्तित्व, उनकी अकाटय युक्ति और तकशक्ति, उनका प्रत्युत्पन्न मति आदि सब ने मिलकर श्रोताओ को मत्रमुग्ध कर दिया—

सरदार पूर्णसिंह ने स्वामी विवेकानन्द के लाहौर के भाषण के दश्य का अपनी पुस्तक 'स्वामी राम-जीवन कथा' में बडा हृदयग्राही चित्रण किया है—

"स्वामी जी ध्यानसिंह की हवेली में ठहरे हुये थे। और मुझे आज की इस घडी में भी वह दृश्य स्पष्ट रूप से दिखायी देता है जब स्वामी जी का भाषण सुनने उस दिन हवेली के विशाल भवन में लाहौर का साफाधारी कितना विशाल जनसमूह एकत्र था। उस समय मैं निरा बालक ही था। पजाब विश्वविद्यालय की इण्टर परीक्षा के लिए कालेज में पढ रहा था। किन्तु उस दश्य की जो अमिट छाप मेरे हृदय-पट पर पडी, वह किसी प्रकार धोयी नही जा सकती। हवेली ठसाठस भर गई थी और बहुत से लोग आगन में जमा हो गये थे। स्वामी जी क दशन के लिए उत्सुक आगन्तुक कधे से कधा भिडाकर भवन में प्रवेश करन की चेष्टा कर रहे थे। स्वामी जी ने ऐसी आतुर और प्रबन्ध की सीमा में न आने वाली भीड देखी तो बोले 'मैं खुले वायुमण्डल में भाषण दूँगा। हवेली का घेरा, आगन बहुत बडा है और उसके बीच मदिराकार एक ऊँचा प्लेटफाम भी है। इतना कहते हुये स्वामी जी उस चबूतरे पर जा विराजमान हुये। उस समय उनका अलौकिक छवि, उत्तम स्वास्थ्य म दमकता हुआ विशालकाय शरीर सन्यासी की काषाय वेशभूषा प्राचीन ऋषियो की स्मृति दिलानेवाली मुखमुद्रा बडी-बडी आकर्षक आँखें, जिनका जादू सारे वातावरण में व्याप्त हो रहा था। अपने सिर पर नारगी रग का साफा पजाबी ढग से बाध रखा था, शरीर पर गेरुआ रगीन दुपट्टा लहरा रहा था। थोडी देर में जब वेदान्त-केशरी स्वामी जी ने गरजना प्रारम्भ किया तो घण्टो दहाडते रहे। श्रोतागण मत्रमुग्ध से उनका भाषण सुनते रहे। सब वे सब मानसिक क्षितिज की आनन्ददायक ऊँचाइयो पर विचरण करने लगे।[1]'

लाहौर में तीर्थराम ने ही स्वामी जी के भाषण का प्रबन्ध किया था। उन दिनो लाहौर में प्रोफेसर बोस का सरकस भी खेल दिखाने आया हुआ था। स्वामी

१ स्वामीराम-जीवन कथा, लेखक सरदार पूर्णसिंह, द्वितीय सस्करण, पृष्ठ १२२ १२३।

विवेकानन्द के 'भक्ति' विषयक व्याख्यान का आयोजन बोस मरकस के पण्डाल में आयाजित किया गया था। तीथराम की सम्मति में स्वामी विवेकानन्द की वास्तविक प्रतिभा का पूर्ण विकास उनके वेदान्त सम्बन्धी व्याख्यानो में प्रकट होता है, क्योकि वही उनका मनचाहा विषय है। तीथराम स्वामी विवेकानन्द के निकटतम सम्पक में आये और उनके आदर्शों से अत्यधिक प्रभावित हुये। स्वामी विवेकान द आधुनिक युग के प्रथम मन्त्रद्रष्टा ऋषि थे, जिन्होने शकराचाय के अद्वैत वेदान्त दशन को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। उन्होने अद्वैत सिद्धान्त को भक्ति, कम, देश सेवा, मानव मात्र की सेवा आदि अनेक पहलुओ से समझने-समझाने का प्रयास किया था। स्वामी विवेकानन्द से साक्षात्कार, उनके सत्सग आदि ने तीथराम की त्याग और सन्यास भावना को और भी उदीप्त कर दिया। स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों ने तीर्थराम की मक, आत्मानुभूति को वाणी प्रदान की। किन्तु आगे चलकर तीथराम ने वेदान्त के उस पहलू की पुन नये सिरे से एव और भी व्यापक ढग मे व्याख्या की, जिसका निर्देश स्वामी विवेकानन्द पहले कर चुके थे।

स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ में असाधारण बौद्धिक समानता थी फिर भी दोनों के अन्तर को सरदार पूर्णसिह ने बडी कुशलता से आँकने का प्रयास किया है, "स्वामी विवेकानन्द उनसे (स्वामी रामतीथ से) बढकर दाशनिक, बढकर वक्ता और बढकर नरशादूल सन्यासी थे और स्वामी राम उनसे बढकर थे अपने गम्भीर समाधिजन्य परमानन्द में, जो एक अटल आधारशिला की भाति उनके प्रफुल्ल, मधुर और काव्यशील सचरण में, उनके सहानुभूति सदय व्यवहार में, अपनी परिस्थिति के साथ पूण शान्तिमय मस्ती में जो सदा उनका पल्ला पकडे रहती थी।" सरदार पूर्णसिह की पैनी दृष्टि ने भले ही दोनो दिग्गज सन्यासियो में अन्तर ढूढ निकाला हो, किन्तु दोना ही सन्यासी अपने में पूण ह। दोनो का विशिष्ट व्यक्तित्व अपने में निराला है। एक को दूसरे से घट अथवा बढ कर बताना, उनके व्यक्तित्व के साथ अन्याय करना है। स्वामी विवेकानन्द, विवेकानन्द थे और स्वामी रामतीर्थ, रामतीर्थ। दोनो के पृथक पृथक आचरण और व्यवहार थे और वे दोनो के लिये शोभनीय रहे। हाँ, यह बात अवश्य है कि देशभक्ति, राष्ट्रहित, मानव-सेवा की त्रिवेणी दोना के हृदयो में समान रूप से प्रवाहित होती रही। इसके अतिरिक्त सबसे विशेष बात यह है कि दोनो विभूतियो में प्रचण्ड ज्ञानाग्नि अहर्निश अखण्ड रूप से प्रज्वलित रहती थी। दोना ही आत्म स्वरूप में पूणरूप से स्थित थे।

इस बात को अस्वीकार नही किया जा सकता कि स्वामी विवेकानन्द के

अलौकिक व्यक्तित्व से तीर्थराम अत्यधिक प्रभावित हुये । उस समय के एक पत्र से इस प्रभाव का सहज में अनुमान लगाया जा सकता है—

“१३ नवम्बर, १८९७ स्वामी विवेकानन्द के लेक्चर सुने । अत्यन्त योग्य है । उन दिनो अवकाश बहुत कम मिला । आपका कृपापत्र भी कोई नही प्राप्त हुआ । आर्य समाज को बहुत जवाल (क्षति) पहुँचा है ।”

इन्ही दिनो धनाराम ने तीर्थराम पर यह आरोप किया कि तुम मेरी शारीरिक आवश्यकताओ के प्रति उदासीन होते जा रहे हो, इस प्रकार अपनी की गयी प्रतिज्ञा को तोड रहे हो । तीर्थराम में इस समय अलौकिक निर्भयता और निश्शंकता का जागरण हो चुका था । वे अब इस प्रकार के व्यवहारो से ऊपर उठने लगे थे । उनकी भावी संन्यास-वृत्ति उनके व्यवहारो को क्रमश क्षीण कर देने पर तुल चुकी थी । अत उन्होने भगत जी के पत्र का जो उत्तर दिया, उनमे उनका निश्शंक वृत्ति का परिचय प्राप्त होता है—

‘२१ नवम्बर १८९७ महाराज जी, सचाई से इतर और कोई चीज आपकी सेवा में बनावट बनाकर कभी नही लिखी जाती । आपकी जरूरतें मेरी अपनी जरूरतें हैं । मगर अन्य जरूरतों का अब यही हाल है कि किसी काम के लिए तीव्र संकल्प नही फुरता । जैसा हो जाय आनन्द रहता है । खुदमुख्तारी के सम्बन्ध में यह अर्ज (प्रार्थना) है कि कर्ता बनकर बहुत कम चेष्टा की जाती है । और यह हालत आप ही की कृपा की बदौलत है । यह आपका अपना काम है । इसे ख्वाह अच्छा समझो, ख्वाह बुरा । जैसे गुजरांवाला शरीर आपका है, वैसे ही लाहौरवाला । दोनो से काम लेना या न लेना आपके इख्तियार (अधिकार) में है । जब रुपया दिलवाओगे, किताब को जल्दी सेवा में भेज दूँगा ।”

उपर्युक्त पत्र से उनके वेदान्त विषयक अभ्यास की तीव्रता का बोध होता है । अद्वैतवाद में अपने को ‘अकर्ता’ एव ‘अभोक्ता’ मानने वाली साधना पर बहुत बल दिया गया है । योगवाशिष्ठ, अष्टावक्र गीता अवधूत गीता ऐसे अद्वैत ग्रंथो में ‘अकर्तापन’ और ‘अभोक्तापन’ की महिमा की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की गयी है । तीर्थराम जी ने इन ग्रंथो का मननपूर्वक अध्ययन किया था । अत उनमें इस प्रकार की भावना का जाग्रत होना अस्वाभाविक नही है । उनका प्रारब्ध उन्हें सर्वत्याग की ओर बलात खीचे जा रहा था । उस समय के लिखे गये पत्र आत्म चरित्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । ये पत्र उनकी मानसिक वृत्ति की ठीक झाँकी हमारे सामने प्रस्तुत कर देते है । आप राम की गाथा राम के ही शब्दो में पढ़ें—

"६ दिसम्बर, १८९७ आपका कृपापत्र मिला, अत्यन्त आनन्द हुआ। आपकी अत्यन्त दया है। बहुत आनन्द है।

"मैं तो आप कुछ नही करता। उचित समय पर सब काम अपने आप हो रहे हैं। किसी दिन मस्ती और ससार की ओर से बेहोशी बिना बुलाये आ जाये, तो मेरा क्या अपराध ? बिना किये काम हो रहे हैं। सूय और शेषनाग तो हमारे दास हैं। हमारा काम तो शेषनाग की शय्या पर आराम करना है। सूय को हम प्रकाशित करते हैं, और आज्ञाधीन बनकर वह चक्कर लगाता है। स्वरूप तो सबका एक ही है, पर स्वरूप में स्थिति की जरूरत है और तुरीयावस्था तथा समाधिकाल की महिमा कहा नही आई ? श्री रामचन्द्र जी तथा श्रीकृष्णचन्द्र जी परमात्मा आप ऐसे महात्माओ के चरणो पर सिर रखते रहे हैं। और याज्ञवल्क्य तथा अष्टावक्र की पदवी राजा जनक से बढकर है।

"राजा जनक और कृष्ण परमात्मा तो बी० ए० श्रेणी के है और याज्ञवल्क्य तथा अष्टावक्र एम० ए० श्रेणी के। मान यद्यपि बी० ए० और एम० ए० का एक समान होता है, मगर सच्चाई को छुपाना ठीक नही। जो बडा है, उसी को बडा कहना उचित है।

"दास के विषय में अभी कुछ काल तक कोई चिन्ता तथा भय नही करना चाहिये। मलाईवाला दूध और वह भी मिसरी से मिला हुआ तो एक ओर पीने को मिलते ह, और बाजरा वा ज्वार की रोटी दूसरी ओर। मैं यह नही कहता कि बाजरा तथा ज्वार की रोटी बुरी है, क्योकि वह भी तो मैं ही हूँ, मगर मेरे उदर के अनुसार नही।' मेरे उदर में तो दूध मिसरी ही पचते हैं।

'जब राजाधिराज के काम के बिना हाथ-पाव हिलाये हो रहे हूँ, तब वह मजदूरा के साथ मिलकर टाकरी क्यो ढोये ?

"बटोही (बटलोही) में गरम जलाने वाले पानी में उबलने से बचने के लिए देगची (बटलोही) से बाहर जा पडना उचित है, देगची के साथ लगे रहना उचित नही।

"श्री शकराचाय जी ने गीता भाष्य में अत्यन्त स्पष्ट रीति से सिद्ध कर दिखाया है कि अन्त में कम का नितान्त त्याग हो जाना चाहिये, यद्यपि आप (शकराचाय जी) उन दिनो थोडा बहुत कर्म करते ही थे। दास के लिए ऐसे दिन आने में अभी देर है।

" 'काश आना कि ऐबे-मन जुस्तन्द।
क्यत ऐ दिलस्तां बदीदद॥'

'अर्थात्, ईश्वर करे जिन्होंने मेरे पाप (अपराध) देखे हैं, ऐ प्यारे वह तेरा मुख देखें।

'इ खिर्के कि मन दारम, दर रहने-शराब औला।
म ईं दफतरे बेमानी गर्क़े-मये—नाब औला।'

'अर्थात, यह कथा जो मैं पहनता हूँ निजानन्द रूपी मदिरा के बदले गिरवी हैं, और ये निरर्थक पुस्तकें उस ज्ञान रूपी वास्तविक मदिरा में डूबी हैं।'

"अन्त के पद का तात्पर्य यह है कि 'ये किताबें, पुस्तकें, दफ्तर इत्यादि नितान्त व्यर्थ, निष्फल, निरर्थक और निकम्मे हैं। यदि उनके पढ़ने से यह परिणाम नहीं निकलता कि हम उनको शुद्ध मस्ती की शराब में ऐसा डाल दें कि वहाँ नितान्त गल-सड़कर क्षीण हो जायें और उनका नाम तथा चिह्नमात्र शेष न रहे, बल्कि शराब रूप हो जायें। शराब से अभिप्राय अद्वैतानुभव की मस्ती का नशा है। ये वस्त्र (अर्थात गृहस्थ) शव का कफन है, यदि अन्त में इनको बेचकर (छोड़कर) अनुभव रूपी मदिरा के रंग में हम नहीं रँग जाते। इति अलम, विशेष आनन्द।[1]"

"१२ दिसम्बर, १८९७ पहला कार्ड लिख रहा था कि आपके तीन कार्ड और मिले। बहुत ही आनन्द हुआ। आपने जो लिखा है, बिल्कुल ठीक और उचित लिखा है। जो आपकी इच्छा है वही होगी। करने-कराने वाले सब आप हैं। वैराग्य की उमंगें जो यहाँ आती हैं, आपकी भेजी हुई हैं, और आप ही रोकते हो? अजब तमाशा (अद्भुत लीला) है। वाह! क्या खूब खेल है। बलिहार!

"सबके लिये सन्यास ठीक नहीं, और सन्यास का संसार में न होना भी दुरुस्त है। हर रंग का मसाला जगत् में बनाया गया है। किसी को हँसाना, किसी को रुलाना और आप अलग खड़े होकर तमाशा देखना, यह हमारा काम है, जिस प्रकार आतशबाज अनार के मसालह को गरम-गरम आग में जलाता है और उस बिचारे मसालह से शूँ-शू रूपी हाय-हाय का शोर (शब्द) कराता है, पर आप सदा प्रसन्न रहता है, साक्षी रूप बनकर। कुछ फल पककर भी वृक्ष के साथ लगे रहते हैं, पर कुछ फल पककर गिर पड़ते हैं।'

"१६ दिसम्बर, १८९७ परसों मुझे ताप (ज्वर) हो गया था, पर ज्वर भी अपना आप अनुभव होने के कारण अत्यन्त आनन्ददायक हुआ। रेशा (जुकाम) भी अत्यन्त जोर करके आया था। पर बहुत जल्दी अपने आप ही हारकर विदा हो गया है।

१ इस सम्पूर्ण पत्र का अभिप्राय है कि गृहस्थावस्था का अन्त में त्यागना ही उचित है, उसमें सदैव फँसे रहना उचित नहीं।

"आजकल के पद्यों में से कुछ पद्य निम्नलिखित है, इस प्रश्न के उत्तर में कि 'आपका क्या हाल है, प्रसन्न हो ?

'चे पुरसी हाले-मन आनम कि जानम जान आरामस्त ।
व तन खुद गोयदत मश्गूजे-रहो बदसो हिरमानस्त ॥'

भावार्थ, मेरे अपना आप, तुम मुझसे मेरी सेहत के विषय में क्या' पूछते हो, क्या तुमको पता नही कि मेरी आत्मा तो आनन्द की रूह व जान (प्राण) है, पर शरीर बेचारा सर्वदा बदलता रहता है और प्रतिक्षण मृत्यु के समीप जा रहा है, और कदापि सुखी नही रह सकता ।

"आत्मा के विषय में तुम्हारा प्रश्न नही बन सकता, क्योकि वह नित्य ही आनन्दमय है। और ऐसा ही शरीर के विषय में भी तुम्हारा पूछना योग्य नही हो सकता, क्योकि वह तो सदा ही दुखी है । तो फिर दशा किसकी पूछते हो ?

"ससार क्या है ? इसके उत्तर में दृष्टान्त—

'बजे थे चार मुस्तकबिला जमा के ।
अकीमा के पिसर हरसू दवा थे ॥
अजब मल-मल सुराबों में नहाये ।
जबीं पर रोज के तारे नजर लगाये ॥
व फिर सबने की उन्का पर सवारी ।
ससी के सींग से की तीर बारी ॥
अरे ओ आस्मा ! यह नील दे जा ।
हमारी कुमक को आता है हव्वा ॥'

'भावार्थ, भविष्यकाल के चार बजे थे। वन्ध्या (बाझ) स्त्री के बालक सर्व ओर दौड रहे थे । मृगतृष्णा के जल में विचित्र रीति से मल-मल कर स्नान किया था। भाल पर दिन के समय के तारे लगाये, और फिर हुमा पक्षी (जो कदापि आकाश से पृथिवी पर उतरता नही है) की पीठ पर हमने सवारी की । और शशक (खरगोश) के सीग से तीर चलाये । फिर आकाश को कहा कि ऐ आकाश ! तू नीला रग दे जा, नही तो तेरे मारने के लिये हमारी सहायता को हव्वा आता है ।' तात्पय यह कि जैसे यह सब पूर्वोक्त कथन असभव, मिथ्या और कहने मात्र है, ऐसे ही यह ससार मिथ्या और कहने मात्र है । '

२४ दिसम्बर, १८९७ के पत्र में उन्होने अपने गुरु के साथ पूर्ण अभेदता और एकत्व स्थापित कर लिया था । वे ज्ञान की उस उच्च भूमि पर आरूढ हो गये थे, कि उन्हें अपने नाम और रूप की एकदम विस्मृति हो गई थी। शुद्ध

सच्चिदानन्द घन में एक अद्वैत, चेतन, आनन्द सत्ता के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार की द्वैत भावना की गम नहीं है। पत्र इस प्रकार है—

"२४ दिसम्बर, १८९७ रात के आठ बजने वाले हैं। व्यायाम कर चुका हूँ। अंतर बिल्कुल साफ है, और अत्यन्त आनन्द की अवस्था है। उस समय अत्यन्त प्रेम के साथ आप याद आते हैं। आप धन्य हैं, जिनकी कृपा से आनन्द के समुद्र में स्नान होते हैं। आप पर बलिहार! सम्पूर्ण एकता (अभेदता) की दशा है। आपसे इस समय एक बाल मात्र भी किसी बात से किंचित भेद नहीं—

'मन तो शुदम, तो मन शदी, मन तन शुदम तो जा शुदी।
ता कस न गोयद बाद अर्जी, मन दीगरम तो दीगरी॥'

"भावार्थ,

'मैं तू हुआ, तू मैं हुआ, मैं देह हुआ, तू प्राण हुआ।
अब कोई यह न कह सके, मैं और हूँ, तू और है॥'

सेवक, आप स्वयं।"

में करोडा ग्रश्वमेध यज्ञा के फल नगण्य हैं। ग्रत प्रवचन ग्रादि से उनकी वृत्ति उपराम होती गई। २ माच, १८९८ के पत्र में उन्होंने भक्त धनाराम को सूचित किया कि 'ग्रायन्दा लैक्चर ग्रादि देने का इरादा मौकूफ किया।' उन्होने इतनी प्रबल साधना कर ली थी कि उनकी उपस्थिति मात्र से 'ग्रद्वैतामृतवर्षिणी के सदस्यगण समाधिस्थ हो जाते थे। तीयराम की ग्राध्यात्मिक शक्ति की सूक्ष्म विद्युत-तरगें साधको को ग्रानन्द में स्थित कर दती थी। ग्रन्तमुख महात्मा में इस प्रकार की शक्ति का होना एकदम स्वाभाविक है।

तीथराम ने मन के निराध करने में इतनी दक्षता प्राप्त कर ली थी, कि बाह्य जगत् का भीषण से भीषण कोलाहल भी उनके ग्रन्तरमन का स्पश तक नही कर सक्ता था। हिमालय के परम एकान्त ग्रौर दिल्ली ग्रादि नगरा के महान कालाहल के मध्य, जिसके मन ग्रौर चित्त की एकाग्रता साम्यावस्था में रहे, वही सच्चा ग्रात्मस्थ योगी है। उन्होंने ग्रपने मन की ऐसी ग्रवस्था का सकेत भक्त धनाराम को किया है—

"८ माच, १८९८ मेरे मकान के समीप इस समय बडा रौला (शार) पड रहा है, होली के कारण। पर ग्रापकी कृपा से दिल के मकान में (चित्त के भीतर) कोई किसी प्रकार का शार शगवा नही, ग्रानन्द है। जिस प्रकार शिवजी के चारो ग्रोर भूत-प्रेत रौला ग्रौर वावेला (शोर गुल) मचाते रहते ह, पर वे ग्रानन्द की समाधि में निर्विघ्न मग्न रहते हैं, इसी प्रकार ससार के जीव ग्रज्ञान की कालिमा ग्रौर गुलाल मुखो पर मले ग्रपने निज स्वरूप को छुपाकर नित्य शोर मचाते रहते हैं। इस सबके हाते हुये शिवस्वरूप ग्रपने ग्राप में किसी कदर निवास होने के कारण क्षीर समुद्र में रहने का सुख है।"

'सच्चे वेदान्ती की स्थिति किस प्रकार होती है ?' राम के उस समय के जीवन से इस प्रश्न का सहज भाव से समाधान हो जाता है। उन दिनो ग्रपनी चित्तवृत्ति को इतना ग्रधिक ग्रन्तर्मुख कर लिया था, कि बाह्य दृष्टि से वे उस समय मिशन कक्षायें ले रहे थे इण्टरमीडिएट ग्रौर इन्ट्रेन्स की उत्तर पुस्तकें जाच रहे थे, पर उनका ग्रन्तमन ग्रात्मा में रमण कर रहा था। धनाराम ने एक शिकायत भरा पत्र लिखा कि तुम पत्र क्यो नही लिखते हा ? इस पर राम का उत्तर था—

"१५ माच १८९८, मैं निकट ही एक सविस्तार पत्र ग्रापकी सेवा में भेजता हूँ। ग्रापकी कृपा से बहुत ग्रानन्द है—

> "जिनके पिया परदेस बसत हैं, लिख लिख भेजें पाती।
> मेरे पिया मेरे हृदय बसत हैं, न कहीं ग्राती न जाती॥"

सच्चिदानन्द घन में एक अद्वैत, चेतन, आनन्द सत्ता के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार की द्वैत भावना की गम नही है। पत्र इस प्रकार है—

"२४ दिसम्बर, १८९७ रात के आठ बजने वाले है। व्यायाम कर चुका हूँ। अतर बिल्कुल साफ है, और अत्यन्त आनन्द की अवस्था है। उस समय अत्यन्त प्रेम के साथ आप याद आते है। आप धन्य है, जिनकी कृपा से आनन्द के समुद्र में स्नान होते है। आप पर बलिहार! सम्पूर्ण एकता (अभेदता) की दशा है। आपमे इस समय एक बाल मात्र भी किसी बात से किंचित भेद नही—

'मन तो शुदम, तो मन शुदी, मन तन शुदम तो जा शुदी।
ता कस न गोयद बाद अर्जी, मन दीगरम तो दीगरी॥'

"भावार्थ,

'मैं तू हुआ, तू मैं हुआ, मैं देह हुआ, तू प्राण हुआ।
अब कोई यह न कह सके, मैं और हूँ, तू और है॥'

लेखक, आप स्वयं।"

परोपकार और उदारता तीर्थराम के विशिष्ट गुण थे। ससार के सामान्य व्यक्ति जिस अर्थ की प्राप्ति के लिये रात दिन सघर्ष करते रहते है, ईर्ष्या-द्वेष, कलह विद्रोह में रत रहते है, वह 'अर्थ' राम की दृष्टि में 'अर्थ विहीन' था। उन्होने उसके प्रति अत्यधिक उदासीनता और विरक्ति दिखलायी। वे अपना आय का प्रमुख भाग निर्धन छात्रो एव अन्य जरूरतमन्दो का बाट देते थे। अब तो धन सम्पत्ति का स्थान उनकी दृष्टि में और भी नगण्य हो गया, क्योकि आध्यात्मिक धन का अक्षय भण्डार उनके हाथो लग चुका था। वे स्वार्थी की भाति अकेले ही उसका भोग-उपभोग नही करना चाहते थे। ससार के अन्य लोगो को मुक्त हस्त से उसका वितरण कर देना चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होने ४ फरवरी, १८९८ ई० को 'अद्वैतामृतवर्षिणी सभा' की सस्थापना की। इसकी सूचना उन्होने भक्त धन्नाराम को भी दी—

"४ फरवरी, १८९८ यहाँ एक 'अद्वैतामृतवर्षिणी सभा' स्थापित की है, जिसमें विशेष कर साधु महात्मा ही प्रविष्ट है। इसके एकत्र होने का स्थान मेरा ही घर है और प्रत्येक बृहस्पतिवार को इकट्ठे होते है। इसमें उपदेश आदि भी होते है, पर केवल वेदान्त पर।'

अपनी एकान्त प्रियता के कारण सप्ताह में एक दिन से अधिक समय वे इस सभा को नही दे पाते थे। उन्होने यह भली भाँति अनुभव कर लिया था कि साधक को जो आनन्द एकान्त स्थान में चित्तवृत्तियो को अन्तर्मुखी करने पर प्राप्त होता है वह अन्य किसी साधन से नही प्राप्त हो सकता। इस आनन्द की तुलना

में करोडो अश्वमेध यज्ञो के फल नगण्य है। अत प्रवचन आदि से उनकी वृत्ति उपराम होती गई। २ मार्च, १८९८ के पत्र में उन्होने भक्त धनाराम का सूचित किया कि 'आयन्दा लैक्चर आदि देने का इरादा मौकूफ किया।' उन्हाने इतनी प्रबल साधना कर ली थी कि उनकी उपस्थिति मात्र से 'अद्वैतामृतवर्षिणी के सदस्यगण समाधिस्थ हो जाते थे। तीथराम की आध्यात्मिक शक्ति की सूक्ष्म विद्युत-तरगें साधको को आनन्द में स्थित कर देती थी। अन्तर्मुख महात्मा में इस प्रकार की शक्ति का होना एकदम स्वाभाविक है।

तीथराम ने मन के निरोध करने में इतनी दक्षता प्राप्त कर ली थी, कि वाह्य जगत् का भीषण से भीषण कालाहल भी उनके अन्तरमन का स्पश तक नही कर सकता था। हिमालय के परम एकान्त और दिल्ली आदि नगरा के महान कालाहल के मध्य, जिसके मन और चित्त की एकाग्रता साम्यावस्था में रहे, वही सच्चा आत्मस्थ योगी है। उन्होन अपने मन की ऐसी अवस्था का सकेत भक्त धनाराम का किया है—

"८ माच, १८९८ मेरे मकान के समीप इस समय बडा रौला (शार) पड रहा है, होली के कारण। पर आपकी कृपा से दिल के मकान में (चित्त के भीतर) कोई किसी प्रकार का शार शरावा नही, आनन्द है। जिस प्रकार शिवजी के चारो ओर भूत प्रेत रौला और बावेला (शोर गुल) मचाते रहते है, पर वे आनन्द की समाधि में निर्विघ्न मग्न रहते है, इसी प्रकार ससार व जीव अज्ञान की कालिमा और गुलाल मुखो पर मले अपने निज स्वरूप को छुपाकर नित्य शोर मचाते रहते ह। इस सबके हाते हुये शिवस्वरूप अपने आप में किसी कदर निवास होने के कारण क्षीर समुद्र में रहने का सुख है।"

'सच्चे वेदान्ती की स्थिति किस प्रकार होती ह?' राम के उस समय के जीवन से इस प्रश्न का सहज भाव से समाधान हो जाता है। उन दिनो अपनी चित्तवृत्ति को इतना अधिक अन्तर्मुख कर लिया था, कि वाह्य दृष्टि से वे उस समय मिशन कक्षायें ले रहे थे, इण्टरमीडिएट और इन्ट्रेन्स की उत्तर पुस्तकें जांच रह थे, पर उनका अन्तमन आत्मा में रमण कर रहा था। धन्नाराम ने एक शिकायत भरा पत्र लिखा कि तुम पत्र क्यो नही लिखते हा? इस पर राम का उत्तर था—

"१५ माच, १८९८, मैं निकट ही एक सविस्तार पत्र आपकी सेवा में भेजता हूं। आपकी कृपा से बहुत आनन्द है—

"जिनके पिया परदेस बसत हैं, लिख लिख भेजें पाती।
मेरे पिया मेरे हृदय बसत हैं, न कहीं आती न जाती॥"

एक बार भगत जी ने राम से उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जिज्ञासा की। तीर्थराम ने अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में इस प्रकार उत्तर दिया—

"१८ मार्च, १८९८ आपके कृपापत्र प्राप्त हुये। अत्यन्त आनन्द के कारण हुये। एक राजा ने एक महात्मा से पूछा कि आपकी तबीअत कैसी है? उन्होंने उत्तर दिया कि—"जिसकी इच्छा बिना एक पत्ता न हिल सके, जिसकी आज्ञा सूर्य और चन्द्र मानें, नदियां और पवन जिसकी आज्ञा का एक क्षणमात्र के लिये भी न तोड़ सकें जहां चाहे खुशी भेज दे और जहां चाहे शोक भेज दें और ऐ राजन्, जिसकी आज्ञा के बिना तेरे मुख के दांत हिल नहीं सकते, और जिसके इच्छानुसार राजाधिराजों की नाड़ियों में रुधिर चक्कर लगाता है, ऐसे सामर्थ्यवान, सर्वशक्तिमान के आनन्द का क्या ठिकाना है? हे राजन्, तू आप ही अंदाज कर।"

तीर्थराम के इतना अधिक आध्यात्मिक-साधना में रत होने पर भी उनके कालेज के परीक्षार्थियों का नतीजा बहुत अच्छा रहा। विश्वविद्यालय की परीक्षा में उनके कालेज से उत्तीर्ण परीक्षार्थियों की संख्या अन्य संस्थाओं की अपेक्षा बहुत अच्छी रही। पहला और तीसरा स्थान उन्हीं के छात्रों को प्राप्त हुआ था। उनके विषय में तेईस परीक्षार्थियों में से केवल तीन अनुत्तीर्ण थे।

सन १८९८ में वसन्त्री के अवसर पर तीर्थराम ने 'कटासराज तीर्थ' की यात्रा की। यह स्थान जेहलम जिला की चकवाल तहसील में स्थित है। इसके समीप नमक की खानें हैं। इनकी गणना प्राचीन तीर्थ स्थानों में की जाती है। कहते हैं कि कटासराज वही तीर्थ है जहां यक्ष ने जल लेने आये चारों पाण्डवों से प्रश्न किये थे। उत्तर न देने के कारण चारों पाण्डव मूर्च्छित हो गये थे। अन्त में युधिष्ठिर आये और उन्होंने यक्ष के प्रश्नों का यथोचित उत्तर दिया। यक्ष ने उनके उत्तरों से सन्तुष्ट होकर चारों पाण्डवों को जीवन दान दिया। उस तीर्थस्थल में अनेक साधु-महात्मा पहुँचे थे। पर वहां पहुँचने पर 'अरतिजन-संसदि' (जन समुदाय में प्रेम का न होना) वृत्तिवाले तीर्थराम को बहुत ग्लानि हुई। उन्होंने अपनी ग्लानि भक्त धन्नाराम इस भांति अभिव्यक्त की—

"१७ अप्रैल, १८९८, कटास की यात्रा ने जो उपदेश दिया, वह अत्यन्त ठीक है। जो सुख एकान्त सेवन और निजधाम (आत्म-स्वरूप) में है, वह कहीं भी नहीं—

'हे मन तेरी सुगंध सों भयो यह बन भरपूर।
कस्तूरी तो निकट है, क्यों धावत है दूर।'

'अपना ही आनन्द जगत के पदार्थों में आनन्द भावना कर दिखाता है। सब वेद वेदाङ्ग हमारे ही भीतर है।'

तीर्थराम की एकान्त-सेवन-वृत्ति उत्तरोत्तर बढती ही गयी । परिणाम यह हुआ उन्होने १८९८ का ग्रीष्मावकाश हरद्वार, ऋषीकेश एव तपोवन में व्यतीत किया। हरद्वार में वे महाराज जम्मू की कोठी में ठहर। थोडे ही दिनो में उन्होने वहा के निकटवर्ती सभी तीर्थस्थलो एव प्रसिद्ध साधुओ के दर्शन कर लिये। उन्हें अब आत्मसाक्षात्कार करने की तीव्र आकाक्षा हुई। उनके पत्र से यह बात भली-भाति सिद्ध होती है—

"हरिद्वार, १४ अगस्त, १८९८,

इतने दिनो म यहा के देखने योग्य मुकामात देखे हैं। सन्तो के दर्शन किये ह। अब रजकर (तृप्त होकर, छक कर) अपने घर के द्वार बन्द करके अपने घट में जाने को जी चाहता है। महाराज जम्मू की हवेली में ठहर रहा हूँ। मेरे रहने का कमरा हरिद्वार में सबसे उत्तम ह।"

सरदार पूर्णसिह ने अपनी पुस्तक में तीर्थराम की मनोवृत्ति का हृदयग्राही चित्रण किया है, "हरद्वार में गगा-स्नान करते हुये वे ऐसे ध्यानमग्न हो जाते थे, कि उन्हें देशकाल की कोई सुध नही रहती थी। आखें मूदकर और कान बन्द कर वे उसी कदम्ब वृक्ष पर भगवान् कृष्ण को अपने सामने देखते और उनकी वशी का चिरन्तन सगीत सुनने लगते। वे उस सगीत में आत्मविभोर हो जाते, जो गगा के हिम सदश शीतल स्वच्छ जल में स्नान करने वाले हजारो यात्रिया में से कभी एक के भी कान में न पडता।'

हरद्वार से वे ऋषीकेश गये। उनके पास जो कुछ भी रुपये-पैसे थे, सब साधुओं में बाट दिये। अपने पास एक पाई भी न रख छोडी। नगे बदन, कुछ विक्षिप्त से, कुछ उपनिषदो के गुटके लिये ब्रह्मपुरी मन्दिर के निकट तपोवन नामक स्थान पर पहुँचे। यह स्थान ऋषीकेश से छ मील की दूरी पर है। वहा वे गगातट यह सकल्प लेकर बठ गये कि अब तो आत्म-दर्शन करके ही इस स्थान को छोडेंगे अथवा इस नश्वर शरीर का ही परित्याग करेंगे आत्म-दर्शन की अतृप्त आकाक्षा से निराश होकर भाव प्रवण तीर्थराम ने अपना शरीर बढी हुई गगा जी को समर्पित कर दिया। गगा माता ने अपने बालक तीर्थराम के शरीर के इधर-उधर घुमाकर कुछ देर तक खेल-खेला तत्पश्चात् विश्राम करने के लिये बडे स्नेह से एक चट्टान पर रख दिया। कुछ घन्टो के पश्चात् तीर्थराम को प्रत्यक्षानुभूति हुई। अपने अनुभवो को उन्होने विस्तार से उर्दू में लिखा, जिसका शीर्षक रखा 'जलवाए-कोहसर।' इसमें उनके कवि-हृदय और वेदान्त-मनन का अपूर्व मिश्रण है। इसमें गद्य और पद्य दोनो का प्रयोग हुआ। पर उनका गद्य भी तुक विहीन

काव्य का आनन्द प्रदान करता है। शब्द शब्द में वेदान्त की भावपूर्ण मस्ती भरी हुई है। प्रकृति का इतना सजीव चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है—

"जिह्वा! क्या तू उस आनन्द को अभिव्यक्त कर सकती है? मैं धन्य हूं। अत्यन्त आह्लादित हूँ।

"मैं परम भाग्यशाली हूँ। मैंने अपने उस प्रियतम का प्रगाढ़ आलिङ्गन किया है जिसका घूंघट बड़ी कठिनाई से खुलता है। वह नग्न रूप में मेरे सम्मुख प्रकट हुआ है। पहले उसके चरणों को देखा, तब हाथों को, तब उसकी आँखें और तत्पश्चात उसके कान। उसी के समान मैं भी नग्न हूँ। उसके सीने से मेरा सीना मिल गया है। अरे हृदय तू दूर हट। हम दोनों के बीच आड़ मत बन। द्वैतभाव, दूर भग, दूरी, समाप्त हो जा। वियोग, विदा हो जा। मैं प्रियतम हूँ, और प्रियतम मैं हूँ। दोनों एक हैं। क्या यह आनन्द है? अथवा आनन्द में मरण है? आँसुओ, इतने अधिक क्यों बरस रहे हो?'

× × ×

"क्या यह प्रियतम के साथ विवाह होने का मंगलाभिषेक है अथवा मन के मरण के लिए शोकाश्रु? यह संस्कारों का अंतिम संस्कार है। इच्छायें, वासनायें मर चुकीं। दुःख और सुख, ये दोनों भी उसी प्रकार अन्तर्हित हो गये, जैसे प्रकाश के सम्मुख अंधकार। शुभ और अशुभ कर्मों का पोत (जहाज) डूब गया।"

"मेरे सीने में मेरा दिल बहुत शोर मचा रहा था, किन्तु जब वह काट कर बाहर निकाला गया, तो उसमें से एक बूंद भी खून नहीं निकला।"

"अहा, मेरे प्रियतम के आगमन का शुभ संदेश आ गया है। अब दुःख और शोक के लिये कोई स्थान नहीं रह गया है।"

"मैं स्वयं प्रियतम हूँ। अब मेरे उसके बीच पत्र-व्यवहार की क्या आवश्यकता है? मैं मदिरा (प्रेमरूपी) का नशा हूँ, अब मुझे मदिरालय की कोई आवश्यकता नहीं है।'

"तुरीयावस्था जो अत्यधिक दुर्लभ प्रतीत होती थी, वह मैं ही हूँ। अन्य पुरुष प्रथम पुरुष में परिणत हो गया। ओम हम, हम ओम्। न हम, न तुम। सारा पुराना हिसाब किताब गायब। ओम्! ओम्!! ओम्!!!'

× × ×

"इस प्रकार कितनी रातें, कितने दिन व्यतीत हो गये। लेकिन किसकी रातें, और किसका दिन? 'जहाँ देखता हूँ वहाँ तू ही तू है।"

"अपरगङ्गा है। राम काठ के कूलते पुल के मध्य नग्न पलंग बैठा है। मेघना" की भाँति वह बादलों के रूप में गर्जन कर रहा है। बिजली का मरना हो प्रकाश

दकर वह पत्थरा और जल पर चमक रहा है। जलवृष्टि का रूप धारण कर, वह पक्षिया को अपने अपने घासले में लौटने को बाध्य कर रहा है। घनघोर वर्षा के कारण आकाश, पर्वत, घाटी कुछ भी दिखायी नही दे रही है। सवत्र जल की चादर बिछी है। ऐसा लग रहा है माना गगा ऊपर चढकर आकाश में प्रवाहित हो रही है। गगा जी अपने घर में राम को विश्राम दना चाहती ह। सब ने अपना-अपना घर पा लिया है। गृह-विहीन राम कहाँ शरण ले ?

'मेरे विश्राम के लिये न तो कोई नीड है, और न उडने के लिये पख।'

"राम सवव्यापी परमात्मा ह। उसका निवास स्थान सवत्र है। वह जल में विराजमान है। वह बादलो में चक्कर लगा रहा है। समुद्र को वह सुशोभित कर रहा है।

"कभी बादल छा जाते हैं और वर्षा होने लगती है, और कभी सूरज निकल आता है। किन्तु राम के लिये न सूरज उगता है और न अस्त होता है।

"जब मैंने अपने प्यारे का राज जान लिया, तो मैं अन्तर्मुख हो गया और फिर उसे अपने ही भीतर पा लिया। हृदय रूपी मन्दिर के आनन्द में स्थित हो जाओ, वहा न कोई उत्थान ह और न पतन।

"ससार ? नही, ससार नही, बल्कि पावती जी शकर के निमित्त आसव तैयार कर रही है। शिव की आखें खुली ह। उन्होने प्याला बढा दिया। मदिरा का सरूर सारे वातावरण में छा गया।

"अरे मेरे पियक्कड, पिये जा, पिये जा, निश्चिन्त होकर पिये जा।"

"प्रकृति देवी कोई मदिरा नही तयार करती। वह स्वय ही मदिरा और स्वय ही भग है। अरे मदिरा अथवा भग नही, बल्कि उनका नशा—आनन्द, सारतत्त्व। मैं स्वय मदिरा और भग हूँ।"

बाढ के कम होने पर, राम ने अपने को गगातट पर लेटे पाया। गगा तट पर उसी उन्मादपूर्ण आनन्द में उन्होने कई दिन बिताये।

पचम अध्याय

स्वे महिम्नि प्रतिष्ठत

(१८९८)

तपोवन की उस प्रत्यक्षानुभूति के अनन्तर तीथराम के जीवन में विलक्षण परिवतन आ गया। वे अहर्निश एकान्त मे अपने सहज स्वरूप में स्थित हो जाते। उस स्थिति में उन्हे न दिन का पता रहता और न रात का। इसी प्रकार उनके अन्त करण से स्थान के भाव का भी सवथा लोप हो गया। वे दशकालातीत अवस्था में रमण करने लग। स्वाध्याय ही उनका अभिन सखा बन गया और तलधारावत ब्रह्माकार वृत्ति ने उनकी जीवन सगिनी का स्थान ग्रहण कर लिया। विराट प्रकृति के अलौकिक दृश्य—चन्द्रमा, सूय, नक्षत्रगण, प्रकाश, अन्धकार बादलों की अठखेलिया और उनका गजन, पक्षियो का कलरव, गगा मैया की धार, निझरो का कल-कल निनाद, तृणराशि की हरीतिमा, सघन वृक्षो की पक्तिया और उनकी मरमर ध्वनि, पवत शिखरा का ऊँचाई, घाटियो की गहराई, पुष्पों का लावण्य, उन पर भ्रमरा का गुजार और रगीन तितलियो की छटा आदि—उनके ब्रह्मचिन्तन की माला के गुरिया बन गये। अन्तर प्रकृति के नाना भाव—हप विषाद, राग द्वेष अनुराग विराग, ईर्ष्या कलह, दम्भ-पाखण्ड, छल-कपट, तृष्णा वितृष्णा, सयम नियम, तितिक्षा, त्याग, ब्रह्मचय, अहिंसा, सत्याचरण आदि—उन्हें आत्मस्वरूप के अनन्त समुद्र की विभिन तरगें भासित हाने लगी। जब व नेत्र खोलते थे, तो उन्हें 'सव खल्विद ब्रह्म' की अनुभूति होती और नेत्र मूदते तो 'नेह नानाऽस्ति' के महाभाव में स्थित हा जाते। श्रीमदभगवद्गीता की 'ब्राह्मी स्थिति' एव छान्दोग्योपनिषद के 'स्वे महिम्नि प्रतिष्ठत' के आदश उनके जीवन में अक्षरश चरिताथ हा गये। उन्हाने मनुष्य जावन के अन्तिम पुरुषाथ—मोक्ष पद का लगभग पचीस वर्ष की आयु में प्राप्त कर लिया। इस समय से उनके जीवन के समस्त द्वन्द्व समाप्त हो गये, क्योकि वे 'मरजीवा' बन गये। उनके जीवन के समस्त व्यापारा और क्रियाओ—उठने-बठने, खाने-पीने, सोने-जागने, पढ़ने-पढ़ाने, बीमार पडने, वार्तालाप करने आदि—में अलौकिक मस्ती झलकने लगी। जीवन के प्रति उन्हाने नवीन दृष्टिकोण पा लिया। प्रारब्धानुसार शेष जीवन में उन्होंने

लोक-कल्याण की भावना से अनेक कर्म किये, एकान्त-सेवन किया, हिमालय पर्वत पर भ्रमण किया, विदेश गये भाषण दिये, अनेक सम्भ्रान्त व्यक्तियो से मिले जुले, जिज्ञासुग्रो की शकायें समाधान की, किन्तु उनकी चित्तवृत्ति ब्रह्माकार ही रही। वे शरीर भाव से एकदम ऊपर उठ गये। सदैव ग्रानन्द से परिपूर्ण रहने लगे। उनके मुखमण्डल पर मृदु-हास्य की छटा सदैव विराजमान रहती थी। वाणी से सदैव प्रणव का उच्चारण करते रहते। अपने सात्विक और कर्मठ जीवन से उन्होने अनेक व्यक्तियो में आशा, पौरुष, कर्मठता, शक्ति, विवेक, भक्ति आदि का सचार किया। उनके आस-पास आनन्द का ऐसा वातावरण हर क्षण छाया रहता था, कि जो कोई भी व्यक्ति उनके समीप आता, बिना आनन्दित हुये नही लौटता था। दुखी से दुखी मानव को वे शान्ति और आनन्द में स्थिर कर देते। जीवन्मुक्ति-दशा प्राप्त करने पर भी वे लोक-कल्याण के निमित्त विदेश गये। ब्रह्म भाव में पूर्णतया स्थित होते हुये भी उन्होने देश के लिए आँसू बहाये। कहने का तात्पय यह कि तपोवन की प्रत्यक्षानुभूति के अनन्तर उनका जीवन-दशन सवथा परिवर्तित हो गया। उनकी समस्त क्रियाओ में ब्रह्म भावना दिखाई पडने लगी। इस समय के बीच उन्होने जो कुछ लिखा अथवा पत्रोत्तर दिये, सब में ब्रह्मभाव दिखाई पडता है, सब में दिव्यानन्द का भाव और अपूव मस्ती झलकती है और साथ ही ससार के प्रति परम उपरामता दिखलाई पडती है। अब हम उन्ही के शब्दो के माध्यम से उनकी तत्कालीन मन स्थिति समझने का प्रयास करेंगे। यत्र तत्र भाषा में परिवतन दिखाई पडेगा, किन्तु भाव उन्ही के है—

"गगे, तू ब्रह्मविद्या की जननी है, तेरे ही पवित्र दूध से उसका भरण-पोषण होता है। हिमालय! तू उस ब्रह्मविद्या का जनक है, तेरी ही गोदी में वह क्रीडा करती है। क्या तुझे वह दिन याद है, जब राम अपने पीले चेहरे, ठडा आहें और गीली आखें लिये पहले-पहल तेरी शरण में आया? तेरी ही चट्टानो पर कितनी सुनसान रातें बिताई और कितनी हिचकियाँ ली। अहा, वह पूर्णानन्द कहा है, जिसका नशा भूत-वर्त्तमान के समस्त भेदो को मेट देता है? ओह, मैं उस आनन्द की प्रचण्ड बाढ में कब पहुँचूगा, जो ससार के भोगो-ऐश्वर्यों का रजकण की भाति बहा फेंकेगा? ब्रह्मज्ञान का सूय कब अपनी चरमसीमा पर होगा? शारीरिक इच्छायें और इन्द्रिय-ग्राह्य भोगो की स्पहा अधकार की भाति विनष्ट होगी? गगा-जल कभी उष्ण नही होता। वह समय कब आयेगा, जब परम सत्य के नशे द्वारा हर्ष और शोक के भाव राम का स्वप्न में भी विचलित नही कर सकेंगे। भूतकाल की भाँति पाप-ताप, कष्ट सदव के लिये विदा हो जायेंगे? क्या तुरीयावस्था का चित्रण सद्ग्रथ मात्र के निरूपण तक ही सीमित रहेगा? वह तुरीयावस्था कहा

है ? नगे सिर, नगे पाँव, नग धडग, हाथ में उपनिषद् लिये पागला की भांति पर्वतीय जगलो में राम इधर-उधर चक्कर लगा रहा है।

माता पिता ! तुम्हारा पुत्र अब लौटने का नही। छात्रो, तुम्हारा अध्यापक, राम, अब तुम तक नही पहुँचेगा। स्त्री ! हमारा-तुम्हारा सम्बन्ध कब तक चलेगा ? अनिवार्य होकर रहेगा। या तो मैं सारे नाते रिश्ते के सम्बन्धो से ऊपर उठकर रहूँगा, अथवा तुम सबकी मेरे प्रति सारी आशाएँ चकनाचूर हो जायेंगी। या तो राम के आनन्द-समुद्र की उमडती तरगो में देश-काल सदैव के लिये विलीन हो जायेंगे, या तो राम का शरीर गगा की लहरो पर बहता नजर आयेगा। मरणोपरान्त प्रत्येक हिन्दू की अस्थियाँ गगा में प्रवाहित की जाती हैं। यदि पूर्णतया आत्मानुभूति नहीं कर ली जाती और अहभाव की तनिक भी गन्ध शेष रहती है, तो राम जाते जी अपनी हड्डिया और मास गगा जी की मछलियो को अर्पित कर देगा।

×   ×   ×

"यदि राम के चरणों के नीचे से गगा नही बहती है, तो राम ही का शरीर गगा पर बहेगा। आँखें जलवर्षा कर रही है। ठडी और गहरी आहें हवा बनकर वर्षा (अश्रुवर्षा) का साथ दे रही है। बाहर और भीतर दोनो तरफ घनघोर बारिश हो रही है। राम दुखी होकर प्रलाप कर रहा है—

'गगा मैया मैं तुझ पर बलि जाऊँ।'—आदि।

"गगातट पर लम्बे-लम्बे वृक्ष खडे होकर ध्यान में निमग्न हैं, वे मानो सध्या कर रहे हैं। हरी-हरी पत्तियों के बीच कलियाँ बच्चो के समान मुसकरा रही है। वायु उन्हें पालने में झूला झुला रही हैं। ठडी और मृदुल बयारें बरबस हृदय चुरा रही है।

"राम ऊहापोह में है कि किस दिशा में अपनी दृष्टि डाले, प्रत्येक दिशा अन्य दिशा से सौन्दर्य में बढ-चढ कर प्रतीत हो रही है। पहाडियो की ढलान पर धान के हरे भरे पौधे लहरा रहे हैं। चमचमाता हुआ निर्मल जल बहकर उन्हें सींचने आ रहा है। यह जल जीवात्मा की भांति गगाजल रूपी परमात्मा से मिलकर मुक्त हो रहा है। गगा-मैया के सौन्दर्य का चित्रण कौन कर सकता है ? क्या यह विराट भगवान् का वक्षस्थल है ? इसकी गम्भीरता, शान्त-प्रकृति, ओम ओम का अविरल सहज सगीत मन की सारी अशान्ति एव मल को धो देता है। गगा में यत्र-तत्र गम्भीर जलसर हैं, वे अलौकिक शान्ति से परिपूर्ण है। चाँदनी में गगाजी असख्य रत्नराशि की भाँति चमकती है। अरे मेरा जीवन ! यह (चाँदनी का) सुरमा आँखों

को नयी ज्योति प्रदान करता है और हृदय को अपूर्व आह्लाद ! गगा जी की पवित्रता एव शान्ति से उनकी सौम्य वैष्णव-भावना प्रकट होती है। उनकी तेजस्विता, सिह-गजना एव हड्डियो के चबाने से उत्पन्न चटचटाहट की ध्वनि से उनका प्रचण्ड शाक्त भाव लक्षित होता है। इस प्रकार अपने आधे रूप से वे विष्णु-रूप और आधे से रुद्ररूप दिखा रही है और दोना देवा का आधा आधा रूप अपने में छिपा रखा है। इस प्रकार के जगत् को अपना आभारी बना रही है। गगा की तरगें, मगर की भाति उछलती और गरजती हुइ, इधर तेजी से लपक रही है। विस्तर पत्थरो से आच्छादित हो गया है, जिस पर जल फेनिल होकर नतन कर रहा है।

देखो ! गगा की धार ने निर्झर का रूप धारण कर लिया।

"यहाँ गगा का जल अत्यधिक उद्वेलित हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है माना वे अत्यन्त ओजमयी वाणी में कह रही है, "ऐ अहकार के हरिण, इधर आओ, तो जरा मजा चखा दूँ, मैं तुम्हारा तुरन्त शिकार कर लूगी। अज्ञान के सियार ! मैं तुम्हें कच्चा चबा जाऊँगी, तुम्हारी हड्डिया पसलियाँ तक चबा जाऊँगी। ऐ मोह के पत्थर ! इधर फूटी नजर से भी मत ताकना, नही तो मैं तुम्हें चूर-चूर कर बालू बना दूँगी। जानते हो, मैं कितनी शक्तिशाली हूँ ? मैंने बडी-बडी चट्टानो को तोड-कर अपना रास्ता बनाया है, अब तुम सबकी बारी है।"

"इस समय अज्ञान की सारी सेना भाग निकली। अधकार और अज्ञान का पता तक नही। इन पर्वतो की महिमा और आनन्द क्या सिद्ध करता ह ? इस स्थान की शीतलता, शान्ति और आह्लाद क्या सदश देता है ? यही कि राम अपना लक्ष्य भेदन करेगा, उसकी इच्छायें (सकल्प-शक्ति) आकाश पा लेंगी।"

"सूर्यास्त हाने को है। राम एक शिला पर आसीन ह। उसकी अजीब हालत है। न तो तटस्थ (उदासीन) है, न दुखी है और न सुखी। (सासारिक लोग सुख, दुख एव उदासीनता—इन तीन वृत्तियो में से किसी एक में रमते है।) न तो वह जाग रहा ह और न सो रहा है। फिर क्या वह किसी नशे में तो नही है ? हा, नशा तो जरूर कहा जा सकता है, पर वह सासारिक कोई नशा नही। अहा, मन की क्या ही आनन्दमय और गम्भीर अवस्था है ! पेडो के पीछे के पास शख और दमामा की ध्वनि आ रही है। कदाचित् वहाँ मन्दिर है और आरती की जा रही है। अरे, जरा पवत शिखर की ओर ता देखो, शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी का चन्द्रमा झाँक रहा है। क्या वह भी आरती में सम्मिलित होने आ रहा है ? सम्मिलित

होने, नही उसने शिवजी को अपनी भेंट अर्पित करने के लिये अपने मुखमण्डल का दीपक जलाया है। वह स्वयं आरती के रूप में दिखलाई पड रहा है। अहा, समस्त प्रकृति उस विराट् आरती में भाग ले रही है। शंख-ध्वनि चारो ओर से प्रतिध्वनित हो रही है। अरे चन्द्रमा, तू मुझसे बढकर होने वाला कौन होता है? प्यारे, तू अकेला मत बन! तेरी भाँति आरती में सम्मिलित होने के लिये राम भी अपना समस्त शरीर क्यो न प्रज्वलित कर दे।"

उपर्युक्त अवतरणो से राम की मन स्थिति की पूर्ण झाँकी सामने आ जाती है। प्रकृति-वर्णन के माध्यम से उन्होंने अपने जीवन के व्यापारो का सकेत किया है। गगा जी ने चट्टानो के मध्य से अपना रास्ता निर्मित किया है, उन्होने भी कठिनाइयो और अभावो की दुर्गम चट्टानो के बीच से अपनी जीवन-गगा प्रवाहित की है। वे ब्रह्मानन्द की प्रचण्ड धार में अब पूर्णतया स्थित हो चुके है। अब थोडे ही समय के बाद ऐश्वर्य-समृद्धि की भावना अपने आप बह जाने वाली है। वे जिस देश कालातीत आनन्द प्राप्ति का मनोराज्य निर्मित कर रहे है, उसमें मनसा, वाचा, कर्मणा प्रतिष्ठित हो चुके है। हाँ, किंचित् समय की और अपेक्षा है। वे जिस प्रचण्ड ज्ञान—भास्कर की कल्पना कर रहे है, वह उदित हो गया है और बडी तेजी से मध्य आकाश की ओर मध्याह्न का सूर्य बनने भागा जा रहा है। हमारी सम्मति में उन्हें जो कुछ भी पाना था, उसे पा लिया। बात यह है कि राम अत्यधिक भावुक थे। उनमें भक्ति और ज्ञान का अपूर्व सामजस्य रहा। ज्ञान हो जाने पर भी वे लोक-सग्रह की भावना से भक्ति की सरगम स्वर वाली बाँसुरी बजाते रहे। उसकी स्वर लहरी में कभी परमात्मा के वियोग की असह्य तडपन का स्वर सुनाई पडता है और कभी मिलन के अपार आनन्द का स्वर झकृत होता है। इस प्रकार वे 'स्वे महिम्नि प्रतिष्ठित' में पूर्णरूप से स्थित होने पर भी भक्ति का गौरव बनाने के लिये विविध लीलायें कर रहे है। दूसरी बात यह भी है कि ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के अनन्तर साधक में एक उन्माद की सी अवस्था आ जाती है, वह अपने आनन्दातिरेक में आनन्द और उल्लासमयी वाणी का नाद करता है। राम के शरीर की शिराओ में, रक्त के बिन्दु बिन्दु में, प्राणो के श्वास प्रश्वास में मन के समस्त सकल्प विकल्प में, बुद्धि की निश्चयात्मक वृत्ति में, चित्त के सारे स्पन्दनो में, अहकार की प्रति अहवृत्ति में ब्रह्म रम गया है। वे कर्णेन्द्रिय से ब्रह्म का श्रवण करते है, त्वचा इन्द्रिय से ब्रह्म का स्पर्श करते है, नेत्रेन्द्रिय से ब्रह्म-दर्शन करते है, रसना इन्द्रिय से उसका स्वाद ग्रहण करते है और नासिका इन्द्रिय से ब्रह्म की सुगधि ले रहे है। तात्पर्य यह कि वे उस स्थिति में विराजमान हो गये, जहाँ उन्हें ब्रह्म आत्मस्वरूप—के अतिरिक्त कोई इतर वस्तु दिखलायी नही पडती थी। अब न उन्हें ग्रहण से

कुछ प्रयोजन था और न त्याग से। उनके भावी जीवन में अब जो कुछ घटित होगा, उससे वे सवथा अस्पृश्य रहेंगे।

उन्ही दिनो धन्नाराम ने राम को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्हें घर लौटने की प्रेरणा दी थी। राम ने उत्तर में भक्त जी को एक पत्र लिखा, जिसमें अपने विचारा और भावों की विस्तत व्याख्या की। वह पत्र उनकी मन स्थिति को समझने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूण है—

"ऋषीकेश, २२ अगस्त, १८९८,

एक कृपापत्र प्राप्त हुआ, जिसमें घर आने की प्रेरणा थी। इस पत्र को लेकर मैंने फौरन परमधाम को भेज दिया, अर्थात् श्री गगाजी में प्रवाहित कर दिया। यदि किसी खानगी (गृहस्थी वा कुटुम्ब सम्बन्धी) मुआमले (कामधधा) के शोक की बावत पूछो, ता आपकी अत्यन्त कृपा है।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥

अर्थात, हे अर्जुन, सम्पूर्ण प्राणी जन्म से पहले विना शरीर वाले और मरने के बाद भी बिना शरीर वाले ही हैं, केवल बीच में ही शरीर वाले प्रतीत होते हैं, फिर उस विषय में क्या चिन्ता है।

रहा लोगों के गिले उलाहने, उनके विषय में यह निवेदन है —

कफन बाधे हुये सिर पर तेरे कूचे में आ बैठे।
हजारों ताने अब हम पर लगा ले जिसका जी चाहे॥

भावार्थ, हे प्यारे, तेरे द्वार पर शव वस्त्र (कफन) सिर पर ओढे हुये हम बठे है (तेरे निमित्त मरने के लिये उद्यत है)। अब हमें कोई चिन्ता नही, जिसका जी चाहे, हजारो उलाहने दे या ताने मारे।

हे भगवन आपकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। अपने घर (निजधाम) को जा रहा हूँ। आपके असल (वास्तविक) स्वरूप से मिल रहा हूँ। पजाब जो पाच नदिया (रक्त, वीय मूत्र, स्वेद, राल) से मिलकर बना हुआ हमारा शरीर है, इसके अध्यास को त्याग कर ही अपने असल (वास्तविक) धाम (हरिद्वार) की प्राप्ति हाती है।

इस समय रात के बारह बज चुके ह। न आदमी है, न आदमी की जात, अन्दर से अनहद (अनाहत) की घनघोर है और बाहर से श्री गगाजी ने अनाहत की गरज लगा रखी है। भीतर स ठड है और बाहर से आनन्द है। यार (अपने स्वरूप) से मिलने वाली अँधेरी रात ने जगत के नाम रूप पर कालिमा फेर रखी

है, अर्थात जगत के बाहर और भीतर दोनों ओर से शून्य कर दिया है। इस अँधेरी रात में क्या भीतर, क्या बाहर ? सम्मुख उमडते हुये अमृत के दरिया (नद) बह रहे है। ऐसे समय पर जगत का स्मरण कराना ? हाय, शोक !

ऐ सिकन्दर, न रही तेरी भी आलमगीरी।
कितने दिन आप जिया जिस लिये दारा मारा'

अर्थात, 'ऐ सिकन्दर, तेरी भी विश्वविजय और राज्यशासन अन्त में न रहा। भला बता तो, कितने दिन तू आप जिया है ? जिस क्षणभगुर जीवन के लिये तूने दारा का वध किया।'

ऐसे अवसर पर सिकन्दर का अमर जीवन एक ओर था, और जवानामग (जवाना की मृत्यु) दूसरा ओर !

चि निस्बत खाक रा ब आलिमे पाक'

अर्थात 'पर आप जैसे शुद्धात्मा पुरुष की उस विषयलोलुप तथा देहाभिमानी सिकन्दर से भला क्या तुलना ?'

घरवालो से कह दो कि मिलना अब केन्द्र पर ही उचित है, जहा पर मिलन से फिर जुदाई न हो।

'स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने।
सुखासीना शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरित ॥'

(भर्तृहरि-वैराग्य शतक)

भावार्थ 'जहाँ पर उज्ज्वल और फैली हुई चादनी के सदृश जल है, ऐसे गगातट पर सुखपूर्वक बठा रहूँ। जब सारे शब्द (ध्वनिया) बन्द हो, तब रात्रि में शिव शिव (प्रणवरूप) हृदयवेधक ध्वनि द्वारा सासारिक दुःख और शोक से मुक्त होकर आनन्दाश्रुओ से नेनो का होना सफल करूँ, ऐसे मेरे दिन कब आयेंगे ?'

राजा-लोग, राजपाट का त्याग करके, ऐसे आनन्द की इच्छा करते थे। देवतागण स्वर्गादिक का ध्यान छोडकर, इस गगातट की कामना करते थे। तो क्या मेरा ही प्रारब्ध फूट गया है कि इस प्राप्त हुये आनन्द को छोडकर झूठे और अनित्य पदार्थों के पीछे दौडू ?

लोगो तीर्थो पर आया करते ह। तीर्थ कभी लोगो के पास चलकर नही जाते। घरवालो से कह दो तीर्थ में रमण करने वाला जो तीर्थराम परमात्मा है, उसके चरणों में चलें, तब तीर्थराम गोसाइ का मिलाप हो सकता है, अन्यथा नही।

मरे हुये लोगो से मिलने के लिये, उन्हें सन्देश देकर लोग अपने पास बुला नही सकते। अलबत्त आप मरकर उनसे मिल सकते हैं। हम तो (ससार मे) मर चुके। घरवाले हमें बुलाने का यत्न न करें। हम-जैसे हो जायेंगे, तब मेल बहुत सुगमता से हो सकता है।

'मुरालीवाला' अगर 'मुरारीवाला' होकर तीथ बन जाये, तो तीर्थों को रम णीक बनाने वाला तीथराम वहा आ सक्ता है। सत्त्वगुण की गगा जहा न हो, हमारा वहा हाना कठिन है।

जब सबको अन्त में सूखे फूल (हड्डियाँ) बनकर गगा में आना है, तो क्यो नही नवीन पुष्प की भाति अपने शरीर को ज्ञानगगा में आनन्दपूवक प्रवाहित कर देते? अथवा अपनी अस्थियो को इधन बनाकर, मज्जारूपी घृत डालकर, प्राण-रूपी वायु से ज्ञानाग्नि में स्वाहा कर देते और इस प्रकार नरमेध का पुण्य लेते?

यहा आठ पहर में केवल रात्रि को सता के दर्शन के लिये कभी बाहर निकलना होता है, नही तो आना-जाना नही। और आठ दिन में केवल रविवार को ब्राह्मणो और सन्यासिया की सभा में व्यारयान देने के लिये जाना पडता है, और कही नही।"

इसी प्रकार चिन्तन, मनन एव अनुभूति आदि उनके स्वभाव के अग बन गये थे। जिस तरह सासारिक व्यक्तियो का ससार क प्रपचो के प्रति स्वाभाविक अनुराग हाता है, उमी तरह तीथराम का स्वरूपानुसन्धान के प्रति सहज स्वभाव बन गया था। ऐसे व्यक्ति जाग्रत और स्वप्नावस्था दोना में एक सा आचरण करते हैं। उन्हें स्वरूप की स्मृति दोना अवस्थाओ में समान रूप से रहती ह। वे असीम से ससीम एक क्षण के लिये भी नही हाते। व स्वप्नजगत् में भी उसी अनुभूति में रहते ह। इस प्रसग में तीथराम के एक रोचक स्वप्न का उल्लेख करना समीचीन प्रतीत होता है—

गोलचन्द (भगवान श्री कृष्ण को कहा जाता है) राम के साथ आख मिचौनी खेलता है। उसे न पकड पाने स परेशान हाकर खीझ भरे स्वर में राम कहता है, 'अरे, तू कहा छिप गया है? न तो तू बाहर ह और न भीतर। तू कहा गायब हो गया। अहा, मैंने अब तेरा पता लगा लिया। तू दरवाजे की आड में छिपा था। गोल्ला अब कहाँ जा सकता है? इतना कहकर उसका कान खीचकर एक तमाचा जड दिया।

"मैं जाग पडा, मुझे कान में दद लगा और गाल पर तमाचा लगाते हुये हाथ पाया।"

इस प्रकार स्वप्न में अपने आराध्यदेव से उनकी आँख मिचौनी चला करती थी। अतएव साधना के अन्तरतम प्रदेश में उनका प्रवेश हो गया था। यही उनके अभ्यास की विशेषता है।

एक अन्य पत्र उन्हें इसी बीच प्राप्त हुआ था। उस पत्र में राम से अनेक प्रश्न पूछे गये थे, जिनका उत्तर उन्होंने वेदान्तिक दृष्टिकोण से दिया था। प्रश्नोत्तर इस प्रकार है—

"(१) क्या राम अकेला है ?[१]

ब्रह्मपुरी, तपोवन
लक्ष्मण झूला के समीप,
३० अगस्त, १८९८

'पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥'

'अर्थात, पूर्ण वह (लोक) है, पूर्ण यह (लोक) है, पूर्ण से पूर्ण निकाल लिया जाय, तो पूर्ण ही शेष रह जाता है।'

'तनहास्तम तनहास्तम दर बेहरो-बर मक्तास्तम।
जुज मन नबाशद हेच शै मन जास्तम मन मास्तम॥'

'अर्थात, मैं अकेला हूँ, मैं अकेला हूँ, पृथिवी और समुद्र में भी मैं अद्वितीय हूँ। मेरे अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु है नही। मैं ही भूमि हूँ, मैं ही जल हूँ।'

कोई विद्यार्थी साथ नही, नौकर पास नही, गाव बहुत दूर है। मनुष्य का नाम काफूर है। अरण्य है, सुनसान है, तारा भरी रात, आधी इधर, आधी उधर है। पर हम क्या अकेले है ?

अकेली हमारी बला! अभी वर्षा लौंडी (नौकरानी) स्नान करा गयी है। हवा बादी (दासी) चारो ओर दौड रही है। वह किसी रफीक (साथी) ने वृक्ष में से आवाज दी 'हाजिर जनाब' (अर्थात सेवक उपस्थित है) सैकडो नौकर हमारे झाडियो में दबे बठे है, बिलो में शयन कर रहे है।

पर हाँ, हम अकेले है। यहा खादम-चादम (नौकर-चाकर) कोई नही। हम ही है यह वृक्ष नही हम ही है, पवन नही, हम ही है। गगा कहा ? हम है।

---

१ राम ने सन १९०१ में इस पत्र का उल्लेख अपनी स्मरण शक्ति से किया था। यह उनकी असाधारण मेधा शक्ति का परिचायक है। 'जलवाए कोहसार' में इसका विवरण दिया गया है।

यह चाद नही, हम है। खुदा (ईश्वर) नही, हम है। प्रियवर कौन ? हम है। मिलाप क्या ? हम है। अरे 'अकेले' का शब्द भी हमसे दौड गया।

'ईं नारह् ओ ईं नारहज़नो, नीज इ सहरा।
अशजारो कोहस्तानो शबो - रोज़ो - नगारा॥
ईं मारो-माशूक वसालो दमे हिजराँ।
बाद अजमो गगा-जलो अबरो-महे-ताबाँ॥
काग़ज़ क़लम चशमत व मज़मून् तो खुद जाँ।
ईं जुमलगी रामस्त मरा दा मरा दाँ॥

'भावार्थ,—यह गरज, यह गरजनेवाला और यह अरण्य, वृक्ष, पर्वत, रात, दिन, भ्रमर का जुल्फ (बाल) और प्यारा, मिलाप और विरह का समय, वायु, तारे, गगाजल, बादल और चमकता हुआ चाद, कागज, लेखनी और मेरे नेत्र विषय और ऐ प्यारे, तू स्वय, यह सब के सब राम ह, ऐसा मुझे तू समझ, ऐसा मुझे तू समझ।

हमारा पता पूछो, तो यह है

'निशानम बेनिशा मे दा। मकानम दर क़लब में खा॥
जहाँ दर दीदहअम पिन्हा। मरा जोयन्द गुस्ताखाँ॥'

'भावार्थ,—मेरा निशान बेनिशान समझ। मेरा स्थान अपने हृदय में देख। जगत् मेरी दृष्टि में छिपा है। मुझको गुस्ताख लाग अपने से बाहर ढूढते है।'

(२) **क्या राम आलसी है ?**

आत्म साक्षात्कार की अवस्था व स्थान

मन का मानसरोवर अमृत से लबालब (भरपूर) हो रहा है और आनन्द की नदी हृदय में से बह रही है। प्रत्येक रोम कृतकृत्य है। विष्णु के भीतर सत्त्वगुण इतना भरपूर हुआ कि समा न सका। उस सत्त्वगुण के सरोवर से चरणो द्वारा गगाजल बनकर सत्त्वगुण बह निकला। ठीक उसी प्रकार से इस समय—

नार (जल या सत्त्वगुण) में शयन करने वाला नारायण
तीर्थ (जलरूपी सत्त्वगुण) में रमण करने लाला } तीर्थराम
तीर्थो को रमणीय (शोभायुक्त) बनाने वाला } नारायण

सत्त्वगुण या आनन्द से भरपूर हो रहा है। उसका ब्रह्मानन्द समेटे से सिमटता नही। परमानन्द की सरिता या स्रोत बनकर यह तीर्थराम साक्षात विष्णु, पूर्णानन्द की धारा (नदी) जगत को कृतार्थ करने के लिये भेज रहा है। खुशहाली (प्रसन्नता)

फारगुलवाली (विश्रामता) की वायु ससार को भेज रहा हैं। कौन कहता ह कि वह बेकार (अकमण्य) बठा है ? मैं सच कहता हूँ, इस तीथराम के दशनों से कल्याण होता है, वह गगा है, वह तुर्याराम हैं, वह राम है—

धन्य भूमि धन्य काल देश वह।
धय माता, धन्य कुल, धन्य समघी
धन्य धय लोचन करिहे दरस जो।
राम तिहारो सवज्ञ समघो॥

मेरो

वाको अदायें देखो! चँद का सा मुखडा पेखो (टेक)
वायु में, बहते जल में, बादल में मेरी लटकें।
तारों में, नाजनो में, मोरों में मेरी मटके॥ (टेक)
चलना ठुमक-ठुमक कर बालक का रूप धरकर।
घूघट अबर उलट कर, हँसना यह बिजली बनकर॥ (टेक)
शबनम गुल और सूय, चाकर हैं तेरे पद के।
यह आनबान सजधज, ऐ राम! तेरे सदके॥ (टेक)
जगत सारा वार डारूँ, राम तेरे नाम पर।
इन्द्र ब्रह्मा वार डारूँ, राम तेरे धाम पर॥ (टेक)

मैं कैसा खूबसूरत हूँ! मेरी मोहनी (सुहावनी) सूरत, मेरी मोहनी मूरत, मेरी झलक, मेरी ललक, मेरा हुसन (सौन्दय), मेरा जमाल (शोभा, कान्ति), इसको मेरी आख के अतिरिक्त किसी और की आख देखने की ताब (शक्ति, साहस) नही ला सक्ती।

आजकल लक्ष्मणझूले से परे गगातट पर पवतो में निवास है। गगा क्या है ? विराट भगवान् परमात्मा का हृदय परमात्मा के हृदय या छाती पर परमात्मा का आत्मा बनकर विश्राम करता हूँ।

लेखक, राम"

सासारिक लोग जिन्होने राम की स्थिति नही समझी थी, उनके ऊपर विक्षिप्तता का आरोप लगाया। मायासक्त पुरुषो का राम की इस विक्षिप्तता का क्या पता था ? वे तो 'कामिनी-काञ्चन के दास होते है। उनकी सारी भाग-दौड सासारिक ऐश्वय-समृद्धि तक हा केन्द्रीभूत रहती हैं। भला, वे इस ब्रह्मानन्द की मस्ती का अनुमान किस प्रकार लगा सकते ? इसी पागलपन में गुरु नानकदेव द्वारा

थे। उनके पिता ने उपचार के निमित्त वैद्य बुलवाया। भोले वैद्य ने उनकी नाडी पकडी, तो उन्हाने वैद्य महोदय से कहा, 'भाला वैद न जाणई करक करेजे माहि।' राम ने इसका समाधान इस प्रकार किया है—

(३) क्या राम विक्षिप्त है ?

ससार के बुद्धिमान व्यक्तियो को यह शिकायत है कि 'राम उदासी की बीमारी से पीडित है। वह विक्षिप्त हो गया है।' अरे मिल और डैविड ह्यूम के अनुयायियो! अरे बुद्धिमानो और तार्किको! क्या तुम लोगो ने कभी इस पागलपन का रसास्वादन किया है? क्या तुम लोगो ने कभी इस मूढता के भीतर प्रवेश किया है? कदापि नही।

अत तुम सब अल्पज्ञो का इस अलौकिक पागलपन पर मिथ्या आरोप लगाने का कोई अधिकार नही है। अरे तुम सब तो दुनियावी सुखो के पीछे पागल बने हो! जाओ, शराब तुम्हारा इन्तजार कर रही है, वायलन और पियानो तुम्हे पुकार रहे है। मजेदार थालियाँ तुम्हारे लिये तैयार की गई है। सुन्दर रमणिया तुम्हारा स्वागत करने को खडी है, जाओ, वही जाओ। लेकिन मेरी बात भी तो सुन लो। इस मदिरा में इन सुन्दरियो में इन वायलिनो और पियानो में, इन मछलियो और मुर्गों में, तात्पर्य यह इन इन्द्रियो के नाना विषयो में क्या रखा है? पर तुम सब इन्ही के गुलाम बने हो। प्यारो! ये समस्त सासारिक सुख राम के पागलपन की हल्की-फुल्की झाकी मात्र है।

क्या तुम लोगो को अपनी इस दशा पर लज्जा नही आती? तुम सब शराब से कृत्रिम पागलपन उधार लेते हो। क्षणिक सुख की प्राप्ति के लिये तुम अपने को रक्त, मास और अस्थियो पर बलि कर देते हो, स्त्रियो के बन्दी बन जाते हो, क्षणिक सुख के लिये इन्द्रिय विषयो के शिकार हो जाते हो। यहा आओ! राम तुम्हें वह आनन्द प्रदान करेगा, जो तुम्हें सम्राट भी न दे सकेगा। राम पागल तो है किन्तु बात विवेक की करता है।

धन के लिये दीवाना होना परम अशोभनीय है इसकी प्राप्ति के लिये भी रोना पडता है और नष्ट होने पर भी चीत्कार करना पडता है। अपने आत्मस्वरूप रूपी वास्तविक धन की चिन्ता करो। यहा भय में अपना मास गलाने की मनाही है। यहा अन्य लोगो की दृष्टि से कोई वस्तु नही आँकी जाती और प्रत्येक पग पर यह आशका भी नही रहती कि लोग क्या कहेंगे? अमुक अमुक व्यक्ति इस सम्बन्ध में क्या सोचेंगे? ऐसे दुर्बल विचारो का परित्याग कर दो। अपनी कालातीत सत्ता में निवास करो।

हा, राम विक्षिप्त कहा जा सकता है, क्योंकि उसका आसन (निवास-स्थल) बुद्धि से परे है। व्यर्थ के संसार की सृष्टि करना और उसी में खो जाना, क्या पागलपन नही है ?

मुझे अन्य किसी भी वस्तु की आवश्यकता नही है। मैं पागलपन चाहता हूँ, अलौकिक पागलपन। मैं केवल पागलपन चाहता हूँ।'

उपर्युक्त अवतरण में राम की ब्रह्मानुभूति की मस्ती गंगा जी की लहरो की भाँति तरंगित हो रही है। वे इतने करुणार्द्र हो गये है कि उस आनन्द की मस्ती में जन-जन को निमज्जित कर देना चाहते है। साथ ही उन्होने उन अविद्याग्रस्त लोगों की अच्छी खबर ली है, जो माया के विविध आकर्षणो के पीछे लट्टू हैं। वे स्वय तो अन्धे है दूसरा को मार्ग दिखाने का प्रयास करते है। वे विषय भोगो में बुरी तरह लिप्त है। भोगो को जीवन का परम पुरुषार्थ समझ बैठे है। किन्तु भोग भोगने से शान्ति नही प्राप्त होती। भोगो का चक्र अनवरत चलता रहता है एक के बाद दूसरा आता रहता है। उनके उपभोग में क्षणिक सुख की अनुभूति है, तदनन्तर दु:ख के अपार सागर में पुन डूबने-उतराने लगते है। अज्ञानी जीव इसी प्रकार आवागमन के चक्कर में पडे रहते है। वे कभी-कभी अपने पुण्यों के फल से स्वर्गादिक लोगो को प्राप्त कर, वहा के विशाल भोगो को भोगकर फिर मर्त्यलोक में आते है अथवा अपने पापो के कारण निम्न योनियो में भटकते रहते है। राम को ऐसे लोगो पर अत्यधिक करुणा होती है। इसी से वे जब विषयो की विभीषिका का चित्रण—'तुम लोग रक्त माम और अस्थियो पर अपनी वलि देते हो'—कहकर करते है तो श्रीमदभागवत के एकादश स्कन्ध के छब्बीसवें अध्याय के इक्कीसवें श्लोक की स्मृति स्वत कौंध जाती है—

'त्वड्मासरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ।
विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम्॥'

'अर्थात यह शरीर त्वचा, मास, रुधिर, स्नायु, मेद मज्जा और हड्डियों का ढेर और मलमूत्र तथा पीव से भरा हुआ है। यदि मनुष्य इसमें रमता है तो मलमूत्र के कीडों में और उसमें अन्तर ही क्या है ?

ध्यान रखना चाहिये कि अध्यात्म-सोपान की पहली सीढी वैराग्य है। बिना वैराग्य प्राप्ति के अध्यात्म मार्ग पर अग्रसर होना टेढी खीर है। इसीलिये अपनी विक्षिप्तता के बहाने सासारिक व्यक्तियों के लिये राम ने बडे पते की बात कही है।

× × ×

राम ने जिज्ञासुग्रा को ग्रपनी अनुभूति की एक महत्त्वपूण बात बताकर परमात्मा में उनकी ग्रास्था और दृढ विश्वास उत्पन्न करने की चेष्टा को है। उनका कथन है, "अरे सत्य क खोजियो राम तुम्हें पूण ग्राश्वासन देता हूँ कि यदि तुम ग्रहर्निश ग्रपने को ग्राध्यात्मिक चिन्तन में रत रखते हो, तो तुम्हारी शरीर-सम्बन्धी समस्त ग्रावश्यकताग्रा की स्वत पूर्ति होती जायेगी।

"यह ससार का नियम है कि जब कोई व्यक्ति ऊचे पद पर प्रतिष्ठित होता है, तो उसके शारीरिक श्रम में ग्रपने ग्राप कमी ग्रा जाती ह। उदाहरणार्थ, जब न्यायाधीश ग्रपने ग्रासन पर विराजमान होता है तो न्यायालय के कार्य ग्रपने ग्राप होने लगते हैं। चपरासी उसकी सेवा में उपस्थित हो जाता है, मुद्दई मुद्दालेह उसके सामने खड कर दिये जाते हैं, वकील उनकी पैरवी के लिये उपस्थित हो जाते हैं। इसी प्रकार जो परम सत्य में प्रतिष्ठित हो चुका है, ग्रात्मानन्द के नशे में मस्त है उसके सारे काय ग्रपने ग्राप होते जाते ह।

राम उसी परम सत्य में मनसा, वाचा, कमणा प्रतिष्ठित हो चुके थे। ग्रत उनके समस्त काय ग्रदृष्ट प्रेरणा से ग्रपने ग्राप हो रहे थे। उन्हें उन कार्यों की पूर्ति के लिये किसी प्रकार के श्रम की ग्रावश्यकता नही थी। वे मन, वाणी, बुद्धि ग्रादि क स्वामी ग्रौर द्रष्टा बन चुके थे। ग्रत वे ग्रनासक्त भाव से, साक्षी भाव से निर्दिष्ट कार्यों को करते हुये भी, उन सबसे ग्रस्पृश्य थे। काई विरला ही व्यक्ति उनकी इस ऊँची वृत्ति को समझने में समथ हो सकता था।

तपोवन में ब्रह्मपुरी नामक स्थान में ग्रात्म साक्षात्कार करने के ग्रनन्तर राम की वृत्ति नितान्त ब्रह्माकार हो गयी। उनका समस्त जीवन उपासनामय हो गया। वे ग्रात्मा में स्थित होकर ग्रात्मा द्वारा ही ग्रात्मा की उपासना करते थे। राम के कुछ तत्कालीन पत्र उनकी मनोदशा पर सुन्दर प्रकाश डालते ह—

"हरद्वार, १६ सितम्बर, १८६८

ॐ

'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सव सशया।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥'

'ग्रर्थात, उस परम स्वरूप के दर्शन से हृदय की सब ग्रन्थिया खुल जाती ह, सारे सशय दूर हो जाते है ग्रौर सब कर्म नष्ट हो जाते ह।'

बाहर जिस ग्रोर ध्यान करता हूँ, प्रत्येक परमाणु से इस झकारे की गूज उठती है—तत्वमसि (तू ही है, तू ही है)। ग्रन्दर की ग्रोर मुख करता हूँ, ग्रर्थात् ध्यान देता हूँ, तो यह ढोल कुछ ग्रौर सुनने नही देता ग्रह ब्रह्मास्मि, ग्रह ब्रह्मास्मि।

मैं कहा हूँ, क्या हूँ ? मेरे महला में कौन, कब, क्या, इत्यादि चूॅ-चरा (क्या, कब) को दखल नही। मन को बन्दरा ने छीन लिया, बुद्धि गगा में बह गयी। चित चीलें चाब गयी। अहकार मछलियो को भेंट हुआ। पापो को हवा उडा ले गयी। सारा ससार जीत लिया। मेरा अटल राज बडे-बडे प्रताप।

'नास्ति ब्रह्म सदान दर्मिति मे दुर्मति स्थिता ।
क्व गता सा न जानामि यदाह् तद् वपु स्थित ' ॥

'अर्थात मैं ब्रह्म नही हूँ, ऐसी मेरी बुद्धि गधे की थी। वह ख्याल अब कहाँ छिप गया, किधर उड गया, कही दृष्टि में नही आता।

'चशमे लैला हूँ दिले कैस व दस्ते फरहाद।
बोसा लेना हो तो ले ले, है लबे-जाम मेरा॥'

अर्थात, मैं लैला की आख हूँ, मजनू का दिल और फरहाद का हाथ। मेरा ओष्ठ समीप है, यदि चूमना है, तो चूम लो।' '

एक अन्य पत्र इस प्रकार है—

'लाहौर २८ सितम्बर, १८६८

'आ मेरे भगिया ! तू आ भग पी जा।
आ मेरे भगिया ! निशग भग पी जा॥
भर भर देनियाँ मैं भग दे प्याले।
निशग भग पी जा, निहग भग पी जा॥'

दुनिया रही, पार्वती है। भग हर वक्त घुट रही है। शिव की आख खुली, प्याला भट हाजिर हुआ। बल्कि इसको भग या शराब कहना भी ठीक नही। यह तो शराब का नशा है, यह ता भग की मस्ती है। आपको मेरी क़सम, सच कहो इस मस्ती और आनन्द के बिना जगत तीन काल में कभी कुछ और भी हुआ है ? कदापि नही।

मैं यह नशा, यह मस्ती शिव भला क्या सोचू ? क्या समझू ? राम क्या सोचे-समझे ?

(१) सोचना नामालूम (अज्ञात) वस्तु के लिये होता है, उसे सब मालूम (ज्ञात) है।

(२) सोचना ग़ायब (अदृष्ट) वस्तु के लिये होता है, उसके लिये सब हाज़िर (दृष्ट) है।

(३) सोचना किसी मुराद (इष्ट) की प्राप्ति के लिये होता है, उसकी समस्त

मुरादें (इच्छायें) सदा प्राप्त हैं। जिसे ससार में सात्र-समझ और बुद्धि कहते ह, यही महान् मूर्खता है।

जित देखू तित भर्या जाम। पी पी मस्ती आठों याम॥
नित्य तृप्त सुखसागर नाम। गिरे बने हम तो आराम॥
देखा सुना खपाना काम। तीन लोक में है विश्राम।
क्या सोचे क्या समझे राम। तीन काल जिसको निज धाम॥

महावाक्य

(१) घुंड कढ के क्यों चन्न मुह उत्ते, ओहले रह्यों खलो ?
फकीरा ! आपे अल्लाह हो ! (टेक)
(२) तेरे घट बिच राम वसेंदा, क्यों पया भरना हैं तो ? (टेक)
(३) राम रहीम सब बदे तेरे, तैनू किस दा भो ? (टेक)
(४) तू मौला, नहीं बदा चवा, झूठ दी छड बेखो। (टेक)
(५) छड मौहरा सुन राम दोहाई, अपना आपन कोह ? (टेक)
राम—

अर्थात (१) अपने चन्द्रमुख पर घघट डाल कर, अकेला क्यो खडा है ?
ऐ फकीर तू स्वय अल्लाह (परमात्मा) है।

(२) तेरे हृदय में राम का स्वय निवास है, फिर तू उसमें घास-फूस क्यो डाल रहा है ?

ऐ फकीर, तू स्वय अल्लाह ह।

(३) राम और रहीम सब तेरे बदे ह, फिर तुझे किसका भय है ?

ऐ फकीर, तू स्वय अल्लाह है।

(४) तू स्वय स्वामी है, नौकर-चाकर नही है। झूठ बोलने की आदत छोड दे।

ऐ फकीर, तू स्वय अल्लाह है।

(५) राम की दुहाई है, द्वैतभाव का विष त्याग दे। (द्वैतभाव के चक्कर में पडकर) अपने आपको मत मार।

ऐ फकीर तू स्वय अल्लाह हैं।
—राम"

इन्ही दिनो राम ने अपने गुरु को एक ऐसा पत्र लिखा, जिसका लेखक अपने को नही, बल्कि अपने गुरु को ही बना डाला। वास्तविक बात यह है कि उनकी ऐसी व्यापक अद्वैत-दृष्टि हो गयी थी कि समस्त सृष्टि के बीच उन्हें एक परम

चैतन्य सत्ता की ही प्रतीति और अनुभूति होती थी। इस पत्र के शब्द शब्द से उनकी आनन्दानुभूति व्यक्त हो रही है। विराट प्रकृति के अग प्रत्यग में राम को सच्चिदानन्द का नृत्य दिखाई पड रहा है। राम की दिव्य दृष्टि में सब कुछ प्रत्यक्ष दिखलाई पड रहा है। पत्र इस प्रकार है—

"लेखक श्री धन्नाराम

अज लामकाँ (स्थानातीत से)
लाहौर, १ अक्तूबर, १८९८

'मा रा नकुनेद याद हरगिज। मा खुद हस्तेम याद बे मा॥'

अर्थात्, मुझको आप याद कदापि नही करते, अथवा न करे, हम स्वय अपने अहकार से रहित याद-स्वरूप हो गये है।'

'रो के जो इल्तमास की दिल से न भूल्यो कभी।
दुई मिटा, अहद बना, उसने भुला दिया कि यू॥'

'भावार्थ, मैंने रोकर प्रार्थना की कि मुझे चित्त से कदापि न भूलिये। पर उत्तर में उसने अपना द्वैतभाव मिटा दिया और इस प्रकार से मुझे और परिच्छिन्न अपने आप दोनो का नितान्त भुला दिया।

आज तो नाचने का चित्त चाहता है—

नाचू मैं नटराज रे, नाचू मैं महराज। (टेक)
(१) सूरज नाचू, तारे नाचू, नाचू बन महताब रे। (टेक)
(२) तन तेरे में दम हो नाचू, नाचू नाडी नाड रे। (टेक)
(३) बादर नाचू, वायू नाचू, नाचू नदी और नाव रे। (टेक)
(४) जरह नाचू, समुद्र नाचू, नाचू मोघर काज रे। (टेक)
(५) गीत राग सब होवत हरदम, नाचू पूरा साज रे। (टेक)
(६) घर लागो रग, रग घर लागो, नाचू पा पा बाज रे। (टेक)
(७) मधुआ लब, बदमस्ती वाला नाचू पी पी आज रे। (टेक)
(८) राम हि नाचत, राम हि वाचत, नाचूँ हो निरलाज रे। (टेक)

राम आत्मस्वरूप में स्थित होकर नाना प्रकार की आत्म-क्रीडाएँ कर रहे है। वे द्रष्टा बनकर चित्त को आज्ञा देते है, और वह उन्हें अपना नाच दिखाता है। स्वय उसका नाच देखते हुये भी निर्विकार और सकल्पविहीन ह।

उनकी यह मस्ती उस पराकाष्ठा तक पहुँच गई, कि वे अपने शरीर की अनेक बीमारियो के बीच भी खुशियाँ मनाते हैं और उन बीमारिया मे आनन्द और

उल्लास का अपूर्व नृत्य देखते हैं। उन्होंने वेदान्त के शाश्वत आनन्द को अपने व्यावहारिक जीवन में व्यवहृत कर शास्त्रीय ज्ञान को अपने शरीर में मूर्तिमान स्वरूप दिया और ब्रह्मज्ञानियों के सम्मुख जीवन्मुक्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण रखा। उनकी कथनी, करनी और रहनी की यही एकरूपता बड़े-बड़े आध्यात्मिक साधकों का चित्त अपनी ओर बलात आकर्षित कर लेती है। साधकगण उनकी इस स्थिति से बलवती प्रेरणा ग्रहण करते हैं। लेखक को इस प्रकार के कतिपय सन्तों के दर्शन और सत्सग का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिन्होंने राम की मस्ती से प्रेरणा ग्रहण कर अपने साधक-जीवन को नये ढाँचे में ढाला है। अब आप राम के ही शब्दों में उनकी अनुभूति सुनें—

"६ नवम्बर, १८९८

हमारे शरीर रूपी महल में तन्दुरुस्ती (स्वास्थ्य) रूपी कचनी (नर्तकी) को अपना राग-रग सुनाते और तमाशा दिखाते बहुत देर हो गई थी। अब ज्वर, उदरपीडा, श्वास रोग और खाँसी रूपी भाँडो के मुजरे (नाच) की बारी थी। सो उन्होंने एक पूरा सप्ताह अपनी शोरगुलवाली नकलो से धूम मचाये रखी। कालिज जाना बन्द रहा।"

इस प्रकार उनके वास्तविक आनन्द की अभिवृद्धि दिन प्रतिदिन होती गयी। मिशन कालिज की नौकरी में तबदीली की सम्भावना है, पर वे शिवजी के समान अविचल समाधि में स्थित हैं। भूमा राज्य में स्थित हैं। 'यो वै भूमा तत्सुखं नाऽल्पे सुखमस्ति (भूमा पद ही महान् आनन्द है अल्प में सुख नहीं है) के वास्तविक रहस्य को समझ गये थे। उनके एक पत्र से उनकी स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है—

"२७ नवम्बर, १८९८

शरीर में रेशा (जुकाम) अभी है। मिशन कालिज की नौकरी में शायद कोई तबदीली शीघ्र पड जाय। असली (वास्तविक) आनन्द दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है—

'मरे न टरे न जरे हरे तम, परमानन्द सो पायो।
मगल मोद भरयो घट भीतर, गुरु श्रुति 'ब्रह्म त्वमेव' बतायो॥
लय मुझमें सब गयो रहे बाकी, वासुदेव सोऽहं कर झाकी।
टूटी ग्रन्थि अविद्या नाशी, ठाकुर सत्य राम अविनाशी॥'

प्रारब्ध-कर्म का भोग अवश्यम्भावी होता है। इसके अनुसार सुख-दुख, रात-दिन की भाँति बरबस आते रहते हैं। किन्तु राम अपने को प्रारब्ध कर्मों का स्वामी मानते है। उनकी गरज हो तो उनके (राम के) पास आयें। अक्षय कोषागार एव अतुल धन-सम्पत्ति के बादशाह तो ससार में बहुत से आये हैं, पर 'बिना कौडी का बादशाह' होने का श्रेय राम को ही प्राप्त हैं। वे घनघोर से घनघोर आर्थिक विपन्नता के बीच अपने को परम आनन्दित मानते ह। एक पत्र से उनकी इस ऊँची भावावस्था का पूरा बोध हो जाता है—

" ११ दिसम्बर, १८९८

कृपापत्र मिला, जिसमें लिखा था कि 'पता नही आप क्या ख्याल करते रहते हैं।' निश्चय जानो कि तरह आपके गुजरावाले शरीर को पता नही कि तीर्थराम क्या ख्याल करता है, ठीक उसी तरह आपके लाहौर वाले शरीर को भी कुछ पता नही कि राम क्या ख्याल करता रहता है। राम में कोई ख्याल दृष्टि में नही आता, कोई ख्याल हो तो दिखाई दे। निश्शक स्वरूप और निमल चिदाकाश में ख्याल रूपी धूल कहाँ ?

राम—चिदाकाश निमल घन माँहि।
फुरना धूल कदाचित् नाँहि॥

पत्र लिखने में देर का एक कारण यह है कि कोई काड, लिफाफा पास नही था और कोई पैसा इत्यादि भी पल्ले नही था। आज एक पुस्तक में मे तीन टिकट मिल गये और आपका उत्तर मागता हुआ काड सम्मुख मौजूद पाया। पत्र लिखा गया है। यही हाल खाने पाने सम्बन्धी पदार्थों (आटा, घत आदि) के विषय में रहता है। आज लम्प में तेल नही है, इसलिये आज घर नही ठहरेंगे। नगर के चारो ओर सैर की जायेगी। दोनो हाथो में लडडू हैं।

पूर्वोक्त वृत्तान्त से यह नतीजा न निकाल लेना कि हाय! हाय!! राम बडा तगदस्त (धनहीन) और दुखी रहता है कदापि नही। इस बाह्य निधनता और तगी के कारण से ही आत्यन्तिक (परले सिरे की) अमीरी अर्थात धनाढ्यता और बादशाही कर रहा है। यह पाठ पक गया है कि जब किसी अथ को सिद्ध करने के साधन उद्यत न हों, तो उसकी आवश्यकता ही प्रतीत नही होती (और वास्तव में जब साधन पास न हो, तो आवश्यकता का प्रतीत होना केवल झूठी भूख ह)। पहले तो बडी चिन्ता के साथ आवश्यकताओं को पूरा करने का यत्न हुआ करता था, पर अब आवश्यकतायें बेचारी स्वय पूरी होकर सम्मुख आ जायें, तो उन पर दृष्टि पड जाती है नही तो उनके भाग्य में राम का ध्यान कहाँ ? प्रारब्ध कम

और कालरूपी सेवका को सौ बार आवश्यकता हो, तो आनकर राम बादशाह के चरण चूमें। नही तो उस शाहशाह को क्या परवाह है इस बात की कि अमुक सेवक मुजरा कर गया है कि नही।

राम—सौ बार रज होये तो धो धो पियें क़दम।
क्यों चर्ख़ों मिहरो-माह पै मायल हुआ है तू॥
खजर की क्या मजाल है कि इक ज़ख्म कर सके।
तेरा ही खयाल कि घायल हुआ है तू॥

तीथराम जी की इस विलक्षण स्थिति के सदभ में हम उनके एक पत्र का उद्धरण देकर इस प्रसग का समाप्त करते हैं—

" २७ दिसम्बर, १८६८

छुट्टियो में अभी तक तो कहो शरीर के जाने की आशा नही, कुछ पता भी नही—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्ति के।
तदन्तरस्य सवस्य तदु सवस्यास्य बाह्यत ॥

अर्थात्—, 'हम चल हैं, हम चल है नाहीं, हम नेड़े हम दूर।
अन्दर सबके चानन हम ही, बाहर हम हैं नूर।' "

षष्ठ अध्याय

त्यागेनैके अमृतत्वमानशु

(१८९८-१९०२)

सासारिक दृष्टि से बुद्धिमान् समझे जाने वाले व्यक्ति वेदान्तिया को अकमण्य स्वप्नद्रष्टा मात्र समझते ह। वे उन्हें ससार के लिये एकदम निकम्मा जानते ह और अपने को सतत क्रियाशील। किन्तु हमारी राय में वे बुद्धिमान व्यक्ति क्रिया शीलता का वास्तविक अभिप्राय नही समझते। वे अपनी सीमित वुद्धि से किसी व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक क्रिया को कम समझते ह, पर कदाचित उन्हें यह भान नही है कि कम के सम्बन्ध में केवल इतना ही समझना, उसके अति सीमित रूप को समझना है।

कम 'कृ' धातु से बना है, जिसका अथ 'करना' होता है। मोटे रूप से व्यष्टि एव समष्टि के समस्त क्रिया कलाप इसके अन्तगत रखे जा सकते हैं। व्यक्तिपरक कम को हम तीन भागो में विभक्त कर सकते हैं—शारीरिक कम, मानसिक कम, और आध्यात्मिक कम। मनुष्य का हँसना-बोलना, खाना-पीना, उठना बठना, स्पश करना, गमन करना, देखना, सुनना आदि शारीरिक कर्म के अन्तगत रखे जा सकते ह। मानसिक कम शारीरिक कर्म की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म ह। मनुष्य का सोचना, स्मरण करना, तक वितर्क करना, कल्पना करना आदि मानसिक कम कहे जा सकते ह। आध्यात्मिक कम, मानसिक कर्म की अपेक्षा भी सूक्ष्म ह। साधना द्वारा सूक्ष्म की हुई साक्षित्व बुद्धि द्वारा ही इस कर्म का सम्पादन सभव है। यह कम परिभाषा की सीमा में नही बाँधा जा सकता। साकेतिक रूप स इसकी परिभाषा इस ढग से की जा सकती है—'समस्त जड चेतन के अन्तगत एक ही अविनाशी सत्ता अथवा सत्, चित्, आनन्द की अनुभूति के निमित किय हुये कम आध्यात्मिक कर्म है।' यह कम अत्यन्त व्यापक है। समस्त मानव-जाति के महान् पुरुषो की आध्यात्मिक साधनाएँ इसी कर्म के अतगत् रखी जा सकती ह। ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग, प्रेमयोग, लययोग एव कमयोग सभी इसके दायरे में आ जाते ह।

समष्टि कर्म का अभिप्राय सृष्टि के सामूहिक कर्म से है। ग्रह-नक्षत्रो, चन्द्रमा

सूर्यादिको का बनना बिगडना, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि का उत्पन्न, स्थित एव लय होना, वायु का चलना, अग्नि का जलना, सूय का तपना, भयकर उल्कापातो का होना आदि समष्टि कर्म है ।

जो व्यक्ति ब्रह्म के स्वरूप—आत्मा का साक्षात्कार—कर लेता है, उसे परम सत्य की अनुभूति हो जाती है। वह उस शाश्वत सत्ता की चिरन्तन अनुभूति में तन्मय हो जाता है जो सवव्यापक साथ ही सबसे परे है। उसकी व्यष्टि भावना सदैव के लिए मिट जाती है और साथ ही उसकी व्यक्तिगत इच्छायें सर्वथा लुप्त हो जाती है। ऐसा व्यक्ति आध्यात्मिक कर्मों के द्वारा अपने व्यष्टि रूप को समष्टि रूप में निमज्जित कर दता है। ऐसे ब्रह्मज्ञानी पुरुष को समस्त सृष्टि के व्यापार रगमच के अभिनय की भाति भासित होने लगते हैं और वह स्वय अपने को अभिनेता के अतिरिक्त और कुछ नही जानता। वह ससार के रगमच पर अपना अभिनय सुन्दर रीति से करता है। उसे ससार की किसी वस्तु स न राग होता है और न द्वेष। उसकी यह महती क्रियाशीलता तथाकथित बुद्धिमाना की दृष्टि में अकमण्यता प्रतीत होती है। उन्हें यह अनुभव नही हो सकता कि ब्रह्मज्ञानी पुरुष, अपने ही साढे तीन हाथ के शरीर का नही बल्कि अनन्त ब्रह्माण्डो के निखिल कर्मो का 'महाकर्त्ता बन गया है, पर साथ ही 'महा अकर्त्ता' भी। वह 'महाभोक्ता' और 'महा अभोक्ता' एक साथ है। ब्रह्मज्ञानी की यह विलक्षण स्थिति ब्रह्मज्ञानी ही समझ मकता है। कहना न होगा कि राम अब इसी स्थिति में थे।

पहले इसका विस्तृत विवरण दिया जा चुका है कि राम ने तपोवन में ब्रह्म की प्रत्यक्षानुभूति की। वहा से लौटने के पश्चात् उनका व्यष्टि भाव सवदा के लिये विलीन हो गया। वे एकदम अन्तर्मुख हो गये। आत्मा में उनकी अखण्ड प्रीति और रति हो गई। मिशन कालेज में छ घण्टे प्रतिदिन दना उन्हें असह्य प्रतीत होने लगा। इस ससार में राम का आगमन लक्ष्य विशेष की प्राप्ति के लिये हुआ। अत सवशक्तिमान और सर्वान्तिर्यामिन् परमात्मा समय की आवश्यकता के अनुसार उनके जीवन में स्वत तदुनुकूलन विधान बनाता गया। उसने उस समय ऐसी परिस्थियो का निर्माण किया कि राम को मिशन कालेज से अपना सम्बन्ध विच्छेद करना पडा।

उन दिनो भारत में जितने भी क्रिश्चियन मिशन की शिक्षण-सस्थायें थी, शिक्षा देने के साथ-साथ उनका प्रमुख उद्देश्य भारतीय विद्यार्थियो को अपने धर्म में परिवर्तित करने का भी था। कोई भी ऐसा काय जो इस उद्देश्य की पूर्ति में बाधक समझा जाता था, वहाँ के प्रचारको एव कर्मचारियो की दृष्टि में अवाछनीय

समझा जाता था। यह उनकी कठोर धर्मान्धता थी। ईसाई धर्म के संस्थापक 'क्राइस्ट,' ऐसी धर्मान्धता के पक्ष में नहीं थे। वे अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति अत्यन्त सहिष्णु और उदार थे। किन्तु ईसाई धर्मावलम्बियों ने अपनी इस दुराग्रहपूर्ण नीति से उसे संकीर्ण बना डाला। कहना न होगा कि राम लाहौर के माने-जाने सफल अध्यापक थे। उनकी अध्यापन-शैली के आकर्षण से झुंड के झुंड छात्र मिशन कालेज में प्रविष्ट होते थे। उनकी कक्षा में तो छात्रों की और भी अधिक भरमार रहती थी। मिशन कालेज के अधिकारियों के लिये छात्रों का अधिक भरती होना, उनके लिये मुहमांगा वरदान था, क्योंकि उसमें नये रंगरूटों के फँसने के लिये काफी गुंजाइश थी। किन्तु राम उनकी लक्ष्य सिद्धि में अत्यन्त बाधक प्रतीत हो रहे थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि वे अपनी कक्षाओं में वेदान्त के अमृतोपदेश से छात्रों के जीवन में नया प्राण फूँक देते थे, उनकी शिराओं में वेदान्त का अमृत भर देते थे, उनके रक्त के बिन्दु बिन्दु में हिन्दुत्व के प्रति पूर्ण आस्था संचारित कर देते थे एवं उनके मन-बुद्धि में वेदान्त के प्रति गंभीर अनुराग उत्पन्न कर देते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि ईसाई धर्म में दीक्षित होने वाले छात्रों की संख्या दिन प्रतिदिन कम होने लगी। मिशन कालेज के अधिकारीगण इस कमी का कारण राम को समझने लगे और राम उनकी आंखों में किरकिरी की तरह चुभने लगे। अतः वहां के अधिकारियों ने राम को बताया कि जो प्रोफेसर यहां से हट गये थे, वे पुनः कार्य करने के लिये वापस लौट रहे हैं। ऐसी स्थिति में उन्होंने राम को यह सलाह दी कि आप किसी अन्य संस्था में काम ढूंढ लें। इस प्रकार राम की मुराद परमात्मा ने अपने विचित्र विधान द्वारा पूरी की। उनके चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं आई, बल्कि इसके विपरीत वे परम आनन्दित हुए। अतः उन्होंने १८९९ के जनवरी महीने के प्रारम्भ में अपने पद भार से त्याग-पत्र दे दिया। उन्हें तुरन्त ही गवर्नमेण्ट ओरियण्टल कालेज में गणित विषय की रीडरशिप प्राप्त हो गयी। वहां उन्हें केवल दो घण्टे का कार्य था। शेष समय उन्हें स्वाध्याय, मनन चिन्तन, सत्संग के लिये मिलने लगा। छात्रों की परीक्षा निकट थी, अतः मिशन कालेज के अधिकारियों के अनुरोध से कुछ महीने तक एकाध घण्टे वहाँ भी पढ़ा देते थे।

१८९९ के फरवरी महीने में मुरारीवाला (मुरालीवाला राम की जन्मभूमि) में उनके दूसरे पुत्र, ब्रह्मानन्द का जन्म हुआ। भक्त धन्नाराम ने इसकी सूचना राम को दी। उन्होंने उस पत्र के उत्तर में अपनी मनोवृत्ति का इस प्रकार परिचय दिया है—

" २५ फरवरी, १८९९

आनन्द ! आनन्द !!

आपके एक पत्र से, जो गाल्वन (सम्भवत) सरदार साहबसिंह जी के हाथ का लिखा हुआ था, मालूम हुआ कि एक लडका (पुत्र) उत्पन्न हुआ है । समुद्र में एक नदी आन पडे, तो कुछ अधिकता नही हो जाती और यदि नदी कोई न गिरे तो कुछ न्यूनता नही हो जाती । सूय का जहा प्रकाश हो, वहा एक दीपक रखा गया तो क्या और न रखा गया, तो क्या । जो ठीक उचित है, वह स्वत पडा होगा । किसी प्रकार का शोक तथा चिन्ता हम क्या करें ? यह शोक या चिन्ता करना ही अनुचित है । हम ज्ञानी नही ज्ञान ह । देह से सम्बन्ध ही कुछ नही, देह और उससे सम्बन्धी जानें और उनका प्रारब्ध जाने । हमें क्या ?

मनोबुद्ध्यहकारचित्तानि नाह,
न च श्रोत्रजिह्वेन च घ्राणनेत्रे ।
न च व्योम भूमिन तेजो न वायु—
श्चिदानदरूप शिवोऽह शिवोऽह ॥

अभिप्राय—न मन हूँ न बुद्धि, न हूँ चित्त अहकार ।
नहीं कर्ण जिह्वा न चक्षु, निराकार ॥
न हूँ पृथिवी अप, तेज, नाकाश इव हूँ ।
चिदानन्द हूँ रूप शकर हूँ, शिव हूँ ॥"

अब राम की आय में पर्याप्त कमी हो गयी । किन्तु यह उनकी एक प्रकार का परीक्षा थी और वे उस परीक्षा में भली-भाति खरे उतरे । अब उनकी दृष्टि इन वस्तुओ से बहुत ऊपर उठ चुकी थी । अमीरी और गरीबी दोना उनकी दृष्टि में समान हो चुकी थी । उन्होंने इस सम्बन्ध में भक्त धनाराम को जो पत्र लिखा उससे उनकी त्यागवृत्ति अच्छी तरह ज्ञात हाती है—

६ माच, १८९९

आनन्द, आनन्द, आनन्द,

सविनय प्राथना यो है कि यहा कोई किसी प्रकार का अनुमान नही दौडाया गया । सत्तर से भी एक-दो कम रुपये मास के मिले थे । उसमें से काडी ता सचय करनी नही । जो-जो आवश्यकतायें सामने आयी भुगत गयी (पूण की गयी) । शेष आवश्यक्ताओ को जवाब देना पडा, अर्थात बिना पूण किय छोडना पडा । कुल (केवल) बारह रुपये घर भेजे गये, जहा आठ मनुष्य खाने वाले ह । *गृहस्थ स्त्रियों बच्चो और बूढो को अधिक आवश्यकता होती है और अत्यन्त*

हाजतमन्द (जरूरत वाले) होते हैं साधुओं की अपेक्षा कि जिनके लिए शहद की मक्खी (मधुकर) की न्याईं अनेक पुष्पों (घरों) से मधुकरी (भिक्षा) लाना भूषण है। और जो हो रहा है, वह अति उचित और ठीक हो रहा है।"

उपर्युक्त पत्र का अंतिम वाक्य 'और जो हो रहा है, वह अति उचित और ठीक हो रहा है' ध्यान देने योग्य है। यह वाक्य उनकी भावी त्यागवृत्ति और सन्यास-भावना का परिचायक है। उनके विशुद्ध अन्तःकरण में जीवन के अगले कार्यक्रम की ठोस रूप में तैयारी हो रही है।

प्रकृति देवी की रमणीयता और भव्यता बलात् उन्हें अपनी ओर खींच रही थी। उसकी गोदी में पहुँचकर राम अपने को बिल्कुल भूल जाते, शरीर भाव से नितान्त परे होकर आत्मस्वरूप में स्थित हो जाते थे। उनके साधन सम्पन्न चित्त में जो भी चेतना स्पन्दित होती थी उसे वे अपने आत्म-समुद्र की ही तरंग समझते थे। इसी भावना से राम ने १८९९ के ग्रीष्मावकाश में कश्मीर की यात्रा की। श्रीनगर में कुछ समय ठहरने के पश्चात उन्होंने वहाँ के प्रसिद्ध तीर्थस्थल अमरनाथ की यात्रा की। अमरनाथ की ऊँचाई साढे अठारह हजार फुट से भी अधिक है और वहां की यात्रा में लगभग पन्द्रह दिन लगते हैं। यात्रा के सामान के नाम पर राम के पास एक धोती और एक चादर मात्र थी। वहाँ की भीषण ठंड में इतने कम वस्त्र में निर्वाह करने से, उनकी महान् तितिक्षा अभिव्यक्त होती है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे शरीराध्यास से कितने ऊपर उठ चुके थे और मनोबल के कितने महान् धनी हो गये थे। राम ने कश्मीर-सौन्दर्य का जो विवरण प्रस्तुत किया है वह अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। बाह्य प्रकृति का तो उन्होंने मनोहारी चित्र-सा अंकित कर दिया है। अन्तःप्रकृति के नाना रागात्मक भावों के विश्लेषण में व बहुतों को पीछे छोड गये हैं। इसके अतिरिक्त वेदान्त का आह्लाद तो पंक्ति-पंक्ति से उद्‌भासित होता है। इस प्रसंग में कुछ उदाहरण देना समीचीन प्रतीत होता है—

मृदुल वायु! मनोरम दृश्य! झरनों का आनन्दमय कलकल निनाद! मनोरम भूमिखंड! विविध रंगों की बहार! पर्वतीय पीपल-वृक्षों की सुखद छाया!

'राम! तेरी यह निर्दयता ठीक नहीं। तेरे लिये प्रकृति ने अपने को नाना रंग-बिरंगों में रंजित किया है, नया परिधान धारण किया है और तू उसके ऊपर एक नजर डालने का भी अनुग्रह नहीं करता। अरे राम! इतने निर्दय मत बनो! आओ जरा इसे निहार तो लो।"

'राम एक मनोरम घास-स्थली से गुजर रहा है। यह विस्तृत हरा भरा मैदान है। प्रतिक्षण स्फूर्तिदायिनी वायु बह रही है। यद्यपि विस्तृत मैदान क्षितिज के समानान्तर नहीं है किन्तु यह किसी ऐसी सुन्दरी के नमित भाल के सदृश है जो

अपने ही सौन्दर्य के नशे में मतवाली होकर चन्द्रमा को आतंकित करने के लिये उसकी ओर घूर रही हो। घास क्या है ? यह सुन्दर, स्वच्छ, मुलायम गलीचा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहा देवराज इन्द्र को रिझाने के लिये परियाँ नाच करती है।'

'सुन्दर घास के मखमली बिछौने पर, शाल ओढे हुये, लम्बी पक्तियो वाला विशाल पवत कुम्भकरण की भाँति गहरी निद्रा में निमग्न है। यह 'घनसुषुप्ति अथवा आनन्दमयकोश का साक्षात् प्रतीक प्रतीत हो रहा है। इस घनसुषुप्ति अथवा आनन्दमयकोश का मैं ही (राम) प्रकाश अथवा आनन्द हूँ। अपने आप को जानने से पवतो और नदियो का स्वप्न-जगत् विलीन हो जाता है। अपने सत्य स्वरूप के जानने पर माया की छाया सदैव के लिये समाप्त हो जाती है।"

कश्मीर से लौटने के पश्चात राम की आध्यात्मिकता—पवित्रता सादगी, सयम त्याग, सतोष—की कीर्त्ति चारो ओर फैलने लगी। पुष्प खिल गया और उस पर भ्रमर आकर मँडराने लगे। राम के भावी पट्ट शिष्य नारायणदास (बाद में नारायण स्वामी) को भी उन सत्सगो में आने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। इसके पूर्व वे अमृतसर में राम का भाषण सुनकर अत्यधिक प्रभावित हो चुके थे। नारायण जी ने स्वामी दयानन्द के 'सत्याथ प्रकाश' का गम्भीर अध्ययन किया था। वे अत्यधिक तार्किक, शकालु और वितडावादी थे। उन दिनो वे लाहौर आकर अपने एक परम मित्र, लाला हरलाल कायस्थ के पास ठहरे थे। नारायण जी ने राम से मिलने की इच्छा अपने मित्र से प्रकट की। किन्तु लाला हरलाल नारायण जी के तार्किक स्वभाव से भलीभाति विज्ञ थे। अत उन्होने नारायण जी से वचन ले लिया कि सत्सग में वे मौनभाव से शान्तिपूवक बैठेंगे और किसी प्रकार का तर्क वितक नही करेंगे। शत स्वीकार करने के बाद दोना मित्र राम के सत्सग में प्रतिदिन सम्मिलित होने लगे। नारायण जी अपनी प्रतिज्ञा पर अटल थे। उन्होने कई दिनो तक राम के सम्मुख अपना मुह नही खोला। राम के सान्निध्य और दर्शन मात्र से उनका अन्त करण परिवर्तित होने लगा। नारायण जी राम के पास प्रतिदिन जाने लगे और उनसे उपनिषद् पढने लगे। नारायण जी ब्रह्मविषयक अनेक शकायें राम से किया करते थे। तीथराम जी शास्त्रज्ञान एव स्वानुभूति के सहारे उनकी शकायें निर्मूल कर दिया करते थे। अन्त में वे राम के आध्यात्मिक व्यक्तित्व से इतने अधिक प्रभावित हुये कि उन्होने अपने को उनके चरणो में सदा के लिये समर्पित कर दिया। इस प्रकार वे जिस आदर्श व्यक्ति की खोज में थे, उसकी उन्हें प्राप्ति हो गई। एक आध्यात्मिक दीपक की ज्योति मे

दूसरा दीपक प्रज्वलित हो गया। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन राम के चरणों में न्यौछावर कर दिया।

सन १८९९ के अन्त में राम भयंकर ज्वर से आक्रान्त हो गये। ज्वर के साथ ही साथ उनके पेट में भयानक दर्द भी होने लगा। दवा-दारू कुछ भी कारगर न हुई। एक बार आधी रात के लगभग उदर शूल की ऐंठन से वे बेहोश हो गये। यह बेहोशी इतनी देर तक रही कि लोगों ने उन्हें मृत समझ लिया। जब उन्हें चेतना आयी तो उनका सारा ज्वर और दर्द काफूर हो गया था। इस चमत्कारिक स्वास्थ्य-लाभ से, राम ने नारायण से कहा, "नारायण जी, राम का ऐसी भयानक बीमारी से मुक्ति पाना देश के लिये अत्यन्त शुभ है। राम का मस्तिष्क अनेक उच्च विचारों से परिपूर्ण है। यह कौन जान सकता है कि वह इसलिये अच्छा हुआ है कि वह अपने गंभीर विचारों को लिपिबद्ध कर दे। यदि इन उच्च विचारों और गंभीर भावों को सर्वसाधारण तक न पहुँचाया गया, तो बहुत कुछ सम्भावना है कि राम फिर बीमार पड़ जायँ और देशवासियों की सेवा किये बिना अपने शरीर का भी परित्याग कर दे। अतः उसके विचारों को प्रकाशित करने की कोई युक्ति सोची जानी चाहिये।" तीर्थराम की हृदय स्पर्शी बातें नारायण जी ने बड़े ध्यान से सुनीं। उन्होंने अपने मित्र लाला हरलाल से परामर्श करने के अनन्तर एक पत्रिका प्रकाशित करने का विचार किया। राम ने उस पत्रिका का नामकरण किया 'अलिफ' और इसका श्रीगणेश सन् १९०० के प्रारम्भ में किया गया। इसके प्रकाशन के लिये 'आनन्द प्रेस' की संस्थापना की गई। 'अलिफ' पत्रिका के प्रथम अंक के प्रकाशन के समस्त व्यय का भार लाला हरलाल ने स्वयं अपने ऊपर लिया। नारायण जी ने पत्रिका के सम्पादन और प्रेस की व्यवस्था का प्रबन्ध अपने हाथों में लिया। यह पत्रिका मासिक थी। यह इतनी लोकप्रिय हुई कि इसके दो अंकों के तीन संस्करण प्रकाशित करने पड़े। इसके मध्य में 'अलिफ' फारसी के प्रथम वर्ण का अंकन था। सबसे ऊपर ईशावास्योपनिषद का शान्तिपाठ 'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥' और नीचे फारसी का एक शेर छापे गये थे। इसके प्रथम अंक में आनन्द का वर्णन था।

अलिफ के प्रथम अंक प्रकाशित होने के पश्चात् राम ने समुद्र-दर्शन का विचार किया। एक दिन सन्ध्याकाल बिना पैसा-कौड़ी के और बिना कोई सामान लिये वे लाहौर से निकल पड़े। उनका परमात्मा में दृढ़ विश्वास हो चुका था, अतः उन्होंने अपने को पूर्णतया उसकी मरजी पर छोड़ दिया। उन्हें पूर्ण आस्था थी कि परमात्मा उनकी सारी व्यवस्था स्वयं करेगा। अपने जीवन में उसका

महती कृपा की पग-पग पर प्रत्यक्षानुभूति की थी। इस यात्रा में राम की अनुभूति में और भी प्रगाढता आ गई। जो राम से सवथा अपरिचित थे, ऐसे व्यक्तियो ने प्रतिष्ठित अतिथि के रूप में उनका स्वागत-सत्कार किया। उनकी सारी आव श्यकताओ की पूर्ति की। पहले वे सक्कर पहुँचे। वहा से कुछ अन्य प्रसिद्ध स्थानो को देखते हुये कराची पहुँचे। कराची पहुँचने पर समुद्र का दर्शन किया। समुद दखते ही समुद्र के ज्वार की भाति उनका हृदय भी उद्वेलित हो उठा। वे बरबस उमड पडे—

"राम समुद्र तट पर खडा है। लहराती तरगे उसका चरण धा रही है। प्रवल वायु उसके वस्त्र उडा रही है। ससार के समस्त विचार समुद्र के गजन में विलीन हा रहे है।

शरीर अविचल है—क्या ही सुन्दर अवस्था है! राम कहाँ है? जहा कही भी मेरी दृष्टि जाती है, जल ही जल दिखाई पडता है। विस्तृत, विस्तृत सागर। चारा ओर जल ही जल! यह जल भूमि के भाव मात्र का प्रक्षालन कर रहा है। विशाल नगर स्वप्नवत जान पड रहे ह। हाट-बाजार, सडकें-गलिया, नगर-वासिया के लडाई-झगडे कोलाहल तुमुल ध्वनि सब कुछ स्वप्नजगत के दश्य बन गये ह। अपार समुद्र के सम्मुख जगत का कोई अस्तित्व नही रह जाता।

किन्तु ज्योही मेरी दृष्टि ऊपर उठती है, चारा दिशाओ में अनन्त नीलाकाश देखता हूँ। उस अनन्त आकाश की विराट् सत्ता में समुद्र भी अपने नाम रूप की सत्ता खाकर ऐसा विलीन हो जाता है कि उसका कोई चिह्न ही नही दष्टिगोचर होता।

बडे आश्चय की बात है कि अनन्त नील गगन भी अपनी सारी सत्ता राम के आनन्दमयस्वरूप में डुबो कर उसी में विलीन हो जाता है। जैसे सूय की किरणो में मृगमरीचिका का भान होता है, वैसे ही राम की प्रभा से आकाश का भी अस्तित्व सिद्ध होता है।

उपर्युक्त अवतरण से राम की चिन्तन प्रणाली पर महत्त्वपूण प्रकाश पडता है। इस चिन्तनधारा में उनके लययोग और ज्ञानयाग दोना प्रकार के साधन साकार रूप में प्रकट दिखाई पडते है। लययागी साधक एक तत्त्व को क्रमश दूसरे तत्त्व में लय करके, अन्त में अवशिष्ट तत्त्व का आत्मतत्त्व में विलीन कर 'आत्माराम' हो जाता है। पहले वह पथ्वी तत्त्व जल तत्त्व में विलीन करता है, तत्पश्चात जल तत्त्व को अग्नि तत्त्व में, अग्नि तत्त्व को वायु तत्त्व में, वायु तत्त्व को आकाश में, आकाश को महत तत्त्व में, महत तत्त्व का परा प्रकृति में और अन्त में सबको परमात्म तत्त्व (आत्म तत्त्व) में विलीन कर सच्चिदानन्दघन में सदैव के लिये

स्थित हो जाता है। तीर्थराम की चिन्तन-परम्परा में लययोग वाली यह प्रणाली दृष्टिगोचर होती है। उन्हें पृथ्वी तत्त्व जल तत्त्व में विलीन होता दिखाई पडा, तत्पश्चात् एकदम छलाग मारकर उसे आकाश तत्त्व में विलीन कर दिया। अन्त में आकाश तत्त्व को राम तत्त्व (आत्म तत्त्व, परमात्म तत्त्व) में विलीन कर पूर्ण आत्माराम हो गये।

ज्ञानयोग के प्रतिपादन में ब्रह्मज्ञानी दो शैलियो का सहारा लेते ह—विधि शैली और निषेध शैली। निषेध शैली के अनुसार ब्रह्म का प्रतिपादन इस प्रकार किया जाता है—"तू पच भूत नही है, मन, बुद्धि, चित्त, अहकार नही है, अन्त में सबका बाध करते-करते जो तत्त्व अवशिष्ट रहता है, वही तू है, वही तेरा वास्तविक स्वरूप है। उसी सत्ता से सब प्रकाशित है।' निषेध शैली के अनुसार इस प्रकार का तत्त्वोपदेश किया जाता है। विधि शैली के अनुसार ब्रह्म का प्रतिपादन इस प्रकार किया जाता है—'तू ही पचतत्त्व है, तू ही समस्त जीव है, जड, चेतन सब कुछ तू ही है।' उपर्युक्त अवतरण से स्पष्ट है कि राम ने निषेध शैली के अनुसार प्रत्यक्षानुभूति की है, अर्थात् वे पृथ्वी तत्त्व और उससे सम्बन्धित नही है, जल तत्त्व (सागर) भी नही, आकाश भी नही है, अन्त में जो अवशिष्ट रहता है, वही आत्मतत्त्व है। उसी की सत्ता से सारे पदार्थ प्रकाशित है।

तदनन्तर उसी भावावेश में राम ने एक कविता लिखी, जिसका सक्षिप्त आशय इस प्रकार है, "मैं सूर्य हूँ! मैं सूर्य हूँ! मैं सूर्य हूँ! मेरी ही प्रभा से विराट जगत के समस्त अणु-परमाणु दासमान है। मैं ही शुद्ध सनातन ब्रह्म हूँ। मैं ही सत, चित और आनन्द हूँ। मैं अजन्मा और अमर हूँ। मुक्ति-प्रदाता ज्ञान मैं ही हूँ। मृत्यु-पाश ध्वसक मैं ही हूँ। मैं ही अनादि, अद्वय ब्रह्म हूँ। मुझ सच्चिदानन्दघन में द्वैत भाव का नामोनिशान नही है। मैं अविकारी हूँ। मैं माया से सर्वथा परे हूँ। सन्यासीगण जिस ब्रह्म की प्राप्ति के निमित्त अहर्निश चिन्तन में निमग्न रहते है, वह ब्रह्म मैं ही हूँ। मैं सर्वव्यापी हूँ। मैं सबका भेदन करने वाला हूँ। कोई पदार्थ, कोई जीव, कोई मनुष्य मुझसे भिन्न नही है। सभी मेरे स्वरूप है। मनन करो, अनुभव करो ब्रह्म के अतिरिक्त न कोई वस्तु थी, न है और न रहेगा। जिसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया उसे चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण नही करना पडेगा। चारो वेद और समस्त ऋषिगण नेति नेति कहकर उसका सकेत करते है किन्तु फिर भी उसे समझ नही पाते। मैं सत्य स्वरूप हूँ। मैं आनन्द का केन्द्र हूँ। सभी के अन्तःकरण में मेरा निवास है।'

उपर्युक्त कविता में उन्होंने ब्रह्मप्रतिपादन के लिये विधि शैली का सहारा लिया है। उन्हें 'सर्वं खल्विद ब्रह्म' की अनुभूति हो रही है। इस स्थल पर एक बात

स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि राम की यह अनुभूति बुद्धि-जनित नही थी वल्कि स्वसवेद्य अनुभूति थी। जैसे किसी व्यक्ति को अपने शरीर की स्वभावत प्रतीति और अनुभूति होती है, उसी प्रकार आत्म स्वरूप—परमात्म स्वरूप—ब्रह्म में राम की सहज प्रतीति और अनुभूति होती थी। उनके प्रत्येक वाक्य प्रत्येक शब्द मे अद्वैत-भाव छलक्ता-सा प्रतीत होता है। उनका पहले का कृष्णभक्ति भाव अद्वैत-भाव में विलीन हो गया।

स्वच्छन्द भाव से सतत आनन्दानुभूति में नौकरी उन्हें खटकने लगी। वह उनकी सहज मस्ती के लिये बाधक प्रतीत होने लगी। वे गभीरतापूर्वक नौकरी छोडने की बात सोचने लगे। राम के एक अभिन्न मित्र ने उनकी इस प्रवृत्ति को जानकर उन्हें समझाया, "आप नौकरी से त्याग-पत्र क्यो देंगे ? आप अपना निर्वाह कैसे करेंगे ? अपना एव अपने सम्बन्धियो का भरण-पोषण करना परम धर्म है। गेरुवा-वस्त्र पहनकर भीख मागने से परमात्मा की प्राप्ति नही होती। गृहस्थ धर्म का यथोचित रूप से पालन करने से लोक-परलोक दोनो बनते हैं। गृहस्थ की जिम्मेदारिया से भागना घनघोर पाप है।' राम ने अपने मित्र के तर्कों का सहज भाव से समाधान किया। 'इडियन प्रेस' ने उनके उत्तरा को प्रकाशित कराया था। सक्षेप में उत्तर इस प्रकार ह—

"(१) चाकरी करना दास का कार्य है। मैं तो राम, बादशाह हूँ। न तो मैं किसी का नौकर हूँ और न मेरा कोई स्वामी ही है। मैं अपनी हस्ती में विराजमान हूँ। राजे महाराजे मेरे चरणो में नमित होते ह। मैं शरीर नही हूँ। मैं शरीर और प्राण दोना से परे हूँ। तुम मुझे शरीर समझ कर भूल करते हो। मैं तुम्हारे प्राणा का प्राण हूँ, तुम्हारी आत्मा हूँ। पचतत्त्व मेरे चाकर है। मैं अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त हूँ। मेरे अभाव में किसी कण का अस्तित्त्व नही रह सकता। क्या मैं पेट का गुलाम हूँ। मैं परम सत्य के सिहासन पर विराजमान हूँ। मैं मानव, पशु-पक्षियो, वनस्पतियो, खनिज पदार्थों का शाश्वत जीवन हूँ। जब तक मैं शरीर-भाव में था, तब तक शरीर की चाकरी बजाता था। अब तो राम को वास्तविक अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो चुकी है, अब तो मैं सर्वव्यापी हो गया हूँ। तुम नौकरी की बात करते हो ? राम की दृष्टि में अब न तो शरीर है न हृदय है, न मस्तिष्क है, न जीवन है और न ससार ही है। स्वामी और सेवक, दोनो ही राम की आत्मा हो गये है। पेट की बलि कर दी गई है, हृदय अब नदी के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है मस्तिष्क अमरत्व का निवास-स्थान बन चुका है। हाथ-पैर गिर चुके है। रोम-रोम से अमृत के निझर प्रवाहित हो रहे हैं। मेरे सम्मुख सदैव सिर नवाते-नवाते आकाश ने अपनी पीठ झुका ली है। मुझे देखने से सूय और चन्द्रमा प्रकाशित होते

है। मुझे ही देखने मे तारागण रात को दीवाली मनाते है। वृक्ष मेरे निमित्त गुलदस्ते की भेंट चढाते हैं। सक्षेप में यह कि जो कुछ तुम्हें दीप्तिमय वस्तुयें दिखाई पडती हैं सब की सब मेरी ही अभिव्यक्ति हैं। ओ प्यारे, अपनी शरीर भावना राम में जब डुबो दोगे तभी सत्य के इस वास्तविक रहस्य को समझ सकोगे।"

"(२) भरण-पोषण ? राम स्वयं भरण-पोषण हूं। मेरा भरण पोषण किसी अन्य वस्तु अथवा व्यक्ति पर अवलम्बित नही हैं। मैं समस्त सृष्टि का आहार हैं। प्रत्येक शरीर और मन का सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग मेरे ही द्वारा पुष्टि ग्रहण करता है। तुम्हारे शब्द-कोश के 'वस्त्र' और 'भोजन' धारणा (भाव) मात्र है। क्या भोजन और वस्त्र सम्बन्धी वस्तुयें ही परम सत्य हैं ? इनके वास्तविक स्वरूप का ओर तो निरीक्षण करो। इनकी उत्पत्ति कहां से हुई है ? प्यारे ! तुम्हारी आत्मा ही *तुम्हारा भोजन-वस्त्र है। रुई वस्त्र का मूल कारण है।* 'ओम ओम' की ध्वनि करते हुये जमीन से उगकर, रूई की उत्पत्ति, वनस्पति के रूप में हुई है। सूर्य का प्रकाश ही वनस्पतियो की उत्पत्ति का कारण है। पृथ्वी सूर्य से निकली है। सूर्य को कौन पोषित करता है ? जिस भोजन और वस्त्र पर सूर्य का अस्तित्व अवलम्बित हैं ? प्यारे, वह राम पर आश्रित है। मैं ही राम हूँ। जब मैं सूर्य की भी आत्मा हूँ तो मुझे भोजन-वस्त्र की क्या आवश्यकता है ? जब सम्राट स्वयं मुझसे ऋण लेता है और मेरे सकेत पर नृत्य करता है, तो मैं उसकी सेना और प्रजा से क्यों भय मानू।"

"(३) उदर का भरण-पोषण करना निश्चय ही धर्म है। किन्तु धर्म का पालन करना, उदर का भरण-पोषण मात्र है। प्यारे, विश्वास रखो। केवल धारणा (भाव) मात्र का अनुसरण मत करो। मैं तुमसे यह नही कहता कि तुम खाओ पीओ नही, वस्त्र मत पहनो, जीविका मत अर्जित करो, अथवा कोई काम न करो, मेरा यह अभिप्राय कदापि नही है। मेरे कहने का आशय यह है कि अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानना ही सच्चा और सही कार्य है। आत्म-साक्षात्कार के अनन्तर सारे कार्य अपने आप तुम्हारा अनुगमन करेंगे। उदर-पूर्ति के जाल में पडकर मनुष्य जन्म-मरण का बन्दी बन जाता है। वह बार-बार योनि के अन्तगत आता रहता है। ब्रह्मविद्या की खड्ग से अविद्या के इस महान् पाश को काट डालो, ताकि उदर चिन्ता से सदा के लिये मुक्ति पा जाओ। यदि तुम अविद्या के खड्ग से इसे काटने का प्रयास करोगे, तो यह जैसा का तैसा रहेगा। तुम्हारी उदर-पूर्ति के लिये मैंने अपने उदर की बलि दी है। मैं तुम्हें उदर-पूर्ति भावना से ऊपर उठा कर, सच्ची आध्यात्मिकता सिखाना चाहता हूँ। ..एकों और बैल गाड़ियों के जमाने लद चुके हैं। अब तो रेलगाड़ियाँ, तार, समुद्री जहाज आदि

तुम्हारी सेवा के लिए प्रस्तुत हू। जल और अग्नि के देवता तुम्हारी सेवा में रत हैं। विज्ञान की यह प्रगति केवल पेट-पूजा के लिये हैं। जब देवतागण तुम्हारी सेवा में लग गये है, तो तुम्हें पेट की चिन्ता छोड देनी चाहिए। सत्य के सिंहासन पर आराम से बठ जाओ और पच-तत्त्वो को अपनी सेवा में लगे रहने दो। तुम परमात्मा हो, मात्र तुम ही परमात्मा हो। तुम्हारा दुर्बलता ही तुम्ह आगे बढने से रोक लेती हैं। दासत्व की अविद्या और मिथ्या धारणा ने तुम्हे कमजार बना दिया है। पर तुम बोलने-चालने, खाने-पीने आदि में पर्याप्त शक्तिशाली हा। जब तुम बीमार पडते हो, तो नाना प्रकार की दुश्चिन्तायें तुम्हारे ऊपर सवार हा जाती है। बीमार पडने पर भी लेखे-जोखे, मामले-मुकदमे, फायदा-नुकसान, दोस्त-दुश्मन, अपने-पराये के चक्कर में पडे रहते हो। क्या यह सब दासता नही हैं।"

"(४) हा प्यारे, अपना और अपने कुटुम्बियों का भरण-पोषण करना आवश्यक हैं। भगवन, सबसे पहले इस बात की जानकारी आवश्यक है कि 'तुम्हारे आत्मा का स्वरूप क्या है और उसके सम्बधी कौन है ? क्या यह शरीर आत्मा है ? क्या शरीर का स्वत अस्तित्व है अथवा इसका अस्तित्व किसी अन्य अस्तित्व पर आश्रित है ? यदि शरीर अपने अस्तित्व पर नही टिका है, तो यह तुम्हारा आत्मा किस प्रकार हो सकता है। शरीर को आत्मा समझना परेशानी माल लेना है। प्यारे, शरीर तो मरणधर्मा है। ता फिर यह किस पर अवलम्बित है ? शरीर आत्मा है अथवा इसका कोई अन्य ही आत्मा है ? जो तुम्हारे शरीर का आत्मा है, वही सबके शरीरो का भी आत्मा है। आत्मा अपने ही अस्तित्व में प्रतिष्ठित है। वह सर्वाधार है। शरीर तो उसकी छाया मात्र है। यदि शरीर का अस्तित्व ही नही है, तो इसके सम्बन्धियो की कल्पना करना भी मिथ्या है। तुम चाहे इधर से देखो, चाहे उधर से, सब कुछ आत्मा की ही अभिव्यक्ति है। तुमने यह स्वीकार कर लिया कि सच्चा सम्बन्धी आत्मदेव ही है। नाना स्वरूपो और विभिन्न नामो में आत्मा ही व्याप्त है। नाम और रूप तो तुम्हारी कल्पना है। वास्तव में उनकी कोई सत्ता अथवा अस्तित्व नही है। मात्र आत्मा अथवा तुम हो। अपने को 'परमात्मा' कहने में रचमात्र भयभीत न हो। मैं तुम्हें शाहशाह बना रहा हूँ। भय का क्या काम ह ? अपनी दृष्टि शरीर-भाव से ऊपर उठाओ और इसकी अनुभूति करो कि जो राम शरीर के रोम-रोम में व्याप्त है, वह विश्व के कण-कण में विराजमान है। क्योकि राम अकेला है अत मैं राम की ओर से कहता हूँ कि मैं ही राम हूँ। यदि तुम ऐसा कहने में भयभीत होते हो, तो मेरे प्रतिनिधि बनकर जोर-जोर से उच्चारण करो—'मैं राम हूं। मैं राम हूं॥ मैं राम हूं।॥' राम तुम्हें इसकी आज्ञा प्रदान करता है और साथ ही यह नियम

बनाता है कि सभी मनुष्य बाध्य होकर 'मैं राम हूँ मैं राम हूँ का उच्चारण करें। इस प्रकार राम के असली सिक्के चालू करो, और नकली सिक्का को खतम करो। अगर तुम ऐसा नही करोगे तो नकली सिक्के बनाने के अपराध में गिरफ्तार किये जायोगे तथा अविद्या के जेल में बन्द कर दिये जाओगे। सिक्के की भाति प्रत्येक भौतिक शरीर पर राम का मुद्राकन है। प्रत्येक अणु-परमाणु पर राम की छाप मुद्रित है। तुम्हारी जीभ, आख कान, नाक ही नही, बल्कि समस्त शरीर राम का चालू सिक्का है। यदि तुम्हें अपने को राम कहने में भय लगता हो, तो तुम्हारी जीभ तुम्हारी नही है, वह राम की है। अत राम की जबान से बोलो मैं राम हू। मैं परमेश्वर हूँ। मैं आत्मदेव हूँ। मैं समस्त ब्रह्माण्डों का नियन्ता और शासक हूँ। मैं सर्वव्यापी हूँ। मैं सर्वशक्तिमान् हूँ।' यह उक्ति तुम्हारी उक्ति नही है बल्कि यह उसकी है, जिसकी यह जबान है। अत तुम ब्रह्म हो, और कुछ नही, ब्रह्म हो। जिस क्षण तुम परमात्म-पद प्राप्त कर लेते हो, तुम्हें और किसी वस्तु की आवश्यकता नही रह जाती। प्रत्येक व्यक्ति यह कहता है, मेरा कुछ भी नही है। यह शरीर राम का है।' अत केवल राम ही तुम्हारा सच्चा सखा है और वह तुमसे कह रहा है, 'यह जीभ उसी की है, जिसका यह शरीर है, तब फिर यह जीभ मेरा नाम क्यो नहीं लेती? (राम अपनी जबान से कह रहा है कि 'मैं राम हूँ।') 'ओम्, परब्रह्म'—यही दिन रात कहा। यह परम पवित्र मत्र है। इसी सिक्के को चलने दो। 'तुम दास हो'—इस जाली सिक्के का प्रचलन समाप्त करो। इसे राम के खजाने में लौटा दो और उसके बदले में 'तुम राम हो का सिक्का लो। राम ने यह सामान्य राजाज्ञा घोषित की है, 'जिस किसी व्यक्ति के पास जाली सिक्का हो उसे मेरे पास लाया जाय। मैं बडी प्रसन्नता से उसे असली सिक्के के रूप में परिवर्तित कर दूँगा। 'म दास हूँ की घोषणा कर असीम को सीमित करना है। यह जघन्य अपराध है। 'मैं'—केवल एक है और वह सर्वव्यापी है। राम सर्वव्यापी है, उस काई भी दास नही दिखाई पड रहा है, वह कहाँ चला गया? यदि कोई दास (बद्ध) है, और उसकी यह भावना अन्त करण में बुरी तरह जम गई है, तो वह राम के पास आवे। राम अपनी दृष्टि मात्र से उसका कायान्तरण कर देगा और उसे अमृतत्व के आनन्दमय स्रोत में नहलायेगा। वह उसे कौवे से हस बना देगा। सीमित आत्मा की चिन्ताओं और दुखों को असीम परमात्मा के अखण्ड आनन्द में परिवर्तित करके राम बना देगा। यह बडा सस्ता सौदा है, प्रकृति तुम्हारी सेविका है।'

"(५) प्यारे राम किसी को भी अपने से पृथक् नहीं समझता। अपने दृष्टि

दोष के कारण तुम पृथक् समझते हो। यदि राम किसी को अपने से जुदा समझेगा, तो उसका राज्य कौन चलायेगा? राम अकेला है, अद्वय है, उसमें द्वैत का कोई स्थान नहीं। जिस प्रकार सूर्य अपनी ही प्रभा से दीप्तिमान है, उसे किसी अन्य प्रकाश की अपेक्षा नहीं रहती, उसी प्रकार राम भी अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है। वह आनन्दघन है और आध्यात्मिक आनन्द की वृष्टि कर रहा है। मैं ही सृष्टि-निर्माता हूँ मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है। 'गृहस्थ' का अभिप्राय है—'अपने घर (निजस्वरूप) में स्थित होना।' निजस्वरूप में स्थित होकर आनन्दित होना, यही गृहस्थ का वास्तविक आशय है। जो आत्मा से दूर है, वह निर्बुद्धि ही नहीं शव है। यदि गृहस्थ-जीवन का परित्याग पाप है, तो मैं सही अर्थ में गृहस्थ हूँ, क्योंकि मैं अपने घर (निजस्वरूप) में स्थित हूँ। आत्मिक आनन्दानुभूति से मैं एक क्षण के लिये भी विमुख नहीं होता। मैं प्रतिक्षण अद्वैतानुभूति में निमग्न रहता हूँ। प्यारे मैं गृहस्थ (निजस्वरूप में स्थित) हूँ, अतः मैं पाप-पुण्य से मुक्त हूँ। मैं राम ही खाता हूँ, राम ही पीता हूँ। मैं राम ही देखता हूँ, राम ही सुनता हूँ और राम ही सूँघता हूँ। राम ही मैं आता-जाता हूँ। राम के अतिरिक्त अन्य सारी वस्तुयें अशुद्ध और गर्हित हैं। सच्चे गृहस्थ का यही वास्तविक जीवन है। प्यारे, जरा होश में आओ, राम के ऊपर मिथ्यारोप मत लगाओ। अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा! राम तुम्हारा आन्तरिक उत्थान करेगा, सत्य की ओर देखो। यह तुम्हारा दोष नहीं है, यह अविद्या का परिणाम है। ओम! ओम!!'

उपर्युक्त उत्तरों से राम की उच्चावस्था का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। वे आत्मस्वरूप में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो चुके थे। उन्हें आगे-पीछे, पूर्व-पश्चिम, उत्तर दक्षिण, ऊपर-नीचे सर्वत्र ब्रह्म के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु नहीं दिखलायी पड़ती थी। उनकी दृष्टि, सृष्टि, भाव विचार, स्मृति-कल्पना, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति सब कुछ ब्रह्म—आत्मस्वरूप हो गये थे। ऐसी अवस्था में वे परिवार एवं सम्बन्धियों के सीमित दायरे में कैसे बँध सकते थे? क्षुद्र जीविका के अर्जन में वे अपार आध्यात्मिक शक्ति का अपव्यय किस प्रकार कर सकते थे? उनकी दृष्टि असीम और सर्वव्यापी हो गई थी। वे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना में रँग चुके थे। संसार की समस्त समृद्धियाँ उनके चरण की सेवा में रत थीं। असीम राम सीमाबद्ध किस प्रकार हो सकते थे? सर्वत्याग के निमित्त उनकी अन्तरात्मा ललक रही थी। संसार के रंगमंच पर वे अभिनेता बनकर, बल्कि सूत्रधार बनकर रहना चाहते थे। वृक्ष का फल भलीभाँति पक चुका था, अब वह अपनी डाली को छोड़ना ही चाहता था, साँप की केंचुल उसके शरीर से उतरने

ही वाली थी। गृहस्थाश्रम का प्रारब्ध सन्यास आश्रम में जाने की तयारी कर रहा था।

'अलिफ' पत्रिका के केवल तीन अक प्रकाशित होने के पश्चात, राम की वृत्ति ससार के प्रति एकदम उदासीन हो गई। वे एकान्त स्थल में रहकर सतत समाधि में निमग्न होने के लिये व्यग्र थे। 'उत्तराखण्ड' को वे अपनी साधना स्थली बनाना चाहते थे—जहाँ ससार के प्रपच उनका स्पश तक न कर सकें। अत वे गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल कालेज के प्राध्यापकपद से त्यागपत्र देकर उत्तराखण्ड के पथ की ओर अग्रसर हुए। उनके साथ में थे—उनकी सहधर्मिणी (शिवदेवी), उनके बच्चे, स्वामी शिवगणाचाय (राम से इनकी पहली मुलाकात १८९७ के सितम्बर महीने में गुजरात (पजाब) में हुई थी), तुलाराम (सन्यास ग्रहण करने के उपरान्त इनका नाम 'रामानन्द' हुआ), गुरुदास (सन्यास का नाम स्वामी गोविन्दानन्द), अमृतसर के निक्केशाह और नारायण जी (बाद में नारायण स्वामी)।

लाहौर से विदाई का दश्य अत्यधिक करुणाजनक और हृदय विदारक था। उनके घर के बाहर अपार जनसमूह उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। ज्यों ही वे 'हरचरन की पौडी' नामक गली वाले मकान से बाहर निकले, सारा आकाश 'जय जय' के तुमुल निनाद मे गूज उठा। स्टेशन तक पहुँचाने के लिए एक भव्य जुलूस उनके साथ-साथ चला। ज्ञान, वैराग्य एव भक्ति सम्बन्धी गीता से दसों दिशायें निनादित हो गयी। भावुको की अश्रुवर्षा से लाहौर की सडके सींच दी गइ। किन्तु राम अपने स्वरूप में स्थित निर्विकार थे। उनके मुखमण्डल पर दिव्य मुसकान थी और आखों में अलौकिक ज्योति। वे इस हृदयद्रावक दश्य को साक्षी भाव से देख रहे थे। उसे वे आत्मस्वरूप की एक तरग मात्र समझ रहे थे। राम के शिष्यगण, मित्रमण्डली एव भक्तवृन्द राममय हो रहे थे। उनके इस अप्रतिम त्याग से वे सब परम विषण्ण थे। किन्तु राम के आन्तरिक आनन्द एव उल्लास ने उनमें प्रसन्नता की अपूर्व लहर उत्पन्न कर दी। स्टेशन के प्लेटफाम पर इतनी अपार भीड थी कि तिल रखने को भी जगह न थी। यात्रियों का आना-जाना बन्द हो गया था। गाडी छूटने के पूर्व राम के शिष्य नारायण जी उन्हीं की बनायी हुई एक उर्दू कविता का सस्वर गान किया। यह कविता राम ने पिछली रात में बनायी थी। कविता की कुछ पक्तियां इस प्रकार है—

अलविदा मेरी रियाजी! अलविदा!
अलविदा, ऐ प्यारी रावी! अलविदा!
अलविदा, ऐ दोस्तो-दुश्मन! अलविदा!

अलविदा, ऐ शीत-उष्ण, अलविदा !
अलविदा ऐ दिल ! खुदा से अलविदा !
अलविदा राम ! अलविदा ऐ अलविदा !

गाडी छूटते ही 'जय जय' का तुमुल निनाद आकाश में फिर गूज उठा। दशकगण अश्रुमिश्रित विस्फारित नेत्रो से चलती हुई गाडी की ओर देख रहे थे। बहुत से दशक सिसक सिसक कर रा रहे थे। अन्त में गाडी आँखों से ओझल हो गयी, फिर भी लोग मर्ति की भाति अपने अपने स्थान पर अविचल खडे रहे। आखिरकार, सब लोग इस भावना से अपने घर लौटे कि मानवता के परम कल्याण के लिये राम हमसे जुदा हो रहे हैं।

'अलिफ' के एक अक में राम ने स्वय हिमालय की इस पवित्र यात्रा का मन्तव्य प्रकट किया है—

"हमें जाकर ऐसे स्थान में निवास करना चाहिये, जहाँ कोइ मित्र अथवा शत्रु न हो। सयोगवश यदि हम बीमार भी पडें, तो हमें कोई पूछनेवाला न हो। यदि देहान्त भी हो जाय तो कोई आँसू बहानेवाला भी न हो।

यदि किसी को मृगतष्णा के जल का बोध हो गया, तो वह वहाँ अपनी प्यास बुझाने क्यों जायेगा ?

इन्द्रिय जन्य विषयो की वास्तविकता क। अनुभूति हो गयी। उनका आकषण सदैव के लिये समाप्त हो गया। म अब उनमें कैसे अनुरक्त हो सकता हूँ।

कुम्हार ने अपनी चाक चलाकर छोड दी। कुछ देर घूमन के पश्चात उसका चलना अपन आप बन्द हो जायगा।

जीव जब अपने कर्त्तापन और भोक्ताभाव का त्यागकर आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है, तो फिर उसका शरीर, बन्द किये हुए कुम्हार के चाक की भाति कब तक चक्कर लगायेगा ? सासारिक नाते रिश्ते अपने आप ढीले पड जायेंगे और धीरे धीरे विदेह भाव स्वत आ जायेगा।"

उपर्युक्त अवतरणा में निवृत्ति माग के सम्बन्ध में जो तक उपस्थित किये गये ह, वे अकाट्य हैं। भारतीय साधना प्रणालो में प्रवृत्ति एव निवृत्ति दोनो ही मार्गों के ब्रह्मज्ञानी होते आये ह। दोनो की विचारधारा अपने अपने स्थान पर ठाक हैं। फिर दूसरी बात यह भी है कि पूव जन्म के सस्कारो और वत्तमान जीवन के प्रारब्धानुसार प्रत्येक साधक की रहनी पृथक् पृथक् हाती है। उसी पजाब भूमि में गुरु नानक देव पूण ब्रह्मज्ञानी हाते हुए भी प्रवृत्ति माग के पोपक रहे और उन्होने गृहस्थ धम के विशुद्ध आचरण पर अत्यधिक बल दिया।

हरद्वार, हिमालय का मुख्य द्वार माना जाता है, इसी मे हिन्दू तीथस्थानो में

इसका बहुत महत्त्व है। जितने भी तीर्थयात्री उत्तराखण्ड के तीर्थस्थानों का दर्शन करने जाते हैं, प्रायः वे सब एकाध दिन के लिए हरद्वार में अवश्य ठहरते हैं और 'हर की पौडी' में स्नान करते हैं। राम के साथ वाली मण्डली भी हरद्वार में कुछ दिनों के लिये रुकी। नारायण जी को मण्डली का प्रबन्धक बनाया गया और दल के प्रत्येक तीर्थयात्री के नक़द रुपये उनके पास जमा कर दिये गये।

शिवगणाचार्य मण्डली के लिये सिरागत सिद्ध हुए। वे अपने को राम का आध्यात्मिक गुरु मानने लगे थे, क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि उन्होंने ही राम को गृहस्थी के दलदल से बाहर निकाला है। इस कारण वे प्रत्येक व्यक्ति से अत्यधिक प्रतिष्ठा और सम्मान की आशा रखते थे। वे मण्डली के अन्य सदस्यों के साथ अशिष्ट व्यवहार करते थे, यहाँ तक कि स्त्रियो और बच्चो तक का भी नही बख्शते थे। एक वृद्ध महिला भी हरद्वार से राम की मण्डली में सम्मिलित हो गई थी। स्वामी शिवगणाचार्य उनके साथ भी बडी निर्दयता से पेश आये। अतः राम ने उनका साथ छोड देना ही श्रेयस्कर समझा। मुश्किल से आठ दिनों के बाद ही राम की मण्डली उनसे अलग हो गयी। देवप्रयाग से राम के दल ने तो टेहरी की ओर प्रस्थान किया, जबकि शिवगणाचार्य श्रीनगर (उत्तर प्रदेश) की ओर मुडे, वहाँ से काठगोदाम होते हुए वे मथुरा चले गये। मथुरा आकर उन्होंने यमुना-तट पर अपना निवास-स्थान बना लिया।

हरद्वार से बदरीनाथ तक के लिये कुलियों का प्रबन्ध किया गया। किन्तु देवप्रयाग पहुँचने पर यात्रियों की अधिक भीड-भाड देखकर बदरीनाथ के बदले, पहले गंगोत्तरी की यात्रा करने का विचार हुआ। उस समय बदरीनाथ की यात्रा में बहुत भीड हो गई थी। गंगोत्तरी गंगा जी का उद्गम स्थान है। राम को गंगोत्तरी के दर्शन की तीव्र लालसा थी। हिन्दुओं के लिये गंगाजी ब्रह्मज्ञान और आनन्द का प्रतीक समझी जाती है। ब्रह्मज्ञान और आनन्द के स्रोत तक पहुँचना, मोक्ष प्राप्त करना होता है। राम ने उसी की प्राप्ति के लिये अपनी उत्कृष्ट आजीविका तथा अपने परिवार एवं सम्मित्रों की आशाओं की बलि की थी। मार्ग में टेहरी पडता है। उस स्थान पर कुछ दिनो तक ठहरने का विचार निश्चित किया गया। टेहरी कसबे से लगभग दो मील की दूरी पर एक रमणीक बगीचा था। वह गंगा-तट पर शान्त वातावरण में स्थित था। सेठ मुरलीधर ने लगभग उन्नास हजार रुपये लगाकर इसका निर्माण कराया था और उन्होंने जिज्ञासुओं की एकान्तिक साधना के निमित्त उसे दान कर दिया था। राम उसे देखकर मुग्ध हो गये। अतः उन्होंने वहा ठहरने का विचार किया।

वहा पहुँचने पर राम ने नारायण जी से कहा, "मेरा तथा मण्डली के अन्य

व्यवस्था है ?" राम ने आकाश की ओर इंगित करके उत्तर दिया, "उसी से पूछिये।" इसके बाद वे फिर मौन हो गये। राम का मौन बाबा जी को असह्य हो गया। राम के खाने-पाने की व्यवस्था करने के निमित्त ही तो बाबा जी परमात्मा द्वारा भेजे गये थे, हालांकि, इस बात का उन्हें पूर्वाभास नहीं था। बाबा जी ने राम से प्रार्थना की, "महाराज, मैं—बनवारीलाल, रास्ते के ऊपर दूकानदार हूँ। मैं इन्हें निर्देश कर रहा हूँ कि मैं आपको दस रुपये की खाद्य सामग्री—आटा, चावल, दाल आदि—प्रतिमास आपको दे दिया करें। मेरा यह तुच्छ सेवा स्वीकार करने की अनुकम्पा करें।" राम का उत्तर था, "यदि आपकी इच्छा हो, तो इस सम्बन्ध में उन ब्रह्मचारी से बात करें, जो एकान्त में अकेले बैठे हैं।" राम का अभिप्राय नारायण जी से था।

नारायण जी बुलाये गये। उनके आने पर बाबा रामनाथ जी ने निवेदन किया, "ब्रह्मचारी महाराज, मैं आपकी मण्डली की तुच्छ सेवा का अभिलाषी हूँ। मैं दस रुपये का खाने-पीने का सामान इन दूकानदार से प्रतिमास भेजना चाहता हूँ। मेरी आन्तरिक इच्छा है कि इसे आप अवश्य स्वीकार करने का अनुग्रह कीजिये, ताकि आप लोगों की उपासना निर्विघ्न चलती रहे।"

नारायण जी सम्पन्न परिवार के थे। अब तक उन्होंने इस प्रकार का दान कभी स्वीकार नहीं किया था। ऐसी स्थिति में उनका अहंभाव जग गया। उन्होंने उत्तर दिया, "आपकी इस उदारता के लिये अनेक धन्यवाद! हम लोग परमात्मा पर आश्रित हैं, अतः आपका यह दान स्वीकार करने में असमर्थ हैं।" राम ने टोका, "नारायण जी यदि बाबा जी अपने से इसका प्रबन्ध कर रहे हों, तो आप इनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दें, किन्तु यदि परमात्मा इनकी बुद्धि प्रेरित करके यह सब करा रहा हो, तो इसे स्वीकार करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिये।" बाबा जी ने इस पर कहा, "महाराज, वास्तव में मैं शरीर-भाव से कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। यह सब कुछ परमात्मा करा रहा है। सहायता करने की भावना से मैं आपके पास आया ही नहीं था। मैं तो केवल आपके दर्शन के निमित्त आया था। आपके मोहक और आकर्षक स्वरूप को देखकर ही मैं आपके सम्बन्ध में जिज्ञासा करने को बाध्य हो गया। पता नहीं किस अज्ञात शक्ति के द्वारा मैं आपकी सहायता करने को अनुप्राणित कर दिया गया। अतः यह सब परमात्मा की ही करामात है, मेरी कुछ भी नहीं।" इस पर उनकी सेवा स्वीकार कर ली गई। नित्य की भांति ६ बजे प्रातःकाल तक बिना चाहे ही भोजन की सारी व्यवस्था अपने आप हो गयी। इस घटना से उन सबका परमात्मा में अनुराग तथा विश्वास और भी दृढ़ हो गया। सब में

सब अपनी आराधना में तन मन से लग गये। थोडे ही दिनो की साधना से उन्हें ऐसी अनुभूति हुई कि वे सब आनन्द के अपार सागर में अवगाहन कर रहे है।

राम उस स्थान की एकान्तिक साधना से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी मानसिक स्थिति का चित्रण उदात्त शैली में किया है। दा महत्त्वपूण अश इस प्रकार हैं—

"राम का उमडता हुआ आनन्द वणनातीत है। यहाँ शान्ति का साम्राज्य है। मन आनन्द स ओतप्रोत है। स्वर्गीय प्रसन्नता अपनी अलौकिक प्रभा अहर्निश विकीण कर रही है। मानसिक क्षितिज दिन प्रतिदिन स्वच्छ होता जा रहा है। भारत ही नही, बल्कि समस्त ससार के कल्याण के लिये यह परम शुभ चिह्न है।'

"यहाँ प्रतिक्षण सगीत, नृत्य और सुख के दौर चल रहे हैं। चिन्तायें चली गई ह, दु ख वोरे में बन्द ह। म कितना अधिक प्रसन्न हूँ, इसका उल्लेख नही किया जा सकता।"

एक रात्रि को अपने साथियो को छोडकर राम टेहरी से लापता हो गये। इससे सभी बहुत क्षुब्ध हुए। आधी रात, जब सभी सदस्य गाढी नीद में थे, राम नगे सिर, नगे पाव चुपचाप बाहर निकल गये। वे गगोत्तरी की ओर अकेले चल पडे। वे उत्तरकाशी तक पहुँचे। टेहरी से उत्तरकाशी लगभग पचास मील की दूरी पर है। राम ने इस यात्रा का इस प्रकार वर्णन किया है—

'कमर में कुछ वस्त्र पहने हुए, राम गाता हुआ चला जा रहा है। क्या गा रहा है? 'ओम्' ओम, आम' रात्रि के दो या तीन बजे हागे। चारों तरफ सन्नाटा है। आकाश में बादल छाये ह। कोई पक्षी अपना पख तक नही फडफडाता ह। देखो, बिजली चमक रही है। बादल गरज कर पवतो पर अपनी शक्ति अजमा रहे ह। वृक्ष तडातड टूट रहे हैं, शिलायें ढह रही है। मार्ग अवरुद्ध है। राम के सिर पर छाता नही है। उसके सिर और पाँव नगे है। उसके पास न तो छडी है और न गरम कपडे।"

"यह ऐसा बीहड स्थान है, जिसे दोपहरी में भी लोग कठिनाई से तय कर पावें। आधी रात कौन चल रहा है? उसके अतिरिक्त और कौन हो सकता है, जो सुषुप्ति का भी साक्षी है। 'सदोदितोऽह, सदोदितोऽह —मैं सदैव जागता हूँ, मैं सदैव जागता हूँ।"

"ऐसी विकट स्थिति में एक टूटा-फूटा रास्ता मिल गया। रास्ता जाम है। किन्तु राम के मार्ग को कौन अवरुद्ध कर सकता है? कँटीली झाडियो एव

शिलाखण्डो को पकड-पकड कर राम पहाडी पर चढ रहा हैं। राम वहाँ स्थित ह, जहा पहाडी बकरियाँ भी न पहुँच सकती।"

"पर्वत के शिखर पर 'ओम् ओम्' की अनाहत ध्वनि हो रही हैं। अरे सोने वालो, क्या तुम तक यह ध्वनि नही पहुँच रही हैं? क्या तुम्हारी नींद अब तक नहीं टूटी? बादलो, जाओ अपने गर्जन में ससार के लोगो को 'ओम ओम' का नाद घोपित कर दा। बिजली, भगो और सुवर्ण अक्षरा में 'ओम् ओम' लिख दो।"

"राम की आज्ञा मानकर बादल गरजने लगे हैं और पत्थरो तक को जगा रहे है, बिजली अपनी कौंध से वृक्षो और जानवरो को प्रकाशित कर रही हैं। बिजली ने प्रसन्नतापूर्वक राम की आज्ञा शिरोधाय कर ली हैं। आकाश ने उस आज्ञा को अपने भाल पर अकित कर लिया है—'भारत जग रहा ह! जग रहा है!! जग रहा है!!! आकाश ने कहा, 'बहुत ठीक', दवदूतो ने भी हा में हा मिलायी, 'बहुत अच्छा किया।' ओम्! ओम!! ओम्!!!'

"दासता, दुर्बलता, अब तुम्हारे जाने का समय आ गया है अब अपना बोरिया बिस्तर बाध लो, अपना सारा सामान लेकर भग जाओ। मुक्त पुरुपो के देश को छोड दो। तुम्हारी मृत्यु पर बादल आसू बहा रहे ह। तुम गगा में बह जाओ! जाओ, अपने को समुद्र में डुबो दो। अपने को हिमालय में गला लो।"

"इस भयकर डरावने स्थान पर, राम निर्भय भाव मे मृत्यु को चेतावनी द रहा है। क्या उसे अपने जीवन का भय नही है? जो सर्वत्र विराजमान है, वह मृत्यु से किस प्रकार डर सकता है? राम की आज्ञा के बिना, क्या मृत्यु सांस ले सकती है? भारत के जागरण के पूर्व राम के शरीर का पात नही हो सकता।'

"यदि शरीर का शिरोच्छेदन भी कर दिया जाय, तो उसकी हड्डियाँ दधीचि की हड्डियो के समान वज्र बनकर द्वैत के दानव का चूर्ण कर डालेंगी।"

"*अश्वत्थामा के छोडे हुए ब्रह्मास्त्र की भांति राम का छोडा हुआ ब्रह्मास्त्र* द्वैत भाव को समूल दग्ध कर देगा। इस शुद्ध सकल्प के आगे किसका दम है, जो टिक सके।"

उपर्युक्त अवतरणो को ध्यानपूर्वक देखने से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो जाती है कि अब राम के विशुद्ध अन्त करण में देशभक्ति और लोक कल्याण की भावना प्रबल हो रही है। वे देश की दुर्बलता, दासता एव तमोगुण को दूर भगाना चाहते है। देश के अन्तर्गत पौरुप, शौर्य एव आनन्द भर देना चाहते हैं। प्रसुप्त देशवासियो को जगाने के लिये कटिबद्ध प्रतीत होते हैं। ब्रह्मज्ञानी की प्रत्येक कामना लोक कल्याण के निमित्त होती है। उसके सद्विचारों के सूक्ष्म परमाणु

ससार के कण-कण में व्याप्त हो जाते हैं। उनके सकल्प में अपार शक्ति निहित रहती है।

राम के अकस्मात चले जाने से उनकी महधर्मिणी शिवदेवी को अत्यधिक मानसिक आघात पहुँचा। वे दिन-रात उन्ही की चिन्ता में निमग्न रहने लगी। उनकी दिनचर्या एव रहनी में विलक्षण परिवतन आ गया। शरीर के प्रति बहुत उदासीन हो गइ। परिणाम यह हुआ कि उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। हालाकि, राम उत्तरकाशा से थोडे दिनो के बाद वापस लौट आये, परन्तु उनका स्वास्थ्य सँभल न सका। उनकी दशा बहुत नाजुक हो गई। अन्त में वे नारायण जी के साथ मुरारीवाला भेज दी गइ, साथ में छोटा पुत्र ब्रह्मानन्द भी था। बडा पुत्र मदनमोहन टेहरी में रह गया और टेहरी राज्य के स्कूल में उमकी पढाई का प्रबन्ध कर दिया गया। वह दस वप का था।

सन् १६०१ के प्रारम्भ में राम ने सन्यास ग्रहण करने का पक्का सकल्प कर लिया। इस बीच उन्होने सम्पूर्ण त्याग करने का दृढ अभ्यास किया। राम की यह असाधारण विशेषता थी, कि जिस काम को वे करते थे, पूरे दिल से। अपनी क्रिया प्रणाली से वे काय की तह तक पहुँच जाते थे। वहा मे वे उस काय के आगामी परिणाम का भी सूक्ष्मता से पयवेक्षण कर लेते थे। तत्पश्चात निरशक होकर उसके सम्पादन में जुट जाते थे। फिर वे सासारिक लोगो की निन्दा, समालोचना अथवा आक्षेप की रचमात्र भी परवाह न करते थे। उन्होने भीतर ही भीतर सन्यास-वृत्ति की पूरी तैयारी कर ली थी। उन्ह अब मात्र औपचारिक सन्यास ग्रहण करना था। शकराचाय जी ने वर्षों पहले उन्हें निर्देश दे रखा था कि जब सारी सासारिक वस्तुओ से चित्त उपराम हो जाय और सन्यास-ग्रहण की अभिलाषा अत्यधिक प्रबल हो जाय, ता गगा तट पर स्वय सन्यास ग्रहण किया जा सकता ह। वह दिन आ पहुँचा। गगा-तट पर राम ने सन्यास की छ महीने की परीक्षण-अवधि पूरी कर ली। उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें सन्यासी होने का प्रबल आदेश दिया। वे अब सन्यास ग्रहण करने के लिये विवश थे।

पास के एक गाँव से नाई बुलवाया गया। उसने राम के सिर का मुण्डन किया। नारायण और तुलाराम ने उनके वस्त्र गेरुआ रग में रँग दिये। राम गगा जी में प्रविष्ट हुए और उन्होने अपना यज्ञोपवीत गगा जी में प्रवाहित कर दिया। कुछ समय तक ध्यानस्थ होकर 'ओम् ओम्' की सुमधुर ध्वनि करते रहे। तत्पश्चात गगा जी से निकल कर गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया। गगा-तट पर बैठकर घण्टो ध्यानमग्न रहे। वे ब्रह्मानन्द के दिव्य नशे में मस्त हो गये। सयोग-वश कुछ साधुगण उत्तरकाशी से वहाँ पहुँच गये थे। भण्डारा करके उन्हें तृप्त

किया गया। तीथराम ने अपना नाम परिवर्तित करके 'रामतीथ' रख लिया। इस नाम परिवतन में भी उन्होने अपनी सहज वृत्ति का परिचय दिया। उन्होने कोई अन्य नवीन नाम नही ग्रहण किया, बल्कि अपने पुराने नाम में ही कुछ उलट-फेर कर दिया। 'रामतीथ' का नवीन नामकरण दो कारणो से साथक था। पहली बात तो यह कि हिन्दू रीति के अनुसार सन्यास ग्रहण करने के अनन्तर सन्यासी को नया नाम इसलिये दिया जाता है, कि वह अपने पूव जीवन (ब्रह्म चय, गृहस्थ अथवा वानप्रस्थ आश्रम) से मर चुका और अब सन्यासाश्रम में प्रविष्ट होकर नवीन जीवन और नवीन नाम ग्रहण कर रहा है। राम भी अपने पूव जीवन और उसके क्रिया-कलापो का परित्याग कर सन्यासाश्रम के नवीन जीवन में पदापण कर चुके थे। वे अब प्रवृत्ति माग को तिलाञ्जलि देकर निवृत्ति माग ग्रहण कर चुके थे और जगत की समस्त वहिमुखताओ से विमुख होकर आन्तरिक जगत में प्रविष्ट हो चुके थे। दूसरी बात यह है कि वे अपने को द्वारकापीठ के शकराचाय, माधवतीथ की शिष्य परम्परा में समझते थे। वहा का सन्यासी समुदाय 'तीथ' सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। अत राम ने वहा की परम्परा के अनुसार 'रामतीथ' नाम ग्रहण किया। इस सयोग की ही बात समझी जानी चाहिये कि उनके नाम में तीथ' शब्द पहले से ही विद्यमान था, उसे बाहर से लाने की आवश्यक्ता नही पडी। सन्यास ग्रहण करने के उपरान्त स्वामी रामतीथ जगल में विल्कुल एकान्त में रहने लगे। अपने सगी-साथियो से निर्धारित समय पर ही मिलते थे। नारायण जी ने राम के सन्यास ग्रहण करने का समाचार उनके सम्बन्धियों एव मित्रो को वतलाया। उनके बडे पुत्र, मदनमोहन ने जब अपने पिता को सन्यासी वेशभूषा में देखा तो वह वेचारा फूट-फूट कर रोने लगा। उसकी दशा अत्यधिक दयनीय थी। दशको की आखो से भी अश्रुधारा वहने लगी।

सन्यास ग्रहण करने के कुछ सप्ताह के बाद उन्होने नारायण जी को लाहौर भेजा। इन छ महीनो के भीतर स्वामी राम ने 'अलिफ पत्रिका के लिये बहुत कुछ लिखा था। नारायण जी उन्ही सब तथा कुछ अन्य आवश्यक सामग्रियो को लेने के लिये भेजे गये थे। मदनमोहन की परीक्षा हो चुकी थी। अत वह भी नारायण के साथ हो गया।

इस बीच स्वामी राम की ख्याति बहुत बढने लगी। अनेक सद्गृहस्थ, ब्रह्मचारी, साधु महात्मा उनके दशनाथ आने लगे। उन दर्शको में कुछ मुमुक्षु भी रहते थे। एक वार टेहरी राजवश का एक पन्द्रह-सोलह वर्षीय किशोर स्वामी जी के दशन के लिये आया। उन्होने अपनी अभिलाषा प्रकट की, "महाराज, मुझे परमात्मा का साक्षात्कार करा दीजिये।" उसे अधिकारी पात्र समझ कर स्वामी

जी ने उसे गूढतम आध्यात्मिक उपदेश दिया । स्वामी जी लडके से प्रश्न पर प्रश्न करते गये । अन्त में उसे आत्मस्वरूप की प्रत्यक्ष झाँकी दिखा दी । स्वामी जी ने उस वार्त्ता का विस्तृत वर्णन किया है । उसका सार इस प्रकार ह—

"एक बार एक भारतीय राजा का पुत्र राम के पास पहाडो पर आया और उसने यह प्रश्न किया, 'स्वामी जी, स्वामी जी, ईश्वर क्या है ?' पहले तो मैंने विषय की दुरुहता बताकर उसे टरकाना चाहा, किन्तु वह अपनी जिज्ञासा शान्ति पर अटल रहा । इस पर मने उससे कहा, 'उचित होगा कि अपना परिचय-पत्र उसे दो । मैं साक्षात ईश्वर के हाथ में उसे रख दूँगा और ईश्वर तुम्हारे पास आ जायेगा । यह तुम भलीभाँति दख लोगे कि ईश्वर क्या है ।' उसने अपने परिचय पत्र पर लिखा, म उत्तर भारत में हिमालय पर रहने वाले अमुक राजा का पुत्र हूँ और अमुक मेरा नाम है ।' राम ने पर्चा लिया, ध्यान से दखा और उस राजकुमार को यह कह कर लौटा दिया, 'अरे राजकुमार तुम नही जानते कि तुम कौन हो । तुम उस निरक्षर अनाडी आदमी की तरह हो, जो तुम्हारे पिता अर्थात राजा से मिलना तो चाहता है पर अपना नाम तक नही लिख सकता । क्या तुम्हारा पिता अर्थात् राजा उससे मिलेगा ? अत तुम अपना नाम ठीक से बताओ, तब ईश्वर तुमसे मिलेगा ।"

लडका चिन्ता निमग्न हो गया । कुछ देर के बाद उसने कहा, 'स्वामिन, स्वामिन् अब मैं समझा, अब मै समझा । मैंने केवल शरीर का पता आपको बताया और कागज पर यह लिखा कि मै कौन हूँ ।' थोडी देर चिन्तन करके उस राजकुमार ने कहा, 'ठीक, मैं मन हूँ, म मन हूँ, अवश्य ही म मन हूँ' अब उस राजकुमार से प्रश्न किया गया, 'क्या, वास्तव में ऐसा ही ह ?"

"अच्छा, कुमार यदि यह बात सही है, तो बताओ तुम्हारे शरीर में कितनी हड्डियाँ हैं ? क्या बता सकते हो, कि आज सबेरे तुमने जो भोजन किया था, वह तुम्हारे शरीर में कहा रखा है ?"

कुमार निरुत्तर हो गया । उसके मुह से निकला, 'जी, मेरी बुद्धि वहा तक नही पहुँचता । मैंने यह नही पढा है । मैने शारीरिक अथवा प्राणविद्या अभी तक नही पढी । मेरी बुद्धि इसे नही ग्रहण कर सकती, मेरे मस्तिष्क में यह बात नही आती, मेरा मन इसकी धारणा नही कर सकता ।'

राम ने कहा, "प्यारे कुमार, तुम्हारी बात से सिद्ध होता है कि तुम मन, बुद्धि या मस्तिष्क नही हो । तो तुम विचारो, खूब विचारो, तब मुझे बताओ कि तुम क्या हो ? उसी समय ईश्वर तुम तक आ जायेगा, और तुम ईश्वर को दख सकोगे । किन्तु कृपा करके बताओ भी कि तुम कौन हो ?"

अत्यधिक मनन करने के अनन्तर लडके ने उत्तर दिया, 'मेरा मन, मेरी बुद्धि वहा तक जाने में जवाब देते है।'

राजकुमार के वचन कितने स्पष्ट और सच्चे थे। सचमुच शुद्ध परमात्मा मन बुद्धि, चित्त, अहकार आदि से परे हैं। सच्ची आत्मा, परमेश्वर तक इन सबकी गम नही है।

लडके को निर्देश किया गया, 'अब तक तुम्हारी बुद्धि जहा तक पहुँची है, कुछ देर बैठकर उस पर विचार करो। मै शरीर नही हूँ, मै मन नही हू, मै बुद्धि नही हूँ—यदि ऐसा है तो इसकी अनुभूति करो। इसे अमल में लाओ। बोध की भाषा में, कार्य की भाषा में इसकी आवृत्तिया करो। अनुभव करो कि तुम शरीर नही हो। यदि इसी साचे में अपना जीवन ढाल लो, यदि सत्य के इतने ही अश को व्यवहार में क्रियान्वित कर दो, यदि तुम शरीर और मन से ऊपर उठ जाओ तो तुम समस्त चिन्ताओ और भय से मुक्ति पा जाते हो। शरीर और मन की कोटि से अपने को ऊँचा करते ही भय छोड देता है। यदि तुम सत्य का केवल इतना ही अश व्यवहार में ले आना सीख जाते हो, तो तुम्हारी सारी चिन्तायें समाप्त हो जाती हैं, सारे शोक नष्ट हो जाते हैं।

तदनतर बालक को यह जताने में कुछ सहायता दी गई कि वह स्वय क्या है। इसके बाद सुबह अब तक के किये गये उसके कामों का विवरण पूछा गया। उसने अपने जागने, स्नान करने, भोजन करने, पढने, चिट्ठिया लिखने, आदि किये हुये कार्यो का ब्योरा बताया। राम ने उससे बताया इन छोटे-छोटे काय करने के अतिरिक्त उसने करोडो, अरबों, शखो—अगणित कर्म और किये है, जिसे मन, बुद्धि आदि नही जान सकते है।

बालक किंकर्त्तव्यविमूढ होकर मेरी बात पर मनन करने लगा। राम ने उससे अपनी बात और अधिक स्पष्ट की, 'तुम भोजन करते हो, उसे आमाशय में पहुँचाते हो, उसे पचाते हो उसका रस बनाते हो, रक्त, मास, मज्जा बनाते हो, हृदगति चलाते हो शरीर की शिरा शिरा में रक्त का सचार करते हो। तुम्ही बाल उगाते हो, शरीर के प्रत्येक अग को पुष्ट करते हो, अब ध्यान दो कि कितने काय, कितनी क्रियायें तुम प्रत्येक क्षण करते रहते हो।'

लडका बारबार सोचने लगा और बोला, महाराज जी वस्तुत मेरे शरीर में, अर्थात इस शरीर में हजारो क्रियाये एक साथ हो रही हैं, जिन्हें बुद्धि नहीं जानती, मन जिनसे बेखबर है और फिर भी वे सब क्रियायें हो रही है। इन सब का कारण अवश्य मैं ही हो सकता हूँ। इन सब का कर्ता मै ही हूँ। अत' मेरा यह कथन सर्वथा गलत था कि मैंने कुछ ही काम किये हैं।'

राम ने राजकुमार से अपनी बात और अधिक स्पष्ट की, 'तुम्हारे इस शरीर में दो प्रकार के काम हो रहे है—एक अपनी इच्छा से दूसरी अनिच्छा से। अपनी इच्छा से किये गये काम वे ह, जो मन, बुद्धि के द्वारा होते हैं, जैसे लिखना-पढना, चलना, बोलना, बैठना, खाना-पाना आदि। ये सारे काय मन और बुद्धि के द्वारा किये जाते है। इसके अतिरिक्त अनेक क्रियायें और काय ऐसे हो सकते ह, जो सीधे सीधे किये जा रहे हैं और जिनमें मन की आढत अथवा माध्यम की आवश्यकता नही। उदाहरण के लिये—सास लेना, नाडियो में रक्त सचार करना, बालो का बढाना आदि।

'लोग यह भयकर भूल करते है कि केवल उन्ही कामा को अपने किये हुए मानते ह, जो मन अथवा बुद्धि के माध्यम से होते है और उन सब कार्यों को अस्वाकार कर देते ह, जो मन अथवा बुद्धि के माध्यम बिना सीधे सीधे हो रहे हैं। इस भूल तथा लापरवाही से वे अपने शुद्ध स्वरूप को मन के बन्दीगृह में बन्दी बना लेते है। इस प्रकार व असीम को ससीम और परिच्छिन्न बना कर दु ख भोगते है। स्वग का समस्त पदाथ तुम्हार भीतर है, ईश्वर तुम्हारे भीतर है। और वह ईश्वर और सार पदाथ तुम स्वय हो।

'कुछ लोग पचाने, रक्त बनान आदि क्रियाओ को प्रकृति द्वारा किया गया मानते हैं। पर यह अधविश्वास है। यदि इस अन्धविश्वास का साहसपूर्वक त्याग दें, तो आपका यह बात भलीभांति समझ में आ जायेगी। आप स्वय प्रकृति हैं—राम है। तुम जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीना अवस्थाओ के साक्षा हा। तुम सवत्र विराजमान हा। तुम्हारी अनन्त शक्ति एक है। वह शक्ति तुमसे भिन्न नही है। तुम्हारी शक्ति सवव्यापिनी है। वही सितारो को चमका रही है, वही तुम्हारी आंखो में देखने की शक्ति द रही है, वही नदियो का प्रवाहित कर रही है, वही ब्रह्माण्डो को क्षण प्रतिक्षण बना बिगाड रही है। क्या तुम वह शक्ति नही हो? सचमुच तुम वही शक्ति हो, जो मन बुद्धि स परे है। तुम वह शक्ति हो जो सम्पूण विश्व का शासन कर रही है। वही आत्मदेव तुम हो, वही ईश्वर तुम हो, वही अज्ञेय, वही तेज, तत्त्व, शक्ति, जो जी चाहे कह लो, वही दिव्य शक्ति, वही सवरूप, जो सर्वत्र विद्यमान है, वही तुम हो।

राम की बात से बालक चकित होकर बोला, 'वास्तव में, वास्तव में मैंने ईश्वर को जानना चाहा था। मने सवाल किया था कि ईश्वर क्या है और मुझे पता लग गया मेरा अपना आप, मेरा सच्ची आत्मा ईश्वर है। मै क्या पूछ रहा था, मैंने क्या पूछा था, कसा बेहूदा प्रश्न मैंने किया था। मुझे अपने को ही

जानना था, मुझे जानना था कि मैं कौन हूँ। मेरे जानने से ईश्वर का पता लग गया। इस प्रकार ईश्वर का बोध हो गया।'

इस प्रकार राम ने उस बालक को आत्मस्वरूप में स्थित कर दिया।"

राम ने आध्यात्मिक साधनों को अपने जीवन की समस्त क्रियाओं में उतार लिया था। स्वाध्याय, चिन्तन मनन, निदिध्यासन के द्वारा प्रत्यक्षानुभूति की थी। उसी के बल पर वे सच्चे आध्यात्मिक साधक की कठिनाइयों को मिनटों में दूर कर देते थे। राम का उपर्युक्त संवाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह केवल पढ़ने मात्र की वस्तु नहीं है, बल्कि उसमें मनन की सामग्री है। हमारा पूर्ण विश्वास है कि उनकी इस प्रकार की वाणियों पर मनन करने से निश्चय ही आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त होगी।

ज्यों-ज्यों राम की यश-सुरभि फैलने लगी, त्यों-त्यों दर्शनार्थियों की संख्या में वृद्धि होने लगी। मुरलीधर के बगीचे में दर्शनार्थियों और जिज्ञासुओं का जमघट सदैव रहने लगा। अन्त में स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि उन्हें एकान्त सेवन में अड़चन पड़ने लगी। अतः १४ जून, १९०१ को उन्होंने मुरलीधर की वाटिका त्याग दी और इसकी सूचना किसी को भी नहीं दी। उन्होंने एक गुफा को अपना निवास-स्थान बनाया। वह टेहरी से छः मील की दूरी पर गंगा-तट पर स्थित थी। गंगा तट पर एकान्त स्थान में होने के कारण यह स्थान स्वामी राम को अत्यन्त प्रिय प्रतीत हुआ। जुलाई, १९०१ में नारायण जी लाहौर से वापस लौटे। राम को मुरलीधर के बाग में न पाकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। बड़ी खोज के पश्चात् नारायण जी ने राम के नये स्थान का पता लगाया। उस स्थान पर पहुँचने पर नारायण जी ने राम को गंगा-तट की बालुका पर समाधि-दशा में लेटे पाया। सूर्य की किरणें जब अधिक तप्त हुईं, तो राम समाधि अवस्था से सामान्य जगत में आये। नारायण जी को अपने सम्मुख देखकर राम ने उनसे कहा, "राम यहाँ पिछली सन्ध्या से लेटा हुआ है। प्रातःकाल चार बजे गंगा जी ने बढ़कर जब राम का स्पर्श किया, तो वह उठ बैठा। किन्तु सुखद बयार ने उसे भाव विह्वल बना दिया और उसके हृदय से कविता की अजस्र मन्दाकिनी स्वतः प्रभावित होने लगी। जब उसके मस्तिष्क के विचार और हृदय के भाव चरमसीमा पर पहुँच गये, तो कलम उसके हाथ से छूटकर गंगा जी की रेती पर गिर पड़ी।' इतना कहकर उन्होंने नारायण जी को अपनी भावावस्था में रचित कुछ कवितायें सुनायीं। वे कवितायें 'अलिफ' में प्रकाशित की गई। 'राम वर्षा' में भी वे संग्रहीत हैं। एक कविता की प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जब उमडा दरिया उलफत का हर चार तरफ आजावी है।
हर रोज मुबारकबादी है हर रात नई एक शावी है॥

नारायण और तुलाराम के साथ १६ अगस्त, १६०१ को राम ने यमुनोत्तरी की ओर प्रस्थान किया। वे ५ सितम्बर, १६०१ को यमुनोत्तरी मन्दिर पहुँचे। सयोगवश उस दिन जन्माष्टमी पडती थी। वहाँ पहुँचने पर राम ने एक उष्ण गुफा में शरण ली और उनके दोना साथी एक कुठार (लकडी का मकान) में रहने लगे। वे लगभग एक पखवारा तक यमुनोत्तरी में रहे। तत्पश्चात् सुमेरु शिखर अथवा बदर-पूछ की यात्रा की। राम ने इस यात्रा के सम्बन्ध में कुछ रोचक प्रसग बतलाये ह—

"इतनी ऊँचाई पर उद की दाल नही पकायी जा सकती। यहाँ ससार का कोई प्रभाव नही पडता। पर्याप्त तप्त जल स्रोत है। प्रकृति ने फूलो के उद्यान सजा रखे हैं यमुना रानी का नीलवर्ण शरीर, कश्मीर को भी लज्जित करता है। झरने आनन्द से नृत्य कर रहे ह। यमुना रानी बाजा बजा रही है और शाहशाह राम गा रहा है।'

"यहाँ पागलपन निरन्तर बढता जा रहा है—दिन दूना और रात चौगुना। धीमी-सी ध्वनि भी पागल के लिये पर्याप्त है। भौतिक शरीर का बोध ही नही रहता।"

"हल्का भोजन यमुना रानी (अपने तप्त सोते में) पका दती है।"

"राम कभी-कभी सौ फुट ऊँचाई से गिरते जल प्रपात में स्नान करता है, कभी शताब्दियो पुरानी बर्फ से निकले हुए विशुद्ध जल में गोता लगाता है और कभी-कभी शाहशाह राम उष्ण जल-स्रोतो में आनन्द लेता है।"

हिमालय की यात्रा में राम ने असाधारण निर्भयता का परिचय दिया। "एक बार हिमालय के जगलों में पाच-पाच भालुओ का सामना हुआ। किन्तु वे सब बिना किसी प्रकार की बाधा पहुँचाये चुपचाप खिसक गये।" इसी प्रकार एक बार एक भेडिये ने चुपचाप उन्हें रास्ता दे दिया। एक बार एक चीता उनके पास से भाग गया। यह कैसे सम्भव हा सका ? इसके दो उत्तर ह—पहली बात ता यह कि राम आत्मस्वरूप में इतने अधिक निमग्न हो गये थे कि वे शरीर भाव से एकदक पथक होकर ऊपर उठ चुके थे। उनकी दृष्टि में राम के अतिरिक्त किसी अन्य द्वैत भाव के लिये गुजाइश नही थी। इस प्रकार के ब्रह्मज्ञानी का शरीर प्रारब्धानुसार चलता है। प्रकृति ऐसे अद्वैतनिष्ठ निर्भय ब्रह्मज्ञानी की सेविका बनकर परिचर्या करती ह। उस ब्रह्मवरिष्ठ पुरुष को अपने शरार के रहने-जाने का कोई हर्ष विषाद नही होता, वह तो सभी शरीरों में अपना आत्मस्वरूप देखता

है। दूसरा उत्तर कुछ निम्न भूमिका से सम्बंधित है। उत्कट साधना के फलस्वरूप राम ने त्राटक सिद्धि प्राप्त कर ली थी। जिस योगी को त्राटक सिद्ध होता है, उसकी दृष्टि में असाधारण शक्ति आ जाती है। संसार का बलवान् से बलवान् व्यक्ति भी उसकी दृष्टि के सम्मुख मूर्च्छित नहीं, प्रत्युत शरीर भी छोड सकता है। ऐसे ब्रह्मज्ञानी अथवा योगी का शरीर अपने लिये नहीं, बल्कि संसार के कल्याण के निमित्त होता है। इस प्रकार के महान् पुरुष चाहे कुछ करें अथवा न करें उनके शरीर के अस्तित्व मात्र से संसार का महान् कल्याण होता है।

यमुनोत्तरी से राम अपने साथियों के साथ गंगोत्तरी की ओर उन्मुख हुए। गंगोत्तरी गंगा का उदगम स्थान है। यमुनोत्तरी से दस-बारह मील नीचे से गंगोत्तरी के लिये दो मार्ग हैं—एक तो पर्वत की बगल से और दूसरा बर्फ के बीच से। पर्वत की बगल वाले रास्ते से गंगोत्तरी पहुँचने में दस-बारह दिन लगते हैं और वर्फ वाले मार्ग से केवल दो-तीन दिन। किन्तु अंतिम मार्ग अत्यन्त दुरूह और भयंकर है। पग-पग पर मृत्यु का सामना करना पड़ता है। राम ने जोखिम भरे मार्ग का चयन किया। १६ सितम्बर १६०१ को रवाना हुए और १८ सितम्बर १६०१ को गंगोत्तरी पहुँच गये। राम ने इस यात्रा का बड़ा ही आकर्षक वर्णन किया है—

"गंगोत्तरी,
सितम्बर, १६०१

पवित्र सलिला गंगा राम का वियोग न सह सकी, और अन्त में एक मास होते ही होते उसने फिर राम को अपने पास बुला ही लिया। यद्यपि राम की गंगा ज्ञान-सम्पन्ना है, (मोह-माया मे परे है) फिर भी राम के मिलने पर वह अपने आनन्दाश्रुओं के वेग को किसी प्रकार न रोक सकी। यहां प्यारी गंगा के नित्य नवीन सौंदर्य एवं आनन्दमयी क्रीडा का वर्णन कौन कर सकता है? गंगा के चिर सहचरों का चरित्र परम अलौकिक और निर्मल है। उदाहरणार्थ हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियां और निष्पाप देवदार वृक्षों की पंक्तियां किसका हृदय आकर्षित नहीं कर लेंगी? देवदारु के वृक्षों का एकदम सीधा तनाव तो फारसी कवियों की प्रियतमा के लम्बे कद के सौन्दर्य को भी मात कर देता है। उन वृक्षों की शान्ति दायिनी श्वास से हृदय प्रफुल्लित होकर खिल उठता है और आनन्दातिरेक के कारण एक सीढी ऊपर चढ जाता है।

यहां प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है कि 'परमात्मा पत्थरों के बीच सो रहा है वनस्पतियों में श्वास ले रहा है, जानवरों में हिल-डुल रहा है और मनुष्य में चेतना शक्ति का संचार कर रहा है।'

यमुनोत्तरी की यात्रा के अनन्तर गगोत्तरी पहुँचने में यात्रियो को दस दिन से कम नही लगता। किंतु राम यमुनोत्तरी से गगोत्तरी केवल तीन दिन में पहुँच गया। उसने एक ऐसे माग का अनुसरण किया, जिस पर नीचे के मैदान के किसी निवासी के चरण कदाचित ही कभी पडे हो। पर्वतारोही इस मार्ग को 'छाया-पथ' के नाम से सबोधित करते है। राम ने लगातार तीन राते जगल की एकान्त गुफाओ में गुजारी। माग में न तो कोई बस्ती दीख पडी और न कोई झोपडी। इस यात्रा में दो पैरोवाला (अर्थात मनुष्य) भी नही दिखाई पडा।

'छायापथ' यह इसलिए कहलाता ह कि प्राय वर्ष भर इस पर घनी छाया रहती है। किसकी छाया ? तुम सोचते होगे—पेडो की ? नही, इस पथ का अधिकाश भाग बादलो से घिरा रहता है। ऐसे ऊँचे शीतप्रद स्थान में वृक्षो की कहाँ गुजर ? वृक्ष तो यहा उग ही नही सकते। यमुनोत्तरी और गगोत्तरी के समीपवर्ती गाँवो के गडरिये प्रतिवर्ष के दो तीन मास इन्ही जगलो में अपनी भेड बकरियाँ चराते है। सयागवश भेड चराते हुए कुछ गडरिये 'बन्दरपूछ' और 'हनुमान मुख' के समीप दिखायी पडे। यही दोनो शिखर उन विश्वविख्यात भगिनी सरिताओ के स्रोतो को जोडते ह। प्राय सार पथ में फूलो की ऐसी अधाधुध बाढ रहती है कि सारा माग सुनहली फश से ढका प्रतीत होता है। चारो ओर रग-बिरगे नीले-पीले गुलाबी पुष्प बिखरे रहते है। राशि-राशि में लिली (कुमुदिनी), वायलेट (नील पुष्प) एव विविध प्रकार के अन्य पुष्प खिले है। गुग्गल, धूप, ममीरा, मीठा तलिया, सलाब मिश्री तथा अन्य जडी-बूटियो की बहार है। केशर, इत्रस तथा मनोहर सुगन्धियुक्त विविध पुष्प—भेडगद्दा, अप्रतिम ब्रह्मकमल आदि अपनी दिव्य सुगन्धि चारो ओर बिखेर रहे है। इन सब के अलौकिक सौन्दय से यह स्थल इतना मनोहर उद्यान बन गया है कि इसमें विहार करने के लिये पृथ्वी और स्वग के स्वामी भी प्रतिस्पर्धा कर सकते ह।

× × ×

कही-कही वायु के झोको पर सुगन्ध का ऐसा तूफान उठता है कि राम का हृदय मधुर सगीत की भाँति थिरकने लगता है। वायु पर सवार सुगन्ध का यह विशाल सरोवर—एकदम मधुर और एकदम कोमल—दो प्रमी हृदयो के सम्मिलन की मुसकान के सदृश स्निग्ध, उनके वियोग जनित अश्रुओ की भाति कोमल। इन दीर्घाकार पर्वतो की चोटियो के खेत ऐसे सुशोभित रहते है, जैसे बेल-बूटेदार कालीन बिछे हो। इन पर देवतागण या तो भोजन करने उतरते होगे। अथवा नृत्य-उत्सव के लिये। कलकल निनाद वाले निझर और यत्र-तत्र नुकीले पर्वतो से गुजरने वाली सरितायें इस मनोरम दृश्य में चार चाँद लगा देते हैं। किसी-

किसी चोटी पर पहुँचने से दृष्टि से समस्त बन्धन कट जाते हैं। वह असीम हो जाती है। चाहे जिस दिशा में दृष्टि दौडाइये, कही कोई अवरोध नही, न कोई पहाडी नजर आती है और न कोई असन्तुष्ट बादल। उन्मुक्त हो चाहे जहाँ विचरिये। कोई-कोई उच्च शिखर मानों आकाश में छेद करने की स्पर्द्धा करते हैं। वे अपनी उडान में रुकना जानते ही नही, ऊँचे उठते-उठते मानो सर्वोच्च आकाश से एक हो रहे हैं।

× × ×

राम का वतमान निवास पवतीय रगमच पर एक छोटी-सी सुरम्य कुटिया में है। चारों ओर हरियाली का फश बिछा हुआ है। इस एकान्त प्राकृतिक उद्यान में गगा की शोभा निरखते ही बनती है। राम-बूटी का यहाँ कोई ओर-छोर हा नही है। गौरया जैसी अनेक प्रकार की चिडिया यहा दिन भर चहचहाती रहती हैं। जलवायु अत्यन्त सुखद और स्फूर्तिदायक है। गगा का कलकल निनाद और पक्षियो का कलरव दोनो मिलकर स्वर्गीय उत्सव का दृश्य उपस्थित कर देते हैं। यहाँ गगा की घाटी पर्याप्त चौडी है। किन्तु इस विस्तृत मैदान में भी गगा का प्रवाह बहुत तेज है। फिर भी राम अनेक बार उसके आर-पार आता जाता रहता है। यदा-कदा बदरीनाथ और केदारनाथ भी राम बादशाह को बडे प्रेम से आने के लिये निमत्रण भेजते हैं। किन्तु ज्योही प्यारी गगी को राम के वियोग का आभास होता है, त्योही वह उदास और खिन्न हो जाती है। राम भी उसे दुखी देखना पसन्द नही करता। उसकी उदासी किसे भायेगी।"

सुमेरु-दर्शन

राम ने सुमेरु की भी यात्रा की। उस यात्रा का रोचक संस्मरण उन्ही द्वारा सुनें—

"यमुनोत्तरी की गुफा में निवास करते समय राम का दैनिक भोजन था मर्वा (एक प्रकार का पहाडी अन्न) और आलू और वह भी चौबीस घटा में केवल एक बार। फलत यह प्रपच रोग का शिकार हो गया। तीन दिनों तक लगातार सात-सात दस्त आये। इसी रुग्णावस्था में चौथे दिन बडे तडके गरम चरन के नहाने के बाद राम सुमेरु यात्रा के लिए निकल पडा—केवल एक कौपीन धारण कर नग्न बदन, न जूता, न पगडी और न छाता। पाँच हृष्ट-पुष्ट पर्वतारोही, कम्बल कपडों से लैस होकर राम के साथ चले। नारायण और तुलाराम नीचे परमानन्द गाँव भेज दिये गये।

सबसे पहले हमें शिशुरूपिणी यमुना तीन-चार स्थलों पर पार करनी पडी। कुछ दूरी पर यमुना-घाटी का एक भाग एक विशालकाय हिम शिलाखण्ड से अवरुद्ध था—चालीस पचास गज ऊँचा और लगभग डेढ फर्लांग चौडा। एकदम सीधे दो पर्वत शिखर दा दीवालो की भाति सगव दोनो ओर खडे थे। क्या उन्होंने राम बादशाह का मार्ग रोकने के लिये कोई षडयन्त्र रच रखा था? वह ऐसी बाधाओं की कब चिन्ता करता है? दृढ सकल्प शक्ति के सम्मुख बाधाओं को दूर भगना ही पडता है। हम लोगो ने पवत की पश्चिमी दीवाल पर चढना प्रारम्भ किया। कभी-कभी हमें पैर जमाने के लिये एक इच स्थान भी नही मिलता था। केवल एक ओर हाथो से सुगन्धित किन्तु कटीली गुलाब की झाडियो को पकड कर और दूसरी ओर पवता की 'चा' नामक कोमल घास के नन्हें-नन्हें डठला में पैर की उँगलियाँ गडा कर हम शरीर सतुलित रखते थे। किसी भी क्षण हम मृत्यु के मुख में पड सकते थे। यमुना की घाटी में बर्फ के ठडे विस्तरो से भरा एक गहरा खड्ड हमारे स्वागत के लिये मुह बगारे खडा था। ज़रा भी जिसका पैर काँपता, वही शान्ति से सुशीतल हिम-समाधि में जाकर सो जाता। नीचे स्थित यमुना के प्रवाह की मन्द मन्द ध्वनि अब भी हमारे कानो में पड रही थी। वह ध्वनि ऐसी लग रही थी, जैसे कब्रिस्तान का मृत्यु के समय का बाजा बज रहा हो। इस तरह हम लोग पौन घण्टे तक मृत्यु के मुख में चलते रहे। जीवन मरण का अपूर्व सम्मिलन था। एक ओर मृत्यु हमारे लिये मुह बाये खडी थी और दूसरी ओर शीतल मन्द, सुगन्ध बयार हृदय प्रफुल्लित कर रहा थी। भयकर और दुरूह चढाई के अनन्तर हम लोगो ने उस दुगम स्थान को पार कर लिया। वह भयानक हिम-शिलाखण्ड और यमुना अब पीछे छूट गयी। हमारी टुकडी पुन एक सीधे खडे पवत पर चढने लगी। कोई रास्ता, कोई पगडडी—कुछ भी नही दिखायी पड रहा था। एक अत्यन्त सघन वन पार करना पडा, जहा वृक्षो के तने तक नही दिखायी पडते थे। राम का शरीर कई जगह छिल गया। एक घटे के भीषण सघष के अनन्तर हम लोगो ने देवदार और चीड के उस भयकर जगल को पार किया। अब हम लाग ऐसे खुले स्थान में पहुँचे, जहा की वनस्पति अपेक्षाकृत बहुत छोटा थी। वायुमण्डल में आनन्द की विद्युत तरगे फैल रही थी और सुगन्ध के फौव्वारे छूट रहे थे। इस चढाई ने पाँचो पवतारोहियो का बेदम कर दिया था, पर राम को व्यायाम-जनित सुख मिल रहा था। उस स्थान की धरती अधिकतर चिकनी थी। चारो ओर एक से एक मनोरम दृश्य दिखाई पडते थे। सुन्दरतम पुष्पो का कानन और हरीतिमा की निराली छटा ने हमारे हृदय में अपूर्व उल्लास भर दिया। सारा श्रम काफूर हो गया।

और उन दिनों बीमार रहने वाला, क्या और बीमार हो गया होगा ? नहीं, उस दिन वह बिल्कुल चगा रहा, न कोई रोग, न कोई थकावट, शिकायत का नामोनिशान नही। कोई भी पर्वतारोही राम से आगे न निकल सका। हम सभी ऊपर चढते ही गये। प्रत्येक को प्रचण्ड भूख लग गयी। इस समय हम उस प्रदेश में पहुँच चुके थे, जहाँ कभी जलवृष्टि नही होती, गिरती हैं केवल बर्फ अत्यन्त सौन्दर्यमयी गरिमा के साथ।

यहाँ इन गजे और वीरान शिखरो पर हरियाली का नामोनिशान नही दिखाई पडता। हमारे आगमन के पूर्व ही बिलकुल नया हिमपात हुआ था।

राम के स्वागत के निमित्त साथियो ने पत्थर की एक बडी चट्टान पर कालीन की भाति एक लाल कम्मल बिछा दिया और पिछली रात के उबाले हुए आलू भोजन के लिये परोस दिये गये। साथियो ने भी वही सादा भोजन बडे प्रेम से ग्रहण किया। भोजनोपरान्त हम लोग तुरन्त ही उठ खडे हुए। दढता और उत्साह के साथ हम लोग आगे बढने लगे, किन्तु चढाई बडी विकट थी। एक नवयुवक थक कर गिर पडा, उसके फेफडो और हाथ-पैरो ने आगे बढने से इकार कर दिया। उसके सिर में चक्कर आने लगा। उस समय उसे वही छोड दिया गया। थोडी दूर चलने पर दूसरा साथी भी बेहोश होकर गिर पडा। उसने कहा—'मेरा सिर घूम रहा है।' उसे भी वही छोड दिया गया। शेष टुकडी आगे बढती गयी। किन्तु थोडी देर के बाद तीसरे साथी की भी वही दशा हुई। उनकी नाक से रक्त बहने लगा। शेष दो साथियो के साथ राम ने आगे का मार्ग लिया।

तीन अत्यन्त सुन्दर बरार (पहाडी हिरन) हवा की भाति तेजी से दौडते हुए निकल गये।

लो, चौथा साथी भी लडखडाने लगा और अन्त में बेहोश होकर हिमाच्छादित शिला पर लेट गया। यहा कहीं तरल जल नही दिखायी देता। किन्तु शिलाओ के नीचे से (जहा चौथा आदमी लेटा था) गम्भीर 'घर घर' की ध्वनि सुनाई पड रही थी। एक ब्राह्मण, इस समय भी राम के साथ था, वहा लाल कम्मल, एक दूरबीन, एक हरा चश्मा और एक कुल्हाडी लिये हुए। यहाँ की वायु अत्यन्य सूक्ष्म है, जिससे सास लेने में बडी तकलीफ और कठिनाई होती है। आश्चर्य। दो गरुड पक्षी हमारे सिरो के ऊपर उडते हुए निकल गये। अब अत्यन्त पुरानी गहरे काले रग की बर्फ की ढलवा चढाई चढनी थी। वह अत्यन्त विकट कार्य था। साथी ने अपनी कुल्हाडी से काटकर उस फिसलने वाली बर्फ में गड्ढे बनाना चाहे, ताकि उनमें पैर जमा कर ऊपर चढा जा सके। किन्तु उस प्राचीन बर्फ से टक्कर खाकर, साथी बेचारे की कुल्हाडी टूक-टूक हो गयी। और ठीक

उमी समय वर्फ के प्रचण्ड अन्धड ने हम लोगो को आ घेरा। राम ने उस दुखी साथी का इस प्रकार सान्त्वना देने की चेष्टा की, 'परमात्मा हम लोगों का कभी अमगल नही कर सकता। इस हिमपात से हमारा मार्ग निस्सन्देह ही सुगम हो जायेगा।' और सचमुच हुआ भी वही। उस भयकर हिमपात से ऊपर चढने में आसानी हो गयी। नुकीली पर्वतीय छडिया की सहायता से हम लोगा ने वह चढाई पार कर ली। और लो, स्वच्छ, चौरस, चमचमाती हुई वर्फ का मीलो लम्बा-चौडा विस्तृत मदान प्रस्तुत था। शुभ्र रजत जैसी आभा से जगमग फर्श—चारो ओर एकदम समतल। आह्लाद! परम आह्लाद!! जाज्वल्यमान क्षीरसागर, कान्तिमय, परमोत्कृष्ट, विचित्र, अति विचित्र। राम का आह्लाद चरमसीमा पर पहुँच गया। वह आनन्द की बाढ से उन्मत्त हो गया। कन्धे पर लाल कम्मल डाल कर, पैरो में कैनवस के जूते पहन कर, उसने पूरी रफ्तार से दौडना प्रारम्भ किया। ऐसी दौड उसने अपने समस्त जीवन में कभी नही दौडी थी।

अब राम के साथ कोई सगी-साथी नही। 'आखिर के तइ हस अकेला ही सिधारा' जीवात्मा के हस की अन्तिम उडान अकेली ही होती है।

लगभग तीन मील तक राम अकेला ही उस ग्लैसियर पर चलता रहा। कभी-कभी टाँगे वर्फ में धँस जाती थी और निकलती थी, बडी कठिनाई से। लो, अब एक हिमानी ढेर पर लाल कम्मल विछाकर राम बठ गया। वह एकदम अकेला है। ससार के गुलगपाडे, किचपिच और झझटो से एकदम ऊपर—समाज की तृष्णा और ज्वाला से नितान्त मुक्त। नीरवता की चरमसीमा! शान्ति का अखण्ड साम्राज्य!! किसी प्रकार के शब्द के लिए यहा कोई गुजाइश नही। केवल आनन्द घनघोर! इस गम्भीर एकान्त पर राम लाखो बार न्यौछावर है!

बादलो का घूघट यहा बहुत महीन हो जाता है। बादलो के उस महीन घूघट से सूर्य की किरणें छन-छन कर वर्फ की फर्श पर पडती थी। किरणो के पडने से रजतवर्ण हिमराशि कान्तिमय सुवर्ण वर्ण में परिणत हो जाती है। चारो ओर सुवर्ण, सुवर्ण। जहाँ भी दृष्टि जाती है, सुवर्णमयी सृष्टि दिखाई पडती है। इस पर्वत का कितना सार्थक नामकरण किया गया है—सुमेरु पर्वत, सोने का पहाड!

ओ ससार में लिप्त रहने वाले लोगो! देखो, देखो, क्या किसी सुन्दरी के कपोलो की गुलाबी आभा, चमकदार से चमकदार हीरे की प्रभा, सुन्दर से सुन्दर राज प्रासाद की उत्कृष्ट कला—इस सुमेरु की अतुलनीय मनोहरता और सौन्दर्य की तुलना में एक क्षण के लिये भी टिक सकती है! नही, नही, कदापि नही! ऐसे अनन्त सुमेरु तुम्हे अपने ही अन्तर्गत दिखलायी पडेंगे, जब तुम एक बार भी अपने सच्चे आत्मस्वरूप—वास्तविक आत्मा का साक्षात्कार करके उसका रहस्य

जान लोगे। समस्त सृष्टि—मिट्टी के ढेले से लेकर बादल तक, शस्य श्यामला भूमि से लेकर नीलाम्बर तक, और उस सृष्टि में निवास करने, सारे चेतन प्राणी चीटी से लेकर आकाश में उडने वाले गरुड तक—तुम्हारे स्वागत के लिए खडे हो जायेंगे। कोई देवता भी तुम्हारी अवज्ञा न कर सकेगा।

ओ बादलो, छट जाओ। भारत को आच्छादित करने वाले, अज्ञान के बादलो, बिखर जाओ। तुम सब, अब भारत की पुण्य भूमि पर नही मँडरा सकते। अरी हिमालय की बर्फो, राम तुम्हें आज्ञा देता है—'तुम अपनी पवित्रता और सत्यनिष्ठा में आरूढ रहो। द्वैत-भाव के अपवित्र जल को भारत भूमि में कदापि न भेजो।'

बादल छँट गये हैं। सूर्य की किरणें बर्फ पर और अधिक पडने लगी है। सारी हिम-राशि काषाय (गेरुआ) रग में रँग गयी है। क्या पर्वतों ने सन्यास लेकर काषाय-वस्त्र धारण कर लिया है?"

ऊपर के वर्णनो से राम का प्रकृति के प्रति असीम अनुराग प्रतीत होता है। वे भयानक से भयानक खतरे मोल लेकर भी प्रकृति के भव्य स्वरूप का पर्यवेक्षण करते थे। किन्तु मजाल है कि एक क्षण के लिये भी आत्मस्वरूप से विमुख हुए हो। वे भीषण से भीषण परिस्थितियो में भी अपनी 'स्व महिमा' से रच मात्र भी बहिर्मुख नही दिखाई देते। बर्फ के सुनहले रग में उन्हें सन्यासी के काषाय रग की अनुभूति होती थी। सुमेरु दर्शन से यद्यपि वे आह्लाद से ओत प्रोत हो गये थे, तथापि उनकी यह स्मृति तनिक भी नही उनका साथ नही छोडती कि आत्म स्वरूप में एकबार स्थित होने पर भी अनन्त सुमेरु के सौन्दर्य अपने ही भीतर स्थित प्रतीत होते है।

१६ अक्टूबर, १६०१ को राम बूढे केदार और त्रियुगीनारायण के मार्ग से केदारनाथ की ओर रवाना हुए। केदारनाथ का दर्शन कर, वे बदरीनाथ पहुँचे। वहाँ वे दीपावली के एक सप्ताह पूर्व ३ नवम्बर, १६०१ को पहुँचे। सयोगवश दीपावली के दिन सूर्यग्रहण पडता था। ग्रहण के पश्चात उन्होने गगा में स्नान किया।

शीत ऋतु का आगमन प्राय हो चुका था। अत राम मैदान की ओर चल पडे। लौटते समय उन्हें स्वामी शिवगणाचार्य का मथुरा से निमत्रण-पत्र प्राप्त हुआ। बडे दिन के अवसर पर मथुरा में होने वाले एक धार्मिक सम्मेलन के सभापतित्व के लिए उन्हें आमन्त्रित किया गया था। राम ने उस आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप वे २५ दिसम्बर, १६०१ को मथुरा पहुँच गये। साथ में नारायण और तुलाराम भी थे। स्वामी जी ने सम्मेलन का सभापतित्व अत्यन्त

सफलतापूर्वक किया। लाहौर के 'फ्री थिंकर' समाचारपत्र ने इस सम्बन्ध में अपनी धारणा इस प्रकार अभिव्यक्त की थी—

"किन्तु सबके प्रिय, विचारशील और गम्भीर, समय-समय पर हँसमुख और कठोर, सवथा विभिन्न विचार वाले श्रोता-समाज को लगातार घटो—यहाँ तक कि सायकाल अँधेरे में भी जादू के समान मन्त्रमुग्ध करने वाले वहाँ एक ही व्यक्ति थे—स्वामी राम। वे शान्त, विनम्र, पूर्ण यौवन से युक्त भोले भाले विरक्त सन्यासी थे। उन्होने प्राचीन एव अर्वाचीन दर्शनशास्त्रो एव वर्तमान विज्ञान का पर्याप्त ज्ञान सचय किया था। वे वास्तव में उस तत्त्व से निर्मित थे, जिससे सभी सत्य-निष्ठाशील महापुरुषो का निर्माण होता है। नम्र और प्रसन्नचित्त, बच्चो जैसे सरल, बोलचाल और व्यवहार में निर्दोष होते हुए भी, उनके रेशमी जामे के भीतर वज्र जैसी कठोर सकल्प शक्ति थी। यही कारण है कि दूसरो की भावनाओं का बडी सावधानी से आदर करते हुए, वे अपने विचारो को निर्भीकतापूर्वक अभिव्यक्त करने में सबसे आगे थे।'

सरदार पूर्णसिंह ने भी उस सम्मेलन में विराजमान स्वामी जी के आकर्षण का इस प्रकार चित्रण किया है—

'उनकी उपस्थिति का प्रभाव वहाँ अद्भुत दिखायी देता था। उनकी प्रफुल्लता सक्रामक थी। उनके विचार शीघ्र ही श्रोताओ के हृदय में घर बना लेते थे। उनकी ओम ध्वनि का कहना ही क्या—उसमें गजब का जादू था। जो भी जिज्ञासु उनके सानिध्य में आया, ओम ओम् ध्वनि उच्चारित किये बिना नही रह सका। उनके दर्शन करने का अर्थ होता था, अपने जीवन का नये साँचे में ढालना। उनके दर्शन मात्र से हृदय की सकीर्णता और निम्न विचारधारा न जाने कहा अन्तर्निहित हो जाती थी। दर्शक स्वत उच्च भूमिका में स्थित हो जाता था। ऐसी प्रतीति होती थी कि अध्यात्म विषयक एक सर्वथा अलौकिक एव नवीन दृष्टिकोण उनके नेत्रो से निकल कर जिज्ञासुओ और मुमुक्षुओ के नेत्रो में प्रविष्ट हो रहा है।"

इस प्रकार स्वामी रामतीर्थ के महान् एकान्तिक साधना के अविरल अभ्यास के फलस्वरूप उनकी दृष्टि और वाणी में अलौकिक सिद्धि अपने आप आ गयी थी। वे ब्रह्मविद्या के मूर्तिमान स्वरूप हो गये थे। इस प्रसग में मुण्डकोपनिषद् की यह श्रुति स्वत उपस्थित हो जाती है—

'स यो ह वै तत्परम ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति। तरति शोक तरति पाप्मान गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति।"

—मुण्डकोपनिषद्, खण्ड २, मुण्डक ३, श्रुति ९,

अर्थात्, "यह बिलकुल सच्ची बात है कि जो कोई भी उस परब्रह्म परमात्मा को जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है। उसके कुल में, अर्थात उसकी शिष्य-परम्परा में कोई भी व्यक्ति ब्रह्म को न जानने वाला नहीं होता। वह सब प्रकार के शोक और चिन्ताओं से सर्वथा पार हो जाता है, सम्पूर्ण पाप-समुदाय से सर्वथा तर जाता है, हृदय में स्थित सब प्रकार के संशय विपर्यय, देहाभिमान, विषयासक्ति आदि ग्रन्थियों से सर्वथा विमुक्त होकर अमर हो जाता है और जन्म-मृत्यु से रहित हो जाता है।"

कहना न होगा कि स्वामी जी महाराज इसी भूमिका में आरूढ़ हो गये थे। अब तो उन्हें अपने लिये कोई कर्त्तव्य अवशिष्ट नहीं रह गया था। उनके जीवन की प्रत्येक गति विधि लोक-कल्याण के निमित्त हो रही थी। पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर स्वामी राम के माध्यम से अपनी अलौकिक लीला करके संसार के विषयासक्त मनुष्यों को शिक्षा दे रहा था कि आध्यात्मिक जीवन, त्यागी जीवन, सन्यासी-जीवन, तुरीय-पद में स्थित जीवन का आदर्श इस प्रकार का होना चाहिये।

दूसरे दिन अपराह्न सम्मेलन समाप्त हो गया। किन्तु श्रोतागण अब भी राम की अमृतवाणी सुनने को अत्यधिक उत्सुक थे। उनकी इस उत्सुकता को जानकर स्वामी राम ने घोषणा की, "सम्मेलन अब समाप्त हो गया है। राम अब इस सीमित पंडाल के भीतर कुछ न कहेगा। अब वह यमुना जी की पवित्र रेणुका पर विस्तृत आकाश के चंदोवे के नीचे भाषण करेगा।" इतना कहकर वे पंडाल छोड़ कर यमुना की ओर चल पड़े। अपार जन समूह उनके पीछे-पीछे चल रहा था। किन्तु यह क्या? राम यमुना की ओर न जाकर जंगल की ओर मुड़ चले। जनता मंत्र मुग्ध की भाँति स्वामी राम का अनुगमन करने लगी, वह यह एकदम विस्मृत हो गयी कि उसे यमुना की ओर चलना है, अपने पीछे इतनी अपार भीड़ आती हुई देखकर, राम रुक गये और उन्होंने कहा, "प्यारो, राम जंगल में लघुशंका करने जा रहा है। लघुशंका से निवृत्त होकर, वह यमुना-तट पर चलकर आप लोगों से कुछ निवेदन करेगा।" इस पर भीड़ वहीं मूर्तिवत खड़ी हो गयी। जब तक राम वापस नहीं लौट आये, वह टस से मस नहीं हुई। उनके चलने पर, भीड़ उनके पीछे-पीछे उनका अनुगमन करने लगी। लोग राम के पीछे पागल हो गये थे। कुछ लोग कँटीली झाड़ियों में उलझ गये, कुछ पत्थरों से ठोकर खाकर क्षत विक्षत। पर उन्हें अपने तन-बदन की स्मृति नहीं रह गयी थी। जैसे कृष्ण के प्रेम में उन्मत्त गोपियाँ उनके पीछे-पीछे अनुगमन करती थीं, वैसे राम के दिव्य प्रेम की सुरा से उन्मत्त अपार भीड़ आँख मूँद उनके पीछे-पीछे चल रही थी। उसे यह बोध नहीं था कि वह कहाँ जा रही है। राम संध्या के झुटपुटे में

यमुना-तट पर पहुँचे। बडी ठडक थी। लोगो के पास पहनने ओढने के वस्त्रो की कमी थी। किन्तु राम की अलौकिक आध्यात्मिक प्रभा के सम्मुख उन्हें वस्त्रा का अभाव जरा भी नही खला। राम ने सभी को शरीर-भाव से ऊपर उठा दिया था। जैसे वे स्वय थे, वैसे ही औरो को भी बना दिया था। यह था आध्यात्मिक शक्ति का अपूर्व सम्मोहन! राम ने आज्ञा दी, "अपनी अपनी शालें बिछा कर बैठ जाओ।" सब ने उनकी आज्ञा का अधाधुध पालन किया। सब की कीमती शालें यमुना जी की रेती पर तुरन्त बिछ गयी। और लोग अपनी अपनी शालो पर बैठ गये। ऐसी प्रतीति होती थी मानो कोई सम्मोहनकर्त्ता लोगो को बरबस वशीभूत कर लिये हो। जो वशीभूत थे वे सामान्य जन नही थे। कुछ तो समाज के अग्रणी जन थे। कुछ ग्रेजुएट थे कुछ वकील कुछ न्यायाधीश, कुछ डिप्टी कलक्टर और कुछ बैरिस्टर थे। सबके सब राम की अमृतवाणी का आठ बजे रात्रि तक मधुर पान करते रहे।

उस जनसमूह में से एक सम्भ्रान्त व्यक्ति थे—ऋषि श्रवणनाथ। उन्होने इस अलौकिक घटना के सम्बन्ध में अपने भाव इस प्रकार व्यक्त किये ह, "मुझे इस बात की प्रबल शका थी कि गोपियाँ श्रीकृष्ण के पीछे इतनी अधिक दीवानी क्यो थी? किन्तु इस दृश्य से मेरी शका का सर्वथा समाधान हो गया। यदि इतने महान् शिक्षित व्यक्ति राम का इस प्रकार अन्धाधुध अनुगमन कर सकते ह, तो श्रीकृष्ण की अलौकिक मुरली ध्वनि से अपढ और गँवार गोपिया उन्मत्त हो जायँ, तो कौन-सा आश्चय है?"

१९०२ के फरवरी महीने में राम फैजाबाद पहुँचे। वहाँ, उन्होने 'साधारण धम सभा' के द्वितीय वर्ष के समारोह की अध्यक्षता की। इन धम सभा की सस्थापना बाबू सुजनलाल पाण्डेय उर्फ शान्तिप्रकाश पाण्डेय ने की थी। सभा ने अपने मच पर हिन्दू मुसलमान, ईसाई—सभी धर्मावलम्बियो को आमन्त्रित किया था कि वे पधार कर धम पर अपने विचार प्रकट करे और साथ ही अपने अपने विचारो का पारस्परिक आदान-प्रदान भी करें। सभा की पहली बैठक में राम के आदेशानुसार नारायण जी ने 'आत्मा' के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। व्याख्यान के पश्चात मौलवी मोहम्मद मुर्तजा अली खा ने कई शकायें उपस्थित की। राम ने मौलवी साहब से निवेदन किया, "आप शका समाधान के निमित्त दूसरे दिन उपस्थित हो।" दूसरे दिन मौलवी साहब पहुँचे, पर वादविवाद करने के लिये नही, बल्कि झगडा फसाद करने के लिये। वे झगडा-फसाद के लिये पूरे आमादा थे। वे राम के आमने सामने बैठ गये और राम के साथ आँखें मिलायी। आँखें चार होते ही, मौलवी साहब में विलक्षण परिवर्तन हो गया। पता नही

राम की आखो ने क्या जादू किया कि मौलवी साहब की आखो से प्रेम की अश्रु वर्षा होने लगी। उनका सारा कालुष्य, कुटिल भाव आसू बन कर आखो की राह से बह गया। उनका हृदय पवित्र भावो से ओतप्रोत हो गया। मौलवी साहब हाथ जोड कर खडे हो गये और राम से प्रार्थना को, "स्वामी जी, क्षमा कीजिये, कृपा कीजिये। मैं आपको नही जानता था, मेरे अपराध को क्षमा कीजिये।" उसी दिन से मौलवी साहब भगवान् के प्रेमी भक्त हो गये। परमात्मा के सच्चे प्रेमी की दृष्टि में न कोई जाति रहती है न कोई धर्म।

बाबू सुजनलाल उर्फ शान्तिप्रकाश ने राम के प्रकृति नियन्त्रण के सम्बन्ध में एक घटना बतायी है, "एक बार राम फैजाबाद आये। कई दिनो से लगातार वर्षा हो रही थी। ऐसी स्थिति में सभा का आयोजन करना कठिन समस्या थी। मैंने स्वामी जी से निवेदन किया, 'स्वामी जी सभा किस प्रकार होगी? आसमान बहुत धुधला है। जल वर्षा होने की पूरी सभावना है।' राम ने मुसकराकर उत्तर दिया, "जब राम आ गया है, तो कोई वस्तु धुंधली नही रह सकती। राम के आने पर मौसम को भी प्रसन्नचित्त हो जाना चाहिये।' थोडी ही देर के बाद बादल छँट गये और सूर्य चमकने लगा। जब तक राम फैजाबाद में रहे, आसमान में बादल छाये ही नही।"

एक बार लालभवन, फैजाबाद में राम ने निम्नलिखित बात अपने मित्रों को सुनायी थी, "एक दिन, प्रात काल मैं एक जगल में सैर कर रहा था। सयोगवश मुझे महात्मा हरिहरदेव के दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ। वे अद्वैतवाद के साकार विग्रह थे। उन्होने केवल एक लँगोटी मात्र पहनी थी और वह भी जीर्ण शीर्ण। एक सेठ बदरीनाथ की तीर्थयात्रा के लिये जा रहे थे। महात्मा जी ने उन सेठ महोदय से अपनी फटी लँगोटी की ओर सकेत करते हुए कहा, 'देखो, बदरीनाथ यही है। सेठ ने रुककर महात्मा जी की बातें बडे ध्यान से सुनी। उनको बातों का मेरे ऊपर अत्यधिक प्रभाव पडा। मै एक शिला पर लट्टू की भाँति लेट गया और प्रकृति के मूल तत्त्वो से एकीभूत हो गया। उन दिनो मेरा प्रकृति के तत्त्वों पर असाधारण अधिकार हो गया था। वे मेरी आज्ञा पर चलते थे। उस सुनसान जगल में यदि मेरी इच्छा किसी खास पुस्तक पढने की होती थी, तो कोई न कोई आकर मेरी मनचाही पुस्तक मुझे दे जाता था।'

फरवरी, १९०२ की साधारण धर्म सभा की मीटिंग होने के उपरान्त स्वामी रामतीर्थ ने नारायण जी को सन्यास लेने की आज्ञा दी और कहा, "सिन्ध में जाकर धर्म प्रचार करो।" राम का यह आदेश नारायण जी के ऊपर वज्र के समान गिरा। उनका सन्यासी बनने का विचार था ही नही। स्वामी रामतीर्थ

का साथ छोडना उनके लिये मरण के समान था। नारायण जी द्विविधात्मक मनोवृत्ति में पडकर रोने चिल्लाने लगे। कुछ लोग नारायण जी की ओर से स्वामी जी से अनुनय-विनय करने लगे। परिणामस्वरूप सन्यास देने का विचार कुछ समय के लिये टल गया।

फैजाबाद में कुछ दिन रहने के पश्चात स्वामी जी नारायण के साथ लखनऊ रवाना हुए। नारायण जी का हृदय स्वामी राम के वियोग की कल्पना से अत्यधिक उद्विग्न हो रहा था। राम और नारायण रेलगाडी के उसी डिब्बे में साथ-साथ बैठे थे। पर दोनो मौन थे। नारायण बहुत चिन्तित और विषण्ण दिखायी पडते थे। अन्त में राम नारायण की पीठ प्यार से थपथपाते हुए बोले, "प्यारे तुम इतने उदास क्यो हो? इसीलिये कि तुम मुझसे पृथक हो रहे हो? आसक्ति " इसके आगे राम की वाणी मूक हो गयी। उन्होंने अपने हृदय की उमडती हुई करुण भावनाओं को दबाने के लिये मुसकराने का प्रयास किया। किन्तु जब एक बार भावनाओं का तूफान उठता है, तो लाख चेष्टा करने पर भी उसे दबाया नही जा सकता। जब वह नेत्रो से अश्रुधारा के रूप में निकल जाता है, तभी शान्त होता है। अश्रुयुक्त नेत्रो और कँपकपे स्वर में उन्होंने फिर कहना प्रारम्भ किया, "हाँ, आसक्ति चाहे जिस भी व्यक्ति के प्रति हो, वह आसक्ति है। यही ससार का मोह है। राम ने अपने परिवार, धन-सम्पत्ति, मान मर्यादा सब को ठुकरा दिया, किन्तु नारायण को नही। उसकी अलौकिक श्रद्धा ने राम को बाँध रखा था। तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति? मेरे सरक्षण में जितनी तुम्हारी प्रगति हो सकती थी, वह हो गयी। अब और प्रगति के लिये स्वतन्त्रता अनिवार्य है। अध्यात्म मार्ग में एक स्थिति प्राप्ति के अनन्तर अन्य पर अवलम्बित होना महान् बाधा है। दूसरा पर आश्रित होना दुर्बलता का द्योतक है। तुमने इसके ऊपर की स्थिति प्राप्त कर ली है। अब तुम सन्यास ग्रहण कर राम से पृथक रहो। हमारा-तुम्हारा विच्छेद जितना तुम्हें दुखदायी है, उससे कम मुझे नही है। किन्तु मोहयुक्त आसक्ति के लिये आज्ञा नही दी जा सकती। इस आसक्ति से तुम्हारी साधना प्रगति में बाधा पडेगी। अत अब हमारा-तुम्हारा साथ रहना किसी भी दशा में ठीक नही है।" इतना कहने के पश्चात् उन्होंने दृढ सकल्प से कहा, "अब हम लोगो को पृथक होना ही पडगा। न मेरी ओर से किसी प्रकार की आसक्ति होनी चाहिये और न तुम्हारी ओर से।" इस कथन के अनन्तर भावावेश में स्वामी राम और नारायण दोनो ही फूट फूट कर रो पडे और नेत्रो से अश्रु की झडी लग गई।

लखनऊ पहुँचकर स्वामी राम, बाबू गगा प्रसाद वर्मा के यहाँ ठहरे। उस समय वे लखनऊ के बिना ताज के बादशाह समझे जाते थे। सध्या समय उनकी

एडवोकेट-लाइब्रेरी राम के भाषण सुनने वाले श्रोताओं से खचाखच भर जाती थी। वर्मा जी का घर सदैव बड़े आदमियों और छात्रों से भरा रहता। वे लोग राम के दर्शन के निमित्त इकट्ठे रहते थे। राम ने नारायण जी को पुनः आदेश दिया 'सन्यासी बनकर सिन्ध में धर्म प्रचार करने जाओ।' नारायण जी ने बाबू गंगा प्रसाद के मकान पर ही शिखा-सूत्र का त्याग कर काषाय वस्त्र धारण कर लिया। राम से बिछुड़ने का भाव नारायण जी के हृदय में अब भी विद्यमान था। उन्होंने अश्रुधार से अपने तप्त हृदय को शीतल किया।

एक दिन सन्ध्या-समय राम अपने शिष्य नारायण के साथ लखनऊ में रेलगाडी से सवार हुए। किन्तु एक जंक्शन स्टेशन पर पहुँचने पर नारायण जी का सामान राम ने अपनी गाडी से हटवाकर उस गाडी में चढवा दिया, जो सिन्ध को जाती थी। राम उन्हें गाडी पर चढाने गये, स्नेह से उन्होंने नारायण को गले लगाया और गाडी छूटने पर वहाँ से 'ओम्' का उच्चारण करते हुए अपनी गाडी में पहुँचे।

नारायण जी ने चार महीने सिन्ध में बिताये। तत्पश्चात् मुल्तान, लोहिया, डेरा इस्माइल खा होते हुए कटासराज तीर्थ आये। यहा उन्हें राम का आमन्त्रण मिला कि अब तुम मेरे पास आ जाओ। राम ने यह भलीभांति समझ लिया कि स्वावलम्बन के लिए चार महीने की यात्रा पर्याप्त है। मई १९०२ में राम ने टहरी के एक जंगल में अपना निवास-स्थान बनाया। जून के अन्त में नारायण राम की सेवा में उपस्थित हुए। गुरु शिष्य के मिलन के दृश्य का वर्णन करना वर्णनातीत है। ऐसा लगता था मानो भावों के दो महासागर परस्पर मिल रहे हों।

टेहरी जाते समय राम कौडिया चट्टी पर ठहरे। वहाँ पर्वत की चोटी पर एक जीर्ण शीर्ण किला था। वह सघन वन से चारों ओर घिरा था। राम ने उसी में रहना प्रारम्भ कर दिया। आगरा के एक अवकाश प्राप्त न्यायाधीश भी राम के साथ आध्यात्मिक साधना एवं ध्यान विधि सीखने आये थे। वे डाक-बंगला में रुके। कुछ दिनों के पश्चात जज साहब वहा से अपने स्थान को चले गये। उनके चले जाने के बाद भी राम अकेले ही उस किले में रुके रहे। वह किला हरे भरे जंगल के बीच स्थित था और उस जंगल में जंगली जानवर भी रहते थे।

टेहरी नरेश सर कीर्तिशाह देहरादून की यात्रा पर थे। सयोगवश वे कौडिया चट्टी पर रुके और वहाँ उन्होंने स्वामी राम की अलौकिक यश-गाथा सुनी। उन्होंने अपने वजीर को राम के पास भेज कर यह प्रार्थना की कि स्वामी जी महाराज साहब से मिलने की अनुकम्पा करें। स्वामी राम उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उनसे मिलने के लिये वजीर साहब के साथ चल पड़े। मार्ग में महाराज

साहब ने स्वामी राम का स्वागत किया और बड़े सम्मान से उन्हें अपने शिविर में ले आये।

महाराज साहब ने अंग्रेजी की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी और पाश्चात्य दर्शन का विशद गम्भीर अध्ययन किया था। ये स्वतन्त्र चिन्तक थे। उनका विश्वास पुरखों के प्राचीन सनातन धर्म से उठ गया था। वे हर्बर्ट स्पेन्सर के दर्शन के अधिकारी विद्वान् थे। फलस्वरूप उनका विश्वास परमात्मा के अस्तित्व मात्र से उठ गया था और वे नास्तिक हो गये थे। इस पर भी वे सत्य के वास्तविक खोजी थे। इसे आश्चर्य ही समझना चाहिये कि इतने वैभव और समृद्धि के बीच रहते हुए भी महाराज साहब जीवन की गम्भीर समस्याओं के समाधान में पर्याप्त अभिरुचि रखते थे और साथ ही उसमें काफी समय भी देते थे। एक बार महाराज साहब ने अपनी राजधानी में आर्य-समाज एवं सनातन धर्म के मूर्धन्य विद्वानों का अपनी शंकाओं के समाधान के निमित्त शास्त्रार्थ के लिये आमन्त्रित किया था। उस शास्त्रार्थ में स्वामी राम भी आमन्त्रित थे। पर उस समय स्वामी राम एकान्त-सेवन के अनुष्ठान में रत थे। अतः वे वहाँ नहीं जा सके। यह शास्त्रार्थ आठ दिनों तक चला। किन्तु महाराज साहब की जिज्ञासाओं की शंका निवृत्ति न हो सकी। बल्कि शास्त्रार्थ ने उन्हें और भी व्यग्र और संशययुक्त बना दिया।

स्वामी राम के शिविर में प्रविष्ट होने पर, राजा साहब का पहला प्रश्न परमात्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में था। उस समय दिन के दो बजे थे राज दरबार भरा था। राम ने अपनी भावमयी वाणी में राजा साहब के प्रश्नों का समाधान करना प्रारम्भ किया। राजा साहब और सभी दरबारी मन्त्रमुग्ध से निर्निमेष दृष्टि से राम की ओर टकटकी लगाकर देख रहे थे। दो बजे से पाँच बजे तक राम बोलते रहे और सारे सभासद और राजा साहब ध्यानस्थ होकर उनकी अमृतवाणी का रसास्वादन करते रहे। राजा साहब ने अत्यन्त विनीत भाव से कहा, "स्वामी जी, मेरे संशयों की रुपये में से बारह आने निवृत्ति हो गई। यदि कुछ दिनों तक और रहने की अनुकम्पा करें, तो निस्संदेह ही शेष चार आने संशय की भी निवृत्ति हो जायेगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपकी कृपा से मुझे पूर्ण शान्ति प्राप्त हो जायेगी।" स्वामी राम ने राजा साहब की प्रार्थना स्वीकार कर ली। राजा के देहरादून से वापस लौटने पर, राम उन्हें प्रायः दर्शन दिया करते थे। इसी बीच नारायण स्वामी भी आ गये।

टेहरी में थोड़े दिन रुकने के पश्चात, स्वामी राम प्रतापनगर की ओर रवाना हुए। प्रतापनगर टेहरी की ग्रीष्म-कालीन राजधानी थी और इसकी संस्थापना वर्तमान राजा के पिता जी ने अपने नाम पर की थी। महाराज कीर्तिशाह भी

प्रतापनगर की ओर चल पडे। दोना महाराज—टेहरी नरेश सर कीर्तिशाह, और अध्यात्म जगत के सम्राट् महाराज रामतीर्थ सप्ताह में दो बार सत्सग के निमित्त मिलते थे। दोनो ही अत्यधिक आनन्दित होते थे। जुलाई १६०२ में महाराज साहब हाथ में एक समाचार पत्र लिये हुए स्वामी राम के पास पहुँचकर निवेदन किया, "स्वामी जी, समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ है कि जापान में एक सवधर्म सम्मेलन का आयोजन किया गया है। भारत के सभी धर्मों के प्रतिनिधि इस सम्मेलन में आमन्त्रित किये गये हैं। मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि हिन्दूधर्म के प्रतिनिधि के रूप में आप उसमें अवश्य सम्मिलित होने की अनुकम्पा करें।" राजा साहब के अनुरोध को स्वामी राम ने स्वीकार कर लिया। उन्होने तुरन्त ही तार द्वारा मेसस थामस कुक ऐण्ड सन्स को सूचित कर जापान जाने वाले जहाज में एक कैबिन राम और नारायण के लिये सुरक्षित करा लिया। लगभग एक हजार रुपये इसका किराया पडा। राम तुरन्त देहरादून के लिये रवाना हो गये। देहरादून पहुँचने पर राजा साहब के बहुत आग्रह पर भी, स्वामी जी ने नारायण को वही छोडकर अकेले ही जापान यात्रा में निकल पडे। स्वामी जी ने नारायण को छोडते हुए कहा था, "नारायण को अपने साथ ले जाने के अर्थ उसकी आध्यात्मिक प्रगति में बाधा डालना है। वहाँ यहा रहकर मेरे द्वारा प्रारम्भ किये हुए काम को आगे बढायेगा।"

स्वामी राम ने नारायण स्वामी को निर्देश किया, "एकान्त म ध्यान के लिये कुछ समय अवश्य देना। तदनन्तर शेष समय में अपने देश-वासियो में वेदान्त का प्रचार करना।" देहरादून से स्वामी राम कलकत्ता जाने वाली रेलगाडी में सवार हुए और नारायण जी टेहरी वापस लौट गये।

कलकत्ते की यात्रा में राम जहा कही यात्रा स्थगित करते थे, उनके मित्रगण प्राय यही सलाह देते थे कि जहाज की यात्रा में एक साथी का होना आवश्यक है। सभी मित्रो ने इसके लिये नारायण जी को उपयुक्त व्यक्ति समझा। अत १६ अगस्त को नारायण जी के नाम, टेहरी इस आशय का तार भेजा गया, "२० को कलकत्ता पहुँच कर राम का साथ दो।" नारायण जी टेहरी से १६ अगस्त १६०२ को कलकत्ता पहुँचे। जहाज छुटने की तिथि २० अगस्त के बजाय २८ अगस्त कर दी गई। २८ अगस्त को स्वामी राम और नारायण स्वामी जापान के लिये रवाना हुए।

सप्तम अध्याय

स्वामी राम जापान में

(१९०२)

स्वामी रामतीर्थ परम सत्य का आत्मसाक्षात्कार करके अपनी महिमा में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो गये। अपनी साधना के अन्तिम विकास से निष्काम कर्मयोग की मंजिल को पार कर शून्यापासना की भूमि में प्रतिष्ठित हुए। उपासना से उनका अन्तःकरण परम विशुद्ध हो गया। अन्तःकरण के विशुद्ध होने पर उन्होंने फिर लम्बी छलाँग लगाई। यह उनकी साधना की अंतिम छलाँग थी। उस छलाँग में वे उस पद में जा पहुँचे, जहाँ साधक, साध्य और साधना अथवा ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान अथवा ध्याता, ध्येय एवं ध्यान—त्रिपुटी अद्वैतरूप हो जाता है। यह 'भूमा' पद है। भूमा पद ही निर्वाण पद, मोक्ष पद, विष्णु पद, तुरीय पद अथवा ब्रह्म पद कहलाता है। इस पद में स्थित होने पर दृश्य एवं अदृश्य, साकार एवं निराकार, बाह्य जगत् एवं अन्तर्जगत् सब अपने ही स्वरूप हो जाते हैं। अपने से पृथक किसी अन्य वस्तु की अनुभूति नहीं होती। छान्दोग्योपनिषद् में इस 'भूमा' पद की बड़ी महिमा गायी गयी है। यह परमानन्द का स्थान है—

'यो वै भूमा तत्सुखं नाऽल्पे सुखमस्ति'

अर्थात्, 'जो भूमा पद है, वही परम सुख का स्थान है, इन्द्र, ब्रह्मा आदि के पद भी भूमा पद की अपेक्षा नगण्य हैं। ये सब पद अल्प ही हैं। अल्प में भला पूर्ण आनन्द कहाँ ?'

भूमा पद में स्थित होने के अनन्तर स्वामी राम ने एकान्त प्रकृति की गोदी में मनमानी क्रीडायें कीं। उन्होंने बाह्य प्रकृति के कोमल और रौद्र दोनों रूपों का परम निर्भय भाव से सेवन किया। प्रकृति के विकराल से विकराल रूपों में पड़ जाने पर भी उनकी साम्यावस्था बनी रही। खतरनाक ग्लेशियरों को पार किया, दुर्गम चोटियाँ चढ़ीं, नृशंस जंगली जानवरों का सामना किया, किन्तु ऐसी परिस्थिति में भी उन्हें अपनी आत्मा से पृथक कुछ भी नहीं दिखाई दिया। आत्म-स्वरूप में स्थित होने के कारण बाह्य प्रकृति उनकी चेरी बन गई। अथवा सर्व-शक्तिमान् परमात्मा ही उन्हें शक्तिसम्पन्न बनाकर, उनके माध्यम से अपनी लीला दिखा रहा था। अब राम ऐसी स्थिति में पहुँच गये कि उन्होंने अपने शरीर को सूखे पत्ते के समान समझ लिया। जिस प्रकार सूखा पत्ता वायु के आश्रित रहता

है, जिधर वायु चाहती है, उडा ले जाती है। पूर्व की वायु आया, तो उसे पश्चिम को ओर उडा ले जाती और पश्चिम की वायु उसे पूर्व की ओर, ठीक उसी प्रकार उन्होंने अपने शरीर और उसके समस्त क्रियाकलापों को प्रारब्ध पर छोड दिया। प्रारब्ध उस शरीर से चाहे जो भी शुभ कर्म करा ले। वे शरीर भावना से ऊपर उठकर आत्मस्वरूप में सर्वथा स्थित थे।

स्वामी राम वेदान्त अद्वैत की मस्ती में स्वयं तो मस्त थे ही, साथ ही उसी मस्ती में सारे ससार के मनुष्यो को आनन्दित कर देना चाहते थे। इसलिए वे एकान्त प्रकृति के साहचर्य को त्याग कर अपना दिव्य सदेश ससार का सुनने को उद्यत हुए। उन्होने यह भलीभाति समझ लिया कि भौतिकवादियों को अध्यात्म वाद की कितनी अधिक आवश्यकता है। आधुनिक सभ्यता की भौतिक मृगतृष्णा में उसकी प्यास निरन्तर बढती ही जा रही है। वह सन्त्रस्त है, आनन्द, सुख के लिये तरस तो रहा है, पर सुख का कही नामोनिशान भी उसे उपलब्ध नही होता। इन्द्रिय-जन्य सुखो से शान्ति की प्राप्ति उसी प्रकार नही हो सकती, जिस प्रकार हड्डियो के चबाने से कुत्ते की भूख नही मिट सकती। वे वेदान्त की शीतल शान्तिदायिनी मन्दाकिनी से आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता के मरुस्थल को सींच देना चाहते थे। उनकी लोक-सग्रह की भावना इतनी प्रबल हो गयी कि प्रकृति हाथ जोडकर उनका साथ देने को उद्यत हो गयी। उसने सारे उपादान स्वय उपस्थित कर दिये। राम का प्रकृति से तादात्म्य हो गया था। एक उद्धरण से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी—

"विराट प्रकृति मेरा शरीर है। नदियाँ मेरी धमनिया है और पर्वत हड्डियाँ। जिस प्रकार शरीर के किसी अग को खुजलाने के लिये हाथ स्वत उस अग पर चले जाते है, ठीक उसी प्रकार मेरी आत्मा की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये प्रकृति स्वय मेरी सेवा में उपस्थित हो जाती है। हिमालय की ऊँचाई के बर्फ के जो भयकर तूफान दूसरो की मृत्यु के कारण बन सकते है, वे ही मेरा मार्ग सुगम करके मेरे विश्राम के निमित्त मखमली सेज तैयार कर देते है। चट्टानो पर मोजे अथवा जूते पहनकर चलना राम के लिये अपवित्रता है। नगे पावो से नगी जमीन का स्पर्श करना सर्वव्यापकता की भावना से ओतप्रोत कर देता है। पारस्परिक स्पर्श से मेरे शरीर और चट्टानो के मास एक हो जाते है। दोनो एक होकर एक दूसरे को भलीभाँति समझने लगते है। एक के हृदय का स्पन्दन दूसरे के हृदय का स्पन्दन तुरन्त जान लेता है दोनो के स्पन्दन एक हो जाते है। मनुष्य जब 'मै पन' (आपाभाव) को मिटा दे, तभी वह परमात्मा हो जाता है। भारतवर्ष मेरा शरीर है। कोमोरिन मेरे पैर और हिमालय मेरा सिर

है। मेरी जटाओं से गंगा बहती है और मेरे सिर से ब्रह्मपुत्र और सिन्ध निकलती है। विन्ध्याचल मेरी लंगोटी है। कोरोमण्डल मेरी बाँयी और मालाबार मेरी दाहिनी टाँग है। मैं सम्पूर्ण समूचा भारतवर्ष हूँ। उत्तर पूर्व और पश्चिमी भाग मेरी बाहें हैं जिन्हें मैंने मानव-समाज का आलिंगन करने के हेतु फैला रखा है। मेरा प्रेम सार्वभौमिक है। ओ मेरे शरीर की आकृति कितनी महान् है! मैं खड़े होकर अनन्त आकाश पर दृष्टिपात कर रहा हूँ। मेरी अन्तरात्मा निराकार है।"

उनके महान् शरीर का एक अंग जापान भी था। इस दृष्टि से सर्वप्रथम जापान ही देश ऐसा रहा, जिसने राम को अपनी ओर आकर्षित किया। १८ अगस्त, १९०२ को दोनों सन्यासी कलकत्ते से स्टीमर द्वारा हांगकांग पहुँचे। हांगकांग में वे सेठ वसायामल आसोमल नामक सिन्धी व्यापारी के यहाँ सात दिन तक अतिथि रूप में ठहरे। रास्ते में पड़नेवाले प्रायः सभी बन्दरगाहों पर राम अपने शिष्य नारायण के साथ उतरते। अनेक सिक्ख और सिन्धी व्यापारियों ने दोनों सन्यासियों की बड़ी आवभगत की। हांगकांग के प्रसिद्ध सिक्ख गुरुद्वारे में राम ने 'गुरुभक्ति' पर एक महत्त्वपूर्ण वक्तृता दी। स्वामी राम और नारायण स्वामी हांगकांग से एक अमेरिकन जहाज द्वारा लगभग दस-बारह दिनों में याकोहामा पहुँचे। जापान देश के प्रथम बन्दरगाह, नागासाकी पहुँचने पर दोनों सन्यासियों ने जापानी मन्दिरों का दर्शन किया और वहाँ के निवासियों के रहन-सहन का बारीकी से अध्ययन किया। उन्होंने स्वयं भी जापानियों के रीति रिवाज का अनुसरण किया। जापानियों के सम्बन्ध में राम ने अपनी सम्मति इस प्रकार अभिव्यक्त की, "यहाँ के प्रत्येक मनुष्यों को राम को कोई भी शिक्षा नहीं देनी है। यहाँ के सब के सब अपने वेदान्ती हैं। वे सब के सब राम ही हैं। यहाँ के लोग कितने हँसमुख, कितने प्रसन्न, कितने शान्त और कितने परिश्रमी हैं। राम मनुष्य के इन्हीं विशिष्ट गुणों को वास्तविक जीवन मानता है।"

याकोहामा नामक स्थान पर जब दोनों सन्यासी उतरे तो वहाँ के बन्दरगाह पर सेठ वसायामल आसोमल के दो प्रतिनिधि उन दोनों से मिले। दोनों प्रतिनिधि राम स्वामी एवं नारायण स्वामी को बड़े सत्कार से अपने मालिक के स्थान पर ले गये। दोनों व्यक्ति लगभग एक सप्ताह तक वहाँ ठहरे। सिक्ख लोग इस बात को जानकर आश्चर्य में पड़ गये कि स्वामी लोग जापान के धर्म सम्मेलन में भाग लेने आये हैं। उन्होंने जापान में आयोजित इस प्रकार के सम्मेलन की बात भी नहीं सुनी थी। सच्ची बात यह है कि इस प्रकार के धार्मिक सम्मेलन आयोजित करने की कोई कल्पना भी नहीं की गई थी। १८९३ में आयोजित शिकागो के

सर्वधम-सम्मेलन ॥ में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुयी थी। उसी के आधार पर ससार के धार्मिक नेता इसी प्रकार के अन्य सम्मेलन होने की बडी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। जापान देश के श्री ओकाकुरा महोदय १९०२ में भारतवर्ष में उप स्थित थे। कदाचित् उन्होने भगिनी निवेदिता से अपना यह विचार अभिव्यक्त किया कि अपने देश लौटने पर, मैं टोकियो में इस प्रकार का सम्मेलन आयोजित करने की चेष्टा करूँगा। इडियन प्रेस को इस वार्ता की गन्ध मिली और उसने जापान में धर्म-सम्मेलन होने की घोषणा कर दी। श्री ओकाकुरा के कलकत्ता में रहने की अवधि के भीतर ही सम्मेलन के आयोजन का समाचार जापान भी पहुँच गया। जापानी प्रेसो ने इस समाचार का खण्डन भी किया। ऐसा परि स्थिति में राम ने स्वय टोकियो जाकर वस्तुस्थिति समझनी चाही।

सठ जी के फर्म के कई सदस्यो के साथ राम और नारायण टोकियो पहुँचे। वहाँ पहुँच कर दोनो इण्डो-जापानीज क्लब में प्रविष्ट हुये। उस क्लब के मत्री सरदार पूर्णसिंह थे। वहाँ पूछने पर इस समाचार की एकदम पुष्टि हो गयी कि यहा कोई भी धर्म सम्मेलन नही होने जा रहा है। स्वामी राम ने इस समाचार का भारत में तार भी दिलवा दिया, ताकि अन्य धर्मवाले जापान आने के लिए परेशान न हों।

दोनो स्वामी अन्य भारतीयो के साथ उसी क्लब में ठहरे। क्लब के सदस्य प्राय भारतीय छात्र थे। सरदार पूर्णसिंह अत्यधिक प्रतिभासम्पन्न थे। सभी सदस्य उनका बहुत आदर करते थे। स्वामी राम की जापान-यात्रा का सरदार पूर्णसिंह ने बडा सजीव चित्रण किया है—

"ज्योही याकोहामा के आदमी ने क्लब में प्रवेश करके दो भगवा (काषाय) वस्त्रधारी साधुओं का परिचय कराया, त्योंही एक प्रसन्नता की लहर चारों ओर दौड गयी। उनमें बडे स्वामी (स्वामी रामतीर्थ) के मुख से चिडियो की स्वाभाविक चहचहाहट की भाँति 'ओम-ओम' की मधुर ध्वनि गुजार रही थी। उस ध्वनि का प्रभाव जादू से भी बढकर था। स्वामी राम के साथ उनके शिष्य स्वामी नारायण भी थे। मैं उनमें से किसी को भी नही जानता था, फिर भी मैं तो उत्साह के मारे पागल जैसा हो गया। उनकी भाषा ऐसी विचित्र और आकर्षक थी, उनके मुखमण्डल पर ऐसा अप्रतिम आध्यात्मिक तेज था कि चुपचाप उनके आज्ञापालन के सिवा मैं कुछ न कर सकता था।' छोटे स्वामी (नारायण स्वामी) ने मुझसे पूछा, 'आप किस देश के निवासी है?' मेरी आँखो में आँसू आ गये। मधुर और प्रेम भरी भाषा में मैंने उत्तर दिया, 'सारा ससार मेरा घर है।'

बड़े स्वामी ने झट मेरी आँखों की ओर देखा और बोले, 'भलाई करना मेरा धर्म है।'

बस, इन दोनो वाक्यो द्वारा हम एक दूसरे से मिले।

मुझे उस दिन बौद्ध विश्वविद्यालय में एक बृहत् समाज के सम्मुख व्याख्यान देने जाना था। मैंने स्वामी जी को बोलने का निमन्त्रण दिया, 'उस दिन जब आप टोकियो पहुँचे थे, लोगों ने आपसे बोलने का आग्रह किया था।' स्वामी जी ने मेरा आग्रह स्वीकार कर लिया। हम सब ट्रामकार में जा बैठे। मैंने काँच की खिडकी से अपना सिर टिका लिया। मुझे ध्यान ही न था कि मैं कहाँ बैठा हूँ। और वही ओम् का मधुर स्वर गुनगुनाने लगा। उसको सुमधुर ध्वनि से मेरे हृदय के अन्तस्तल में सगीतमय गुदगुदी उत्पन्न हो रही थी। इसके सिवा मैंने व्याख्यान की कोई तैयारी न की। मैं गया, उठा और बोला। श्रोतागण मुग्ध हो गये। मैंने स्वामी राम का भी परिचय दिया। वे बोले, जैसे अग्नि के विस्फुलिंग बिखर रहे हों। आस्ट्रेलिया से भी बौद्ध थियोसोफिस्ट आये हुये थे। सब सुनकर ध्यानावस्थित हो गये। उस दिन उनके साथ उसी मच पर जापान के कारलायल श्री कजो यूचीमुरा ने भी भाषण दिया।

हम लोगो को लौटते समय रात्रि अधिक हो गयी थी। राम बोले, 'मुझे एक ऐसा आदमी चाहिये, जैसे तुम हो, जिसने अपने हृदय की निर्द्वन्द्व शान्ति में अपना चाम्त्कारिक व्याख्याम तैयार किया हो, जो टोकियो की सडका में, टोकियो की सबसे शोरगुल वाली सडक पर चक्कर काटता हुआ भी ऐसा कर सकता हो। ठीक, बिलकुल ठीक है, यही शान्ति तो जीवन का रहस्य है। इसी को मन की एकाग्रता कहते ह। यही वह सगीतमय मौन है, जहाँ बडे-बडे विचारो का उदय होता है, वे स्वप्न प्रकट होते हैं, जो मनुष्य को उन्नति के पथ पर ले जाते हैं। शान्तिपूर्ण आनन्द की इस दिशा में ही ज्ञानरश्मियाँ अकस्मात् मनुष्य के मस्तिष्क में चमक जाती हैं। मानसिक शान्ति की इस पूर्णावस्था में किसी प्रकार का शारीरिक तनाव भी नही रहता, जसे शरीर प्रकृतिस्थ हो गया हो। यही वेदान्त का योग है। यह सचमुच महान् वस्तु है।' स्वामी राम ये बातें बडे उत्साह और तन्मयता से कह रहे थे। किन्तु मैं कुछ न सुन सका। क्योंकि मेरे हृदय में उस आनन्द की हलचल मची हुयी थी, जो किसी नवयुवती को अपने स्वप्नो के अनुरूप पुरुष के प्रेम में वशीभूत होने पर सर्वप्रथम हुआ करती है। मेरे हृदय के अन्तस्तल में इतना आन्दोलन मचा हुआ था कि उनकी बातों को ध्यान पूर्वक सुनना मेरी शक्ति के बाहर हो रहा था। मैं इधर-उधर दौड रहा था। मैं कभी यो ही बिना किसी प्रयोजन उनके कमरे में घुसता और फिर अकारण बाहर चला

आता। न तो मैं उनके पास बहुत देर तक ठहर ही सकता था और न बहुत देर तक उनसे दूर ही रह सकता था। मैं किसी प्रकार अपने को रोक नही पाता था। मैं उनसे प्रेम करने लगा। वे मेरे हृदय में गड गये। सच तो यह है कि यदि, मैं लडकी होता, तो उन्हें पाने के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता। किन्तु एक बात सुनिश्चित है कि जो कुछ वे कह रहे थे, उसका एक शब्द भी मैंने नहीं सुना, फिर भी आश्चर्य यह कि उनके मुह से निकला एक एक शब्द मेरे हृदय कोश में बडी सावधानी से सचित हो जाता था और इस समय भी मैं जो कुछ लिख रहा हूँ, उसका एक एक अक्षर सत्य है।

× × × ×

दूसरे दिन मैं पुरानी पुस्तकों की एक दूकान से दो बडे-बडे ग्रथ, जिनमें सन १८९३ में सर्वधर्म सम्मेलन का कार्यविवरण एव भाषणादि छपे थे, उठा लाया और घर आकर उन्हें राम की मेज पर रख दिया।

'ओह, ठीक यही चीज, इसी पुस्तक की इच्छा राम के हृदय में उठी थी। कैसे तुम्हारे हाथ लगी ? प्रकृति देवी स्वय अपने हाथो से राम की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रही है।'

हम लोग बडी देर तक उस विश्व सम्मेलन की चर्चा करते रहे, जो टोकियो में होने वाला था। जब स्वामी जी को पता चला कि वास्तव में वसा कोई सम्मेलन नही होने वाला है, तो वे जी खोल कर हँसे और बोले, 'प्रकृति की चालें भी कैसी मजेदार होती हैं ! राम को हिमालय के उस एकान्त निवास से निकाल कर ससार का पर्यटन कराने के हेतु उसने कैसी सुन्दर युक्ति निकाली। यह झूठा समाचार क्या-क्या गुल खिला रहा है ! राम तो स्वय अपने आप धर्मों का विशाल सम्मेलन है। यदि टोकियो विश्व-सम्मेलन नही करना चाहता है, तो न करने दो, राम तो अपना सम्मेलन करेगा ही।'

राम के पहुँचने के ठीक दूसरे दिन पूना के प्रोफेसर छत्रे टोकियो में अपने सरकस का पहला प्रदर्शन करने वाले थे। सभी भारतीय छात्र और स्वामी राम साथ-साथ उसे देखने गये। उसी स्थान पर सुप्रसिद्ध पूर्वीय विद्वान और टोकियो इम्पीरियल यूनीवर्सिटी के सस्कृत के प्राध्यापक तकाकुसु से राम की भेंट हुयी। चलते समय उन्होंने मुझसे कहा, 'मैं इगलैण्ड में प्रोफेसर मैक्समूलर के यहाँ बहुत से पण्डितों और दार्शनिको से मिला हूँ। दूसरे स्थानो पर मुझसे दिग्गज विद्वानों और दार्शनिको से भेंट हुयी है। परन्तु मैंने ऐसा महान् व्यक्ति कहीं नहीं देखा, जैसे स्वामी राम हैं। वे तो अपनी सम्पूर्ण दार्शनिक विचारधारा के जीवन्त उदाहरण हैं। वे ऐसे रहस्यमय और मर्मपूर्ण हैं कि कुछ कहते नही बनता। उनमें

वेदान्त और बौद्धधर्म एक साथ समन्वित हुए हैं। वे स्वय धम हैं। वे सच्चे कवि और सच्चे दार्शनिक हैं।

के० हिराई महोदय ने भी राम को वही देखा था और उनकी अलौकिकता एव त्रिगुणातीत अवस्था की अत्यधिक प्रशसा की थी। उन्होने कहा था कि राम की अलौकिकता ने उनके स्थूल शरीर को भी दिव्य बना दिया है।

मैं उनके पास दूसरी कतार में बैठा हुआ सकस देख रहा था और सामने की श्रीसम्पन्न भद्र महिलाओं की एक पूरी पक्ति, अपने रग बिरगे किमोनोज/और तडक-भडकदार ओविस (एक प्रकार का अति श्रेष्ठ सिर को ढँकने वाला वस्त्र) धारण किये हुये। हिम सदश उज्ज्वल गदनो की यह पूरी पक्ति, कैसी सुदर और कैसी आकर्षक थी! मैं इस जीते-जागते सौन्दर्य के अनुपम दृश्य को एक निगाह देखने का लाभ सवरण न कर सका। किन्तु मेरे मन में तुरन्त यह आया कि यदि कही स्वामी जी ने मेरी आँखों की यह चोरी पकड ली, तो ?

अकस्मात् उनके मुख के निकला—जैसे वे मेरी आँखो की भावमय चोरी का अनुमोदन कर रहे हों—'पूरन जी गदनो की यह पक्ति तो ऐसी लग रही है, जैसे काली काली धारीदार चट्टानो से गगा जी इतनी अधिक स्वच्छ पतली-पतली धाराओ में फूट पडी हो।'

जब हम पण्डाल से बाहर निकले, तब रात्रि बहुत हो गयी थी, न कोई रिक्शा ही मिला और न ट्रामकार। स्वामीजी पैदल ही चल पडे और हम लोगो का उनके साथ चलना कठिन हो गया।

प्रतिदिन सध्या-समय लोग उनके पास एकत्र हो जाते थे—भारतीय और जापानी उनके वचनो को मत्रमुग्ध हो ध्यान से सुनते थे। केवल मैं अपनी आँखें बन्द करके ऐसे उत्साह में डूबा रहता, जिस पर नियन्त्रण रखना मेरे वश के बाहर होता। मैं कुछ भी न सुनता और सब कुछ सुनता। मेरे होठ ओम-ओम् के अविरल जप से कँपते रहते।

उन्होंने टोकियो के कॉमर्स कालेज में एक बहुत ही महत्त्वपूण व्याख्यान दिया, जिसका विषय था, 'सफलता का रहस्य' उसकी विचित्र आभा ने विशाल जन-समूह का ध्यान आकृष्ट कर लिया। रूसी राजदूत ने जब समाचारपत्रों में उस व्याख्यान को प्रकाशित देखा तो स्वामी जी से भेंट करने की आकाक्षा अभिव्यक्त की। किन्तु स्वामी जी सानफ्रासिस्को रवाना हो चुके थे।[1]

---

१ स्वामी राम जीवन-कथा, लेखक सरदार पूर्णसिंह, द्वितीय सस्करण, १९६४, पृष्ठ १६०-६५।

सफलता का रहस्य

टोकियो में 'सफलता का रहस्य' पर स्वामी रामतीर्थ ने निम्नलिखित भाषण दिया था—

क्या यह आश्चर्यजनक नहीं प्रतीत होता कि भारतवर्ष से एक अभ्यागत आकर आपके समक्ष एक ऐसे विषय पर भाषण करे, जिसे प्रत्यक्षत जापान ने भारत की अपेक्षा अधिक बुद्धिमानी से ग्रहण किया है। यह बात हो सकती ह किन्तु एक से अधिक ऐसे कारण है जिनके बल पर मैं यहाँ शिक्षक के रूप में खडा हुआ हूँ।

किसी विचार को दक्षतापूर्वक कार्य रूप में परिणत करना एक बात ह और उसके आधारभूत मौलिक अर्थ को हृदयगम करना एक बिलकुल दूसरी बात ह। वत्तमान समय में चाहे कोई राष्ट्र कतिपय सिद्धान्तों को कार्यान्वित करता हुआ भले ही खुद फूल-फल रहा हो, किन्तु यदि राष्ट्रीय मस्तिष्क भली भाँति उन सिद्धान्तो को समझता नही है, यदि उनके पीछे कोई सुनिश्चित ठास आधार नही, तो उस राष्ट्र के पतन की सम्भावना बराबर बनी रहती है। एक श्रमिक जो किसी रासायनिक क्रिया को सफलतापूर्वक व्यवहृत करता है, वस्तुत रसायन शास्त्रवेत्ता नही है। कोयला झोंकने वाला जो सफलतापूर्वक किसी वाष्प-इजन को चला लेता है, इजीनियर नही हो सकता, क्योंकि उसे केवल यान्त्रिक अभ्यास हो गया है। तुमने उस डाक्टर की कथा पढी होगी, जा शरीर के क्षत विक्षत अग को पूरे एक सप्ताह तक रेशमी पटटी से बाँध कर अच्छा किया करता था, किन्तु उसे नित्य अपनी तलवार से छूना अनिवाय मानता था। पटटी के द्वारा बाहरी गर्द से रक्षा होने के कारण घाव अच्छे हो जाते थे। किन्तु वह कहता था कि उसकी तलवार के स्पर्श में ही घावो को चगा कर देने की अदभुत शक्ति ह। और ऐसा ही उसके रोगियों को विश्वास हो गया था। किन्तु इस अन्धविश्वास पूर्ण कल्पना से बीसों रोगियों को असफलता के सिवा और कुछ न हाथ लगा, क्योकि उनके घावों में केवल पटटी के अतिरिक्त अन्य उपचारों की आवश्यकता थी। अतएव प्रत्येक वस्तु के सम्पादन में यह परमावश्यक है कि यथाथ सिद्धान्त और यथार्थ व्यवहार सदा समन्वित रहें।

दूसरी बात यह है कि राम जापान को अपना ही देश मानता ह और उसके निवासियों को अपना दशवासी। राम तत्पूण आधार से यह सिद्ध कर सकता है कि प्रारम्भ में आपके पूर्वज भारतवष से ही यहाँ स्थानान्तरित हुये थे। आपके पूव पुरुष राम के पूव पुरुष हैं। अत राम एव भाई के समान, न कि किसी अपरिचित की भाँति आप लोगों से हाथ मिलाने आया ह। एक और कारण है

जिसके बल पर भी राम इसी अधिकार का दावा कर सकता है। राम अपने जन्म ही से, अपनी प्रकृति, चाल-ढाल, स्वभाव और हृदय से जापानी है। इन प्रारम्भिक शब्दों के अनन्तर राम अब अपने विषय पर आता है।

सफलता का भेद एक खुला हुआ भेद है। इस विषय पर प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ कह सकता है और स्यात तुमने उसके साधारण सिद्धान्तो की व्याख्या सुनी भी होगी। किन्तु विषय इतना महत्त्वपूण और आवश्यक है कि लोगो के हृदय में उसे भलीभाति पैठाने के लिये, उस पर जितना अधिक बल दिया जाय, उतना ही थोडा है।

पहला सिद्धान्त—काम

सबसे पहले हमें यह प्रश्न चारा ओर मे घेरने वाली प्रकृति से करना चाहिये। कलकल निनाद से बहने वाले निर्भर और एक स्थान में बद्ध रहने वाले तालाब रोज अपनी मूक किन्तु असदिग्ध भाषा में हमें निरन्तर एक ही उपदेश दिया करते हैं—निरन्तर काम करो, अहर्निश काम करो। प्रकाश हमें देखने की शक्ति प्रदान करता है। प्रकाश ही प्राणिमात्र का प्राण और मुख्य जीवनाधार है। आओ, देखें स्वय प्रकाश के द्वारा इस प्रश्न पर क्या प्रकाश पडता है। राम उदाहरण के लिये एक लैम्प, साधारण दीपक को ही लेगा। दीपक की चमक और प्रकाश का अन्तरग रहस्य क्या है? यह कभी अपने तेल और बत्ती का बचाव नही करता। तेल और बत्ती अथवा उसकी क्षुद्र आत्मा निरन्तर जलती रहती है, तभी उसका प्राकृतिक परिणाम होता है प्रकाश और ताप। लो लैम्प का सन्देश हो चुका—अपने का बचाव करो और तुम्हारा सवनाश हो जायेगा। यदि तुम अपने शरीर के लिये सुख और विश्राम चाहते हो, यदि अपना सारा समय भोग विलास और इन्द्रिय-सुखा में गँवाते रहते हो, तो तुम्हारे लिये, उत्थान का कोई आशा नही। दूसरे शब्दो मे इसका यह अथ हुआ कि अकमण्यता मृत्यु रूप है। केवल काम और क्रिया ही हमारा जीवन और प्राण है। एक ओर सीमाबद्ध सरोवर है और दूसरी ओर बहती हुई सरिता। दोनो की तुलना करो। बहती हुयी नदी का जल, स्वच्छ, तरोताजा निमल, पीने योग्य और चित्ताकर्षक रहता है। इसके विपरीत सीमाबद्ध तालाब का जल कितना गदा, बदबूदार मैला और चिपचिपाने वाला होता है। यदि तुम सफलता चाहते हो, तो काय का माग, सरिता की निरन्तर गति का अनुसरण करो, जो मनुष्य अपने तेल और बत्ती का व्यय न करेगा, अपितु उसकी रक्षा में ही अपना सारा समय लगा देगा, उसके लिये आशा का कोई मार्ग नही। नदी की नीति को ग्रहण करो, जो सदा आगे ही बढ़ती रहती है, जो सदैव अपने

आपको परिस्थितियो के अनुकूल बनाती हुयी अपना व्यवहार बढ़ाती जाती है, गति ही उसका जीवन है। काय, निरन्तर कार्य, अटूट काय ही सफलता का पहला सिद्धान्त है। 'नित्य प्रति उत्तम से उत्तमतर बनते आओ।' यदि तुम इस सिद्धान्त का अवलम्बन करो, तब तुम्हारे लिये बडा बनना उतना ही आसान होगा, जितना छोटा रह जाना।

दूसरा सिद्धान्त—आत्मत्याग

प्रत्येक व्यक्ति सफेद, श्वेत वस्तुओ को प्यार करता है आओ, देखें, श्वेत वस्तुयें क्योकर मनुष्य मात्र की प्रेमपात्र बन जाती हैं। हमें श्वेत की इस सफलता का पता लगाना होगा। काली चीजों से सभी लोग घृणा करते है। उन्हें तुच्छ समझते हैं, फेंक देते है। यह एक तथ्य है, हमें उसके कारण की खोज करनी होगी, प्रकृति विज्ञान हमें रगो के प्रदशन का रहस्य बतलाता है। वास्तव में लाल रग लाल नहीं है, हरा हरा नही है, काला-काला नही है। वस्तुत जैसा हम देखते है, वह वैसा नही है। गुलाब के लाल पुष्प में वह लालिमा कहाँ से आती है? वह स्वयं उसकी फेंकी हुयी चीज है। सूर्य की किरणो के और सब रग ता उसने अपने अन्तर में पचा लिये है। किसी को गुलाब द्वारा पचाये हुये इन रगों का पता नही चलता। हरा पत्ता प्रकाश के अन्य सब रग अपने में आत्मसात कर लेता है और केवल उस एक हरे ताजे रग के द्वारा प्रकट होता है, जिसे वह अपने भीतर लेने से इकार करता है और बाहर फेंक देता है। काली वस्तुओं का यह स्वभाव होता है कि वे प्रकाश के सारे रगों को खा लेती है और प्रकाश का नामोनिशान भी बाकी नही छोडती। उनमें आत्म-त्याग की भावना नही रहती—उदारता रचमात्र भी नही होती। वे रश्मि की एक रेखा भी नही त्याग सकती। अपने हिस्से में उन्हें जो भी सूर्य रश्मि मिलती है, वे सब का सब खा जाती हैं। प्रकृति हमें आदेश देती है कि इसी प्रकार वह मनुष्य जो अपने में से रत्ती भर अपने पडोसियो को नही देता, वह काले कोयले जैसा काला हो जायगा। श्वेत वस्तुओं के सद्‌गुण को ग्रहण करो और तुम सफल हुये बिना नही रह सकते। श्वेत स राम का क्या अभिप्राय है? यूराप के निवासी श्वेताग? नही, केवल श्वेताग यूरोपियन ही नही, स्वच्छ दर्पण, स्वच्छ मोती, सफेद फाख्ता, स्वच्छ हिम—मक्षप में, पवित्रता और सच्चाई सूचक सभी सुन्दर चिह्न इस विषय में तुम्हारे पथ प्रदर्शक बन सकते हैं। उनका मार्ग ग्रहण करो और असदिग्ध रूप में आत्म-त्याग की भावना सीख लो। जो कुछ दूसरों से लिया हो, उसे दूसरों को ही दे डालो स्वार्थमय संचय के पथ से हट जाओ और अपने आप स्वच्छ बन जाओगे। श्वेत

यदि चाहता है कि एक सुन्दर कलिका के रूप में खिले, तो पहले उसे अपने आपको खाद में गला देना होगा। पूर्ण आत्म बलिदान अन्त में फल लाता है, उसका फल लाना अनिवार्य है। सभी शिक्षक और उपदेशक इस बात को मानने में नही हिचकेंगे कि हम जितना ही अधिक वितरण करते हैं, उतना ही अधिक पाने के हम अधिकारी बनते जाते हैं।

तीसरा सिद्धान्त—आत्म विस्मृति

विद्यार्थियों को इस बात का पूर्ण अनुभव होगा कि जब वे अपनी साहित्यिक गोष्ठी में भाषण करते हैं, तो ज्योंही 'मैं भाषण कर रहा हूँ' उनके मन में जोर से प्रकट होता है, त्योही व्याख्यान फीका पड जाता है। काम करते हुये अपने क्षुद्र अह को भूल जाओ, उसमें अपने आपको पूर्णत डुबो दो, तब निश्चय ही सफलीभूत होगे। यदि कुछ सोचते, तो तुम स्वय सोच विचार बन जाओ, निश्चय ही सफलता प्राप्त होगी। यदि कोई काय करते हो, तो तुम कार्य रूप बन जाओ, सफलता अवश्य मिलेगी—

मैं कब स्वतत्र हूँगा ?
जब मिट जायेगी 'मैं मैं'।

दो भारतीय राजपूतो की एक कहानी है। वे एक बार अकबर—भारत के महान् मुगल सम्राट् के पास पहुँचे और नौकरी के लिये प्रार्थना की। अकबर ने उनकी योग्यता के बारे में पूछताछ की। उन्होने कहा, 'हम शूरवीर हैं।' अकबर ने आज्ञा दी, 'प्रमाण ?' दोनो ने तुरन्त म्यान से अपनी अपनी तलवारे खीच ली। क्षण भर के अकबर के दरबार में बिजली कौंध गयी। तलवारो की चमक उनकी अन्तरग वीरता की सूचक थी। लो, दूसरे ही क्षण बिजली की इन दोनो कौंधा ने दोनो के शरीरो को एक कर दिया। दोनों ने अपनी-अपनी तलवार एक दूसरे के सीने में चुभो दी—नही, दोनों ने उन्हें एक दूसरे की छाती में ऐसी धीरता से घुसेड दिया, जो ससार में बहुत कम देखी जाती है। उनकी वीरता का प्रमाण प्राप्त हो गया। शरीर गिर पडे, आत्मायें एक हो गयी। सब ने उनकी वीरता की भूरि-भूरि सराहना की। कहानी से हमें विशेष प्रयोजन नही। इस उन्नत युग में ऐसी शूरवीरता से हमारे हृदय में तो चोट पहुँच सकती है, किन्तु उसमे हमें एक शिक्षा मिलती है। वह शिक्षा यह है, अपने क्षुद्र अह का त्याग करो और सफलता तुम्हें हाथ जोडेगी। अन्यथा सफलता प्राप्त होना दुर्लभ है। राम कहता है—काम करते-करते सफलता की इच्छा मर जाय और सफलता तुम्हारे सम्मुख खडी है।

आपको परिस्थितियो के अनुकूल बनाती हुयी अपना व्यवहार बढाती जाती है, गति ही उसका जीवन है। कार्य, निरन्तर कार्य, अटूट काय ही सफलता का पहला सिद्धान्त है। 'नित्य प्रति उत्तम से उत्तमतर बनते जाओ।' यदि तुम इस सिद्धात का अवलम्बन करो, तब तुम्हारे लिये बडा बनना उतना ही आसान होगा, जितना छोटा रह जाना।

दूसरा सिद्धान्त—आत्मत्याग

प्रत्येक व्यक्ति सफेद, श्वेत वस्तुओ को प्यार करता है आओ, देखें, श्वेत वस्तुयें क्योकर मनुष्य मात्र की प्रेमपात्र बन जाती है। हमें श्वेत की इस सफलता का पता लगाना होगा। काली चीजों से सभी लोग घृणा करते हं। उन्हें तुच्छ समझते हैं, फेंक देते है। यह एक तथ्य है, हमें उसके कारण की खोज करनी होगी, प्रकति विज्ञान हमें रगो के प्रदशन का रहस्य वतलाता है। वास्तव में लाल रग लाल नही है, हरा हरा नही है, काला-काला नही है। वस्तुत जैसा हम देखते हैं, वह वैसा नही है। गुलाब के लाल पुष्प में वह लालिमा कहाँ से आती ह? वह स्वयं उसकी फेंकी हुयी चीज है। सूर्य की किरणो के और सब रग तो उसने अपने अन्तर में पचा लिये है। किसी को गुलाब द्वारा पचाये हुये इन रगों का पता नही चलता। हरा पत्ता प्रकाश के अन्य सब रग अपने में आत्मसात कर लेता है और केवल उस एक हरे ताजे रग के द्वारा प्रकट होता है, जिसे वह अपने भीतर लेने से इकार करता है और बाहर फेंक देता है। काली वस्तुओं का यह स्वभाव होता है कि वे प्रकाश के सारे रगों को खा लेती है और प्रकाश का नामोनिशान भी बाकी नही छोडती। उनमें आत्म-त्याग की भावना नही रहती—उदारता रचमात्र भी नही होती। वे रश्मि की एक रेखा भी नही त्याग सक्ती। अपने हिस्से में उन्हें जो भी सूय रश्मि मिलती है, वे सब का सब खी जाती हैं। प्रकृति हमें आदेश देती है कि इसी प्रकार वह मनुष्य जो अपने में से रत्ती भर अपने पडोसियों को नही देता, वह काले कोयले जैसा काला हो जायगा। श्वेत वस्तुओं के सद्‌गुण को ग्रहण करो और तुम सफल हुये विना नही रह सक्ते। श्वेत स राम का क्या अभिप्राय है? यूरोप के निवासी श्वेताग। नही, केवल श्वेताग यूरोपियन ही नहीं, स्वच्छ दर्पण, स्वच्छ मोती, सफेद फाल्ता, स्वच्छ हिम—सक्षेप में, पवित्रता और सच्चाई सूचक सभी सुन्दर चिह्न इस विषय में तुम्हारे पथ-प्रदर्शक बन सक्ते हैं। उनका माग ग्रहण करो और असदिग्ध रूप में आत्म-त्याग की भावना सीख लो। जो कुछ दूसरों से लिया हो, उसे दूसरों को ही दे डालो स्वार्थमय संचय के पथ से हट जाओ और अपने आप स्वच्छ बन जाओगे। बीज

यदि चाहता है कि एक सुन्दर कलिका के रूप में खिले, तो पहले उसे अपने आपको खाद में गला देना होगा। पूर्ण आत्म बलिदान अन्त में फल लाता है, उसका फल लाना अनिवार्य है। सभी शिक्षक और उपदेशक इस बात को मानने में नही हिचकेंगे कि हम जितना ही अधिक वितरण करते हैं, उतना ही अधिक पाने के हम अधिकारी बनते जाते है।

तीसरा सिद्धान्त—आत्म विस्मृति

विद्यार्थियों को इस बात का पूर्ण अनुभव होगा कि जब वे अपनी साहित्यिक गोष्ठी में भाषण करते हैं, तो ज्योही 'मैं भाषण कर रहा हूँ' उनके मन में जोर से प्रकट होता है, त्योही व्याख्यान फीका पड जाता है। काम करते हुये अपने क्षुद्र अह को भूल जाओ, उसमें अपने आपको पूर्णत डुबो दो, तब निश्चय ही सफलीभूत होगे। यदि कुछ सोचते, तो तुम स्वय सोच विचार बन जाओ, निश्चय ही सफलता प्राप्त होगी। यदि कोई कार्य करते हो, तो तुम कार्य रूप बन जाओ, सफलता अवश्य मिलेगी—

मैं कब स्वतन्त्र हूँगा?
जब मिट जायेगी 'मैं मैं'।

दो भारतीय राजपूतों की एक कहानी है। वे एक बार अकवर—भारत के महान् मुगल सम्राट् के पास पहुँचे और नौकरी के लिये प्रार्थना की। अकबर ने उनकी योग्यता के बारे में पूछताछ की। उन्होने कहा, 'हम शूरवीर है।' अकबर ने आज्ञा दी, 'प्रमाण?' दोनो ने तुरन्त म्यान से अपनी-अपनी तलवारें खीच ली। क्षण भर के अकबर के दरबार में बिजली कौंध गयी। तलवारो की चमक उनकी अन्तरग वीरता की सूचक थी। लो, दूसरे ही क्षण बिजली की इन दोना कौंघो ने दोनो के शरीरो को एक कर दिया। दोनो ने अपनी अपनी तलवार एक दूसरे के सीने में चुभो दी—नही, दोनों ने उन्हें एक दूसरे की छाती में ऐसी धीरता से घुसेड दिया, जो ससार में बहुत कम देखी जाती है। उनकी वीरता का प्रमाण प्राप्त हो गया। शरीर गिर पडे, आत्मायें एक हो गयी। सब ने उनकी वीरता की भूरि-भूरि सराहना की। कहानी से हमें विशेष प्रयोजन नही। इस उन्नत युग में ऐसी शूरवीरता से हमारे हृदय में तो चोट पहुँच सकती है, किन्तु उससे हमें एक शिक्षा मिलती है। वह शिक्षा यह है, अपने क्षुद्र अह का त्याग करो और सफलता तुम्हें हाथ जोडेगी। अन्यथा सफलता प्राप्त होना दुलभ है। राम कहता है—काम करते-करते सफलता की इच्छा मर जाय और सफलता तुम्हारे सम्मुख खडी है।

चौथा सिद्धान्त—सार्वभौमिक प्रेम

प्रेम सफलता का एक दूसरा सिद्धान्त है। प्रेम करो और लाग तुमसे प्रेम करेंगे। बस, यही लक्ष्य है। हाथ, यदि जीवित रहना चाहता है, तो उसे शरीर के अन्य अगों से प्रेम करना होगा। यदि वह अपने को सबसे पथक कर ले और सोचे कि मेरी कमाई से दूसरे अग क्यों लाभ उठायें, तो हाथ का काम हो चुका, उसका मरण अनिवार्य है। यदि हाथ अपनी स्वार्थवृत्ति पर डट ही जाय, तो उसे मुह में उस खानपान को रखने की क्या आवश्यकता है जिसे वह केवल अपने परिश्रम के बल पर प्राप्त करता है—चाहे उसने वह परिश्रम कलम के द्वारा किया हो अथवा तलवार के द्वारा। उस स्थिति में उसे भोजन के उत्तमोत्तम पदार्थ अपने चम में ही घुसा लेने चाहिये और तभी वह दूसरे अगों को कमाई से वचित कर सकता है। हा, यदि उसे अपना फुलाना ही अभीष्ट हो, तो यह किसी विषली वस्तु से भी अपने को कटवा सकता है। कितु सूजन हानि के सिवा लाभ नही पहुँचा सकती। सूजन की मोटाई स्वास्थ्य का लक्षण नही है। फूला हुआ हाथ एक न एक दिन अपने स्वाथ के कारण अवश्य मर मिटेगा। हाथ केवल तभी फलफूल सकता है, जब वह व्यवहारत शरीर के अन्य अगो के साथ अपनी वास्तविक आत्मीयता का अनुभव करे और अपनी भलाई को शरीर के अन्य अगों की भलाई से, सम्पूण शरीर की भलाई से किसी भी प्रकार पृथक् न समझे।

जिसे हम लोग सहयोग कहते हैं, वही इस प्रेम का वाह्य रूपान्तर ह। तुमने सहयाग, सहकारिता के लाभों के विषय में बहुत कुछ सुना होगा। राम को, यहाँ, उसके गुण गाने की आवश्यकता नही, तुम्हारे हृदयस्थ प्रेम से ही उसका जन्म हो। तुम प्रेम रूप हो जाओ और तुम्हारी सफलता बनी बनायी है। जो व्यापारी ग्राहको के लाभ में अपना लाभ नही समझता, वह सफल नही हो सकता। अपने फलने-फूलने के लिये उसे अपने ग्राहका से प्रेम करना होगा। उसे अपने सम्पूण हृदय से उनकी भलाई पर ध्यान रखना होगा।

पाँचवाँ सिद्धान्त—प्रसन्नता

सफलता के सम्पादन में एक दूसरी बात जो महत्त्वपूण काय करती है—वह है प्रसन्नता। आप जापानी लोग राम के भाई है। राम को प्रसन्नता है कि आप लोग स्वभाव से ही प्रसन्नचित्त ह। तुम्हारे हर भरे चेहरे पर प्रसन्नता की मुसकान देखकर राम को बडी प्रसन्नता होती है। तुम हँसते हुये फूल हो। तुम मनुष्य जाति की मुस्कराने वाली कलिका हो। तुम प्रसन्नता के अवतार हो, और राम चाहता है कि आप अपने जीवन के इस शुभ लक्षण को अपने इतिहास के अन्त

तक स्थिर रखें। राम आपको बतायेगा कि यह कैसे हो सकता है।

अपने परिश्रम के फल के लिये कभी चिन्तित मत हो। भविष्य की चिन्ता मत करो। भय को हृदय में स्थान मत दो। न सफलता की बात सोचो और न असफलता की। काम के लिये काम करो। कार्य स्वयं अपना पारितोषिक है। भूतकाल के पीछे खिन्न मत हो। भविष्य की चिन्ता मत करो। वर्तमान में—प्रत्यक्ष वर्तमान में कार्य करो। दिन रात काम करो। इस प्रकार की भावना तुम्हें प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रखेगी। एक सजीव बीज में फलने-फूलने का गुण होता है। प्रेमपूर्ण सहानुभूति का अटल नियम है कि उस सजीव बीज को आवश्यकतानुसार वायु, जल, पृथ्वी और आकाशादि मिलना ही चाहिये। ठीक इसी भाँति प्रसन्नचित्त कर्मयोगी को प्रत्येक भांति की सहायता का वचन प्रकृति ने पहले से ही दे रखा है। 'आगे का मार्ग अपने आप सूझ पड़ेगा, यदि जितना ज्ञात है, उतना तुम यथार्थ रूप से पार कर लेते हो।' यदि अँधेरी रात में तुम्हें बीस मील यात्रा करने का अवसर प्राप्त हो और यदि हाथ का दीपक केवल दस फुट तक ही प्रकाश फेंकता हो, तो उस सम्पूर्ण अँधेरे मार्ग की चिन्ता से क्या मरे जाते हो? तुम्हें तो अंधकार में एक पग भी नहीं धरना पड़ेगा। इसी प्रकार एक आदर्श और सच्चे कर्मयोगी को अपने पथ में कभी अव्यर्थ बाधा नहीं पड़ती। यह प्रकृति का एक अनिवार्य नियम है। फिर भविष्य की घटना की चिन्ताओं से क्यों अपने हृदय के उल्लास को ठंडा करते हो? जिस मनुष्य को तरना बिलकुल नहीं आता, यदि वह भी सहसा किसी झील में गिर पड़े, तो वह भी कभी डूब नहीं सकता, यदि अपने शरीर के भार को संतुलित बनाये रखे। मनुष्य का भार-विशेषत्व जल के भार-विशेषत्व से कम होता है, अतः जल के धरातल पर उतराने में उसे कोई बाधा नहीं हो सकती। किन्तु ऐसे अवसर पर साधारण प्राणी एकदम अस्थिर-चित्त हो जाते हैं। इसी प्रकार प्रायः भविष्य की सफलता के लिये चिन्ताकुल होने ही से असफलता का सूत्रपात होता है।

आओ, अब हम उस विचारधारा का निरीक्षण करें, जिसके कारण हम भविष्य की ओर आँखें लगाये रहते हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार हो सकता है कि मनुष्य स्वयं अपनी छाया को पकड़ना चाहता है। ऐसा उद्योग चाहे वह अनन्त काल तक करता रहे, वह कदापि, त्रिकाल में भी उसे पकड़ने में समर्थ नहीं हो सकता। पर यदि वह छाया से मुँह मोड़ ले और सूर्याभिमुख हो जाय, तो लो, वह छाया ही उसके पीछे दौड़ना प्रारम्भ कर देगी। जिस क्षण तुम सफलता से मुँह मोड़ लेते हो, ज्योंही तुम फलादि की चिन्ता से मुक्त हो जाते हो, और वर्तमान कर्त्तव्य पर अपनी सारी शक्ति केन्द्रित कर देते हो, बस, उसी क्षण सफलता तुमसे

आ मिलती है। नही, नही वह तुम्हारा अनुगमन करने लगती है। अतएव, तुम सफलता के पीछे मत दौडो, सफलता को अपना ध्येय मत बनाओ और तभी, उसी समय सफलता स्वय तुम्हें ढूढने लगेगी। न्यायालय में न्यायाधीश को वादी प्रतिवादी, वकील अथवा चपरासियों को खोजना नही पडता। वह तो केवल न्यायासन पर बैठ भर जाय और न्यायालय के सारे व्यापार अपने आप चलने लगते है। राम के प्यारे मित्रो, यही अन्तिम तथ्य है। पूर्ण प्रसन्नता के साथ अपने कर्त्तव्य-कर्म में जुट जाओ और सफलता के लिये जिन जिन वस्तुओ की आवश्यकता पडेगी, वे सब अपने आप उपस्थित हो जायेंगी।

छठा सिद्धान्त—निर्भीकता

दूसरी बात, जिस पर राम आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता है और बारम्बार आदेश करता है कि आप उसे अनुभव से सिद्ध करें, वह है निर्भीकता। एक भ्रू निक्षेप से शेरों को वश में किया जा सकता है। एक दृष्टि निक्षेप से शत्रु परास्त किये जा सकते हैं निर्भीकता की एक झडप से विजय प्राप्त की जा सकती है। राम ने हिमालय की सघन घाटियो में विचरण किया है। राम को शेर, चीते, भालू, एव अनेक विषले जीव-जन्तुओं का सामना करना पडा। परन्तु राम को कभी किसी ने हानि नही पहुँचायी। जगली पशुओं पर सीधे उनकी आँखों पर भ्रू-निक्षेप किया गया, दृष्टिया मिली, हिंसक पशुओं ने आँखें नीचा कर लीं। और जिन्हें हम अत्यन्त भयानक वन्य पशु समझते है, वे चुपचाप खिसक गये। यही तथ्य है। निर्भीक बनो और तुम्हें कोई हानि नही पहुँचा सकता।

शायद तुमने कभी देखा हो कि कबूतर कैसे बिल्ली के सामने अपनी आँखें बन्द कर लेता है और शायद अपने मन में सोचता हो कि जसे मैं बिल्ली को नही देखता हूँ, वैसे बिल्ली भी मुझे न देखती होगी। किन्तु होता क्या है? बिल्ली कबूतर पर झपटती है और कबूतर बिल्ली के पेट में जा पडता है। निर्भीकता से चीता भी वश में किया जा सकता है और भयातुरता के सामने बिल्ली भी शेर बन जाती है।

तुमने यह भी देखा होगा कि कापते हुये हाथ से कोई द्रव पदार्थ एक बर्तन से दूसरे बर्तन में सफलतापूर्वक नही उँडेला जा सकता। किन्तु कितनी आसानी से एक सुदृढ और निर्भीक हाथ बिना एक बूद गिराये उस बहुमूल्य द्रव का आदान प्रदान कर लेता है। प्रकृति स्वय बार-बार उच्च स्वर से इसी निर्भीकता की शिक्षा देती है।

एक बार एक पजाबी सिपाही किसी जहाज पर एक भयानक रोग से आक्रान्त

हो गया और डाक्टर ने उसे जहाज से नीचे फेंक देने का अन्तिम दण्ड सुना दिया। डाक्टर ! कभी-कभी भयकर दण्ड दे डालते हैं। सिपाही को इस बात का पता लग गया। साधारण प्राणी कभी-कभी मृत्यु के सामने निर्भीकता की झलक दिखा जाता है। वह सैनिक असीम शक्ति से उठा और एकदम निभय हो गया। तुरन्त सीधा डाक्टर के पास पहुँचा और पिस्तौल तान कर बोला, मैं बीमार हूँ ? क्या मैं बीमार हूँ ? सच-सच बोलो, नही तो अभी मैं तुम्हें दूसरी दुनिया में पहुँचा देता हूँ।' डाक्टर ने उसे तुरन्त ही स्वस्थ होने का प्रमाणपत्र दे दिया। निराशा कमजोरी है, उससे बचो। निर्भीकता ही शक्तिपुज है। राम के शब्दो पर ध्यान दो—'निर्भीकता' और निर्भय बनो।

सातवाँ सिद्धान्त—आत्मनिर्भरता

सफल जीवन का नैसर्गिक, अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूण सिद्धान्त, एक प्रकार से सफलता का प्राण, सफलता की मुख्य कुजी है, आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास। यदि राम से एक शब्द में राम का सम्पूण दशनशास्त्र भर देने का आग्रह किया जाय, तो राम यही कहेगा—वह है आत्मविश्वास, आत्मज्ञान। ऐ मनुष्यो, देखो, सुनो और अपने आपको पहचानो। सत्य, अक्षरश सत्य है कि जब तुम स्वय आप अपनी सहायता करते हो, तो ईश्वर तुम्हारी सहायता करता है। नही, वह तुम्हारी सहायता करने के लिये बाध्य है। यह बात भलीभाँति सिद्ध की जा सकती है। इस तथ्य का साक्षात्कार किया जा सकता है कि तुम्हारी ही आत्मा, वास्तविक आत्मा ईश्वर, सर्वशक्ति सम्पन्न ईश्वर है। यह एक वास्तविकता है, एक सत्य है। तुम स्वय प्रयोग करके देख लो। निश्चय से, पूर्ण निश्चय से अपने ऊपर निर्भर करो और फिर जगत में तुम्हें कुछ भी दुलभ नही। तुम्हारे लिये ससार में कुछ भी असम्भव नही।

सिंह जगल का राजा ह। वह स्वय अपने ऊपर निभर रहता है। उसमें साहस है, शक्ति है, कोई बाधा उसका माग नही रोक सकती। क्यों ? क्योंकि उसे अपने में पूण विश्वास है। और हाथियो को देखो, जिन्हें विशालकाय होने के कारण पहली दृष्टि में यूनानियों ने 'चलते फिरते पवत' की सज्ञा दी थी, वे सदा अपने शत्रुओं से सशकित रहते है। वे सर्वदा झुडो में रहते हैं और सोते समय अपने चारों ओर पहरेदार नियुक्त कर लेते ह। एक भी उनमें अपने ऊपर नही निभर रहता और न अपनी विशाल शक्ति का अनुभव करता है। वे अपने को शक्तिहीन मानते है और एक ही सिंह के समक्ष झुण्ड का झुण्ड भाग खडा होता है, जबकि एक ही हाथी, एक ही चलता फिरता पहाड बीसो शेरो को अपने पैरो

से रौंद कर मिट्टी में मिला सकता है।

एक बडी शिक्षाप्रद कहानी है। दो भाई थे। दोनो को अपनी पैतक सम्पत्ति में समान भाग मिला था। किन्तु कुछ काल के अनन्तर एक तो दरिद्रता की चरमसीमा पर पहुँच गया और दूसरे ने अपनी सम्पत्ति दसगुनी बढा ली। जो लखपति हो गया था, एक बार उससे प्रश्न किया गया, 'इतना अन्तर कसे हो गया?' तो उसने उत्तर दिया, 'मेरा भाई कहता रहता ह—जाओ जाओ और मैं सदैव कहता हूँ—आओ आओ।' इसका अभिप्राय यह हुआ कि एक भाई हर समय नौकरो से कहा करता था, 'जाओ, जाओ और काम कर लाओ' इतनी आज्ञा देने के अतिरिक्त उसने कभी गुदगुदे मखमली गद्दो से नीचे पैर नही रखा। और दूसरा भाई सदैव कमर कसे अपने काम में डटा रहता था। उसने अपने नौकरो से सदा यही कहा, 'आओ, आओ, इस काम में मेरा हाथ बटाओ। वह अपनी शक्ति पर स्वय निभर रहता और साथ ही नौकरों से शक्ति भर काम भी लेता था। परिणाम यह हुआ कि उसकी सम्पत्ति कई गुनी बढ गयी। दूसरा अपने नौकरो से 'जाओ जाओ' ही कहता रहा। वे चले गये और उसकी आज्ञा मानकर सारी सम्पत्ति भी विदा हो गयी।

राम कहता है 'आओ आओ', राम की सफलता और आनन्द का उपयोग करो। अत भाइयो, मित्रो और देशवासियो, एक ही तथ्य है—मनुष्य स्वय अपने भाग्य का विधाता है। यदि जापान के लोगो ने राम को अपने विचार प्रकट करने के और भी सुअवसर दिये, तो राम तक से यह सिद्ध करके दिखा देगा कि किसी बाह्य शक्ति पर—देवी-देवता अथवा कथा-पुराण पर आश्रित रहने के लिये कही कोई स्थान नही है, अपना केन्द्र तो अपने अन्त करण में है। स्वतन्त्र मनुष्य भी एक प्रकार से बद्ध ह, क्योकि स्वतन्त्रता से हम श्रीसम्पन्न बनते हैं और अपनी उसी स्वतन्त्रता के कारण हम गुलाम हो जाते हैं। फिर हम क्या रोयें धोयें और भख मारें? अपनी सच्ची वास्तविकता स्वतन्त्रता का ही उपयोग क्यों न करें जिससे शारीरिक और सामाजिक सभी बन्धन कट जाते हैं।

जो धर्म आज राम जापान को सुना रहा है, वह ठीक यही धम है, जो आज से शताब्दियो पूव भगवान बुद्ध के अनुयायी यहाँ लाये थे। किन्तु आज उस वर्तमान युग की आवश्यकताओ के अनुकूल बनाने के लिये उसकी नयी व्याख्या होनी चाहिये। हम उसे पाश्चात्य विज्ञान और दर्शन की प्रभा से आलोकित कर देंगे।

राम के धर्म के आवश्यक और आधारभूत सिद्धान्त 'गेटे' के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किये जा सकते हैं—

'यदि मुझे कहना पड़े, है क्या मनुष्य का सबसे बड़ा काम
तो मेरे पहले था ही नहीं कोई जगत् !
यह सब मेरी सृष्टि !
यह मैं हूँ, जिसने सूर्य को चमकाया—
आकाश में, समुद्र की गिरि-गुहा से निकाल कर !
वह मैं हूँ जिसके लिये,
चन्द्रमा रंग बदला करता है नित्य नित्य ।'

"बस, एक बार इसका अनुभव करो और तुम इसी क्षण मुक्त हो। एक बार इसे प्रत्यक्ष करो और तुम सदा सफलीभूत हो। एक बार इसे हृदयगम करो और नरक की गन्दी भयानक कोठरियाँ तुरन्त स्वर्ग के आनन्द-कानन में परिणत हो जायेंगी।"

राम के उपर्युक्त व्याख्यान ने श्रोताओं का मन मोह लिया। राम के व्याख्यान के श्रोताओं में एक कलाकार भी उपस्थित थे। वे अंग्रेजी भाषा से बिलकुल अपरिचित थे। व्याख्यान समाप्त होने के बाद उन्होंने अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्त किया, "मुझे ऐसी अनुभूति हुई कि वे (स्वामी राम) अग्नि के स्तम्भ हैं और उनके शब्द विस्फुलिंग की भाँति निकल रहे हैं।"

सरदार पूर्णसिंह ने स्वामी राम के आकर्षक प्रभाव का अत्यन्त भावमयी शैली में चित्रण किया है—

"मैं जापान में 'पूर्णमद पूर्णमिदम्' गाता हुआ उतरा और 'पूर्णमद पूर्णमिद' गाता हुआ ही जा रहा हूँ।" संस्कृत श्रुति का अर्थ है 'यह भी पूर्ण, वह भी पूर्ण, पूर्ण से निकले पूर्ण, फिर भी बाकी रहे पूर्ण' इस प्रकार उन्होंने उस विशेष अवसर पर बड़े प्यार से मेरे नाम की ओर संकेत किया था। स्वामी राम ने कहा, 'मैं सवधम सम्मेलन के लिये नहीं निकला था, मैं तो आया था पूरन को मार्ग दिखाने।' बस, मैं तुरन्त उनके प्रेम के मारे सिर मुड़ा कर साधु बन गया। इस लिये नहीं कि मैंने उनसे कुछ शिक्षा पायी थी, क्योंकि मैं उस समय उनकी कोई बात समझता ही न था। और आज भी सन्देह है कि उनकी हर एक बात समझता हूँ या नहीं।

"उनके अमरीका को प्रस्थान करने के लगभग दो मास बाद टोकियो में मेरा फोटो लिया गया। मेरे बहुत से मित्र कहने लगे, 'ऐसा लगता है कि तुमने अपनी केंचुली उतार कर उन्हीं की रूपरेखा ग्रहण कर ली हो। मैंने दो एक व्याख्यान भी दिये, जो सामयिक पत्रों में प्रकाशित हुये। किन्तु आश्चर्य, उनमें वही विचार और बहुत से स्थलों पर तो ठीक वही शब्द थे, जो उनके अमेरिका के भाषणों में

पाये जाते हैं। इसके बाद मैंने भारतवर्ष में अनेक स्थानों में व्याख्यान दिये और उनके पास अपने व्याख्यानो की टाइप की हुई प्रतिया भेजी। उनके हृदयस्थ विचार में पहले ही यहा सुनाने लगा था।

"राम ने मुझसे कहा कि उन्होंने जापानियो के सम्बन्ध में एक बात भारतवर्ष में सुनी थी कि वे एक ऐसी छडी बनाते है, जो इच्छानुसार स्टूल और छाता में बदली जा सकती है मुझे आश्चर्य हुआ कि मैंने ऐसी विचित्र चीज कभी न देखी थी। मै उन्हें केनकोवा पार्क (जापानी बाजार) में ले गया और यहा उसके बार में पूछताछ की। लो, हमें यहाँ वही चीज मिल गयी, जिसे वह चाहते थे। उसे देखकर वे ऐसे प्रसन्न हुये, जैसे बच्चे खिलौना पाकर नाच उठते है। वे घंटो उससे खेलते रहे। जोर जोर से हँसते, कभी उसे स्टूल बनाते, कभी छाता और कभी छडी बना कर टेक टेक कर चलने लगते। जब हम केनकोवा में यह सौग कर रहे थे, तो अनेक दूकानो की सौदा बेचने वाली लडकियाँ उनके पीछे हो ली और एक सिरे से दूसरे सिरे तक बराबर उनके पीछे-पीछे घूमती रही। एक भी ऐसी न थी, जिसने दूकान छोडकर उनका पीछा न किया हो। वे उनके वस्त्र छूने लगी और साग्रह उन्हें ताकती रही। उन्होंने आपस में कहा, 'यह तो हम सबसे अधिक सुन्दर है।' वे मुझसे जापानी में बोली, (राम जापानी न समझते थे) 'हम सभी इस अपूर्व सौन्दर्य प्रतिमा के साथ शादी करने को तैयार हैं।' वे हँसती और खिलखिलाती, हँसी मजाक करती और उनके साथ खेलना चाहती थीं। स्वामी जी कुछ असमंजस में पड गये। उनकी भाषा वे जानते न थे। मुझसे पूछा, 'ये क्या कहती हैं?' मैंने जानबूझ कर झूठी बातें बना दी। मैंने कहा, 'ये वेदान्त पर आपकी बातें सुनना चाहती हैं, ये वेदान्त सीखने के लिये आपके पास आना चाहती हैं। क्या आप इन्हें पढायेंगे?' राम ने सिर झुका कर कहा, 'इनसे कह दो, राम के यहाँ सदैव इनका स्वागत होगा। राम तो इनका भी उतना ही है जितना औरों का।'[१]"

राम लगभग एक पखवारे तक टोकियो में रहे और वे फिर उसी जहाज से अमेरिका चले गये, जिसे पूना के प्रोफेसर छत्रे ने अपना सरकस ले जाने के लिए किराये पर तय किया था।

स्वामी राम के जापान से चले जाने के पश्चात्, श्री के० हिराई, शिकागो धार्मिक सम्मेलन के बौद्धधर्म के प्रतिनिधि ने अपनी धारणा इस प्रकार अभिव्यक्त

---

१ स्वामी राम जीवन कथा, लेखक सरदार पूर्णसिंह, द्वितीय संस्करण, १९६४, पृष्ठ १६५-६६।

की थी, "मैं अब भी स्वामी जी की मुसकान को प्लम (आलूबुखारा) के पुष्पों की भाँति वायु में तिरती देखता हूँ।"

जापान से रवाना होने के एक दिन पहले स्वामी राम ने नारायण जी से कहा, "देखो धर्मप्रचार के निमित्त हम दोनो का साथ चलना, दोनो ही के लिये अहितकर होगा। इसका अर्थ यह होगा कि परमात्मा पर आश्रित होने के बजाय, हम दोनो परस्पर एक दूसरे पर आश्रित रहने लगेंगे। यदि हम दोनों पृथक्-पृथक दिशा में जाकर धर्मप्रचार करेंगे, तो इससे हम लोग अधिक क्षेत्र में वेदान्तामृत की वर्षा कर सकेंगे। जबकि मैं तो अमेरिका जा रहा हूँ और तुम भारत के वेदान्त का सन्देश बरमा, लका, अफ्रीका तथा यूरोप में प्रचारित करो। उपर्युक्त देशो और यूरोप महाद्वीप में वेदान्त का प्रकाश विकीर्ण करो। किन्तु जब तक मैं तुम्हें भारत लौटने की आज्ञा न दूँ, तब तक मत लौटो।"

नारायण स्वामी ने स्वामी राम का आदेश शिरोधार्य कर लिया। नारायण जी ने कुछ दिनों तक जापान में रुककर अपने गुरु के आदेशानुसार वहाँ के बडे-बडे नगरो में वेदान्त पर भाषण दिये। तत्पश्चात वे हागकाग पहुँचे, जहाँ उन्होने लगभग एक महीने तक सत्सग किया। हागकाग से नारायण जी सिंगापुर आदि प्रसिद्ध स्थानो से होते हुये बरमा पहुँचे। बरमा में कुछ महीने रहकर वेदान्त की अद्वैत शिक्षा का प्रचार और प्रसार किया। तत्पश्चात् लका पहुँच कर तीन महीने तक वेदान्त की प्रचण्ड मशाल जलाते रहें। तदनतर वे पश्चिम की ओर बढे। मध्य अफ्रीका के उत्तरी और पूर्वीय भागो में जा जाकर वेदान्तामृत की वर्षा की। भूमध्यसागर के कतिपय द्वीपो में वे धर्मप्रचार के निमित्त पहुँचे। सितम्बर १९०३ के प्रारम्भ में नारायण स्वामी लदन पहुँचे।

सबसे बडी आश्चर्य की बात यह कि इस सारी यात्रा में नारायण स्वामी ने अपने पास एक पाई भी नही रखी थी। स्वामी रामतीर्थ ने नारायण स्वामी के अन्त करण में भी परमात्मा के अखण्ड विश्वास की प्रचण्ड ज्योति प्रज्वलित कर दी थी। परिणामस्वरूप वे भी राम की ही भाँति द्रव्य अपने हाथ से स्पर्श तक नही करते थे। सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही उनके साहूकार थे। वास्तव में वे अद्भुत साहूकार थे। सारी यात्रा भर वह अद्भुत साहूकार उनकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहा। किन्तु कितने लोग हैं, जो उस अद्भुत साहूकार पर अपना सब कुछ छोडकर उसके आश्रित हो जाते हैं ?

अष्टम अध्याय

स्वामी राम अमेरिका में

(१९०२—१९०४)

जापान से स्वामी रामतीर्थ स्टीमर द्वारा अमेरिका रवाना हुये। यात्रा-काल में समुद्र की तरगो के समान राम के हृदय में भी आनन्द की तरगें हिलोरें ले रही थी। बाहर तो महान् प्रशान्त सागर लहरा रहा था और राम के भीतर आनन्द और प्रेम का अनन्त जलधि उमड रहा था। स्टीमर के सानफ्रांसिस्को पहुँचने पर सारे यात्री उतरने की हडबडी में पडे हुए थे किन्तु राम आनन्दविभोर होकर डेक पर ही चहलकदमी कर रहे थे। उनकी इस निश्चिन्तता और बेफिक्री को एक अमेरिकन बडे ध्यान से देख रहा था। उसे बहुत कौतूहल हुआ और उसने राम के समीप पहुँच कर जिज्ञासा की, "महाशय जी, आपका सर-सामान कहाँ है ?'

स्वामी जी ने उत्तर दिया, "मेरे पास कोई भी सर-सामान नही है। जो कुछ है, वह सब मैं ही हूँ।"

अमेरिकन ने पुन जिज्ञासा की, "आपके रुपये-पैसे कहाँ है ?'

स्वामी राम का सक्षिप्त उत्तर था, "मैं रुपये-पैसे अपने पास रखता ही नही।"

अमेरिकन का कुतूहल और बढा और उसने प्रश्न किया, "फिर आप रहते किस प्रकार हैं ?"

स्वामी जी ने निश्चिन्त भाव से उत्तर दिया, "मैं तो सभी को प्रेम करता हूँ और उसी पर अवलम्बित रहता हूँ।" जब मुझे प्यास लगती है तब कोई न कोई जल भरा गिलास मेरे पास हाजिर कर देता है, और जब भूखा होता हूँ, तब कोई न कोई रोटी लिए मेरे पास पहुँच जाता है।"

"क्या आपके मित्र अमेरिका में है ?"

"हाँ हाँ, एक अमेरिकन से भलीभाति परिचित हूँ, और वह तुम्हीं हो।" इतना कहते हुये स्वामी राम ने उसके कन्धे पर अपना हाथ रख दिया। उनके स्पर्श मात्र से अमेरिकन को यह अनुभूति हुई कि वह स्वामी जी का बहुत दिनो का साथी है। बाद में वह स्वामी जी का अत्यन्त प्रशसक हो गया। उसने स्वामी जी के सम्बन्ध अपने में भाव इस भाँति अभिव्यक्त किये, वे हिमालय से उद्भूत ज्ञान की

मशाल है। उन्हें आग जला नही सकती, अस्त्र-शस्त्र उन्हें काट नही सकते। उनके नेत्रो से निरन्तर आनन्दाश्रु की वर्षा होती रहती है। उनकी उपस्थिति मात्र से नया जीवन प्राप्त होता है।"

जिस दिन से राम ने अमेरिका की भूमि स्पर्श की, उसी दिन से अमेरिकी जनता और प्रेसो ने उन पर अगाध स्नेह प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर दिया। वे सब उनकी आवश्यकताओ पर अत्यधिक ध्यान देने लगे। भारत के कौडीविहीन अकिंचन ने अमेरिका के बडे बडे धनाढ्यो का हृदय जीत लिया। वे उसकी अकिंचनता, त्यागवृत्ति पर मुग्ध हो गये। प्रोफेसर छत्रे के पास राम को अधिक समय तक रहने नही दिया गया। सीटेलवाश नामक स्थान से वे प्रोफेसर छत्रे से पृथक होकर रहने लगे। वे अमेरिका के विशिष्ट अतिथि के रूप में माने जाने लगे। स्वामी राम सयुक्त राज्य अमेरिका में दो वर्षों से कुछ अधिक समय तक रहे। इनमें से अठारह महीने वे सानफ्रासिस्को में अपने मेजबान (आतिथेय) डा० एल्बट हिलर के घर पर रहे। राम जहाँ जाते थे, वही लोगो की भीड उनके उपदेश-श्रवण के निमित्त एकत्र हो जाती थी। अमेरिका में उन्होने अनेक सस्थाओ की स्थापना की उनमें से एक प्रसिद्ध सस्था थी—'हरमेटिक ब्रदरहुड'। इस सस्था के माध्यम से वेदान्तिक त्याग भावना की शिक्षा दी जाती थी। अमेरिकन प्रेसो ने उन्हें 'जीवित ईसा' की सज्ञा दे रखी थी। इस जीवित ईसा—स्वामी राम से सयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति ने भी साक्षात्कार किया। राम ने ११ जून १९०३ को श्रीमती वेलमैन को एक पत्र लिखा था। उसमें प्रेसीडेण्ट महादय की मुलाकात का सक्षिप्त वणन है—

"२० मई १९०३ के मध्याह्न काल, सयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति, अमेरिका के उत्तरी भाग की यात्रा करते समय, शास्ता स्प्रिंग्स (जहाँ राम रहते थे) पर कुछ देर के लिये रुके। स्प्रिंग्स कम्पनी के प्रतिनिधि की हैसियत से एक महिला ने राष्ट्रपति को सुन्दर पुष्पो से सुसज्जित एक डाली समर्पित की। उसके पश्चात्, तत्क्षण राम ने 'भारत की ओर से अपील' नामक पुस्तिका राष्ट्रपति को थमाई। उन्होने उस पत्रिका को बडी शालीनता, सहृदयता एव प्रसन्नता से ग्रहण किया। उन्होने उसे अपने दाहिने हाथ में रखा और अन्त तक उसे उसी रूप में रखे रहे। लोगो के अभिवादन का उत्तर देते समय उनका दाहिना हाथ स्वभावत उनके सिर की ओर चला जाता था। इस प्रकार उस पत्रिका ने कम से कम सौ बार तो अवश्य ही प्रेसीडेण्ट महोदय के सिर का स्पर्श किया होगा। गाडी के छूटने पर राष्ट्रपति महोदय उसे बडी तन्मयता से पढते हुए दिखाई पडे। गाडी छूटते समय उन्होंने अपना हाथ उठाकर एक बार फिर राम को धन्यवाद दिया।

पर देखो, राम ने अपने स्वर्गीय झूले पर झूलने को राष्ट्रपति महोदय को नहीं आमन्त्रित किया। क्या तुम अनुमान लगा सकती हो, क्या नही ? क्या तुम अन्दाजा लगा सकती हो ? अच्छा, चूकि तुम उत्तर नही दे सकती, अत राम ही उत्तर देगा। कारण बिलकुल स्पष्ट है। तथाकथित स्वतन्त्र अमेरिकनो का राष्ट्रपति राम की स्वच्छन्द उन्मुक्तता की अपेक्षा सहस्राश भी स्वतन्त्र नही है।

"राष्ट्रपति महोदय, इसकी चिन्ता न कीजिये। आप भी राम की ही भाति स्वतन्त्र हो सकते हैं। आप भी राम की भाँति प्रकाश और वायु को अपना आज्ञाकारी सेवक बना सकते है। पहले आप राम बनने की चेष्टा कीजिये। तत्पश्चात राम आपको सूर्य, ग्रह-नक्षत्रो, वायु, सागरो, बादलों, जगलों, पर्वता—समस्त प्रकृति का स्वामी बना देगा। प्रकृति की समस्त वस्तुओं पर आपका एकछत्र अधिकार हो जायेगा। क्या यह सुन्दर सौदा नही है ? क्या यह महँगा है ? कृपया, इस सौदे से सारी वस्तुएँ सहज में प्राप्त कर लें।"

राम के अमेरिका-प्रवास-जीवन के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी है। केवल इतना ही ज्ञात है कि प्रतिदिन सन्ध्याकाल अमेरिकन उनका भाषण सुनने को एकत्र होते थे। वे प्राय तीन अथवा चार बडी-बडी सभाओं में दो से लेकर तीन घटें तक भाषण करते थे। उनके शिष्यो—नारायण स्वामी और सरदार पूर्णसिंह ने कुछ व्याख्यान सकलित किये हैं, जिनसे स्वामी राम के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश पडता है—

"एक अमेरिकन महिला 'एथिइस्टिक सोसाइटी, (नास्तिकवाद समिति) की प्रबल उत्साही सदस्या थी। वे राम को अपने मत में परिवर्तित करने के लिये उनके पास उपस्थित हुयी। राम उस समय समाधि में निमग्न थे। वे राम के पास चुपचाप बैठी रही। समाधि से उत्थान के पश्चात् राम ने जब अपने नेत्र खोले, तो उस महिला ने उनसे निवेदन किया, 'मेरे प्रभो, अब मैं नास्तिक नहीं रह गयी हूँ। आपकी दृष्टिमात्र से मैं परिवर्तित हो गयी हूँ।"

एक दिन काषाय-वस्त्र में राम सडक पर चल रहे थे। सयोगवश एक व्यक्ति ने उनके समीप आकर क्रोध में प्रश्न किया, "ऐसी विचित्र वेशभूषा धारण करके तुमने लोगों को आकर्षित करने का क्या ढग निकाला है ?" राम ने उसकी धृष्टतापूर्ण जिज्ञासा का कोई उत्तर नही दिया, वे मौन ही रहे।

"शास्ता स्प्रिंग्स में निवास करते समय राम, अमेरिका ऐसे कर्मठ देश में अकर्मण्य की भाति नही रहना चाहते थे। वे शारीरिक श्रम के पक्के हिमायती थे और सामान्य मजदूर की भाँति श्रम करते थे। वे पर्वतीय जगलों से लकड़ियाँ काट कर डाक्टर और श्रीमती हिलर की गृहस्थी के प्रयोग के निमित्त देते थे। हालाँकि,

दोनो प्राणी राम के प्रति अत्यधिक कृपालु थे और उनसे इस प्रकार के श्रम की अपेक्षा नही करते थे। वे दोनो इतने स्नेही थे कि राम को जीवनपर्यन्त मेहमान के रूप में रखना अपना परमधर्म समझते थे।"

"जिस प्रकार भारत में राम एकान्त प्रेमी थे, उसी प्रकार अमेरिका में भी रहे। शास्ता नदी की तेज धार पर राम के विनोद के लिये एक झूले का प्रबन्ध कर दिया गया था। उसमें बैठकर वे अपनी प्यारी चिडियो के साथ एक स्वर से चहचहाया करते थे। राम कहते थे, 'ऐसा आनन्द तो सम्पूर्ण सयुक्त राष्ट्र के अधिनायक के भाग्य में भी नही हो सकता।' यदा-कदा वे वेदान्त पर व्याख्यान देने के लिये अपने पर्वतीय एकान्त से निकल पडते थे। वे भारत पर भी भाषण करते थे। उन्होने भारत की ओर से अमरीकनो के प्रति एक अपील निकाली थी, जिसने उस समय लोगो का यथेष्ट ध्यान आकर्षित किया था।"

एक बार राम शास्ता पर्वत को चोटी पर चढने के लिए पहली बार आये थे। (इसकी ऊँचाई समुद्र-धरातल से १४४४४ फुट है।) इस प्रतियोगिता में बहुत से अमेरिकन भी सम्मिलित हुये थे। प्रतियोगिता में राम को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। किन्तु उन्होने पुरस्कार लेना स्वीकार नही किया। उस सवाद पत्र की प्रतिया, जिसमें इस चढाई का विवरण छपा था, इतनी तेजी से बिकी थी कि लोगो को आश्चर्य होता था। एक बार राम एक 'मैराथन रेस' भी दौडे थे—पूरे तीस मील की। राम तो केवल दौडने के आनन्द के प्रेमी थे और उस दौड में भी उन्होने प्रथम स्थान प्राप्त किया। एक ऐसा समय था जब राम लाहौर में विद्यार्थी और प्रोफेसर थे, तब लोगो को इस बात की प्रबल आशका थी कि कही उन्हें स्वास्थ्य से एकदम हाथ न धोना पडे। युवावस्था के प्रारम्भ में वे अत्यन्त क्षीणकाय और दुबल थे, स्वास्थ्य इतना चौपट था कि उसके सुधरने की कोई आशा न की जा सकती थी। किन्तु केवल अपने दृढ सकल्प और सयम के बल पर उन्होने अपने शरीर को इतना पुष्ट और स्वस्थ बना लिया।"

राम ने सरदार पूर्णसिह को एक घटना बतायी थी, "एक दिन एक बहुत ही धनवान् महिला राम के पास आयी। राम उसे 'गगा' नाम से पुकारता था। उसने अपना सब कुछ—जर-जमीन, घर-बार—राम को समर्पित करना चाहा और स्वय सन्यास ग्रहण की उत्कट अभिलाषा अभिव्यक्त की। किन्तु राम को किसी भी सासारिक विभूति की आवश्यकता न थी। अत उसकी समस्त भेंट आशीर्वाद के साथ अस्वीकार कर दी गयी। सचमुच उस महिला का हृदय अत्यन्त विशाल और उदार था। राम तो वेदान्त की जन्मभूमि भारतवर्ष में ही 'वेदान्तिक कॉलोनी' की सस्थापना करना चाहता था, अमेरिका में नही।"

एक बार पूर्णसिंह ने स्वामी राम से एक प्रश्न किया, "स्वामी जी, अमेरिका क्या सचमुच भारतवर्ष की अपेक्षा उस तत्त्व को अधिक व्यवहार में ला रहा है जिसे आप वेदान्त कहते हैं ?"

और स्वामी जी उत्तर देने लगे, "नहीं, अमेरिका तो मेरे वेदान्त का केवल भौतिक जगत् में व्यवहार करता है। राम की अभिलाषा है कि सभी राष्ट्र इस सच्चाई का मानसिक और आध्यात्मिक जगत् में भी व्यवहार करें। अमेरिका और समस्त पाश्चात्य देश बाह्य दृष्टि से चारों ओर फैले होने पर भी, आन्तरिक दृष्टि से संकीर्ण हैं। और भारतवर्ष तो अनेक शताब्दियों से मानसिक स्तर भी इतना अधिक संकुचित हो गया है कि उसका रोग किसी पाश्चात्य देश की अपेक्षा अधिक करुणाजनक हो उठा है। उसका पतन चरमसीमा तक पहुँच चुका है। भारत ने एक ओर आध्यात्मिक जगत् का द्वार बन्द कर दिया और दूसरी ओर मानसिक स्तर पर वह अपने आप में सिकुड़ गया। खुली रही, केवल भौतिक जीवन की एक छोटी सी खिड़की, जिससे उसकी श्वास मात्र चल रही है। वेदान्त पूर्ण सत्य है, यदि उसका पूर्ण रूप से पालन न किया गया, तो वह मार डालेगा। दो में से एक बात—या तो पूर्ण सत्य अथवा मृत्यु—इस जीवन सत्य में से बीच का सत्यासत्य मिश्रित कोई सुनहला मार्ग नहीं निकाला जा सकता। राम यह नहीं कहता कि भारतवर्ष के हृदय में सत्य की भूख नहीं है, है, किन्तु वह ऐसी है जैसे किसी दीर्घकालीन अजीर्ण के रोगी को झूठी भूख लगा करती है। राम ने तुम्हें कभी बताया था कि भारतवर्ष को एक प्रकार का दार्शनिक अजीर्ण सा हो गया है। हमारी सभी परम्परायें, रीतिरिवाज, रहन-सहन, जाति-पाँति, चिरकालीन विश्वास, एवं धार्मिक मान्यतायें केवल हमें हमारी आध्यात्मिक व्याधियों का पता मात्र दे सकती हैं, उनमें कोई जीवन-गति नहीं। बहुत दिनों तक मानसिक स्तर के ढर्रे पर, जो प्रारम्भ में चाहे जितना सुन्दर रहा हो, जीवन-यापन करने से आत्मा संकीर्ण हो जाती है और आज तो वह जीवन-क्रम न जाने कब का आत्मवंचक अज्ञान और भीतर-बाहर के सामंजस्य से रहित जीवन-हीन घोषणाओं के रूप में परिवर्तित हो चुका है। देश स्वयं आध्यात्मिक या मानसिक दृष्टियों से भले या बुरे, इन दो विभागों में नहीं बाँटे जा सकते। किसी देश में थोड़े से ही ऐसे स्त्री-पुरुष होते हैं, जिनका जीवन महत्त्वपूर्ण और अनुकरणीय होता है, अन्य व्यक्ति तो यों ही होते हैं। यह तो केवल संयोग की बात होती है कि किसी भी देश से तुम्हारा व्यक्तिगत सम्पर्क उस देश के प्रथम श्रेणी के लोगों से अधिक होता है अथवा दूसरी श्रेणी के अधिक लोगों से इस प्रकार के परिचय के आधार पर बनी धारणा बनायी जाती है, वह तो सदा व्यक्तिगत ही रहेगी। स्वर्ग और नरक एक

ही स्थान में नही, बल्कि एक ही शरीर में एक साथ रहते हुए देखे जाते हैं। प्रत्येक देश में, प्रत्येक जलवायु में, प्रत्येक व्यक्ति में ऐसी बात सभव ह सकती है। अतएव तुम्हें किसी विशेष परिस्थिति में, वहा जैसा प्रभाव दिखायी पडता है, उसी के अनुसार तुम उस देश के सम्बन्ध में अपनी राय बना लेते हो। यदि तुम किसा देश के सबसे सुन्दर, सबसे श्रेष्ठ भूभाग, सब से श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषो के व्यक्तिगत सम्पर्क में आने के नियं सचेष्ट रहो, तो तुम्हे सभी देश एक समान आध्यात्मिक, एक समान श्रेष्ठ, एक समान सुन्दर और एक समान दिव्य मालूम होगे।"

स्वामी जी की उपर्युक्त बातो पर पूर्णसिंह ने शका की, "नही स्वामी जी, मेरे पूछने का अभिप्राय यह है कि आपने जो हिन्दू दशनशास्त्र की शिक्षा वहाँ दी, उसका वहाँ के लोगों पर कैसा प्रभाव पडा ?"

स्वामी राम का उत्तर था, "ओह, अमरीका को यह बात समझाने के लिये महतो आत्म-साधना की आवश्यकता है। यह किसी नौसिखिये का काम नही है। यदि वहा कुछ करना हो, तो वहा के सर्व प्रकार सुसस्कृत व्यक्तियों को, विश्व विद्यालय के मनुष्यो को अपने पास खीचना होगा। उस देश पर कोई स्थायी प्रभाव डालना आसान नही। सुन्दर, स्वच्छ, श्री सम्पन्न महिलायें, जिनके लिये घर में कोई काम नही होता, भले ही झुण्ड के झुण्ड लाग आपकी बात सुनने और आपकी अपरिचित मुखमुद्रा निहारने के लिये आ जायें, किन्तु यह जिज्ञासा नही उत्सुकता मात्र है। सैकडा हजारो स्त्रियों में से जो राम को मिली, केवल दा सच्ची निकली और विशेषकर गगा, वह ता साक्षात देवी थी। भारतवर्ष या अमेरिका में राम के देखने में ऐसी कोई अन्य स्त्री नही मिली।"[1]

पश्चिमी सभ्यता बाह्य दृष्टि से चाहे जितनी चमक-दमक वाली क्यो न हो, किन्तु आन्तरिक दृष्टि से वह कितनी तप्त और उद्विग्न है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण एक विख्यात अभिनेत्री के जीवन से मिला। उस अभिनेत्री ने स्वामी राम से एकान्त में साक्षात्कार की अनुमति माँगी। राम ने प्रसन्नता से उसे अपनी स्वी कृति दे दी। वह मोतियो और जवाहरो से लदी हुई थी और इतनी अधिक इत्र में डूबी थी, जैसे वह सुगन्ध, केवल सुगन्ध की पुतली हो। उसके ओठा पर वह मुसकान थिरक रही थी, जो अपनी प्रत्येक तरग में अपार आह्लाद की सृष्टि कर रही थी। किन्तु ज्योही उसने कमरे में प्रवेश किया, त्योही वह फर्श पर बैठकर

---

१ स्टोरी आफ स्वामी राम (प्राचीन सस्करण), लेखक पूर्णसिंह पृष्ठ १४०-१४२

रोने लगी। उसने अपना दुखड़ा रोया, "स्वामी जी, मैं बहुत दुखी हूँ। मुझे सुख दीजिये। न तो आप मेरे मोतियों की ओर देखिये और न मेरी कृत्रिम मुसकान पर ध्यान दीजिये। ये बाह्य प्रदर्शन तो मेरे स्वभाव बन गये है। किन्तु इन बातों से तो मुझे—मेरे सम्पूर्ण हृदय को आन्तरिक घृणा और ग्लानि हो रही है।" राम ने उसे सान्त्वना प्रदान की। उसने अपने पाप पुण्य का सारा ब्योरा राम के सामने खोल कर रख दिया। राम को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पाश्चात्य सभ्यता ही उस अभिनेत्री के माध्यम से अपनी आन्तरिक ग्लानि प्रकट कर रही हो।

इसी प्रकार एक अन्य स्त्री राम के पास आयी। उसकी एकमात्र सन्तान चल बसी थी। वह अत्यधिक दुखिया थी। स्वामी राम से सुख और शान्ति की भीख माँगने आयी थी। राम ने उससे कहा, "हा, हा, राम आनन्द बेचता तो है, किन्तु उसके लिये भारी कीमत चुकानी पड़ती है।" वह चिल्ला उठी, "हाँ, हा, स्वामी जी मैं तैयार हूँ। इसके लिये म अपनी सारी सम्पत्ति देने को उद्यत हूँ।" राम ने उसकी व्यग्रता देखकर कहा, "किन्तु आनन्द के राज्य में यह सिक्का नही चलता। तुम्हें राम के जगत में चलने वाला सिक्का देना होगा।"

उस स्त्री ने बड़ी आतुरता से कहा, "हाँ, हाँ स्वामी जी मैं दूँगी, अवश्य दूँगी।"

राम का उत्तर था, "बहुत ठीक, तो लो इस नीग्रो जाति के छोटे से बच्चे को और अपने ही बच्चे की भाँति प्यार करो। तुम्हारी आनन्द प्राप्ति का यही कीमत है।"

वह चिल्ला उठी, "आह, यह कितना दुस्तर कार्य है।"

"तब तो आनन्द पाना भी कठिन है।" राम का उत्तर था।

उसने आनन्द-प्राप्ति की कीमत चुकायी। बच्चे को लेकर वह उसका लाड प्यार से पालन-पोषण करने लगी। उसे अपनी खोयी हुई शान्ति प्राप्त हो गयी और पहले की अपेक्षा अधिक आनन्दित रहने लगी।

स्वामी राम उन्मुक्त पक्षी की भाँति सदैव चहकते रहते और मृगशावक की भाँति कुलाँचें भरते रहते थे। वे सामान्य व्यक्ति की धीमी चाल से कभी न चलते थे। एक बार कुमारी टेलर राम को लेकर (कदाचित् स्वामी राम का सचिव) 'ग्रेट पैसफिक रेलरोड कम्पनी, सानफ्रांसिसको' के मैनेजर के पास न्यूयार्क का रियायती टिकट दिलाने के लिये गयीं। स्वामी राम को देखते ही मैनेजर ने मुग्ध होकर कहा, "अरे इन्हें रियायती टिकट। इनकी सेवा में मैं 'पुलमैन कार' निःशुल्क अर्पित करता हूँ। इनकी मुसकान अत्यन्त सम्मोहक है।"

सेण्ट लुई की प्रदर्शनी में एक धार्मिक सभा का आयोजन किया गया था,

जिसमें राम भी सम्मिलित हुये थे। वहा के स्थानीय समाचारपत्रो ने स्वामी राम के सबध में अपने विचार इस भाति अभिव्यक्त किये थे, "इस अपार जन-समूह में राम ही आकर्षण के प्रकाशबिन्दु रहे। दार्शनिक और धार्मिक प्रश्नो की औपचारिक वार्ता में राम मिनटो स्वच्छन्द रूप से हँसते रहते थे। वे कुछ उत्तर नही देते थे, ऐसा प्रतीत होता था माना उनकी उन्मुक्त हँसी ईश्वर और जीव सबधी अनेक जिज्ञासाओ की स्वत अपने आप में उत्तर भी है।"

एक बार एक वृद्ध अमेरिकन महिला ने राम के साथ ऐकान्तिक साक्षात्कार में अपनी गृहस्थी के प्रपचो का दुखडा रोया। किन्तु वे पलथी मारे घंटों समाधि में स्थित रहे। ऐसा लग रहा था मानो वह वृद्धा किसी प्रस्तर मूर्त्ति के सम्मुख अपनी करुण-गाथा सुना रही हो। उसके करुण क्रन्दन को सुनकर भी राम ने अपने मुह से एक भी सहानुभूतिपूर्ण शब्द नही निकाला। वृद्धा राम की इस उपेक्षा से अत्यधिक मर्माहत हुयी। वह बिफर पडी, 'ये भारतीय कितने अविवेकी और घमडी होते हैं!" स्वामी राम ने अपनी आखें खोली और केवल यह कहा, "माँ!" तत्पश्चात 'ओम् ओम' का उच्चारण किया। प्रणव की उस दिव्य ध्वनि ने वृद्धा में नव चेतना एव आनन्द का सचार कर दिया। वह एकदम परिवर्तित हो गयी। उसका समस्त ताप शान्त हो गया। वह राम की भक्त बन गयी। बाद में वह भारत भी आयी और उसने अपनी उस समय का अनुभूति का इस प्रकार वर्णन किया, "स्वामी राम द्वारा उच्चरित 'ओम्' ध्वनि से मुझे ऐसी अनुभूति हुयी, मानो मुझे इस पृथ्वी से ऊपर उठा लिया गया हो। मै प्रकाश का रूप धारण कर वायु के ऊपर तैरने लगी। मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो मैं समस्त विश्व की मा हूँ। सभी देश मेरे है, सभी राष्ट्र मेरे बच्चे है। मैं आनन्द से परिपूर्ण हो गयी कि मैं भारत की यात्रा करूँगी, मै उस पवित्र स्थान का दर्शन करूँगी, जहाँ राम जन्मे है और जहा उनका पालन पोषण हुआ है। इसीलिये मैं भारत आयी हूँ। मेरा आनन्द ज्यो का त्यो बना है। ओह, ओम् ध्वनि मेरी हड्डियों तक में गूज रही है। राम स्वामी द्वारा उच्चरित 'माँ' शब्द ने मुझे देवत्व तक उठा दिया है। मेरे अन्तरगत अमृत का निर्झर फूट पडा है। उसने मेरी बाह्य पपडी (शरीराध्यास) को तोड दिया है। मैं परम पवित्र हूँ।"

राम के कुछ अमेरिकन भक्त उन्हें 'जीवित ईसा' कहा करते थे। एक झील पर स्थित स्वास्थ्यगृह में अनेक रोगियों ने राम के 'ओम् मत्र के उच्चारण से अपना स्वास्थ्य पाया। उन्होने यह प्रत्यक्ष अनुभव किया कि 'ओम् के ध्वनि-श्रवण से उन्होंने अपना खोया हुआ स्वास्थ्य फिर वापस पाया। वे स्वामी राम को अपना 'रोगहर्त्ता' मानने लगे।

स्वामी राम ने अमेरिका के अनेक विश्वविद्यालयों का निरीक्षण किया। भारत के एक सुविख्यात गणितज्ञ की हैसियत से , वैज्ञानिक चर्चा करने के उद्देश्य से नही, प्रत्युत पूर्व के दार्शनिक की भाँति वेदान्त की ज्योति फलाने के लिये। यद्यपि वे गणित विषय को अत्यधिक प्यार करते थे, पर वेदान्त तो उन्हें सर्वाधिक प्रिय था। वे जहाँ कही भी गये, लोग उन्हें स्वत प्रेम करने लगे। जिस किसी के सम्पर्क में आये, उसने उनका आदर और सम्मान किया। अपने इन पयटनों में राम ने अनेक स्थानो में भाषण और ज्ञानवर्द्धक प्रवचन किये और अमेरिका में वेदान्त की विचारधारा के प्रचार और प्रसार में यथेष्ट सहायता की। यद्यपि उनका यह प्रचार काय किसी सस्था अथवा सगठन के माध्यम से नही हुआ और न ही उन्होने कही से वेदान्त के प्रचार के लिये आर्थिक सहायता पाने की इच्छा प्रकट की, फिर भी उनके आग्रह की जड गहरी थी, जिसका मूल्य रुपये-पसे की दृष्टि से कदापि नही आँका जा सकता। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा जाज्वल्यमान और आकर्षक था कि सब पर और एक-एक पर उसका ऐसा गभीर प्रभाव पडा, जो किसी प्रकार मिटाया नही जा सकता।

इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख करना रोचक होगा। स्वामी राम को एक अमेरिकन विश्वविद्यालय से भाषण करने का आमत्रण मिला। वहाँ उन्होने "भारत के प्रति ससार कितना ऋणी है ?" विषय पर आकपक व्याख्यान दिया उस सभा के अध्यक्ष ने उनके व्यारयान की भूरि-भूरि प्रशसा की, "स्वामी राम के व्याख्यान द्वारा हमें पाश्चात्य सस्कृति में वेदान्त की विचारधारा के प्रवश के इतिहास की खोयी हुयी कडी मिल जाती है।" अध्यक्ष महोदय ने स्वामी राम को विश्वविद्यालय की ओर से कुछ पुस्तकें उपहार रूप में दी। उनके संकेतानुसार जब विश्वविद्यालय का एक क्लर्क स्वामी राम को कुछ पुस्तकें भेंट करने के लिये लाया, तो उनमें से एक पुस्तक की जिल्द कुछ खराब थी। अध्यक्ष महोदय न उसे देख लिया और क्लर्क की ओर मुडकर कहा, "क्या तुमने अभी-अभी स्वामी राम का भाषण नही सुना है ? अथवा तुम यह नही जानते कि ये पुस्तकें किसे भेंट की जाने वाली है ? ये तो भगवान् राम को विश्वविद्यालम की ओर से उपहार दी जायेंगी। कृपया दूसरी प्रति लाइये।"

यूनीटेरियन चर्च के तत्त्वावधान के स्वामी रामतीर्थ ने 'आत्म विकास' पर एक व्याख्यान दिया। चर्च का हाल श्रोताओं से ठसाठस भरा था। अमेरिका के एक प्रमुख जनरल ने उनके भाषण के सम्बन्ध में अपनी सम्मति इस भाँति प्रगट व्यक्त की, "स्वामी जी ने अपने विचार अत्यन्त सीधी-सादी किन्तु प्रभावयुक्त शैली में अभिव्यक्त किये। सारे श्रोताओं का ध्यान उन्होंने आकर्षित कर लिया।

स्वामी जी ने आत्मा के विकास की चार स्थितियाँ, चार वृत्तो को खीचकर समझायी। वे वृत्त ऊपर से परस्पर एक दूसर को स्पर्श कर रहे थे। उनके द्वारा आत्मा की चार स्थितियाँ सूचित की गयी थी—खनिज, उद्भिज, पशु और मनुष्य। सकीर्ण और इन्द्रियलोलुप व्यक्ति खनिज पदार्थों की स्थिति में दिखाये गये थे। नीरो और सीजर आदि नृशस व्यक्ति हास्यात्मक ढग से कीमती खनिज पदार्थो के रूप में प्रदर्शित किये गये थे। ऐसे व्यक्तियो का मनुष्यो की कोटि में नही रखा जा सकता। वे अधम कोटि के स्वार्थी है। उनकी गति विधि तकले की गति के समान जड है। ऐसे व्यक्ति जिनका प्रेम केवल अपने परिवार तक केन्द्रीभूत और जिनकी क्रियायें अपनी ही गृहस्थी तक सीमित हैं, वे मनुष्य के रूप में 'उद्भिज मनुष्य' है। वे मनुष्य के रूप में फल फूल, वृक्ष आदि ता हा सकते है, पर वास्तविक मनुष्य किसी प्रकार नही हो सकते।

इसके बाद वे मनुष्य आते हैं, जो अपने को जाति, धम अथवा सम्प्रदाय तक सीमित रखते है। वे उद्भिज मनुष्यों को अपक्षा अधिक विकसित होते है—इन्हें 'पशु-मनुष्य' की सज्ञा दी जा सकती है।

सच्चा मनुष्य वह है जिसके प्रेम का विस्तार अपने दश तक फैल जाता है। वह जाति, वर्ण, सम्प्रदाय की परिधि से बाहर निकल कर समस्त देश के मनुष्यो को समान भाव से प्रेम करता है।

उपर्युक्त चार कोटियो के ऊपर 'दव मानव' की श्रेणी होती है। समस्त ससार के प्राणियो के प्रति उसकी एक-सी प्रीति होती है। ऐसा मनुष्य "ईसा-मनुष्य है, वह सभी राष्ट्रों का है, वह युगो का मनुष्य है, वह सावभौमिक मनुष्य है।"

इस प्रकार स्वामी रामतीथ की विलक्षण अनुभूतिपूण व्याख्या से सारे अमेरिकन आश्चमविभोर हो गये। उन्हें भारत के महान् आध्यात्मिक पुरुष—स्वामी राम—का लोहा मानना पडा। वहाँ के जानकार व्यक्तियों ने उन्हें 'जीवित ईसा' को सज्ञा दी।

अमेरिका के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'डेनवर टाइम्स' ने राम का मूल्याकन बडी सुदर शैली में किया है—"उनका धम 'प्रकृति धम' है 'क्या आपने किसी ऐसी नदी का नाम सुना है, जो मात्र हिन्दुओं की है, ईसाइयो की नही ? इसी प्रकार मेरे धम में जाति, धम और सम्प्रदाय के लिये काई स्थान नही है।" ये राम के उद्गार थे, जो 'डेनवर' में अभिव्यक्त किये गये थे।

अपने व्याख्यानो के शीपक-चयन राम ऐसे आकपक ढग से करते थे कि उनकी सुगन्धि दूर-दूर तक फैल जाती थी। डेनवर में जब उनके व्याख्यान का

शीर्षक—'प्रत्येक दिन नये वर्ष का दिन और प्रत्येक रात क्रिसमस की रात' घोषित किया गया, तो लोग चौंक से पडे और बडी देर तक करतल ध्वनि होती रही।

राम की एक अमेरिकन शिष्या श्रीमती पी० व्हिटमैन उनके भाषणा का आशुलिपि में लिखती जाया करती थी। बाद में वे सभी व्याख्यान पुस्तक के रूप में प्रकाशित किये गये। ग्रथ (सकलन) का नाम 'इन वुडस आफ गाड रियलाइ जेशन' रखा गया और इसका प्रकाशन रामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ से हुआ ह। (अब यह प्रकाशन संस्थान सारनाथ, वाराणसी चला गया ह)।

अमेरिका में अध्ययन के निमित्त आये हुए भारतीय छात्रा की समस्याओं की ओर स्वामी रामतीर्थ ने अमेरिकनो का ध्यान आकर्षित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिकन भारतीयो के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने लगे। भारत के सम्बन्ध में स्वामी राम ने जो व्याख्यान अमेरिका में दिये, उनका भी उन पर पर्याप्त प्रभाव पडा। अमेरिका के समाचारपत्रो एव सम्भ्रान्त व्यक्तिया न स्वर्गीय पैगम्बर, स्वामी राम के प्रति अत्यधिक प्रेम और श्रद्धा प्रदर्शित की।

श्रीमती वेलमैन ने अपने पत्र में स्वामी राम के उदात्त गुणो और अद्भुत प्रभाव का साकार चित्रण किया है। यह पत्र सरदार पूर्णसिंह को स्वामी राम के देहान्त के पश्चात् मिला था, श्रीमती वेलमैन स्वामी राम से प्रभावित होकर भारत का पर्यटन करने भी आयी थी। उनका पत्र इस प्रकार है—

" सन् १९०३ के प्रारम्भिक दिन थे, जब पहले पहल मुझे इस महान आत्मा से मिलने का अवसर मिला। वे उस समय सानफ्रासिस्का में व्याख्यान द रहे थे। मैं बडी अनिच्छा से उनका व्याख्यान सुनने गयी। पर उनकी 'ओम' ध्वनि से मेरा मन ऊपर उठा, मेरी सारी आत्मा में हर्ष की एक ऐसी लहर दौड गयी, जिसका मुझे पहले कभी अनुभव न हुआ था। एक स्वर्गीय आनन्दमय शान्ति ने मुझे देदीप्यमान कर दिया।

'बस, फिर तो मैंने जीवन के उस दिव्य रस के उपभोग करने का अवसर हाथ से कभी जान न दिया, जिसे वे मुफ्त वितरित किया करते थे। उन्होंने अमेरिकनो से एक अपील भी की थी कि वे भारत में जाकर और भारतवासियो के पारिवारिक अग बन कर उनकी सहायता करें। एक काफी बडी सख्या में लोगा ने कहा कि वे वहाँ जायेंगे। किन्तु गया एक भी नही। एक दिन मैंने उनसे कहा, 'स्वामी जी आपने मेरा जो उपकार किया है, उसके बदले में मैं आपके देशवासियों की क्या सहायता कर सकती हूँ ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'यदि तुम भारत चली जाओ, तो तुम बहुत कुछ कर सकोगी।' मेरा निश्चयात्मक उत्तर था, 'मैं जाऊँगी। पर मेरे मित्र इसके विरुद्ध थे, कुछ तो मेरे सकल्प की हँसी

उड़ाने लगे। कुछ लोगों ने समझा कि मैं पगली हो गयी हूँ—विशेषत तब, जबकि मेरे पास आने-जाने के लिये काफी रुपये भी नही हैं। किन्तु स्वामी राम ने आश्वासन दिया, 'यदि तुमने सचमुच वेदान्त समझ लिया हैं, तो तुम्हें भयभीत होने का कोई कारण नही है। भारत में भी ईश्वर तुम्हारी वैसी ही रक्षा करेगा, जैसी अमेरिका में करता है।' और ऐसा ही ईश्वर ने किया भी। हमारे जीवन के उस दिव्य सर्वबुद्धिसम्पन्न वेदान्त सिद्धान्त ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता मेरे सम्मुख स्पष्ट सिद्ध कर दी। मेरे प्यारे हिन्दू भाई और बहिनों—मेरी ही सन्तानों ने बड़े प्रेम और आग्रह से मेरा स्वागत किया। पाँच महीने भी न बीतने पाये कि मैंने अपने परम कृपालु राम के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा पूर्ण कर दी। मैं बिलकुल अकेली उनके देश के लिये चल पड़ी और उस स्थिति में जब कि उस दूरस्थ देश में मेरा परिचित एक भी व्यक्ति नही था। किन्तु मेरे हृदय में विश्वास था। मैं राम के सिखाये हुये उस अनन्त प्रभु की सर्व-सामर्थ्य-सम्पन्न भुजा पर अवलम्बित थी।"

स्वामी राम की एक अन्य शिष्या श्रीमती पोलिन ह्विटमैन थी। उनके सम्बन्ध में पहले बताया जा चुका है। स्वामी जी ने श्रीमती ह्विटमैन का 'कमलानन्द' नाम दिया था। श्रीमती ह्विटमैन का एक पत्र इस प्रकार है—

"शब्दो में वह सामर्थ्य नही, जो हृदय के भावो का यथार्थ रूप में अभिव्यक्त कर सके। भाषा के ठंडे और दुर्बल शब्दो द्वारा उन भावो को प्रकट करना सचमुच बड़ा कठिन है। राम की भाषा ऐसी थी, जैसे नन्हें से पवित्र-हृदय शिशु की होती है। वे पक्षियो की, फूलो की, बहते हुये झरनो की एव वायु में हिलती हुई वृक्ष शाखाओ की भाषा में बातें करते थे। सूर्य, चन्द्र और तारागण भी उनकी बोली समझते थे। दुनिया के बाह्याडम्बर के नीचे और दुनियादारो के हृदय के भीतर प्रवाहित होने वाली उनकी निजी भाषा थी।

समुद्र और सागरो के नीचे, द्वीप और महाद्वीपों के नीचे, खेतो और जड़ी-बूटियो के भीतर, वृक्षो और लताओ के अन्तरग में उनके जीवन ने प्रवेश किया था। प्रकृति के अन्तरतम भाग में प्रविष्ट होकर वे प्रकृति की आत्मा बन गये थे। मनुष्य के छोटे-छोटे विचारों के नीचे—बहुत नीचे उनकी वाणी मुखर हो उठती थी। कितने थोड़े ऐसे कान हैं, जिन्हें उस दिव्य सगीत का सुनने का सौभाग्य होता है। उन्होंने उसे सुना था, और उसे अपने जीवन में उतारा था। वे उसी में श्वास लेते और उसी की शिक्षा देते थे। उनकी सम्पूर्ण आत्मा दिव्य सगीत से सराबोर हो गयी थी। वे आनन्द रस से भरे हुये देवदूत थे।

ऐ उन्मुक्त आत्मन्, ऐ आत्मन्, तूने अपने शरीर के सम्बन्ध को पूरा कर

लिया। श्रो आकाश में विचरण करने वाली, अनिर्वचनीय आनन्द का उपयोग करने वाली लोक-लोकान्तरो में विहार करने वाली आत्मा, तुझे लाखो प्रणाम! तू स्वतन्त्र और बन्धनमुक्त है।

× × ×

वे इतने कोमल, प्रकृतिस्थ, शिशुसदृश शुद्ध और श्रेष्ठ, सच्चे और लगन वाले—बिलकुल सीधे-सादे थे कि जो भी सच्चा जिज्ञासु उनके सम्पर्क और सान्निध्य में आया, वह अनुपम लाभ उठाये बिना न रहा, न रहा। प्रत्येक व्याख्यान, प्रत्येक सत्सग के पश्चात लोग उनसे प्रश्न करते थे और वे सदैव बडी स्पष्टता और सक्षेप में, बडी मधुरता और बडे स्नेह से उनका उत्तर देते थे। वे आनन्द और शान्ति के भाण्डार थे। जब लिखने पढने और बातचीत से खाली होते, तो निरन्तर 'श्रोम श्राम' गाया करते थे। प्रत्येक मनुष्य में प्रत्येक प्राणी में वे ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व का दर्शन करते और 'महाभाग भगवन्' के नाम से सबको सम्बोधित भी करते।

× × ×

राम ऐसे थे मानो अजस्र बुलबुले छोडने वाला आनन्द निर्झर। वे शरीरत ईश्वर में निवास करते थे, बल्कि साक्षात ईश्वर थे। एक बार उन्होने मुझे लिखा था—'वे जिन्हें मनबहलाव की इच्छा हो, हीरो से—आकाश में छिटके हुये जाज्वल्यमान तारो से अपना मनोरजन कर सकते है, मुसकराते हुये जगलों एवं नाचती हुयी सरिताओ से यथेष्ट आनन्द ले सकते हैं? शीतल, मद समीर, उष्ण सूर्य प्रभा और शुभ्र चन्द्रिका के अजस्र आनन्द प्रवाह में निमज्जित हो सकते हैं —प्रकृति ने ये समस्त आकर्षण बिना किसी भेदभाव के सभी मनुष्यो को मुफ्त प्रदान किये हैं। वे जो ऐसा सोचते है कि विशेष विशेष वस्तुओं की प्राप्ति से ही उन्हें आनन्द मिल सकता है उनके आनन्द का दिन उनसे सदैव दूर ही दूर भागता रहता है। अगिया-बैताल की भाँति—अग्नि सदैव उनके आगे आगे भागती जाती है। जिसे लोग दुनिया की धन-सम्पत्ति कहते हैं, उसमें आनन्द कहाँ? इसके विपरीत यह हमारी आँखों में एक ऐसी पट्टी बाँध देती है, जिससे हम प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य और आकाश मण्डल के अतुलनीय गौरव को देखने से वचित रह जाते है।

राम एक पहाडी के किनारे खेमे में रहते थे और 'रैंच हाउस में भोजन करते थे। यह स्थान मनोरम दृश्यों से परिपूर्ण था। दोनों ओर सदाबहार पेड़ और उनके नीचे उलझी हुयी घनी झाडियों से ढके हुये पर्वत और नीचे घाटी में ज़ोर-शोर से बहती हुयी सैक्रामेण्टो नदी। ऐसे पावन स्थान में राम ने अनेक ग्रन्थों

का अध्ययन किया। सैकडों आह्लाददायिनी कवितायें रची और घण्टो समाधि लगायी। वे नदी के बीच एक विशाल शिला पर बैठते थे। जहा निरन्तर कई दिनो तक और कभी-कभी कई सप्ताहो तक तेज वायु चलती थी—और केवल भोजन करने के समय जब घर आते थे, तब उनकी बातें सुनते ही बनती थी। 'शास्ता स्प्रिंग' से बहुत से दशक राम के पास आया करते थे और राम बडे प्रेम से उनके साथ सम्भाषण करते थे। उनके गभीर विचार सभी लोगो के हृदय पर गहरी छाप डालते थे, जो अमिट रहती थी। और जो केवल कौतूहलवश ही उनसे मिलने आते थे, उनका कौतूहल भी पूणत शान्त हो जाता था। एक शब्द में ही स्वामी राम लोगों के हृदय में उस परम सत्य का बीज बो रहे थे, वह चाहे उनके अनजाने में ही क्या न हो, किन्तु उसका अकुरित और पल्लवित होकर दीर्घाकार सुदृढ वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो जाना सुनिश्चित है। आशा तो यह है कि ये ही शाखायें एक दूसरे से जुडती हुयी एक दिन सारे ससार में व्याप्त होकर मनुष्य मात्र को सच्चे भाई-चारे और प्रेम के गठबधन में जकड देंगी। सत्य का बीज उगे बिना नही रह सकता।

वे लम्बे पर्यटक थे। इस प्रकार 'शास्ता स्प्रिंग' में रहते हुये वे सीधा सादा, स्वतत्र, आनन्दपूण और कर्मठ जीवन व्यतीत करते थे। हँसी की फुहार बरबस अनायास ही उनके हृदय से निकल पडती थी। इतनी उन्मुक्त हँसी हँसते कि नदी में रहते हुये भी, घर पर साफ सुनायी पडती थी। मुक्त एकदम उन्मुक्त, राम थे बच्चे जैसे सच्चे और सरल सन्त। वे निरन्तर कई दिनो तक ब्रह्मभाव में निमग्न रहते थे। भारत के प्रति उनकी भक्ति अत्यन्त प्रगाढ थी और वे अपने दीन-दुखी भाइयो को ऊँचा उठाने के प्रबल इच्छुक थे। ऐसे आत्म-त्याग और आत्म बलिदान का उदाहरण मिलना दुर्लभ है।

× × ×

जब मैं वहाँ से चली आयी, तब मुझे उनका पत्र मिला। यह मुझे बाद में मालूम हुआ कि यह उनकी कठिन बीमारी के समय लिखा गया था। 'एकाग्रता और शुद्ध ब्रह्म की भावना की मात्रा इस समय अनुपम चरमसीमा पर है। ब्रह्मानुभूति ने अपनी लपेट में मुझे पूणत लपेट लिया है। शरीर में तो नित्य परिवर्तन होते ही रहते है, अविरल सकल्प विकल्प करना उसका स्वभाव है। इन शैतान अगिया-बैताल परिवतनो के साथ मेरा तादात्म्य कदापि नही हो सकता। रुग्णावस्था में एकाग्रता और आन्तरिक शान्ति चरमसीमा पर पहुँच जाती है। वह स्त्री, वह पुरुष सचमुच कजूस, मक्खीचूस है, जो कृपणतावश इन अल्पकालीन

अतिथियो—शारीरिक और मानसिक व्याधियो का समुचित आतिथ्य करने म सकोच करता है।'

वे निरन्तर समझाया करते थे कि हमें उस सर्वोपरि अनन्त शक्ति का अनुभव करना चाहिये, जो सूय में और नक्षत्रों में—सर्वत्र व्यक्त हो रही है। वही एक है, सर्वत्र सर्वथा एक है। मैं भी वही हूँ, तुम भी वही हो। इस वास्तविक आत्मा को पकड लो, अपने जन्मजात वैभव को ग्रहण करो, अपने निरन्तन जीवन का विचार करो, अपने इस सच्चे सौन्दर्य पर ध्यान जमाओ—ऐसा ध्यान जमाओ कि इस छोटे से शरीर के क्षुद्र विचारो का कतई विस्मरण हो जाय। ऐसा अनुभव हो कि इन झूठी, दिखावटी वातों (छायाओ) से हमारा कोई सरोकार न रहे। न कोई मृत्यु है, न कोई बीमारी और न कोई दु ख। पूण आनन्द, पूण शिव, पूण शान्ति—सच्चिदानन्द ! इस शरीर, इस क्षुद्र आत्मा से ऊपर उठकर पूणत ब्रह्म भाव में सावधान रहो। यही तत्त्व वे हर एक स्त्री-पुरुष को सिखाया करते थे।

× × × ×

जब मैं सोचती हूँ कि मुझे राम जैसी पवित्रात्मा से मिलने, उनसे वार्तालाप करने और उनकी आज्ञा के अनुसार चलने का सुअवसर मिला तब मुझे सुखद आश्चय-सा प्रतीत होता है। वे उपा देवी के बालक थे और सूर्योदय से लकर सूर्यास्त तक सगीत का प्रवाह बहाते थे। किस समय क्या बजा ह, इसकी उन्हें कोई परवाह न थी। इसी प्रकार लोगों के भावो और चिन्ताओं की ओर भी उनका कोई ध्यान न था। उनके व्यापक और प्रबल विचार मानो सूय के ही साथ चलते थे और दिन उनके लिये शाश्वत प्रात काल बना रहता था। "लाखों-करोडों मनुष्यो का शारीरिक परिश्रम का—यथेष्ट एवं पूण ज्ञान रहता है किन्तु लाखो करोडो में से एकाध ऐसा भाग्यवान् जन्म लेता है जो कवित्वमय स्वर्गीय जीवन के लिये जाग्रत रहता है।"—ऐसा थोरो ने लिखा है। राम ऐसी ही अत्यन्त दुष्प्राप्य आत्माओं में मे थे, जो विशेष अवसर पर इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होती हैं।

कहते हैं कि सूय उसका प्रतिबिम्ब मात्र है।
कहते हैं कि मनुष्य उसकी प्रतिमा में बना है।
कहते हैं कि वह तारों में टिमटिमाता है।
कहते हैं कि वह सुगन्धित पुष्पों में मुसकराता है।
कहते हैं कि वह कोयलों में गाता है।
कहते कि विश्वव्यापिनी वायु में वह श्वास लेता है।
कहते है कि वह शरत्कालीन रात्रियों में होता है।

कहते हैं कि वह कलकल करने वाले चश्मों में दौड़ता है।
कहते हैं कि वह इन्द्रधनुष की चापों में गाता है।
प्रकाश की बाढ़ में, लोग कहते हैं, वह आगे आगे चलता है
यही राम गाते थे और है भी यही ठीक।"

निम्नलिखित पत्र स्वामी राम के देहावसान के पश्चात् श्रीमती व्हिटमैन को प्राप्त हुये। इन पत्रो से स्वामी जी की कार्यकुशलता, उदार चित्तवृत्ति, मधुर स्वभाव, परिस्थिति के अनुकूल बनाने की क्षमता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, प्रकृति प्रेम, आध्यात्मिकता आदि गुणो पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। प्रत्येक पत्र लेखक ने अपने ढंग से स्वामी राम को समझने का प्रयास किया है। अत इन पत्रो का महत्त्व अत्यधिक है। अमेरिकन शिष्ट पुरुषो की दृष्टि में राम का व्यक्तित्व किस प्रकार का था, इसकी सुन्दर झाकी देखने को मिल जाती है।

एनी एफ० हेस्टिंग्स अपने पत्र में राम के प्रति अपने भाव इस प्रकार अभिव्यक्त करते है—

८१४ फेडलिटी बिल्डिंग,
बुफैलो, एन० वाई०
जनवरी १८, १९०७

प्रिय मिसेज़ व्हिटमैन,

राम सोसाइटी, जिसके नाम आपने २४ दिसम्बर को पत्र भेजा था, अब नही है। किन्तु सोसाइटी के अपदस्थ मत्री की हैसियत से मुझे वह पत्र मिला है। स्वामी जी के निर्वाण के समाचार से, सचमुच मुझे परम आश्चर्य हुआ, किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि उनकी दृष्टि से यह कोई अभाग्य अथवा दुर्भाग्य की बात नही हुयी। इस पृथ्वी पर छोटे से जीवन में ही उन्होने प्रचुरतम अनुभव की फसल पैदा कर ली थी और कदाचित् उनके जीवन का उद्देश्य भली भाति पूर्ण हो गया था। वे परम शान्ति के भागी हों!

स्वामी जी ने सन् १९०४ के वसन्त और प्रारम्भिक ग्रीष्मकाल के दो-तीन सप्ताह यहाँ व्यतीत किये थे। उन्होने यहाँ भारतीय जीवन के कृष्ण और शुक्ल दोनो पक्षो पर बहुत से व्याख्यान दिये और वेदान्त-दर्शन को भी समझाया। भारतीय व्याख्यानो में वे जाति-व्यवस्था की बुराइयों पर विशेष जोर देते थे और उसे समाप्त करने के इच्छुक थे। भारत की ओर से वे यहाँ के लोगो से सहायतार्थ प्रबल अनुरोध करते थे और उसके फलस्वरूप वे यहाँ भी एक ऐसी सोसाइटी (सभा) स्थापित करने में समर्थ हुये। आप जानती भी होगी कि स्वामी राम को यहाँ

के नगर-नगर में इस प्रकार की सोसाइटियो की सस्थापना की प्रवल इच्छा थी। (भारतीय छात्रो को वुला कर इस देश में शिक्षित करना)। इस दिशा में वे वडो लगन के सुयोग्य वक्ता सिद्ध हुये। जिन लोगो ने उनका यह प्रतिपादन सुना, वे अवश्यमेव उत्साह से भर जाते थे। पर वुफैलो शहर अनेक वातो में एक प्रकार से पुराणपथी (प्राचीनतावादी) शहर है। जिन लोगो ने यहा 'राम सोसाइटी' का सगठन किया था, वे अधिकाशत साधारण स्थिति के कामकाजी मनुष्य थे। उन्हें शीघ्र ही इस वात का पता चल गया कि ऐसे सगठन का जीवित रखना और उसे आगे वढाना उत्तरदायित्वपूण और श्रमसाध्य काय है और वह उनकी शक्ति के वाहर है। अत यहाँ जो भी धन एकत्र हुआ था, वह पाटलैण्ड (ओरगन) की सोसाइटी के पास भेज दिया गया, जो अधिक क्रियाशील और आशावान् प्रतीत होती थी। वुफैलो सोसाइटी, राम के प्रस्थान के अनन्तर कुछ ही दिनों वाद भग कर दी गयी थी।

यह तो शायद आपको ज्ञात ही है कि स्वामी जी ने सयुक्त राज्य के अनेक स्थानों में व्याख्यान दिये थे। वुफैलो जाने के पहले वे कहा-कहा हो आये थे—यह मुझे ठीक ठीक नही मालूम, किन्तु यहाँ से वे लिलीडेल (इस राज्य का एक वहुत ही आध्यात्मिक केन्द्र) गये थे। वहा से फिर शिकैगो, वोस्टन, ग्रोनेकर, मेन और न्यूयार्क शहर (जहा ग्रीष्म ऋतु में अनेक मत पथ और सम्प्रदाय के प्रतिनिधि व्याख्यान देते है) गये थे। सवसे अन्त में हमें दक्षिण के फ्लोरिडा, से खबर मिली थी, जहा वे यात्रा और कार्याधिक्य की थकावट को दूर करने के निमित्त विश्रान्ति ले रहे थे।

स्वामी जी ने यहा के लोगो का असाधारण रूप से ध्यान आकर्षित किया था। केवल इस कारण नही कि वे विद्वान् और अध्यात्म ज्ञानी थे, वरन इसलिय भी कि वे कायकुशल, मधुर स्वभाव के और उदारचित्त थे। इस देश में उनकी लोकप्रियता का कारण यह था कि वे सीधे सादे, प्रजातान्त्रिक पद्धति के प्रेमी और झट से अपने आपका परिस्थिति के अनुकूल बनाने में अत्यन्त सक्षम थे। यद्यपि व एक ऐसे देश से आये थे, जहा जाति-पाँति का भेद पराकाष्ठा पर है और वे स्वय अति उच्च कोटि के ब्राह्मण थे। वे यहा एक ओर घटो ठीक भारतीय पद्धति से ध्यान करते थे और वडे प्रेम से दार्शनिक चर्चा किया करते थे, तो दूसरी ओर दर्शको के साथ दिल खोलकर हँसने के लिये भी तैयार रहते थे और अवसर आ पडने पर गेंद-वल्ला आदि भी खेलने में न चूकते थे।

वे वडे पारखी थे और अमेरिका की भावनाओं और सस्थाओं का वारीकी से अध्ययन करते थे। उन्हें इस देश की वहुत-सी त्रुटियों का भी पता चला था,

किन्तु उनका विश्वास था कि अभी भारत को 'पश्चिम के इस यौवन सम्पन्न दानव' से बहुत कुछ सीखना है। साथ ही वे यह भी कहते थे कि अमेरिका को भी नम्रतापूर्वक भारत के सन्देश को सुनना चाहिये, क्योंकि वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है। वे इस देश के स्त्री स्वातन्त्र्य से अत्यधिक प्रभावित हुये थे। विशेषकर इस बात से उनकी यह स्वतन्त्रता उन्हें पथभ्रष्ट नहीं करती। व प्राय बड़े प्रशसात्मक रीति से इसका उल्लेख भी करते थे।

मैं सोचता हूँ कि आपके पास कुछ ऐसे अन्य लोगों के पते होंगे जिनके यहाँ अमेरिका प्रवास में स्वामी जी ठहरे थे। बहुत सम्भव है कि वे आपको उनके कार्यों और उनके सुन्दर परिणामों के विषय में मुझसे कहीं अधिक बता सकेंगे। यह तो आप अवश्य जानती होंगी कि मिस्टर विलियम एच० गलवानी पोर्टलैण्ड (ओरगन) ओरगन सोसाइटी के मन्त्री हैं (या थे) यदि आपने अभी तक उनसे पत्रव्यवहार न किया हो, तो उन्हें पत्र लिखिये। आपको उनसे [illegible] स्वामी जी के कार्यों का यथेष्ट परिचय मिल सकता है। यहाँ हम लोगों का [illegible] कि स्वामी जी ने कभी ठीक ढंग से अनुभव नहीं किया कि वे [illegible] के कन्धों पर अपने कार्य का भार थोप रहे हैं, जो स्वयं [illegible] पद कार्यभार से इतने अधिक दबे हुये हैं। और ऐसा [illegible] है, क्योंकि उनका जाति उनके देश और हममें [illegible] है।

—[illegible]"

फ्लारेंस के० का पत्र इस प्रकार है—

"[illegible],
[illegible] २१, १९०३

प्रिय मिसेज ह्विटमैन,

२

२

साक्षात ईश्वर प्रतीत होते थे। इसीलिये जो भी उनके सम्पर्क में आया, उसके ज्ञान और अनुभव में वृद्धि हुये बिना न रही। वे यहाँ सुदूर पूर्व से आये थे—मझोला कद और गेहुआ वर्ण। किन्तु पश्चिम के महान् से महान व्यक्ति से उनका स्थान महत्त्वपूर्ण था। जहाँ से भी वे निकल पडते, फूल फूट पडते। उन बीजों को चारो दिशाओं में बिखेरने भर की देर है कि सारा ससार सुन्दरतम उद्यान बन जायेगा। उनके उस पुष्प का नाम 'प्रेम' है।

उन्होंने हमें ईसा के प्रेम की, कृष्णा के प्रेम की कथा सुनायी। पहले भी सुनी थी, पर उनके समझाने से वह हमारी समझ में आयी। उन्होंने हम में अपने हृदय कमल को विकसित करने की लालसा जाग्रत कर दी, उसकी पखडियों को सूर्य की धूप दिखाने और सुरभि फैलाने की अभिलाषा पैदा कर दी। हमने सोचा—जगत में आये हैं, तो उसे कुछ अच्छा बना जायें।

यदि हम तूफान में फँस जायें, तो हमें प्रसन्न ही होना चाहिये। मेह के झझावात के पश्चात, तो सुगध में मिठास आती है। यदि हम भी वैसा ही रहना सीख लें, तो हमारा जीवन व्यर्थ नही हुआ।

'बुलबुला फूटकर सागर रूप बन जाता है।' किसी ने मुझसे कहा कि स्वामी राम का शरीर फूट गया। वे अखिल विश्वरूप बन गये। वे सब में समा गये और यदि हम अपने ही में उन्हें ढूढेंगे, तो उन्हें अवश्य पायेंगे। घोर हिम वर्षा में वे हैं, उसके छोटे-छोटे कणो में है। किन्तु यह वर्षा ऐसे धीरे होती है कि हमें उसकी ओर कान लगाना पडता है। नही तो हमें उस आगमन की खबर ही नही होती।

> 'उसने सब कुछ त्यागा, तब और मिला उसको।
> सागर के तट पर, चचल लहरों में बिखरा,
> वह मिला उसे घासों की चचल नोकों पर,
> वह मिला उसे तीव्रगामी झझा की झोंकों पर—
> जो उसकी मृदु भौहों को छू चल देती थी।
> उसने जो पूछे प्रश्न, वही उत्तर बन बन
> उसके जग से लौटे हैं उसकी प्रतिध्वनि में।'

उन्होंने हमें उस शक्ति का पता दिया, जो पेडो को उगाती है, नदियों को बहाती है और यह भी बताया कि यही शक्ति हमारे बालों को उगाती है और हमारी शक्ति का सचालन करती है। सारे जीवन में केवल एक ही शक्ति काम करती है और वह शक्ति है सर्वदा अनन्त।

सूर्य हमसे कहने नही आता कि मै चमक रहा हूँ, किन्तु उसकी सुखद उष्ण किरणो से हमें स्वय उसका पता चल जाता है। जब हम प्रेम की किरणें बाहर भेजते हैं, तब हमारे मिलने वाले उसका अनुभव किये बिना नही रह सकते। उसी प्रकार हमें स्वामी राम की स्मृति से सहायता मिलती है और उसकी सुगन्ध की अनुभूति होती है।

—फ्लोरेंस के०।"

अब डबल्यू० एम० एच० गलवानी का पत्र उद्धृत किया जा रहा है—

"होनोलुलु टी २ एच०
१०-१-१९०७

प्रिय श्रीमती जी,

आपका गत मास के २६ तारीख का कृपापत्र प्राप्त हुआ। स्वामी राम ने यहाँ क्या काम किया, इसका पूरा-पूरा वर्णन करने में मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होती, किन्तु समयाभाव एव अन्य परिस्थितियो के कारण यह मेरे लिये असम्भव है। स्वामी राम सन् १९०३ के नवम्बर दिसम्बर में यहाँ ठहरे थे। अपने इस निवास-काल में वे उन सभी लोगो के प्यारे बन गये थे, जो उनके सम्पर्क में आये। इनमें हमारी जाति के कुछ उच्च पदस्थ पुरुष और महिलायें भी थी। यह तो कहने की आवश्यकता नही कि उनके आकस्मिक देहावसान से हम सब को बडा आघात पहुँचा है। किन्तु हम यह भली भाँति समझने लगे हैं कि इस ससार में सभी वस्तुयें एक अटल एव अपरिवर्तनीय नियम से बँधी हुयी है। ऐसी वस्तुयें जिन्हें हम अकस्मात् घटना के नाम से पुकारते ह, वे केवल शब्दों शब्दो में रहती हैं, विशेषकर उस स्थिति में जब कि उन घटनाओ के कारण हमारी बुद्धि से एकदम छिपे रहते है।

जिस कार्य का स्वामी राम ने प्रारम्भ किया था, उसे सम्पन्न करने में हमारी सासाइटी दत्तचित्त है। इसके विवरण के लिए इस पत्र के साथ ही सोसाइटी के प्रस्तावो की एक प्रतिलिपि भी आपके पास भेजी जा रही है। मैं आपके पास कुछ समाचारपत्रो की कतरनें भी भेज रहा हूँ, जो उपयोगी सिद्ध हो सकती है। सोसाइटी के विवरणों के कुछ उद्धरण भी इस सम्बन्ध में आपको रुचिकर प्रतीत होगे। जब राम यहाँ थे, तब उनके सम्बन्ध में समाचारपत्रो में, बहुत से सवाद निकला करते थे। किन्तु अब बात इतनी पुरानी हो गयी हैं, कि उनकी प्रतियाँ दुष्प्राप्य हा गयी है। अतएव उनकी कतरनें नही भेजी जा सकी।

इसके सिवा यदि कोई ऐसी बात हो, जिसमें मैं आपकी सहायता कर सकूँ, तो कृपया अवश्य सूचित कीजियेगा।

सम्पूर्ण सद् इच्छाओं और सप्रेम अभिवादनों के साथ।

—डब्ल्यू० एम० एच० गलवानी।"

उपर्युक्त पत्रों में अमेरिका के सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने स्वामी रामतीर्थ के प्रति जो ममत्व एवं श्रद्धा प्रकट की है। उसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। स्वामी राम के सान्निध्य में जो भी व्यक्ति आध्यात्मिक क्षुधा लेकर आया, उसे राम ने वेदान्त के अमृतत्त्व से शान्त किया। वे अपनी बीमारी में भी अमृतत्व का आनन्द लेते थे। दूसरों को भी उन्होंने शिक्षा दी कि यदि किसी भी प्रकार की बीमारी में कोई व्यक्ति फँस जाय, तो उसका स्वागत करना चाहिये और उस स्थिति में अन्तर्मुख होने का प्रयास करना चाहिये। इसके अतिरिक्त सहज प्रसन्नता उनके व्यक्तित्व का प्रमुख आकर्षण थी। इस प्रसन्नता से न मालूम कितने व्यक्ति उनके प्रति आकृष्ट हुये। साथ ही जीवन के प्रत्येक कार्यों में उन्होंने आनन्दमयी वृत्ति का परिचय दिया। आवश्यकता पड़ने पर वे खेल के मैदान में भी उतर पड़ते और अपनी स्वरूपाकार वृत्ति से उस खेल को भी वेदान्त का स्वरूप दे देते थे। संक्षेप में यह कि उनका व्यक्तित्व वह आनन्दपूर्ण स्पर्श-मणि था, जिसके स्पर्श से जीवन का दुखमय लोहा भी कांचन में परिवर्तित हो जाता था।

स्वामी राम के सम्बन्ध में अमेरिका के समाचारपत्रों ने भी उदात्त भाव अभिव्यक्त किये थे। स्मरण रहे वे समाचारपत्र सहस्रों की संख्या में प्रकाशित होते थे। भारत के उस आत्मस्थ ब्रह्मज्ञानी ने भारत की अमूल्य निधि—वेदान्त—का सन्देश अमेरिका के जन-जन तक पहुँचा दिया। वहाँ के लोग उनकी अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति के सम्मुख नतमस्तक हो गये। अब कुछ समाचारपत्रों की सम्मतियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

'दी रोकी माउण्टेन न्यूज', डेनवर कोलो ने, ४ जनवरी, १९०४ के अंक में स्वामी राम के संबंध में अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्त किये थे, "हिन्दू प्रोफेसर, स्वामी राम आजकल डेनवर में आये हुये हैं, कल अपराह्न, उन्होंने 'यूनिटी चर्च' में अपने दर्शनशास्त्र के सिद्धान्तों पर व्याख्यान दिया। प्रोफेसर राम का 'मिशन' है हिन्दुओं की जाति-व्यवस्था को भंग करना। अपने इस उद्देश्य की सफलता में अमेरिका की सहायता चाहते हैं। उनका दर्शन सदाचारमूलक है। उन्होंने अपने धर्म को 'सार्वजनिक पथ' की संज्ञा दी है। वे जहाँ कहीं जाते हैं, मुख्यतः इसी धर्म का प्रचार करते हैं। आज प्रातःकाल प्रोफेसर राम 'मिनीस्टीरियल एलायन्स' में भारत की जाति-व्यवस्था पर एक व्याख्यान देंगे और कल अपराह्न से 'यूनिटी चर्च' में उनके अपने धर्म पर एक व्याख्यानमाला प्रारम्भ होगी।

व्याख्यान दो बजे प्रारम्भ होगा और उसका विषय होगा 'सफलता का रहस्य।' अन्य विषय हैं—'प्रेम द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार,' 'तुम क्या हो?', 'आनन्द का इतिहास और निवास', 'पाप का निदान—कारण और निवारण।' अपने कल के अपराह्न भाषण में स्वामी राम ने कहा था—

इस दर्शन-शास्त्र का एकमात्र उद्देश्य यह है कि हम अपने वर्तमान जीवन के व्यवहार को कैसे सयम में लायें। इसके द्वारा हमें अपनी वर्तमान समस्याओं को सुलझाने में व्यावहारिक रूप से स्पष्ट सहायता मिल सकती है। यद्यपि मैं हिमालय के सघनतम अरण्यों से आया हूँ, यद्यपि चाहे आप समझते हों कि मैं कोई अलौकिक गुप्त रहस्यों को जानने वाला योगी हूँ, चाहे आप इस विषय में निराश हो जायें किन्तु मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मेरे पास 'गोपनीय' नाम की कोई वस्तु नहीं। मैं तो आपको वे बातें बतलाना चाहता हूँ, जिनसे शक्ति का कम से कम दुरुपयोग हो, शरीर और मन को अकारण यन्त्रणायें न भोगनी पड़ें, आप हर प्रकार के तमोगुण और प्रमाद से मुक्त हो जायें, जो ईर्ष्या-द्वेष, मिथ्या अहकार, चिडचिडा-हट आदि से उत्पन्न होता है। आपको मानसिक अजीर्ण न हो, आप बौद्धिक दारिद्र्य और आध्यात्मिक दासत्व से बच सकें आपको सफल कर्मयोग का रहस्य ज्ञात हो जाय और प्रेम के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार कर सकें। एक शब्द में, मेरा सिद्धान्त आपको ज्ञान के आदि स्रोत की ओर ले जायगा और आप सदैव शान्ति और समन्वय का जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

मेरा धम न तो हिन्दू धम है, न मुसलमान, न ईसाई, न कैथोलिक, न प्रोटे-स्टैण्ट। वह किसी धम का विरोधी भी नहीं है। वह सब व्यापक क्षेत्र, जो सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, आकर्षण, विकर्षण, शरीर और मस्तिष्क से ढका हुआ है, वही विशाल क्षेत्र मेरे धम की भूमिका है। क्या कमल भी कभी 'प्रेसबीटेरियन' होते है अथवा किसी ने 'मेथोडिस्ट' प्राकृतिक दृश्य देखे हैं? इसीलिये मैं रग-रूप, जाति-पाति का कोई भेदभाव नहीं मानता और सूर्य की किरणों का, नक्षत्रों की रश्मियों का, वृक्षों की पत्तियों का, घास की कोपलों का, बालू के कणों का, शेरों के हृदय का, हाथियों, मेमनों, चीटियों, पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का—सभी का अपने समधर्मी के रूप में स्वागत करता हूँ। यह प्राकृतिक धर्म है। मैं कोई नाम नहीं रखता, किसी पर कोई बिल्ला नहीं बाधता, और न किसी पर आधिपत्य ही जमाता हूँ। किन्तु सूर्य और प्रकाश की भांति सब की एक समान सेवा करता हूँ। इसलिये मैं उसे 'सार्वभौमिक पथ' कहता हूँ।

इस 'सार्वभौमिक पथ' की केन्द्रीय शिक्षा को मैंने काव्य रूप में इस भाँति अभिव्यक्त किया है—

'ओ प्यारे नन्हें से कमल ! अपनी ओस भरी आँख को—
जरा ऊपर उठाओ तो सही,
यहाँ तो 'अपने सिवा कोई और है नहीं'
फिर तू क्यों न मुझे बता दे सच सच,
तू असल में है कौन ?
कमल ने मीठी आह भर कर उत्तर दिया यह—
एकान्त में ही यदि तुम मुझसे पूछते हो ?
तो दु ख से कहना पडता है मुझे—
तुम कभी न जान सकोगे कि
मैं हूँ कौन !
देखते नहीं, मेरे भाई और बहिन चारों ओर हवा में—
और धरती पर बिखरे पडे हैं सब !
और मैं हूँ वही जो वे हैं !'

उस सर्वोच्च जाति के सदस्य होते हुये भी, जो भारत के राजाओ और महाराजाओ की जाति से अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है, स्वामी राम न अपना सारा जीवन अपनी जाति के उत्थान में अपण कर दिया है। छोटे से और दुबले पतले, काली, उत्सुक और चमकीली आँखों वाले, गेहुँवें वर्ण के, काने सूट के साथ हमेशा एक चमकदार लाल पगडी पहने हुये—बस यही स्वामी राम की रूपरेखा है। भारत देश के यही सज्जन आजकल पोर्टलैण्ड में पधारे हैं। यह भारत का कोई साधारण व्यक्ति नही। वैसे तो अनेक भारतवासी प्राय इस बन्दरगाह पर उतरा करते है, किन्तु ऐसा विद्वान्, ऐसा विशाल-हृदय और उदार, ऐसा निस्पृह और निस्वार्थी शायद ही कभी यहाँ उतरा हो।

दो सप्ताह से अधिक हुये, स्वामी राम शान्तिपूर्वक यहाँ उपदेश दे रहे हैं। वे सभी प्रकार की और विभिन्न आदर्शों वाली श्रोतामण्डली के सामने व्याख्यान देते है। वामेन्स क्लब, विशप स्कोट एकेडेमी, वाई० एम० सी० ए० यूनीटेरियन चर्च, स्प्रीच्युएलिस्ट क्रिश्चियन यूनियन और इसी प्रकार की अन्य सस्थाओं न उन्हें निमत्रण दिया है। उनके सिद्धान्त इतने विशाल ह कि सभी प्रकार के विश्वास उसमें समा जाते हैं। उनके 'दर्शन' की तुलना उस बडे भारी कमल से की जा सकती है जो मनुष्य-जाति के प्रत्येक पथ को स्थान देने के अनन्तर इतना बच जाता है कि सभी विश्वासी और अविश्वासी उसकी गरमी में विश्रान्ति पा सकते है। स्वामी जी ने कभी यह सोचने का कष्ट नही किया कि इस चच अथवा उस सगठन के सिद्धान्त हमारे मन से मिलते हैं या नही। वे तो जिस किसी न

भी प्रार्थना की तुरन्त प्रसन्नतापूर्वक अपनी स्वीकृति दे देते हैं। जब कभी इस प्रकार की आशु स्वीकृति से उनके कार्यक्रम में गडबडी होने लगती है, तो वे बडे धैर्य और मार्जनपूर्ण हृदय से सौभाग्यवश प्राप्त अपने कुछ कार्यकुशल मित्रो की सहायता से सबको निभाने की चेष्टा करते हैं और यदि आवश्यकता पड जाती है तो कभी-कभी लगातार कई दिनो तक प्रात, अपराह्न और साय तीनो समय बोलते रहते हैं। जहाँ कही और जब कभी वे किसी श्रोतामण्डली अथवा कक्षा में बोलते है, तो उनकी इच्छा के अनुसार उसका प्रभाव पडे बिना नही रह सकता। वे मानो मनुष्य को क्षुद्रता से घेरे से निकाल कर बाहर कर देते हैं। मत्री, न्यायाधीश, वकील, जिज्ञासु एव सशयी, सभी को उनका भाषण रुचिकर और सुन्दर प्रतीत होता है।

सक्षेप में, मोटे तौर पर स्वामी राम वहाँ स्थित है, जहाँ दशनशास्त्र और व्यावहारिक विज्ञान एक स्थान पर मिलते हैं। वे सुयोग्य भाषाविद् हैं। वे अनेक अर्वाचीन और प्राचीन भाषाओं में पारगत हैं। उन्होंने प्राचीन गुप्त रहस्यो एव धर्मों का विशद अध्ययन किया हैं। सभी दशो के वर्तमान इतिहास, साहित्य, जनश्रुति एव दर्शनशास्त्रों में उनकी अबाध गति है। इसके पूव पजाब के महान् विश्वविद्यालय के केन्द्र लाहौर में गणित एव धार्मिक दशनशास्त्र के प्रोफेसर थे। उनका धम क्या है? उसे उन्होंने वेदान्त-दर्शन का नाम दिया है, जो हमें दिव्यानुभूति के लिये आन्तरिक चेतना का पता देता है।

अमेरिका में उनका उद्देश्य दुहरा है। मुख्यत वे अपने देश, भारत और भारतवासियों में अमेरिकनो की अभिरुचि उत्पन्न करना चाहते हैं, जिससे हिन्दुओ को यहाँ शिक्षा प्राप्त करने में सुविधा और सहायता प्राप्त हो सके। वे हिन्दुओ को अमेरिकन कालेजो में भरती कराना चाहते है, जहाँ वे केवल लौकिक विद्या ही ग्रहण न करें, प्रत्युत अमेरिकन शौर्य और उनकी स्वतत्रता का स्वच्छ भाव भी आत्मसात करें, ताकि वे पुन अपने देश वापस लौटने पर, अपने स्वदेश वासियो को इन भावों की शिक्षा दे सकें। इस प्रकार उन्हें आशा है कि जाति-पाँति की जो भयानक प्रथा वहाँ प्रचलित है, वह धीरे धीरे अवश्य टूट जायेगी।

उनका दूसरा उद्देश्य है अपने दाशनिक विचारो का प्रचार करना और उस महान् दिव्य सदश को देना, जो मनुष्य और परमात्मा की एकता प्रतिपादित करता है।

यहा अन्य बातो के साथ वे ओरगन एव राष्ट्र की अन्य रियासतो के कालेजो को इस बात के लिये तैयार करना चाहते हैं कि उनमें हिन्दू विद्यार्थियो को नि शुल्क शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था हो जाय।

सन् फ्रासिस्को में वे दो महीने ठहरे थे और उन्होंने वहा इस विषय में कुछ प्रभावशाली गण्यमान्य व्यक्तियो का ध्यान आकृष्ट भी किया था। वहाँ एक

विद्यार्थी के लिये व्यवस्था हो गयी है पोटलेण्ड के पश्चात् वे अन्य बडे नगरो मे जाना चाहते है और उन्हे आशा है कि वहाँ वे और भी बडी सख्या मे लोगो का अभिरुचि इस विषय की ओर आकृष्ट कर सकेंगे।

'पोटलैण्ड जनरल' ने स्वामी रामतीर्थ और उनके आदर्शों के सम्बन्ध मे अपनी सम्मति इस प्रकार अभिव्यक्त की थी—

स्वामी राम, भारत के उच्चतम महात्मा, गत दस दिनों से यहाँ व्याख्यान देकर लोगो को शिक्षा दे रहे ह। उन्होंने अपनी योजना के अनुसार अधिकाश लोगो का ध्यान भी आकृष्ट किया है। वे कहते है कि उनकी योजना के द्वारा ही भारत में यथार्थ और प्रभावशाली ढग से प्रचार कार्य हो सकेगा और वह भी उससे कही स्वल्प व्यय में, जो आजकल ईसाई प्रचारक उस देश में कर रहे ह।

भारतवष में प्रचार कार्य को और अधिक प्रभावशालो बनाने की अपनी योजना को राम अपने एक व्याख्यान 'भारतवष की दशा' में जनता के समक्ष रखेगे। यह व्याख्यान मारक्वान थियेटर में २० दिसम्बर, रविवार को अपराह्न ३ वजे से होगा। व्याख्यान विल्कुल नि शुल्क होगा। किन्तु रविवार को प्रात १० वजे से मारक्वान बॉक्स आफिस में अपने लिये स्थान सुरक्षित कराया जा सकता है।

राम स्वय अपने लिये रुपये-पैसे नही मागते। किन्तु व्याख्यान के पश्चात कुछ चन्दा एकत्र किया जायेगा। इससे उपस्थित सज्जनो को उस निधि में दान देने का सुअवसर मिल सकेगा, जिसे वे उस प्रचारकाय में व्यय कर सकेंगे, जो यहाँ उन्होने उठाया है। वह धन भारत नही भेजा जायेगा, बल्कि अमेरिका में ही व्यय किया जायेगा। राम की योजना यह है कि कुछ नवयुवक हिन्दू विद्यार्थी—विशेषकर भारतीय विश्वविद्यालयो के बी० ए० पास विद्यार्थी—यहाँ बुलाये जायें और उन्हें इस शत पर शिक्षा दी जाय कि अपनी शिक्षा के अनन्तर वे अपना समय और शक्ति अपनी जन्मभूमि भारत में किसी समाज सुधार के आदोलन में लगायेंगे।

स्टैण्डफोड यूनीवर्सिटी के डाक्टर स्टार जोडन, कैलीफोरनिया यूनीवर्सिटी के प्रेसीडेण्ट, बी० आई० ह्वीलर और कैलीफोरनिया के यूनाइटेड स्टेट्स सुप्रीम कोर्ट के जज मैरो, निधि के सरक्षक रहेंगे, जिसके लिये आज चन्दा माँगा जायेगा।

सनफ्रांसिस्को के पत्र ने सनफ्रांसिस्को में स्वामी राम की व्याख्यानमाला के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा था—

जगत की प्राचीन परम्परा को लौटा देना होगा। उत्तर भारत के जगलों से एक महान् आश्चर्यजनक ज्ञानसम्पन्न व्यक्ति आया हुआ है, जो पैगम्बर, दार्शनिक

वैज्ञानिक एव धमप्रचारक सभी कुछ है, जो यहाँ सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में अपने सिद्धान्तो का प्रचार करना चाहता है। वह शक्तिशाली डालर के अन्ध भक्त पुजारियो को निस्वाथ भाव सम्पन्न आध्यात्मिक शक्ति का एक नया सदेश सुनाना चाहता है। वह ब्राह्मणो में श्रेष्ठ ब्राह्मण, सर्वोच्च जाति का गोस्वामिन है और वह अपने देशभाइयो में 'स्वामी राम' के नाम से विख्यात है।

हिमालय का वह उल्लेखनीय महात्मा दुबला-पतला, किन्तु मेधावी नवयुवक है। धम प्रचारक की सन्यास-वृत्ति उसके चेहरे से टपकती है। उच्च वर्ण ब्राह्मणो में से होने के कारण उसका शरीर गौराग है। मस्तक चौडा और ऊँचा, मस्तिष्क अतिशय और अद्भुत रूप से विकसित, नासिका महिलाओ की सी पतली और ठोढी सकल्प-शक्ति की महान् गम्भीरता की परिचायक किन्तु फिर भी हठधर्मिता से एकदम शून्य। उसकी मुसकराहट का वर्णन आसान नही। जैसे ही उसका चौडा दयापूर्ण और अत्यन्त कोमल मुख जब उन्मुक्त होकर चकाचौंध करने वाली स्वच्छ दतपत्ति—पूर्ण निमल दतपक्ति के ऊपर खुलता है, तब मानो आस-पास का सारा वातावरण आलोकित हो उठता है। उस समय जो कोई उसके इस प्रभामण्डल के बीच आ जाता है, वह तुरन्त ही उनके विश्वास का भक्त बन जाता है।

'मेरा जीवन कैसे चलता है ?,' कल वे बता रहे थे, 'यह बहुत सीधी सादी बात है। मैं सघर्ष नही करता। मेरे हृदय में विश्वास है। मेरी आत्मा मनुष्य मात्र के प्रेम सामजस्य से एक हो रही है। यही कारण है कि सभी मनुष्य मुझसे प्रेम करने लगते हैं। जहाँ प्रेम होता है, वहा कोई अभाव, कोई यातना नही रह जाती। मन और विश्वास की यह अवस्था मुझ में ऐसा प्रभाव उत्पन्न करती है कि बिना मागे ही मेरी आवश्यकतायें पूरी हो जाती है। यदि मैं भूखा होता हूँ तो सदा कोई न कोई मुझे खिलाने को मिल जाता है, मुझे रुपये-पैसा अथवा और कोई वस्तु माँगने की आज्ञा नही है। फिर भी सब कुछ मेरे पास है, नही अधिकाश लोगो से तो अत्यधिक है। मैं अधिक्तर एक ऐसे जगत में रहता हूँ, जहाँ बहुत कम व्यक्ति पहुँचते हैं।'

'ओरेगोनियन' पत्र ने स्वामी रामतीथ के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा था—

स्वामी रामतीथ भारत के एक विख्यात प्रवक्ता और विद्वान् धर्माचार्य हैं। वे आगामी रविवार को अपराह्न मारक्वन थियेटर में 'भारतवप को वर्त्तमान दशा' पर व्याख्यान देंगे। वे स्वय अपने विषय में, अपनी योग्यताओ के सम्बन्ध में, भारतवर्ष में अपने गौरवान्वित पद के बारे में बहुत ही कम कहते सुनते हैं।

राम बारम्बार जाति प्रथा की रूढि में फँसे हुये अपने पद दलित देशवासियों की

चर्चा किया करते है। वे कहते हैं कि आज कल योरप और अमेरिका के मिशनरी जिस प्रकार वहाँ प्रचार करते है, उससे कोई लाभ नही होता।

भारतवासियों को वास्तविक सहायता पहुँचाने के कुछ प्रभावोत्पादक उपाय हो सकते हैं और श्रेष्ठ, उदारमना सच्चे अमेरिकनों को ऐसा ही करना चाहिए। किन्तु वे यह नही जानते कि हम अमेरिकन व्यक्तित्व के पुजारी ह, हम उनके विषय में बहुत-सी बाते जानना चाहते हैं। और इस प्रकार की बहुत-सी ज्ञातव्य बातें हमें उनके उस विश्वसनीय मित्रों से मालूम हो सकती हैं, जो यहाँ पोर्टलण्ड के अल्पकालीन निवास में ही उन्होंने अपनी सादगी, सच्चाई और हार्दिक लगन से पैदा कर ली है।

अनेक भाषाओं में पारगत, अपनी जन्मभूमि के प्रसिद्ध वैज्ञानिक, राम कुछ वर्षों तक भारतवर्ष के पजाब विश्वविद्यालय में प्रकृत दर्शन के प्रोफेसर रह हैं। यह काय उन्होंने छोड दिया और अपनी उच्च जाति भी। तदनन्तर संन्यासी बनकर कुछ वर्षों तक धार्मिक और दार्शनिक अध्ययन में निरन्तर अनुसन्धान करते रहे। इस समय वेदान्त साहित्य के ज्ञान एव मनन निदिध्यासन में उनकी जोड का दूसरा कोई विद्वान् नही। दिसम्बर १९०१ में उन्होने मथुरा (भारत) का सर्वधर्म सम्मेलन परिषद् का सभापतित्व किया था। इस गौरवान्वित पद के काय भार को उन्होंने किस सुन्दरता से निभाया था, उसके बारे में लाहौर से प्रकाशित होने 'फ्री थिंकर' ने बडे ऊँचे भाव व्यक्त किये थे।

अमेरिका के विशिष्ट व्यक्तियो एव वहा के समाचारपत्रो ने स्वामी राम के प्रति जो भाव और विचार प्रकट किये थे, पिछले पृष्ठों में उसका विवेचन करने का प्रयास किया गया। अमेरिका निवास में स्वामी राम ने जो पत्र समय-समय पर लिखे थे, वे उनकी आन्तरिक वृत्ति का और भी सही पता देते है। उन पत्रों में आत्म-चरित तो नही के बराबर हैं। किन्तु प्रत्येक पत्र में उनकी आध्यात्मिक वृत्ति अत्यन्त सबल रूप में देखी जा सकती है। उनका प्रत्येक पत्र हमें डके की चोट पर सुनाता है— तुच्छ स्वाथ एव क्षुद्र अह की केचुली उतार फेंको और वेदान्त के धरातल पर निजात्मा, परमात्मा में निवास करो।' स्वय राम का जीवन इस आदर्श का पूण प्रयोगात्मक उदाहरण था। उनके प्रत्येक पत्र में इसी आदश की झलक मिलती है। राम अपने जीवन की शक्ति एक ही दिशा में लगाते थे। उनके जीवन की अध्याय सरिता सदैव ब्रह्मानद-सागर की ही ओर प्रवाहित होती थी। उस सीधी सादी सरिता से न तो कोई गुप्त धारायें थी और न उपधारायें हो। इसलिये उनके प्रत्येक पत्र में आत्मज्ञान का सदेश झकृत होता है और इसी सदेश को सुनाने के लिये वे ससार में आये भी थे।

आध्यात्मिकता के अतिरिक्त उन पत्रो का साहित्यिक रस भी कुछ कम नही है। बात यह है कि स्वामी राम बहुज्ञ थे। उनका अध्ययन अत्यत विशाल था। अनुभूति का पुट पाकर वह और भी आकर्षक हो गया था। यह साहित्यिक आनन्द सहज और अकृत्रिम है, उसमें परिश्रम और कृत्रिमता की गन्ध तक नही है। अत उन पत्रों में से कुछ का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। उनके माध्यम से स्वामी राम से शाश्वत सग किया जा सकता है। एक एक पत्र में कुछ ऐसी अनुभूतिमयी विलक्षण बातें ह कि वे सच्चे जिज्ञासु के जीवन को नया मोड दे सकती हैं।

निम्नलिखित पत्र स्वामी राम ने श्रीमती वेलमैन को लिखे। श्रीमती वेलमैन को स्वामी जी ने 'सूर्यानन्द' नाम दिया था। अत किसी किसी पत्र में वे 'सूर्यानन्द' सबोधित की गयी ह—

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स, केलीफोरनिया
८ अक्टूबर, १९०३

परम स्नेहमयी भगवती,

राम आपके प्रत्येक कार्य को पूणत पसन्द करता है। राम स्वार्थी नही है कि तुम्हारे अभिप्राय को गलत समझने की चेष्टा करे। इस बात की सभावना नही हो सकती कि राम उसे भूल जाय, जो भारत के प्रेम में, सत्य के एव पीडित मानवता के प्रेम में राम रूप हो रही है। 'सूर्यानन्द' सूय का द्योतक है। 'बुराई का प्रतिरोध मत करो' इसका अभिप्राय यह नही कि तुम बिलकुल अवस्तु एकदम निष्क्रिय बन जाओ, कदापि कही, कदापि नही। यह वचन शरीर के कामा से कोई सम्बन्ध नही रखता। यह आदेश मन के लिये, केवल मन के विषय में है। इसके द्वारा हमें मन को शान्त रखने की शिक्षा दी जाती है। मानसिक विरोध, प्रतिरोध और विद्रोह के द्वारा सदैव वैमनस्य, व्यग्रता एव अशान्ति की उत्पत्ति होती है। इसलिये भीतर ही भीतर खीझने और चित्त को अस्थिर करने के बदले, उस दिखावटी बुराई को प्रेम से जीतना चाहिये (प्रेम त्याग और दानशील वृत्ति का दूसरा नाम ह।) इससे बढकर कोई दूसरी शक्ति नही।

'बुराई का प्रतिरोध न करो' और 'बुराई के दाता' की सभी बातो का उत्साह से स्वागत करो। महान् आत्मायें कभी अस्थिर नही होती। शान्ति का कवच धारण कर हम सदैव ठोकर देने वाले पत्थरों को ऊपर चढाने वाली सीढ़ियों में परिवर्तित कर सकते हैं। कभी, कदापि नही कोई ऐसा अवसर मत आने दो कि लाचारी और दैन्य के भाव तुम्हारे चित्त में स्थान पायें।

अभी राम को यह ध्यान आया कि भारत पहुँचते ही तुम्हें सबसे पहले अपने सुभीते के अनुसार पूरन (सरदार पूर्णसिंह) का पता लगाना चाहिये। वह कहीं पंजाब में होगा। वह 'थण्डरिंग डान' का सम्पादक है। उसके लिये तुम्हें किसी परिचय पत्र की आवश्यकता नहीं।

आशा है कि अर्थ मिलते ही तुम राम को तुरंत लिखोगी।

तुम्हारा ही शुद्ध और वीर-हृदय आत्मा

स्वामी राम

(यह पत्र श्रीमती वेलमैन को उस समय लिखा गया था, जब उन्हें अपनी चिर अभिलषित 'भारत यात्रा' के सम्बन्ध में भीषण मानसिक संघर्ष करना पड़ा था। क्योंकि उनके इष्टमित्र इस यात्रा का कड़ा विरोध कर रहे थे।)

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स, केलीफोर्निया

अक्टूबर १०, १६०३

स्नेहमयी जननी,

तुम्हारा स्नेह भरा पत्र, कागज और लिफाफे प्राप्त हुये। (उन्होंने कागज और लिफाफों का एक बक्स भेजा था।) ज्योंही तुम उस प्रेम भरी धरती (भारत माता) पर पैर रखोगी, निस्सन्देह वहां तुम्हारा हार्दिक स्वागत होगा। राम ने पहले से ही भारत को सूचना दे दी है। तुम्हारे पहुँचने के पहले ही, तुम्हारा नाम वहाँ पहुँचा रहेगा। जहां भी तुम यात्रा के बीच रुकोगी, तुम्हारा भी स्वागत होगा। (अब प्रश्न के उत्तर के विषय में)। जब हम भोग विलास, आमोद-प्रमोद और ओछी बातों में फँस जाते हैं, तब प्रकृति के उस अलंघ्य विधान के अनुसार, हमें प्रतिघात रूप दुःख और यातना सहनी पड़ती है, जो हमें नीचे गिराती है। अतः बुद्धिमान कभी अस्थिर चित्त और उदास नहीं होता। वह तो सदैव उस सर्वोच्च परम तत्त्व में निमग्न रहता है।

सांसारिक वस्तुओं की ओर तो वह केवल उदासीन व्यक्ति की भांति ध्यान देता है। उसकी मानसिक दशा ऐसी होती है, जैसी एक निष्काम, उदासीन, आत्मनिष्ठ और उदारमना राजकुमार की हो।

अपने सभी क्रिया-कलापों में इस श्रेष्ठ भाव का अवलम्बन करो। अनिश्चित अनुभवों के समय स्वतंत्र आत्मा सदैव निर्द्वन्द्व, अविचलित और प्रसन्नचित्त रहता है, अपना जन्मजात गौरव उसके चित्त से एक क्षण भी नहीं उतरता। वह निरन्तर स्पष्ट सोचता रहता है कि मैं तो एक, अद्वितीय ब्रह्म हूँ सूर्यों का सूर्य।

तुम भी निरन्तर अपने वास्तविक 'सूय रूप प्रकाश' पर ध्यान केन्द्रित करो। और उसे जीवन के प्रत्येक व्यवहार में उतार लो। इस अभ्यास से तुम अपने जीवन को शीघ्र ही प्रेम, प्रकाश और जीवन को सर्वोपरि अवतार में परिणत कर लोगी। जहाज पर प्रस्थान करने के पूर्व तुम राम को लिखना, जापान और हागकाग पहुँचने पर भी राम को पत्र देना। भारत में तुम्हारी सहायता करने से राम को सदा बडी प्रसन्नता होगी।

तुम्हारी ही श्रेष्ठ प्रेममयी आत्मा—
राम

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स, केलीफोर्निया,
अक्टूबर १६, १६०३

कल्याणमयी सवश्रेष्ठ सूर्यानन्द,

आज मध्याह्न तुम्हारे दोनों पत्र एक साथ राम के हाथ आये। सभी कुछ सुन्दर और सन्तोष-जनक है। अब तुम लम्बी यात्रा पर जा रही हो, तब तुम्हें मानव प्रकृति का बारीकी से अध्ययन करना चाहिये। उससे बडा लाभ होगा। किन्तु यह सदा ध्यान रहे कि हर समय सदा शान्त, स्थिर और आत्मनिष्ठ रहना तुम्हारा सवप्रथम कर्त्तव्य है। बाह्य दृष्टि से जो बातें तुम्हे बाधा और विलम्ब डालने वाली प्रतीत होती है, वे वास्तव में तुम्हारी आन्तरिक शक्ति और पवित्रता को बढाने वाली है। प्रकृति विज्ञान विशारदो ने यह तथ्य भली-भाति सिद्ध कर दिया है कि यदि मार्ग में सघष और विरोध न होते, तो विकास अथवा उन्नति कही नामोनिशान ही न प्रकट हो सकता।

क्या तुम्हें रॉबर्ट ब्रूस और मक्खी की कहानी याद नही? क्या प्रत्येक महान् आविष्कार के पूव हमें सैकडा ही नही, वल्कि सहस्रा असफलत क्रियाओं के बीच से नही गुजरना पडता? प्रात काल ब्राह्ममुहूत्त में इस मत्र (मत्र यहा उद्धत न करने लिये क्षमा) को लगभग आध घण्टे मन ही मन दुहराने से तुम्हें बडा लाभ हो सकता है। इस मत्र का जप करते समय इसकी सच्चाई, इसको वास्तविक अथ निरन्तर अपने हृदय में पैठाते रहो। इस प्रकार निरन्तर आत्म निर्देशन करते रहने से तुम पूण सन्यासिनी बन जाओगी। हाँ, कृपया यह शीघ्र ही लिखना कि तुम्हारी यात्रा के लिये क्या-क्या प्रबन्ध हो चुका है। हार्दिक प्रेम और सच्ची सहानुभूति के साथ।

तुम्हारी आत्मा
राम स्वामी

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स, कैलीफोर्निया,
अक्टूबर २१, १६०२

कल्याणमयी भगवती सूर्यानन्द,

कल का पत्र अभी अभी मिला।

अहा, कैसा हर्षदायक समाचार, भारत के लिये प्रस्थान !! हांगकांग में यदि तुम वासियामल आशोमल जी (घंटाघर) से मिलो, तो वहां के हिंदू व्यापारियों को राम (तीर्थ) स्वामी की इस आनन्दमयी स्थिति का समाचार सुनकर बड़ी प्रसन्नता होगी। उनसे अपने इस उत्तम और उदार प्रयोजन की भी चर्चा करना।

राम ने बहुत से लोगों को पहले पत्र लिख छोड़े हैं। वे तुम्हें स्थानीय विषयों में हर प्रकार की सूचना प्रेम से देते रहेंगे। तुम्हें तो कार्य प्रारम्भ भर कर देना है और बाद में प्रत्येक बात अपने आप बनती जायेगी। केवल एक बात स्मरण रखो। जब तुम किसी भी सम्प्रदाय के व्यक्ति से मिलो, तो कभी नहीं, कदापि नहीं, भूलकर भी नहीं, भिन्न-भिन्न दलों की पारस्परिक आलोचना प्रत्यालोचना पर रंच मात्र ध्यान न देना। स्वप्न में भी उसका स्मरण न करना। हां, जहां कहीं तुम्हें भक्ति, उदारता, प्रेम अथवा आध्यात्मिक ज्ञान की कोई बात मिले, तो उसे तुरन्त ग्रहण कर लेना, पचा लेना, अपना बना लेना। दूसरों के राग-द्वेष से तुम्हें कोई सरोकार नहीं रखना चाहिये। उनकी कमजोरियों और त्रुटियों पर कभी भूलकर भी दृष्टि न डालना।

कलकत्ते में सेठ सीताराम से मिलना न भूलना। कलकत्ते में निवास करते समय तुम 'डान' के विद्वान सम्पादक से भी भेंट कर सकती हो। वे सीधे-सादे, शुद्ध, भक्त और पक्के वेदान्ती हैं। वे एक विद्यालय और छात्रालय का सफल संचालन कर रहे हैं। कलकत्ते में तुम संकीर्तन का आनन्द उठा सकती हो। भक्ति के आवेश में लोग कैसे आत्म विभोर होकर नाचने लगते हैं।

भारतमाता सदैव ठीक उसी भांति तुम्हारा स्वागत करने को तैयार है, जैसे कोई माता वर्षों से बिछुड़े हुये अपने बच्चे के लौटने पर उसे गले लगाती है। सम्प्रति विदा ! राम तुम्हारे साथ हैं।

भारत के पथ पर

लौट रहे हैं हम अब भारत को !
और प्रतीक्षा न हो सकेगी अब
हम भी जलयान पर चढ़ें, ओ आत्मा मेरी—

तेरे हित हम भी पथहीन सिंधु की लहरों पर उतरें
निर्भय अज्ञात तटों हित बढते
महानन्द लहरों पर हों सवार
तिरता जलयान मन्द-मन्द पवन से मिलकर
गाते हम महानन्द के गायन—पलाला के गीत
गाते हम अति प्रसन्न सुखदायी 'ओम' नाम के गायन।
लौट रहे हैं अब भारत को!
सागर यात्रा करते या पर्वत पर चढ़ते,
निशि में आते जाते
दिशाकाल और मृत्यु के विचार शान्त परम
जल प्रवाह जैसे बहते आते
मुझको अज्ञात लोक में कभी बहा देते
जिसकी वायु सांस में मैं भरता!
सिक्त करो मुझको निज से ओ ईश्वर!
चलकर पहुँच सकें,
मैं और मेरी आत्मा तेरी सीमा भीतर!
लौट रहे हैं, हम निज भारत को!
आगे बढती जाओ आत्मा, जब निश्चित तिथि पर पहुँचो।
पार सिंधु कर सारे, अन्तरीप पार अन्त हो जब इस यात्रा का,
ईश्वर हो जब समक्ष प्रकट, करो आत्म समर्पण तुम—
लक्ष्य प्राप्त होने पर झुक जाओ!
भर कर प्रिय-बन्धु भाव से लिये अनन्त प्रेम।
अग्रज भ्राता है वह स्नेहपूर्ण,
उसकी बाहों में जा लघु भ्राता, आंसू में बह जाता।
लौट रहे हैं, हम अब भारत को!
इस महान् यात्रा हित ओ आत्मा!
सचमुच क्या है तेरी पांखों में बल ?
क्या सच तुम निकल पडे हो ऐसी यात्रा पर ?
क्या गुंजित करते तुम संस्कृत-वेदों के स्वर ?
तो फिर तुम निस्संशय उड जाओ।
ओ पहेलियो भीषण प्राचीन—
तुम अपने तट की दो राह बता,

ओ उलझे प्रश्नो ! जलयान यह बढ़े तेरे भीतर से।
लौट रहे हैं अब हम भारत को !
ओ पृथ्वी और गगन के रहस्य,
लौट रहे हैं तेरे पास अरे सागर जल,
यक्ष खाड़ियो, ओ माता गंगे,
ओ जंगल, मैदानो, उन्नत हिमवान् अरे !
अरुण प्रात, बादल, वर्षा हिम ओ,
ओ निशि दिन। पास तुम्हारे हम हैं लौट रहे !
सूर्य, चन्द्र, तारकों बृहस्पति ग्रह,
पास तुम्हारे मैं हूँ लौट रहा !
आ रहा, तुरन्त आ रहा हूँ मैं।
नस नस में उबल रहा उष्ण रक्त
अब तुरत लंगर उठ जाये मेरी आत्मन् !
काटो लम्बी रस्सी, खींचो, झकझोरो इन पालों को !
कब से हम जड़ वृक्षों जैसे हैं यहाँ खड़े,
खेते जाओ, अथाह सिंधु बीच बढ़ते जाओ।
क्योंकि हमें जाना है वहाँ, जहाँ—
कोई नाविक न आज तक पहुँच सका !
खतरे में डालेंगे हम निज को, नौका को, सब कुछ
अरे बहादुर तू आत्मा मेरी !
ओ पिता हमें खेकर पार करो।
ओ साहसपूर्ण महानन्द, पर सुरक्षित तू
ओ पिता ! हमें खेकर पहुँचा दो—
अपने असली घर तक पहुँचा दो !

—राम

ॐ

शिकागो इलीनोइस
फरवरी १५, १९०४

परम कल्याणमयी आत्मन,

तुम्हारे बहुत से पत्र, तार—सब राम को यथा समय मिले। जब केवल एक सत, एक तत्त्व है, तब कौन किसे धन्यवाद दे ? राम आनन्द से भरा हुआ है, राम

स्वय आनन्द रूप है। प्रत्येक क्षण अहर्निश राम परम शान्तिमय रहता है। कार्य राम से स्वय प्रवाहित होते हैं। राम कोई काम नही करता। तुम सुगन्धित गुलाब बन जाओ और मधुर पराग अपने आप तुम्हारे चारो ओर बिखरने लगेगा।

क्या तुम सम्पूर्ण हृदय से अपने को हिन्दू मानती हो, क्या उसकी भूलें, उनके अन्धविश्वास, तुम्ह बिलुल अपने मालूम होते हैं? क्या तुम भाई-बहिना की भाँति उनका विश्वास कर सकती हो? क्या कभी तुम्हारे चित्त से अमेरिकन जन्म की बात अपने आप विस्मृत हो जाती है? क्या तुम कभी अपने आपको एक नवजात परिवर्त्तित हिन्दू के रूप में अनुभव करती हो? राम प्राय अपने आपको एक गम्भीर-वृत्ति-सम्पन्न कट्टर ईसाई के रूप में देखने लगता है। यदि तुम इस स्थिति में पहुँच गयी हो तो सचमुच परम आश्चर्यजनक कार्य तुमसे स्वत नि सृत होने लगेंगे।

तुम हो कौन? तुम्हें गिरे हुए लोगो को उठाने का क्या अधिकार है? क्या स्वय तुम्हारा उद्धार हो चुका है?

क्या तुम्हें वह वचन याद नही कि 'जो कोई अपने जीवन को बचाने की चेष्टा करेगा, वह अवश्य मारा जायगा।'? अच्छा, तो क्या तुम गिरे हुओ में से हो? तब तो उठो मुक्तिदायिनी बनो। यदि कोई पापी है, तो उसके साथ भी एकता की अनुभूति करो और तुम उसकी रक्षिका बनो। इसके सिवा और कोई मार्ग नही, प्रेम के सिवा और कोई गति नही, वही सब पर विजय प्राप्त करा देता है।

ॐ। ॐ॥

तुम्हारा ही आत्मन्
स्वामी राम

ॐ

मिनीपोलिस एम० एन०, यू० एस० ए०
अप्रैल ३, १९०४

कल्याणमयी आत्मन्,

तुम कहाँ हो? नववर्ष के स्वागत-पत्र के सिवा, जो मथुरा से लिखा गया था, कोई पत्र फिर कल्याणमयी माता से प्राप्त नही हुआ। शान्ति, शान्ति, शान्ति सदा भीतर से ही मिलती है। स्वर्ग का साम्राज्य केवल हमारे अन्तस्तल में है। पुस्तकों में, मन्दिरो में, पीर-पैगम्बरो और महात्माओं में आनन्द की खोज करना व्यर्थ है। बिल्कुल व्यर्थ है। अब तुम्हें भी इस बात का अनुभव हो गया होगा। यदि यह पाठ

एक बार सीख लिया जाय तो चाहे जिस मूल्य पर भी, यह कभी महँगा नही पड़ता। एकान्त में बैठो और अपनी हार्दिक वेदना को दिव्य आनन्द में बदल डालो। तुम्हें 'थडरिंग डॉन' वेदान्त के मासिक पत्र जैसी पुस्तको से भी स्फूर्तिदायक प्रेरणायें मिल सकती है। ॐ पर ध्यान जमाओ और मनुष्य मात्र को शान्ति बाँटने की तयारी करो। कभी किसी बात की आकांक्षिणी, भिखारिणी मत बनो। प्रिय आत्मन, क्या तुम्हें वह अन्तिम उपदेश याद है जो राम ने तुम्हें शास्ता स्प्रिंग्स की समीपवर्ती पहाडी पर दिया था? उसमें चाहने अथवा मागने का लेश भी नही था। वह तो प्रकाश और प्रेम के शाश्वत दाता का दृष्टिकोण था। ज्योंही हम किसी की चाह में, किसी की खोज में फँस जाते है, त्योंही हमारा हृदय फटने लगता है। हाँ, भारत की इस समय कैसी दारुण अवस्था है, इसका तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ होगा। राम ने अपनी 'अमेरिकनों से अपील' में जो चित्र खीचा है, ठीक वैसा ही तुमने पाया न? यदि चाहो, तो एक बार उसे पुन पढ जाओ। कृपया अपने प्रेम के परिश्रम से किसी तात्कालिक प्रकट परिणाम की आशा मत करो। ईसा की आत्मा ने कहा है, 'केवल सेवा के ही अधिकार से सन्तुष्ट रहो।' सेवा के अधिकार से बढकर हमें किसी उपहार, पुरस्कार और वरदान की आशा न करनी चाहिये। यदि तुम अभी तक 'एडवोकेट' (सामयिक पत्र) के सम्पादक बाबू गगाप्रसाद वर्मा से नही मिली, तो लखनऊ में उनसे अवश्य मिलो। हा, यह बताओ कि तुम्हारे हृदय को दीन-हीन भारतवासियों के दु ख में हिस्सा बटाने में अधिक आनन्द मिलता है अथवा अमेरिका के आमोद प्रमोदों के उपभोग करने में?

× × ×

राम एक मास ओरेगन और पोर्टलैण्ड में रहा, एक मास डेनेवर में, दो सप्ताह शिकागो में और एक पक्ष मिनीपोलिस में। इन सभी स्थानों में वेदान्त सभाओं का सगठन किया गया। विभिन्न विश्वविद्यालयों में कुछ धनहीन भारतीय विद्यार्थियों के नि शुल्क अध्ययन का भी प्रबन्ध किया गया। यहाँ से राम ब्रुकलेन एन० वाई० जाता है। वहाँ से बोस्टन, न्यूयार्क, फिलैडेलफिया, वाशिंगटन डी० सी० जायेगा। जून २६, ३० को राम सेण्ट लुई में विश्वविद्यालय एकता-परिषद् के अधिवेशनों में भाग लेगा। जुलाई में राम लेक जेनेवा में पहुँच जायगा। इसके पश्चात् राम लदन, इगलैण्ड में उतरेगा। ऐ प्यारी माता, तुम अपना साहस मत छोडना। प्रत्येक वस्तु के केवल उज्ज्वल पहलू पर ही अपनी दृष्टि रखो। एक कोई गुलाब नहीं जिसमें काँटा न हो। विशुद्ध भलाई कही इस ससार में मिल है नही सकती। पूर्ण कल्याण रूप केवल परमात्मा है। यदि भारत वेदान्त का अच्छा प्रयोग करता होता, तो फिर उसकी ओर से अमेरिका को अपील करने की क्या

आवश्यकता रह जाती ? जब तुम्हारा हृदय उस सर्वव्यापक सौन्दय से पूर्णत तालमेल गाँठ ले, तो तुम्हें सवत्र प्रत्येक वस्तु देदीप्यमान दिखलायी पड़ेगी। शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

केन्द्रीय आनन्द ! अन्तरग आनन्द !!

सवत्र और सदैव तुम्हारी आत्मा

स्वामी राम

ॐ

विलियम्स बे अथवा लेक जेनेवा

जुलाई ८, १९०४

परम कल्याणमयी दिव्य आत्मन्,

तुम्हारे पत्र प्राप्त हुये। धन्यवाद। राम तुम्हारी स्थिति को पूणतया समझता है। शान्ति, आह्लाद और साफल्य सदैव तुम्हारे साथ रहेंगे। शुद्ध आत्मा को, जिसने सम्पत्ति का भाव और इच्छा की लालसा हृदय से सवथा दूर कर दी है, ऐसी शुद्ध आत्मा को भय, सकट अथवा कठिनाई की आशका कैसे हो सकती है ? राम पैर फैला कर ब्रह्माण्ड में विश्राम करता है—स्वतत्र, पूर्ण स्वतत्र ! हमारे वक्षस्थल में क्षुद्र 'अह' का घुन लगा है। उसे त्याग दो, फेंक दो और समस्त ससार तुम्हारे सम्मुख नतमस्तक होगा। मिनीपोलिस से लौटने पर टाइप किया हुआ एक लम्बा पत्र 'प्रैक्टिकल विज़डम' में प्रकाशित करने के लिये तुम्हारे नाम भेजा गया था। विषय भी उसका था—व्यावहारिक ज्ञान। विश्व एकता परिषद् का प्रथम अधिवेशन राम की अध्यक्षता में हुआ था। विश्व परिषद् के व्याख्यानो के अतिरिक्त इधर राम ने सेण्ट लुई में थियोसोफिकल सोसाइटी एव व्यवहारात्मक ईसाई सघ के तत्वावधान में भी अनेक व्याख्यान दिये। कुछ दिनो में राम शिकागो पहुँचेगा और फिर वहाँ से बुफैलो, लिलीडेल, ग्रीनकर मेनी आदि स्थानो पर। सितम्बर तक राम अमेरिका से कूच करेगा।

शान्ति, कल्याण और प्रेम सबको—

तुम्हारा ही निजात्मा

स्वामी राम

ॐ

जैकसोनविली, फ्लोरिडा

अक्टूबर १, १९०४

परम कल्याणमयी देवी,

राम ने तुम्हें कुछ दिनो से कोई पत्र नही लिखा। कारण इस प्रकार है—

(१) राम इधर अत्यधिक कार्य-व्यस्त रहा ।

(२) सामयिक पत्रों के सिवा भारत के लिए कोई व्यक्तिगत पत्र डाला ही नहीं ।

(३) यह सोचकर कि तुम भले लोगों के साथ हो, उसने अपनी ओर से किसी पत्र की आवश्यकता ही नहीं समझी ।

(४) मिनीपोलिस छोड़ने के अनन्तर राम को तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला। शान्ति, कल्याण, प्रेम और आनन्द तुम्हारा सदैव साहचर्य करेंगे।

अपनी ही अन्तरात्मा की भीतरी ध्वनि (आज्ञा) पालन करने से तुम संसार में किसी के प्रति दोषी नहीं हो सकते । हम किसी के ऋणी नहीं हैं । हम परिश्रम करें, क्योंकि परिश्रम से हमें प्रेम है । सदैव स्वस्थ और दाता बनना हमारा लक्ष्य होना चाहिये ।

प्रत्येक पुरुष अथवा प्रत्येक स्त्री स्वतन्त्रतापूर्वक अपना निजी अनुभव करे। हमें तो केवल सेवा करने का अधिकार है । हमें अपने साथियों की सहायता करके आगे बढ़ाना है । किन्तु यह प्रगति वस्तुतः उन्नतिशील होनी चाहिये, न कि दिखावटी और आत्म प्रवचनापूर्ण । जब मैं स्वेच्छा से (अहंभाव से) अपने मित्रों की आध्यात्मिक उन्नति में सहायता करने की चेष्टा करता हूँ, तो मैं भी उनके साथ नीचे गिरता हूँ । चाहे जो करो, चाहे जहाँ रहो राम का आशीर्वाद एवं स्नेह तुम्हारे साथ है । परसों राम न्यूयार्क के लिये प्रस्थान करेगा और कदाचित् ८ अक्टूबर को ही प्रिंसेज इरीन में जिबराल्टर के लिये सवार हो जाय । फिर भी भारत पहुँचने में अभी कुछ समय लग सकता है, क्योंकि मार्ग में कई स्थानों पर रुकने की सम्भावना है ।

लक्ष्य जिसे याद रखना और व्यवहार में लाना है—

यदि मित्र की कोई अनुचित बात ज्ञात हो जाये, तो उसे भूल जाओ ।

यदि उसके सम्बन्ध में कोई अच्छी बात ज्ञात हो, तो उसे वह अवश्य सुना दो । उसका मुखमण्डल तुरन्त दीप्त हो उठेगा और वह सत्पथ ग्रहण करने योग्य बनेगा ।

जैसे सूर्य है, पूर्ण निर्भय, चिरन्तन दाता, प्रत्युपकार की आशा से रहित, सेवक हार्दिक प्रेम से प्रकाश और जीवन देने वाला, वैसे तुम भी प्रभु के प्रताप की प्रभा से खिल उठो । अपना कहो कुछ भी नहीं, अहंकार भी अपना नहीं, सर्वथा स्वार्थ शून्य । बस यही मोक्ष है और यही है जीवन का परम उद्धार !

मैं स्वर्गीय षट्‌रस चखता हूँ,
और पान करता हूँ स्वर्गीय सुरा,

ईश्वर ही मेरे भीतर और ईश्वर ही मेरे बाहर—
ईश्वर सदा—सर्वदा है मेरा अपना

तुम्हारा ही निजात्मा
स्वामी राम

श्रीमती वेलमैन (सूर्यानन्द) के पत्रों के अतिरिक्त स्वामी राम ने कुछ पत्र श्रीमती पौलिन ह्विटमैन (उन्हें स्वामी राम 'कमलानन्द' कहा करते थे), उनकी माता (उन्हें राम 'चम्पा' कह कर सम्बोधित करते थे) एव उनकी बहिन को भी लिखे थे। वे इस प्रकार ह—

ॐ

१५ सितम्बर, १९०३

सबसे प्यारी बच्ची कमला,

तुम शुद्ध, पवित्र और पूण निर्दोप हो। कोई त्रुटि नही, कोई कलक नही, दुनियादारी गायब, न कोई शका और न कोई पाप।

यदि तुम्हारा जी चाहे, तो तुम निम्नलिखित विचारो को अपने काव्य में पिरो सकती हो। ऐसे प्रयास में लगे रहने स तुम्हारा चित्त महान् भाव जगत् में विचरण करने लगेगा।

राम ने आज प्रात काल फारसी में एक कविता रची थी। यह उसी का भावाय है। पोर्टलैण्ड अथवा डेनेवर में रहते हुये भी, तुम उसे कविता में ढाल सकती हो। ऐसा प्रयास करके देखो तो सही।

तुम्हें विचारा को अपने अनुकूल बनाने का पूर्ण अधिकार है ?

(१) ऐ तूफान, उठ और जोर शार से, आधी-पानी ला। ओ आनन्द के महासागर! पृथ्वी और आकाश को ध्वस करके एक बना दे। गहरा से गहरा गोता लगा, जिससे विचार और चिन्तायें छिन्न भिन्न हो जायें, जिससे उनका कही पता ही न चले। भला राम को उनसे क्या काम ?

(२) आओ, हम लोग पियें, खूब पियें, इतना अधिक पियें कि वेसुध हो जायें। आओ, अपने हृदय से द्वतभावना को चुन-चुन कर निकाल दें। अपने ससीम अस्तित्व की दीवालो को जड से ढहा दें, जिससे आनन्द का वह महासागर प्रत्यक्ष लहराने लगे।

(३) आओ, प्रेम की मादकता! जल्दी चढो, प्रेम की मस्ती। तुरन्त हमें अपने में डूबने दा। विलम्ब करने से प्रयोजन ? मेरा मन अब एक पल, एक निमिष के लिये भी इस दुनियादारी में नही फँसना चाहता। ओ, इस मन को तो अपने

में, उस प्यारे प्रभु में डूब जाने दो। शीघ्रता करो, शीघ्रता करो और उसे जलते हुये तन्दूर की अग्नि से बचा लो, बचा लो।

(४) इस 'मैं' और 'मेरे', 'तू' और 'तेरे' के झमेले में आग लगा दो। आशाओं और आशंकाओं को उतार फेंको। टुकडे-टुकडे करके गला दो, द्वैत की भावना जड से उडा दो, हवा में काफूर हो जाय। कहाँ सिर, कहाँ पैर, कही कुछ न पता रहे।

(५) रोटी नही, न सही। पानी नही, न सही। आश्रय और विश्राम नही, न सही। पर मुझे तो चाहिये प्रेम की, उस दिव्य प्रेम की प्यास और तडपन। एक इस ढाँचे का क्या, तेरे प्रेम की बलिवेदी पर ऐसे लाखों-करोडों ढाँचे—हड्डियो के ढाँचे स्वाहा हो जायँ, तो भी थोडा है।

यह देखो, पश्चिमीय क्षितिज—
कैसी रग विरगी प्रभा से जाज्वल्यमान हो उठा है।
अरे, क्या सूर्य की आभा इसे सुशोभित कर रही है प्यारे!
ओह, यह तो तेरा अपना प्रकाश है!

तुम्हारा निजात्मन्
राम

शास्ता स्प्रिंग्स,
जुलाई २२, १९०२

परम कल्याणमयी चम्पा (फ्लोरा)

कदाचित् तुम्हें इस प्रकार सम्बोधन पसन्द न आये। किन्तु तुम पसन्द करो या न करो, राम को तुम्हें इस नाम से पुकारना अच्छा लगता है। भारत की भाषा में प्रत्येक नाम का कोई न कोई विशेष अर्थ होता है और चम्पा नाम (जो प्राय श्रेष्ठ परिवार की लडकियो का नाम रखा जाता है) का अर्थ मधुर सुगन्ध से परिपूर्ण, पूर्ण विकसित पुष्प विशेष!

राम ने ज्योंही, इस पत्र को लिखने के लिये कलम उठायी, त्योंही अकस्मात भीतर से यह नाम राम के सामने प्रकट हो गया।

हाल ही में तुम्हारे सभी प्रश्नों के उत्तर में एक विस्तृत पत्र कमला (श्रीमती पोलिन) को लिखा गया था। वह पत्र तुम्हें दिया गया या नही? उसमें राम की कुछ नूतन कवितायें भी थी।

वेदान्त-सम्बन्धी आदेश

(१) वैदान्तिक धम का निचोड केवल एक ही आदेश में सगृहीत किया जा सकता है—

अपने आपको सदैव पूर्ण शान्त और आनन्दमग्न रखो, चाहे जैसी घटना हो, उससे विचलित न होना चाहिये। भूख-प्यास, रोग शोक, अपमान, लज्जा और मृत्यु ! सदैव प्रसन्नचित्त और शान्त रहो, क्योंकि तुम तो परमात्मा, परम तत्त्व हो, जिसे तुम कभी नही भूल सकतो, जिसकी तुम कदापि अवहेलना नही कर सकती।

(२) यदि तुम अपनी वास्तविक आत्मा के राज सिंहासन पर बैठने के लिये कटिबद्ध हो जाओ, तो ससार, उसके निवासी, उसके सम्बन्ध—सभी कुछ न जाने कहाँ लोप हो जायेंगे।

जाँच करो, और परखो अथवा कोई और भी काम करो, किन्तु करो उसे अपनी वास्तविक आत्मा के प्रकाश में—अर्थात् यह कभी मत भूलो कि तुम्हारी आत्मा इन सबसे ऊपर है, सारी आवश्यकताओ से परे है।

तुम्हें वास्तव में किसी चीज की आवश्यकता नही है। तुम्हें किसी वस्तु की इच्छा ही क्यो होनी चाहिये ? अपने सारे कार्य ससार के स्वामी के महिमामय गौरव से करो, खुशी के लिये, क्रीडा के लिये, मात्र मनोरजन के हेतु। कदापि, कदापि इसका अनुभव न होने पाये कि तुम्हें किसी बात की आवश्यकता है।

(३) जब तुम वेदान्त के इन सिद्धान्तों को अपने जीवन में व्यवहृत कर लोगी, तब उस सत्य की मधुरतम ज्योति स्वत तुम्हारे अन्तर से चारों ओर बिखरने लगेगी।

सोने से पहले, जब आँखें बन्द होने लगें, दोपहर हो या रात्रि हो, तब अपने मन में ऐसा दृढ निश्चय करो कि जागने पर तुम वेदान्त की, सत्य की साक्षात् मूर्ति के रूप में प्रकट होगी।

जब तुम जागो, तब कोई अन्य काय में रत होने के पूर्व अपने अन्त करण में पुन उस सकल्प को धारणा करो, जो सोने के पूर्व किया था।

जब भी सम्भव हो, तभी जोर से या मन ही मन 'ओम ओम' गाओ और गुनगुनाओ।

इस प्रकार तुम सचमुच असली चम्पा के फूल की भाति प्रत्येक क्षण अपने चारों ओर मधुर चित्ताकर्षक सुगध बिखेरती रहोगी।

तुम्हारे रूप में
राम स्वामी

निम्नलिखित दो पत्र स्वामी राम ने श्रीमती ई० सी० केम्पबेल, ((डेनवर, कोलैरेडो) अमेरिका को अपनी एक भक्तिनिष्ठा शिष्या को लिखे थे—

पोटलैण्ड, श्रोर

श्रीमती ई० सी० केम्पबेल,

जब मनुष्य किसी वस्तु पर अपना दिल लगाते है और जब बाधाय मुह फलाकर उनके सामने आ जाती है, तब वे बहुत भडभडाते और क्रुद्ध हाते हैं। ऐसी स्थिति में अपवाद, उत्तेजना और भडभडाहट का एकमात्र कारण यह होता ह कि हम तुरन्त सामने दिखायी पडनवाली बाधा से विरोध की चेष्टा करते ह। देखो तो, ईसा के हृदय में उस समय कितनी शान्ति रही होगी, जब उन्होंने कहा था—'अशुभ का विरोध मत करो।' अतएव सदैव शान्त रहो और जो कुछ भी सामन आये, प्रसन्नता से उसका स्वागत करो, फिर वह चाहे तुम्हारी इच्छा की धारा के विपरीत ही क्यो न हो जाये। जब हम केन्द्रच्युत न होकर अपनी वास्तविक आत्मा में निवास करते हैं, तब प्रत्यक्ष बुराई भलाई में परिवर्तित हो जाता ह। इस बात को राम ने स्वय अनुभव किया है। क्या तुम्हें स्मरण नही कि कमे एक प्रत्यक्ष बुराई के अनन्तर दस रुपये उस हिन्दू छात्र को भेजे गये थे? किन्तु अपन ही चिडचिडेपन एव अनात्मवृत्ति के द्वारा हम अपने लिये शुभ कल्पनाओ, उत्तम विचारो और सौभाग्य के अवसरो के द्वार बन्द कर देते ह, जो अन्यथा हमें अवश्य ही प्राप्त होते। प्रत्येक बुराई और प्रत्येक बाधा का एक ऐसे हृदय स सामना करो, जो शरीर एव सासारिक जीवन को सदा अपनी हथेलियों पर लिये रहे। दूसरे शब्दो में, जो हृदय पूणत प्रेम में निमग्न हो, तो, उसस बढ़कर ससार में कोई भी शक्ति नही।

तुम्हारी प्रियतम आत्मन्
स्वामी राम

पोटलैण्ड, ओर

ओम। ओम!!

श्रीमती ई० सी० केम्पबेल

तुम निरतर राम की स्मृति में निवास करती हो।

तुम इतनी सच्ची, शुद्ध उत्तम, सरल-हृदया, स्वामिभक्ता और कितना अच्छा हो! तुम क्या इसे अनुभव नही करती?

१ मन में एक व्यक्ति की किसी दूसरे व्यक्ति से तुलना करना, उसे अपेक्षा कृत श्रेष्ठ अथवा हीन ठहराना।

२ किसी दूसरे व्यक्ति के साथ मन ही मन स्वय अपनी तुलना करना।

३ भूतकाल को वर्तमान के सामने रखना और भूतकाल की त्रुटियो पर पश्चात्ताप करना।

४ भविष्य की योजनाओ पर मनन करना और किसी वस्तु से डरना।

५ केवल एक परम तत्त्व परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु में मन लगाना।

६ बाहरी दिखावो पर विश्वास करना और व्यवहारत पूर्ण हृदय से उस आन्तरिक सामजस्य और समता में विश्वास न करना, जो सब का शासक और नियन्ता है।

७ लोगो के शब्दो का सुनकर अथवा उनके ऊपरी व्यवहारो को देख कर झट से परिणामो पर कूदना।

८ लोगो स बातचीत करते हुये इतना आगे बढ जाना कि अन्त में उन बातो से मन में असन्तोष उत्पन्न होने लगे।

तुम दुख को जन्म देने वाली इन आठ बाता स सदैव दूर रहो। ओम्।

तुम्हारा ही श्रेष्ठ आत्मन्
राम स्वामी

अमेरिका में स्वामी राम द्वारा लिखे गये पत्रो की सख्या यद्यपि सीमित थी और उन्होने वे पत्र अपनी साधक शिष्याओ को ही लिखे, पर उनसे स्वामी जी के अप्रतिम आध्यात्मिक तेज का पूर्णतया बोध हो जाता है। अमेरिका में उनके त्याग, सयम, कर्मठता, सामजस्य-वृत्ति, आत्मविश्वास निस्पृहता, उदारता, सार्वभौमिकता, तितिक्षा, परदु ख-कातरता, निर्भयता, ब्रह्मज्ञान की भूरि भूरि प्रशसा की गयी। स्वामी रामतीर्थ ने इस बात का प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया कि *स्वार्थविहीन शुद्ध कर्म चाहे किसी व्यक्ति के द्वारा क्यो न किया जाय,* वह राष्ट्रीय रूप धारण कर लेता है। उन्होने अपने परमोज्ज्वल ब्रह्मज्ञान की प्रचण्ड ज्ञानाग्नि से अमेरिका ऐसे ऐश्वर्य-सम्पन्न देश के विचारको को आश्चर्यविभोर कर दिया। उनके प्रभाव की महत्ता एक वाक्य में इस प्रकार में कही जा सकती है—स्वामी रामतीर्थ ने अमेरिका में भारत की आध्यात्मिक कुण्डलिनी शक्ति का महान् जागरण किया।

नवम अध्याय

स्वदेश आगमन

(१९०४—१९०५)

विदेश में दो वर्षों से कुछ अधिक समय तक रहने के पश्चात् स्वामी राम में स्वदेश लौटने की प्रबल इच्छा जाग्रत हुयी। अमेरिका से भारत लौटते समय वे मिस्र देश में रुके। स्वामी राम ने फारसी भाषा का गम्भीर और व्यापक अध्ययन किया था। फारसी भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। वे फारसी में कवितायें भी रचते थे। एक प्रसिद्ध मस्जिद में उनके व्याख्यान का आयोजन किया गया। उन्होंने अत्यन्त सरल और सरस फारसी में व्याख्यान दिया। उसमें फारसी भाषा के दार्शनिकों, विद्वानों, सूफी कवियों के अनेक उद्धरण थे। वहाँ उपस्थित सभी श्रोतागण उनका भाषण सुनकर मंत्रमुग्ध हो गये। मिस्र देश के प्रमुख अरबी के समाचार पत्र 'अलवहाब' ने राम का पूरा भाषण 'भारतीय दार्शनिक' शीर्षक से प्रकाशित किया और उसने अपनी सम्मति अभिव्यक्त की, "ऐसे महान् पुरुष से मिलकर मिस्र निवासियों को परम गौरव और आह्लाद प्राप्त हुआ है।" राम का पालन पोषण उच्च ब्राह्मण-कुल में हुआ था और वे अत्यंत त्यागी एवं अनुशासनप्रिय सन्यासी थे। किन्तु उनके व्यक्तित्व का कुछ ऐसा आकर्षण था, कि विदेशी लोग भी उन्हें अपने ही देशवासी की भाँति प्यार, स्नेह और श्रद्धा देने लगते थे। जापानी उन्हें जापानी और अमेरिकन उन्हें अमेरिकन समझने लगे थे। और मिस्र-देश के निवासी उन्हें अपना ही श्रद्धेय आध्यात्मिक नेता मानने लगे।

मिस्र देश में राम अपने को 'बादशाह राम' कहा करते थे। मिस्र निवासी उनके निर्भय, सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित भी हुये। वे लोग उस 'बेताज बादशाह' को झुक झुक कर सलाम करते थे। वहाँ के कट्टर मौलवी भी उनके साथ वार्तालाप करने में अपने को धन्य समझते थे। राम वहाँ थोड़े ही दिन रहे, परन्तु उनसे मिलने वाले लोगों का ताता लगा रहता था। वहाँ के बाजारों और गलियों में 'राम बादशाह' का नाम गूंजने लगा। वे वहाँ के लोगों में बहुचर्चित हो गये। वे परस्पर एक दूसरे से यह कहते हुये पाये जाते थे, "एक

अजीब खुदापरस्त हिन्दू फकीर आया हुआ है। वह अपने को 'राम बादशाह' कहता है। शम्स तब्रेज, जलालुद्दीन रूमी और हाफिज की तमाम कवितायें उसकी जबान पर है। आदमी क्या है—खुदा का जलवा है।'

वास्तव में, राम आध्यात्मिक आनन्दानुभूति के बादशाह थे। उन्होने अपनी इस मनोवृत्ति का सच्चा परिचय भी दिया। बात यह ह कि पोट सईद बदरगाह से राम भारत लौटने वाले थे। सयोगवश वे जिस जहाज से रवाना होने वाले थे, उसी से लार्ड कर्जन भी आ रहे थे। राम ने गम्भीरतापूर्वक यह बात कही, "दो बादशाह एक साथ एक ही जहाज में यात्रा नही कर सकते' और उन्होने उस जहाज से अपनी यात्रा स्थगित करा दी। वे दूसरे जहाज से रवाना हुये और लगभग ढाई वर्ष के उपरान्त ८ दिसम्बर, १९०४ को बम्बई पहुँचे। बम्बई में उनका भव्य स्वागत किया गया। वहाँ स्वामी राम के पूर्वपरिचित स्वामी शिवगुणाचार्य उन्हें अपने साथ मथुरा ले जाने के लिये पहले से पहुँचे थे। स्वामी राम मथुरा जाने के लिये राजी हो गये। माग में वे नासिक और होशगाबाद रुके। दोनों स्थानो पर स्वामी जी ने विशाल जनसमूह के बीच अपना व्याख्यान दिया। स्वामी जी के व्याख्यानो में वेदान्त के साथ देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम का स्वर भी मुखरित होने लगा। सरदार पूर्णसिह ने अपनी पुस्तक 'द स्टोरी आफ स्वामी राम' में उनके इस मानसिक परिवर्तन का हृदयग्राही चित्रण किया है—"मैं अपने एक मित्र के साथ उनसे (स्वामी राम से) मिलने लाहौर से मथुरा पहुँचा। प्रात काल आठ बजे का समय होगा? मैंने देखा वे इतने दिन चढे अपने कमरे में भीतर से साकल लगाये हुये है। उनके विश्राम में व्यवधान पडने की आशका होने पर भी मैंने दरवाजा खटखटाया उन्होंने पूछा, 'कौन है?' मैंने कहा, 'मै आपका पूरन!' वे उठे और दरवाजे खोल दिये। मैं उनसे लगभग तीन वप बाद मिल रहा था। शीतकाल था। भगवे रग का कम्मल ओढे हुये थे। वे मुझसे मिले, किन्तु उनमें वह अपनापन न था। उन्होंने मुझे अपने पास बैठने की आज्ञा दी। किन्तु ज्योंही उन्होने कुछ बोलना चाहा, त्योंही उनके नेत्र प्रकाश से चमक उठे। उन्होंने कहना प्रारम्भ किया, 'त्याग और बलिदान से ही देश को स्वतत्रता प्राप्त की जा सकती है। राम का सिर जायेगा, फिर पूरन का, फिर देश के सैंकडो नवयुवको का, तभी देश स्वतत्र होगा। भारतवप, भारतमाता को स्वतत्र करना होगा।' राम के इन वाक्यो ने मुझे आश्चय में डाल दिया। यह वह बात न थी, जो उन्होंने मुझे टोकियो में सुनायी थी, जहाँ मैं सवप्रथम उनसे मिला था। स्वतत्रता के झूले में झूलने वाली अनेक भूमियों के निरीक्षण ने, ऐसा मालूम होता है, उनके धार्मिक उत्साह और प्रचार-भावना को आच्छन्न कर लिया था। वहाँ जो भी बातें उन्होंने

की उनसे मैंने यही समझा कि वे इन दिनो राजनीतिक आन्दोलन को ही सबसे अधिक महत्त्व दे रहे हैं। थोडी देर पश्चात जब हम लोग कमरे से बाहर निकले, तो दो भलेमानुस पटट का कोट पहने, काली टोपी लगाये और लम्बे-लम्बे मफलर गले में डाले मथुरा की ओर से उस स्थल पर प्रकट हुये। स्पष्ट ही ये स्वामी जी का दर्शन करना चाहते थे। उनके प्रणाम के उत्तर में स्वामी जी दिल खोल कर हँस पडे और उनकी यह खिलखिलाहट बडी देर तक चारों ओर गूंजती रही। बडी देर के बाद उनका हँसना समाप्त हुआ, तो वे कहने लगे, 'मेरे प्यारे देश वासियो, तुम लोग छिप छिप कर राम की जाच करने आते हो, राम तुम्हार सामने हृदय खोल कर रख देता है। ससार में सबसे सुन्दर काम ह, राम के हृदय की थाह लेना। उसकी जाँच-पडताल करा, उसका पता लगाओ और दुनिया तुम्हारे चरणो पर लोटेगी।'

"उस विशेष परिस्थिति में मिलते समय राम के इस विचित्र ढग ने मुझे और मेरे साथी को कुछ आश्चय में डाल दिया। वे दोनो व्यक्ति तुरन्त उनके पैरा पर गिर पडे और बोले, 'स्वामी जी, क्षमा कीजिये। हम लोगों को सरकारी आदेश-वश आना पडा है। आपका मुखमण्डल देख कर हम आपके गुलाम हो जाते हैं। आपके प्रेम के आगे हमारी एक भी नही चल सकती। हम लोग तो पापी ह। हम सरकार के गुप्तचर पुलिस विभाग के कमचारी हैं, जिनको यहाँ नियुक्त किया गया है।"

स्वामी राम देशवासियो के भीतर शारीरिक शक्ति का सचार कर देना चाहते थे। देश के दुर्बल, निरुत्साही, आलसी, तमोगुणी व्यक्तियो को वे अभिशाप समझते थे। इसीलिये मथुरा में वे अपने भक्तो के झुण्ड को यमुना जी की स्वच्छ रेती में ले जाते और छोटे-बडे सभी से, यहाँ तक कि दाढीधारी वद्ध व्यक्तियों से भी कपडे, जूते उतरवा कर व्यायाम करवाते थे। एक भी व्यक्ति न छोडा जाता था। स्वामी जी कहते थे, 'शारीरिक व्यायाम सब के लिये परमावश्यक है।' सूर्यास्त होते ही रुक जाते और आनन्दविभोर होकर अनन्त रूपो में नाचना-सा प्रारम्भ कर देते थे। उनके भक्त उनके हृदय-कमल में आनन्द की अनन्त पखुडियाँ विकसित होते देख-देख कर मुग्ध हो जाया करते थे।

मथुरा में निवास करते समय सरदार पूर्णसिंह ने स्वामी राम के मानव प्रेम की एक ऐसी घटना का उल्लेख किया है, जो हमारा मन बरबस मोह लेती है। घटना इस प्रकार है—

"मथुरा में रहते समय स्वामी जी को यमुना की स्वच्छ, शुभ्र रेणुका पर बैठना बहुत अच्छा लगता था। वे धूप में बैठे कुछ भी न करते हुये भी धूप-स्नान

किया करते थे। एक बार उन्हें मथुरा की दिशा से यमुना के इस पार आती हुयी कुछ नावें दिखायी पडी। उनमें स्त्री-पुरुष भरे हुये थे। वे भारतीय ईसाई थे और पिकनिक के लिये निकले थे। स्वामी जी ने उन्हें देखा और कहा, 'पूरन जी, वे सब राम के हैं और राम भी उनका है। क्या तुम उनसे कुछ बातचीत करा सकते हो ? राम उनसे बात करना चाहता है।' वे उस समय एक भगवा रग की धोती पहने बैठे थे। मैं उस आगन्तुक टोली की ओर आगे बढा। वे आ गये और खडे होकर सुनने लगे। राम की बातें उन्हें बहुत पसन्द आयी। राम बडे स्नेह और आनन्द के साथ उनसे बातें कर रहे थे। इस बातचीत के क्रम में उन्होंने कहा, 'राम ईसाई धम को धन्यवाद देता है, जिसने तुम्हें इतना ऊँचा उठाया। जो कुछ हिन्दू धर्म तुम्हारे लिये नही कर सका, उसे ईसाई धर्म ने कर दिखाया। सामाजिक दृष्टि से तुम्हारा उत्थान एव तुम लोगा की तृप्ति युक्त चितवन राम को बडी प्यारी लगती है। तुम राम के हो और राम तुम्हारा है। इसके अनन्तर उन्होने अपनी अमेरिका यात्रा के कुछ सस्मरण सुनाये और उन्हें अपनी मातृभूमि को प्यार करने का उपदेश दिया।"

उपर्युक्त घटना राम के विशाल हृदय पर भली-भाँति प्रकाश डालती है। जो धम अपने ही धर्मावलम्बियों को हेय दृष्टि से देखे, उसे वे दयनीय और कमज़ोर समझते थे। जो धर्म मानवता, सहृदयता, प्रेम सिखलाये, राम की दृष्टि में वह धम महान् था। वेदान्ती राम किसी धर्म की संकीणताओ, रूढियों, घुटन आदि को पसन्द नही करते थे। वे धम को विशाल, उदार, मानवता से परिपूण बनाना चाहते थे।

लाहौर के एक सहयोगी प्रोफेसर ने स्वामी राम से मिलकर उनके साथ वार्तालाप किया। वह वार्ता स्वय राम ने दृष्टान्त रूप में बताई थी—

"जब राम ने पारिवारिक सबधो का विच्छेद कर एव सासारिक सुख-सुविधाओ और मान मर्यादा का परित्याग करके सन्यास-व्रत लिया, तब कोई सज्जन आकर मुझसे कहने लगे, 'महाशय जी, आपने अपनी स्त्री, बच्चो, सगे-सम्बन्धियो एव छात्रो के अधिकारो की अवज्ञा की है। क्या उन्हें आपकी सहायता की आवश्यकता न थी। कतव्यपालन से विमुख होकर क्या आपने उन सबकी अव-हेलना नही की ?' राम के समक्ष उपर्युक्त प्रश्न रखे गये और प्रश्नकर्ता महोदय राम के सहयागी प्रोफेसर थे। राम ने उनसे कहा, 'आप दशनशास्त्र के प्रोफेसर हैं और दशन पर व्याख्यान देते हैं। राम आपसे पूछता कि क्या आपकी स्त्री और बच्चो को भी आपके समान ज्ञान प्राप्त है ? क्या आपकी चाची, दादी आदि को भी वह ज्ञान है, जो आपको है ? क्या आपके चचेरे भाई आदि भी उस ज्ञान से सम्पन्न

है ?" उनका उत्तर था, 'नहीं, मैं तो प्रोफेसर हूँ। उन्हें वह ज्ञान नहीं है, जो मुझे है।' राम ने सहयोगी मित्र से कहा, 'बड़े आश्चर्य की बात है कि आप विश्वविद्यालय में छात्रों के सम्मुख तो भाषण करते हैं, किन्तु अपने बच्चों, चचेरे भाइयों, चाची, दादी और स्त्री आदि को वही बातें क्यों नहीं बताते? भाई, ऐसा क्यों नहीं करते?' उन्होंने बतलाया, 'बात यह है कि वे मेरी बातें नहीं समझ सकते। उनका मानसिक स्तर इतना ऊँचा और विकसित नहीं है कि दर्शनशास्त्र की गूढ़ बातें समझ सकें।'

इस पर, राम ने उन्हें समझाना प्रारम्भ किया, "अब मेरी बात आप ध्यान से सुनें और समझें। सच्ची बात यह है कि आपके नौकर-चाकर, बाल-बच्चे, दादी, चाची, स्त्री यहाँ तक कि आपके कुत्ते, बिल्ली आदि आपके वास्तविक प्रतिवेशी नहीं हैं। भौतिक दृष्टि से युग्म आपके नित्य सान्निध्य में रहता है, नौकर-चाकर आपके एकदम समीप रहते हैं, स्त्री, दादी, चाची आदि आपके परिवार के हैं, दिन रात उनके साथ, उठना-बैठना, बोलना-चालना होता है, फिर भी वे आपके प्रतिवेशी नहीं हैं। अच्छा, आप हैं कौन? आप शरीर नहीं हैं, विशुद्ध, निर्मल और मुक्त आत्मा हैं। किन्तु पाश्चात्य दार्शनिक होने के नाते आप आत्मा को ठीक-ठीक समझने में असमर्थ हैं। आप अपने को मन समझते हैं। ऐसी स्थिति में आपका वास्तविक पड़ोसी वही है, जिसका मानसिक स्तर आपके मानसिक स्तर के समकक्ष है। जो एम० ए०, बी० ए० के प्रबुद्ध छात्र हैं, वे आपके स्तर की पुस्तक पढ़ते हैं, आपके समान ही चिन्तन-मनन करते हैं, उनके पढ़ने, सोचने का भी ठीक वही ढंग है, जो आपका है, अतः वे आपके सच्चे प्रतिवेशी हैं। जब आप अपने अध्ययन-कक्ष में कुछ पढ़ते-लिखते रहते हैं, तब आपके परिवार के लोग कहते हैं कि आप अध्ययन-कक्ष में हैं। किन्तु मैं सहज भाव से आपसे पूछ रहा हूँ कि क्या उस समय आप अपने अध्ययन-कक्ष में रहते हैं, अथवा विचारों के सूक्ष्म जगत् में? अध्ययन की गम्भीरावस्था में कुत्ता चाहे आपकी गोदी में ही क्यों न पड़ा हो, आपके बच्चे शोर-गुल क्यों न कर रहे हों, किन्तु आपसे उनका कोई सरोकार नहीं रहता, यद्यपि वे स्थूल दृष्टि से आपके निकटतम पड़ोसी हैं। किन्तु इसके विपरीत, जो व्यक्ति अपने अध्ययन-कक्ष में आपके ही समान दत्तचित्त हैं, और विचार जगत् में विचरण कर रहा है, वह आपसे चाहे जितनी दूरी पर क्यों न हो, पर आपका सच्चा पड़ोसी है। यही बात है कि आप उन छात्रों की सहायता अधिक कर सकते हैं, न कि अपने बच्चों, स्त्री, चाची, दादी आदि की। अतः आपका सच्चा प्रतिवेशी वही है, जो आपकी अन्तरात्मा के अधिक निकट है, अर्थात् वह उसी मानसिक धरातल का निवासी है, जिसके आप

हैं। इसलिये मात्र उसी घर में रहने वाले को प्रतिवेशी कहना समीचीन नहीं, घर में चूहे, बिल्ली-कुत्ते, मच्छड-मक्खियाँ आदि बहुत से जीव-जन्तु रहते हैं। पर क्या ये सच्चे अर्थ में आपके पडोसी हैं ?' "

स्वामी राम के कुछ अन्तरग मित्रो ने उन्हें यह परामर्श दिया कि उनके विचारो के प्रचार प्रसार के लिये एक नवीन सगठन की सस्थापना की आवश्यकता है। उस सगठन से राष्ट्र निर्माण में बडी सहायता प्राप्त हो सकती है। उनकी बातें सुनकर, राम अतिशय प्रेमानन्द में काँपने लगे और उन्होने अति मृदु शब्दों में कहा, "भारत की समस्त सस्थायें राम की है। उनके माध्यम से वह सारे कार्य सपादित करेगा।" इतना कहते-कहते उनकी आखें मुद गयी, नेत्रो से अश्रुपात होने लगा, उनकी भुजायें इस प्रकार उठ गयी, जैसे प्रेम के भावावेश में किसी का आलिङ्गन करना चाहते हों। उन्होने अपना कथन जारी रक्खा—

"सभी ईसाई, आर्यसमाजी, सिक्ख, सनातनी हिन्दू, पारसी एव मुसलमान जिनके रक्त-मास, अस्थि मज्जा, मेरे इष्टदेव, भारत के अन्न एव नमक से निर्मित हुए हैं, मेरे भाई हैं, बल्कि मेरे आत्मरूप ही हैं। जाओ और उन सब से कह दो कि राम तुम्हारा ही है। मै उन सबो को गले लगाता हूँ। सभी मेरे हैं, पराया कोई भी नही। मैं इस पृथ्वी पर प्रेम की वर्षा कर दूँगा। मै समस्त वसुन्धरा को आनन्द से नहला दूँगा। सयोगवश यदि कोई राम का विरोध भी करता है, तो वह उसका हार्दिक स्वागत करेगा। क्योंकि मै प्रेम की वृष्टि करता हूँ, अत सभी सस्थाय मेरी अपनी हैं। क्योकि मैं प्रेम की बाढ लाता हूँ, अत समस्त शक्तिया मेरी अपनी हैं। चाहे कोई ऊँच हो अथवा नीच, मै सब पर प्रेम की वर्षा करूँगा।"

स्वामी जी के व्यक्तित्व रूपी वेदान्तामृत के विशाल मानसरोवर से राजनीति की सरिता अलौकिक रूप में प्रादुर्भूत हुयी। उनकी राजनीति में त्याग, सेवा, देशभक्ति, राष्ट्रभाव की भावना व्याप्त थी, जिसमें छल प्रपच, दाँव-पेंच का नामोनिशान तक न था। वह राजनीति वेदान्त रस से सराबोर थी। स्वामी राम के अप्रतिम प्रभाव को जानकर ब्रिटिश सरकार चौकन्नी हो गयी थी और उसने उनके पीछे गुप्तचर भी लगा दिये थे। वे स्वामी राम की गति-विधि का बारीकी से निरीक्षण करते थे। पर स्वामी जी ने वेदान्त के अमृतत्व का प्याला छक कर पी लिया था। अत उन्हें न किसी भी प्रकार का भय था और न आशका। वे कहा करते थे, "मैं सत्य का प्रतिपादन करूँगा। इसके लिये यदि मैं सूली पर भी चढ़ा दिया जाऊँ, तो कोई परवाह नही।"

स्वामी राम की इस सवव्यापिनी ख्याति को शिवगणाचाय ने अपना औजार

बनाना चाहा। वे स्वामी राम को लेने बम्बई तक गये थे और उन्हें आग्रहपूर्वक मथुरा ले आये थे। स्वामी शिवगणाचार्य घटों राम के साथ एकान्त में बातें किया करते थे। वे स्वामी राम को राजनीति से पृथक, सर्वथा दूर रहने का परामर्श देते थे और कहते थे, "भारत के राजाओं से मिलिये, बहुत सा धन सग्रह कीजिये, अपना एक सम्प्रदाय और सघ चलाइये।" इसी प्रकार बहुत-सी स्वार्थ पूर्ण बातें करते थे। स्वामी शिवगणाचार्य की यदि यह सलाह निष्कपट और सच्ची होती, तब तो कोई बात न थी। सच्ची बात तो यह थी कि स्वामी जी को अपना माध्यम बना कर वे अपना उल्लू सीधा करना चाहते थे। वे सयासी तो अवश्य हो गये थे, पर उनके हृदय में नाम-यश, ऐश्वर्य समृद्धि की प्रबल तृष्णा विराजमान थी। अत भारतवर्ष में वे अपना नाम विख्यात करने के लिये स्वामी राम के पवित्र चरित्र का उपयोग करना चाहते थे। स्वामी राम ने उनकी इस चाल को तुरन्त भाप लिया। वे तुरन्त ही चुपके से मथुरा से पुष्कर खिसक गये। वहाँ से उन्होंने स्वामी शिवगणाचार्य को एक पत्र लिखा। उस पत्र में स्वामी राम ने अपने उद्देश्य की कोमल किन्तु दृढ स्वरों में व्याख्या की। पत्र इस प्रकार है—

"किशनगढ हाउस, पुष्कर

नारायण,

डाक्टर लोग कहते हैं कि जब तक हमें अन्दर से भूख न हो, तब तक कदापि भोजन न करना चाहिये, भोजन चाहे कितना ही मधुर और स्वास्थ्यकर क्यों न हो, अथवा हमारे मित्र एव सगे-सबधी भोजन करने के लिये कितना ही आग्रह क्यों न करते हो। आपने जो कुछ लिखा है, वह सब ठीक है। यदि मैं तुरन्त चल पड़ूँ, तो निस्सदेह स्वय आपके एव किशनगढ राज्य के सुयोग्य मत्री के सहवास का उत्तम अवसर प्राप्त हो सकता है। साथ ही आप दोनों के सत्सग का भी लाभ मुझे प्राप्त हो सकता है। किन्तु मेरी अन्तरात्मा इस समय यहाँ ठहरने के लिये आदेश देती है—यह आशा दिला कर कि कदाचित् भविष्य में, जब मैं पूर्णत सुसज्जित हो जाऊँ, तब इससे बढकर उपयोगी अवसर मेरे हाथ आयें। अपनी पहले की असफलताओं से (यदि मैं उन्हें असफलताओं का नाम दूँ) मैं किसी प्रकार उद्विग्न नही होता। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे भविष्य जीवन में सफलताओं की कमी न रहेगी। मैं यहाँ जो कुछ कर रहा हूँ, वही मैं समझता हूँ कि किशनगढ में हम लोगों की मित्रगोष्ठी का परिणाम होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमें उपयोगी सुअवसरों से लाभ उठाने में कभी असावधान न होना

चाहिये। किन्तु साथ ही हम कभी अधीर भी न हों। हम सब काम चाहते हैं। इस उद्देश्य के हेतु कि मैं अपने देशवासियों में शक्ति और क्रियाशीलता का संचार कर सकूँ, मैं समझता हूँ कि मेरे पास स्वयं शक्ति का अति विशाल सचय होना चाहिये। समय आने दीजिये, आप सम्भवत अवश्य मेरे साथ होंगे।

यदि मुझे केवल छोटी-मोटी बातों में ही हो-हल्ला नही मचाना है, यदि सचमुच अपनी मातृभूमि की कोई ठोस और वास्तविक सेवा करनी है, यदि मैं वास्तव में देश के लिये उपयोगी बनना चाहता हूँ, तो मुझे ऐसी अनुभूति होनी है कि इस महान् कार्य के सर्वथा योग्य बनने के लिये अभी मुझे कुछ और तैयारी की आवश्यकता है।

मैं यहाँ पर भारतीय शास्त्रों एव सर्वोच्च पाश्चात्य विचारधारा का गहन अध्ययन कर रहा हूँ। इसके साथ-साथ मेरी स्वतन्त्र शोध भी चल रही है। मुझे इस काम में सारा जीवन न लगाना होगा। मैं शीघ्र ही उस ज्ञान को, जिसे मैं निरन्तर इतने दुस्साध्य परिश्रम के द्वारा सचय कर रहा हूँ, मनुष्य मात्र के हृदय और व्यवहार में पैठाने के लिये निकल पड़ूगा। मुझे पूरा निश्चय है कि यदि मैं चाहता, तो इससे बहुत पहले ही देश के एक छोर से दूसरे छोर तक घनघोर हलचल मचा देता, किन्तु मेरी अन्तरात्मा ने ऐसा करने का उपयुक्त अवसर नही समझा। मैं व्यक्तिगत नाम अथवा लाभ अथवा किसी भय और तात्कालिक सकट से, यहाँ तक कि मृत्यु के भय से भी, किसी ऐसी बात का प्रचार नही करना चाहता, जिसे मैंने स्वय सत्य की कसौटी पर, अनुभव की कसौटी पर न कसा हो।

यदि सत्य में कोई शक्ति है—और निस्सन्देह उसमें अनन्त शक्ति है—तो राजा महाराजा, साधुगण, सामान्य व्यक्ति से उच्च व्यक्ति तक, सभी को उस सत्य और धम के आगे सिर झुकाना और उसका आदर करना होगा। जो रामतीथ स्वामी उन्हें बताना चाहता है। मैं इस काय के लिये सवथा सक्षम हूँ। यदि मैं किसी उतावलेपन अथवा अधैर्य के वशीभूत होकर, किसी छोटे मोटे काम में अपने को डाल देता हूँ, तो मैं अपनी शक्तियों का दुरुपयोग ही करूँगा।

मुझे प्रचार अवश्य करना है, अन्यथा बचपन से ही इस इच्छा को अपने हृदय के भीतर क्यों पालता रहता? मुझे प्रचार करना होगा, अन्यथा मैंने अपने माता पिता, स्त्री-बच्चे लौकिक उज्ज्वल भविष्य को तिलाजलि ही क्यों दी? ज्ञान की दिव्य प्रभा को अपने भीतर सचित करके राम को बाहर प्रचार करना होगा—वीरता से और निर्भीकता से। यहाँ तक कि सभी प्रकार की यातनाओं

और विरोधों की उपेक्षा करते हुये, मुझे उस ज्ञान का प्रचार करना होगा, जिसे मैं, जिसे मैं यहाँ अपने अनुभव में ला रहा हूँ।

अपने भविष्य के कार्यों के लिये रुपये रखने के आपके परामर्श को साधुवाद और धन्यवाद।

नियमित व्यायाम चल रहा है, स्वास्थ्य उत्तम है एव यहाँ जलवायु अत्यन्त सुन्दर है। आपको और बाबू साहब को शान्ति की कामना के साथ—

रामतीर्थ स्वामी।"

पुष्कर पहुँचने पर, स्वामी राम ने नारायण स्वामी को आज्ञा दी कि वे स्वामी राम के पास आ जायें। बात यह थी कि नारायण जी लन्दन की रुक्ष और भीषण ठडक सहन करने में असमर्थ थे। लगभग पाँच महीने लदन में रहने के पश्चात, नारायण स्वामी बहुत बुरी तरह से बीमार पड गये। वहाँ के डाक्टरों ने उन्हें लदन छोड देने की सलाह दी। किन्तु वे बिना अपने गुरु की आज्ञा लदन छोडकर अन्यत्र नही जा सकते थे। स्वामी राम ने ज्योंही नारायण स्वामी की गहरी बीमारी का समाचार जाना, त्योंही उन्होंने समुद्री तार देकर नारायण स्वामी को तुरन्त भारत लौटने की आज्ञा दी। १९०४ के जुलाई महीने में नारायण स्वामी बम्बई पहुँचे और वहाँ से मद्रास की ओर रवाना हुये। कुछ सप्ताह तक वे नीलगिरि पर रहे। वहा रहने से उनका स्वास्थ्य पूर्णतया सुधर गया। तत्पश्चात वे दक्षिणी क्षेत्र का दौरा करने में लग गये। जब राम स्वामी अपनी विदेश यात्रा से बम्बई पहुँचे, उस समय नारायण स्वामी कामोरिन अन्तरीप में थे। नारायण स्वामी जब दक्षिण भारत के किसी स्थान पर थे, उसी समय राम स्वामी का आमत्रण उन्हें पुष्कर आने को प्राप्त हुआ। १९०५ के जनवरी महीने में नारायण स्वामी पुष्कर पहुँचे। लाहौर से पूर्णसिंह जी भी वहाँ पहुँच गये।

पुष्कर में पूर्णसिंह जी स्वामी राम के साथ रहे। स्वामी राम के साथ रहते समय का विवरण उन्होंने बडे रोचक ढग से दिया है—

"राम उस समय मगरो से लबालब भरे हुये सुप्रसिद्ध पुष्कर सरोवर के तट पर किशनगढ राजभवन में ठहरे थे। उनके हाथ में एक छोटा-सा बाँस का खोखला डडा था। ज्योंही मैं उनसे मिला, त्योंही उन्होंने कहा, 'और तुमने यह बास का डडा तो देखा नहीं। यह बडा आश्चर्यजनक है। यह राम की जादू-छडी है जिसे देखकर मगर भाग खडे होते हैं। और यही है कागज, पेंसिल आदि रखने के लिये राम का 'सूटकेस' (ऐसा कहकर उन्होंने दिखाया कि उसकी पोल में सचमुच ही ऐसी चीजें बडी सावधानी से रखी हुयी हैं।) बस, यहीं राम का सब

कुछ है। इसके सिवा अब राम को किसी अन्य भौतिक वस्तु की चाह नहीं है।' इतना कहकर वे खिलखिला कर हँस पड़े। 'मनुष्य सचमुच राजाओं का राजा हो जाता है, जब उसकी यात्रा की गठरी इतनी छोटी हो जाती है, जितनी कि इस बाँस की पोल और जब इस पोल की छोटी-सी जगह में उसकी सारी आवश्यकता समा जाती हैं।' वे मकान की छत पर धूप में बैठा करते थे। अभी तक शीतकाल चल रहा था। वे कहते थे, 'राम को कमरे के भीतर बैठना अच्छा नहीं लगता। कमरे तो उसे कब्र की भाँति प्रतीत होते हैं।' वे हम सब को लेकर सायंकाल के समय पुष्कर की पहाड़ियों पर चढ़ते और वहाँ इधर-उधर घूमते-घामते थे। वे बराबर घूमते ही रहते थे और किसी को विश्राम न करने देते थे। साथ ही साथ प्रत्येक को हर समय 'ॐ ॐ' के जप का आदेश देते थे। इस जप में जरा भी व्यतिक्रम उन्हें सहन न होता था। एक बार वे पर्वत के शीर्ष में पत्थर की एक शिला पर बैठ गये और पुकार उठे, 'अरे, ये लोग परमात्मा को क्यों नहीं देख पाते? उन्हें बुलाओ, वे राम के पास आयें, उन्हें ईश्वर का दर्शन कराया जाय।' इतना कहते-कहते उनकी आँखें मुंद गयीं और टप-टप आँसू झरने लगे, मुखमण्डल चमक उठा और फैली हुयी बाहें वायु में इस प्रकार काँपने लगीं जैसे समस्त विश्व को अपने अंक में भर लेना चाहती हों। 'ईश्वर, जगदीश्वर, भगवान् तो यहाँ हैं। जो भगवान् का दर्शन करना चाहें, वे यहाँ आयें। ऐसा कह कर वे एक-दम शान्त हो गये और ऊपर के ओठ से उन्होंने नीचे का ओठ दबा लिया। उनकी मुखमुद्रा ऐसी खिल उठी, जैसे किसी बच्चे को पुनः उसकी माँ मिल गयी हो। फिर उनका मुख बच्चों ऐसे विश्वास, बालकों जैसे आत्म-समर्पण से खुलता। बातचीत के बीच ही में ऐसा मालूम होने लगता, जैसे मौन बरबस उनका आह्वान कर रहा हो। निर्झर फूटा, लहरें उठीं और देखते ही देखते विलीन हो गयीं।

वे मुझे अपने साथ पुष्कर सरोवर में नहाने ले गये। 'राम तुम्हारे आगे रहेगा, तुम राम के पीछे खड़े होकर नहाना। देखो, हमें इन्हीं मगरों के साथ नहाना होगा' हम लोग पानी में उतरे, वे छाती तक पानी में घुस गये। मैं कुछ-कुछ उनके लिये और पूरी तरह अपने लिये डर रहा था। मुझे तैरना नहीं आता था, फिर भी मैं पीछे-पीछे गया—जैसे उन मगरों के लिये सुस्वादु भोजन के दो कौर बढ़े जा रहे हों। परन्तु उनके हृदय में रंचमात्र भय न था, वे मगरों के मनोविज्ञान से पूर्ण रूप से परिचित थे। उन्होंने अपना बाँस का डण्डा पानी में छोड़ दिया, वह उन्हीं के सामने उतराने लगा। ऐसा लग रहा था, मानो मगरों को आगे बढ़ने से रोकने के लिये उन्होंने जादू की छड़ी पानी में छोड़ दी हो। वे खूब नहाते रहे। फिर अपनी दो उँगलियों से अपने नथने दबा कर डुबकी लगायी।

बाहर निकलते ही उन्होंने कहा, 'पूरन जी, देखो, मगर हमारी ओर लपक रहे हैं। चलो, बाहर चलें। वे नही चाहते कि हम उनके पानी में देर तक ठहरें।' हम लोग जल्दी-जल्दी बाहर आये। स्वामी राम बास वाला डण्डा बराबर हाथ में दबाये हुये थे। पत्थर पर उसे खटखटाते हुये उन्होने कहा, 'यह राम का बडा पक्का साथी हैं, राम की खूब सेवा करता हैं।'

रात्रि में राम प्राय मोमबत्ती अथवा मिट्टी के देशी दीपक से कवि 'नजीर' की कवितायें पढा करते थे। वे इस कवि की स्वतन्त्र-वृत्ति के बडे प्रशसक थे। कहा करते थे, 'नजीर राम का उन्मुक्त बालक है, बन्धनो से सदा निर्द्वन्द्व। उसमें यत्र तत्र कुछ मद्यपन है सही किन्तु राम को उसकी परवाह नही। उसके मुख से जो स्वर निकलते हैं, उनसे ईश्वर की ध्वनि आती है।'

पजाब के लोकगीत-साहित्य में वे गोपालसिंह की काफियो के बडे प्रेमी थे। आँखें बन्द कर, बडे भाव से उन काफियो का गाया करते थे। उनके हृदय में वही भाव लहराने लगते, जिनमें निमग्न होकर कवि ने उनकी रचना की थी। 'राम स्यालकोट-निवास से ही गोपालसिंह को जानता है। यह साधु-हृदय वहाँ से पदल ही वृ दावन तक गया था। यह आजीवन भगवद् प्रेम के नशे में झूमता रहा।'

वे अपने सामने किसी को किसी के विरुद्ध कुछ कहने सुनने की अनुमति नही देते थे। उनका कहना था, 'दूसरो की बुराई करना, किसी के बारे में टुच्चे, गंदे, व्यक्तिगत आलोचनात्मक विचार प्रकट करना अच्छा नही होता। हमें प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति का उज्ज्वल पक्ष देखना चाहिये। जैसी हम अपनी आलोचना करते हैं, वैसी ही सब की करें, यही उचित है।'

कभी-कभी जब बहुत से व्यक्ति एकत्र होते और भारतवर्ष तथा उसके नेताओं की चर्चा चलती, तो अनायास ही उन सबके मुह से इधर-उधर के आक्षेप होने लगते। ऐसी स्थिति में स्वामी राम तुरन्त ॐ का उच्चारण करने लगते और कहते, 'सावधान, मन्दिर की घण्टी बज रही है। कभी किसी व्यक्तिगत आक्षेप को पास न फटकने देना।' वे स्वय ॐ ॐ कहने लगते और हम सबसे भी ॐ की ध्वनि कराने लगते। 'तुम सब सुस्त क्यो पड जाते हो ? ॐ का जप तो निरन्तर चलते रहना चाहिये।' बारबार वे यही चेतावनी और आदेश दिया करते थे। इस सबध में मुझे एक छोटी-सी घटना याद पडती है, जो दी जा रही है।

मेरे साथ लाहौर टेकनिकल स्कूल का एक मद्रासी छात्र वहाँ गया हुआ था। नाम था नायडू। मेरी समझ में, बडे होने पर वह प्रयोगात्मक रसायन विद्या सीखने अमेरिका भी गया था। उसने वहाँ अच्छी सफलता भी प्राप्त की थी। हाँ, तो चौके के बाहर भोजन करते समय स्वामी राम नायडू से कहते, 'नायडू जरा

दाल लाओ' और नायडू झट से पहले उत्तर में कहता,—ओम् और फिर दाल लेकर आ जाता, किन्तु फिर भी वह यह न कहता, 'स्वामी जी दाल लीजिये', वरन् कहता केवल 'ओम्'। इस प्रकार प्रत्येक अवसर पर उसका उच्चारण इतना तत्पर और इतना उत्साहपूर्ण हो गया था कि एक बार हम सब घटों उसके ओम् पर हँसते रहे और वह स्वय भी हँसते-हँसते लोटपोट हो गया। प्रत्येक वस्तु को ओम् कहना और प्रत्येक प्रश्न का ओम् ही उत्तर देना, उसका स्वभाव बन गया था।

एक बार वे हम लोगो को पुष्कर की यज्ञभूमि में लिवा ले गये और बताया कि यह पुष्कर-सरोवर क्यों पवित्र हो गया है ? 'यहाँ किसी समय ब्रह्मा ने यज्ञ किया था। जिसका अनुष्ठान बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ था। सभी देवता और मनुष्य एकत्र हुये थे, किन्तु शख नही बजा था। उस समय शख ध्वनि ईश्वर की आकाशवाणी मानी जाती थी और उसी के द्वारा यज्ञ की सफलता अथवा असफलता का निर्णय होता था। जिस समय सविधान इस यज्ञ का अनुष्ठान चल रहा था, उसी समय निकटस्थ जगल में एक घसियारे के हृदय में भी 'ब्रह्म यज्ञ' चल रहा था। वह यज्ञ में नही जा सकता था, नीच जाति का जो था। वह भगवान् के यज्ञ में पूर्णतया निमग्न था। इतना अधिक निमग्न था कि जब कभी घास काटते समय सयोगवश हँसिये से उसकी उँगलियाँ कट जाती और घाव हो जाता, तो उसकी उँगलियो से लाल रक्त नही निकलता था, निकलता वही घास की नसो का हरा-हरा पानी। घाव होने पर वह घसियारा भगवान् के प्रेम में उन्मत्त हो जाता और जोर जोर से नाचने लगता। जब वह नाचता, तब आसपास के पेड-पौधे और पवत भी उसके साथ नाचने लगते। उसकी ऐसी दशा देखकर यज्ञ के होता आदि उसके पास आये और इस पवित्र-हृदय के चरणो पर गिर पड़े। उन्होने प्रार्थना की, आप चलकर हमारे यज्ञ को पवित्र कीजिये, आपकी ही कृपा से यज्ञ का शंख बजेगा।' उस पवित्रात्मा के यज्ञभूमि में प्रवेश करते ही शख अपने आप बजने लगे। देवताओं को भी उसकी इस अलौकिक वृत्ति पर परम आश्चय हुआ। यही सच्चा वेदान्त है।' इतना कह कर स्वामी राम मौन हो गये। जब कभी राम इस प्रकार की आत्म-साक्षात्कार-सबधी कोई कथा सुनाते, तो अन्त में यह अवश्य कह देते, 'यही तो सच्चा वेदान्त है।'

पुष्कर के साथियो की सख्या अधिक न थी। केवल आधे दजन थे जो सत्सग के निमित्त वहाँ एकत्र हुये थे। राम उनको घूमना, बिना प्रयोजन के, मात्र घूमने का आनन्द लेने के लिए घूमना सिखलाते थे।

इन दिनो स्वामी राम ने जितने व्याख्यान दिये, उनमें देशभक्ति एव स्वदेश

प्रेम की अत्यन्त तीव्र ज्वाला है। विशेषकर नवयुवको को दिये हुये सदेश तो देश सेवा की, लगन से पूणत ओतप्रोत हैं। उदाहरणाथ—'आलोचना और विश्वप्रम', 'यज्ञ', 'राष्ट्रीय धम' 'ब्रह्मचर्य', 'देशभक्ति' आदि सदेश। वह प्रस्तावना, जो उन्होने राय बैजनाथ की पुस्तक, 'हिन्दू धम—नूतन और पुरातन' के लिय लिखी थी, इस दिशा में उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। वहाँ वे हमें भारत माता के सच्चे सपूत के रूप में दिखायी देते है। पर उनके पत्रा में हम उनके वास्तविक हृदय का दशन करते है।

उनके लिखित उपदेशो और सदेशो में हमें मनुष्य जाति के उस सर्वोच्च आदर्श की रूपरेखा की झलक स्पष्ट दिखायी देती है, जिसे लेकर वे हिमालय के पर्वतो से पाश्चात्य देशो में प्रचाराथ निकले थे। अपने इस सदेश को उन्होंने अलौकिक ज्ञानपूण व्यक्तित्त्व की मुद्रा के साथ गभीर शैली में अपने निजी ढग से सुनाया था। देखने में यही मालूम होता है कि वे अमेरिका एव पाश्चात्य राष्ट्रों द्वारा प्राप्त 'सफलता' से अत्यधिक प्रभावित होकर लौटे और चाहने लगे कि उनके विपन्न देशवासी भी उत्थान के पथ पर अग्रसर हो। यदि एक धम उन्हें एक सूत्र में नही बाँध सकता, तो अपने देश के प्रति सामान्य प्रेम ही उन्हें एक सूत्र में पिरो दे और उनमें जीवनी-शक्ति का सचार कर दे। यद्यपि यह उनका अपना इच्छित विषय न था, फिर भी उनके सदश ने, उनके आग्रह ने, उनकी अपूव अलौकिकता के सयोग ने तेजी से लोगो का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया ?"[1]

स्वामी राम ने पुष्कर से अनेक पत्र लिखे। उन पत्रो को उन्होने सूरज की चमचमाती धूप में लिखा, कदाचित् यही कारण है कि उनके पत्रो में उनकी अन्तरात्मा के प्रचण्ड सूर्य का दिव्य तेज प्रतिभासित होता है। उनमें से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं—

निम्नलिखित पत्र श्रीमती वेलमैन को लिखे गये थे—

ॐ ॐ

पुष्कर,
फरवरी १४, १९०५

परम कल्याणमयी माता भगवती,

बम्बई विश्वविद्यालय के एक ग्रेजुएट ने, एक सुदर नवयुवक ने आज राम के लिये अपना जीवन अपण किया है। वह साहित्यिक कार्यों में सहायता देन के लिये राम के साथ रहेगा। परम पिता भगवान् सचमुच ही कितना कृपालु है।

---

१ दी स्टोरी आफ स्वामी राम (प्राचीन सस्करण) पृष्ठ १६५ १७०।

यह पिता है, उसकी शक्ति उन्हें कभी धोखा नही देती, जो पूर्णत उस पर आश्रित होकर काम करते हैं।

नारायण स्वामी शीघ्र ही विदेशो में व्याख्यान देने के लिये भेजे जायेंगे।

छिपे हुये और नगण्य कोनो में काम करना उतना ही गौरवशाली है, जितना भव्य और सुन्दर केन्द्रो में। रहट के चक्र में एक छोटी-सी दाँत जैसी लकडी की कील, (जिसे कुत्ता कहते हैं)—उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी कि उस विशाल यन्त्र को चलाने वाले बैल। कुत्ते के हटा लेने पर, वह सारा का सारा विशाल यन्त्र ठप हो जायेगा। नही, इतना ही क्यों, धुरी में लगने वाली प्रत्येक तीली उस यन्त्र में अत्यन्त महत्त्वपूण है। देखने में ऐसी छोटी-छोटी वस्तुओ का महत्त्व बच्चे भले ही न समझें, तो उससे क्या ! ईश्वर की दृष्टि में तो छोटे से छोटे कार्य का भी मूल्य है। यदि उसे प्रेम की प्रेरणा से किया जाता है, तो वह उतना ही प्रभावपूण होता है। छोटी सी ओस की बूद भला सूर्य के सामने क्या चीज है ! किन्तु बारीकी से देखने वाली आखें देख सकती हैं कि इस छोटी सी बूद में भी, उसके नन्हें-से मृदु वक्षस्थल में भी पूरा का पूरा सूयमण्डल अपनी प्रभा डालता है। अत, हे मेरी कल्याणमयी माता, नगण्य और अलक्षित क्षेत्रो में मधुर और शान्त कार्य भी, नाम और यश से सवथा हीन, ठीक उतना ही महत्त्वपूण और श्रेष्ठ है, जितना कि वह जोर शोर से चलने वाला कोलाहलपूण काय, जो मनुष्यमात्र का ध्यान आकर्षित कर लेता है। मैं भी उदास रहा करता था—अपने छोटे-मोटे कार्यों को देखकर जो किया करता था। "वे भी सेवा करते है, जो केवल खडे होकर प्रतीक्षा करते हैं।" माता बच्चे की सेवा में पसीना बहाती है। एक समय आता है, जब वही बच्चा विश्वविद्यालय में पहुँचता है और बडे-बडे विद्वान् प्रोफेसरो के भाषण सुनता है और समझता है। निस्सन्देह माता का आसन-मच वैसा उच्च और उतना यशोमण्डित नही होता, जितना कि प्रोफेसर का। फिर भी माता का कार्य प्रोफेसर के कार्य से सैकडों गुना मधुर और गम्भीर होता है। क्या हम बचपन में ही माता की गोद और लोरियों को छोडकर प्रोफेसर के कमरे में उसका व्याख्यान सुनने के लिये जा सकते हैं ?

वेदान्त का कथन है कि एक साधारण से साधारण कुली को भी अपना छोटा सा काम उतना ही गौरवान्वित और पवित्र मानना चाहिये, जितना ईसा मसीह अथवा कृष्ण का माना जाता है। जब हम कुर्सी का एक पाया हिला देते है, तब क्या पूरी कुर्सी नही हिल उठती ? अत, जब हम एक आत्मा को

उठाते अथवा उन्नत करते हैं, तो उसके द्वारा सारा संसार उठने और उन्नत होने को बाध्य होता है। मनुष्य और मनुष्य-जाति ऐसी ही ठोस और घनीभूत है।

"अपने आप में घिरे हुये, भगवान् के दूसरे काम जिस दिशा में चल रहे हैं, उस ओर से निश्चिन्त रहते हुये, अपनी सारी शक्तियाँ अपने ही काम में केन्द्रीभूत करते हुये जो चलते हैं, उन्हीं का जीवन महान् होता है।

ओ वायु के गर्भ में रहने वाली ध्वनि।
न जाने कब से तू साफ-साफ नहीं सुनायी दी।
तेरी ही भाँति एक झनझनाहट सुनायी देती है—
मुझे अपने छोटे से हृदय में।

अपना आप बनने का निश्चय करो और देखो कि जो अपने को पा लेता है, वह दु:खों से छूट जाता है।

ॐ। आनन्द। ॐ शान्ति, आशीर्वाद और स्नेह
—राम

पुष्कर, जिला अजमेर
फरवरी २२, १९०५,

ॐ। शान्ति। आशीर्वाद। प्रेम। आनन्द!

परम कल्याणमयी माता भगवती,

तुम्हारा मृदु दिव्य पत्र प्राप्त हुआ। करुणामयी सूर्यानन्द ने शरीर पर जैसा सुन्दर नियमन किया है, वह निस्सन्देह परमात्मा के साथ, उस अद्भुत ऐक्य प्रेम के साथ आश्चर्यजनक सामंजस्य का द्योतक है[1]।

ॐ, आनन्द, जय, जय
तुम्हारा ही निजात्मा
स्वामी रामतीर्थ

पुष्कर, अजमेर जिला

ओम्। आनन्द। आनन्द। ओम्! शान्ति!

कल्याणमयी माता,

राम उसी छत पर लेटा हुआ है, जिस पर तुम उसके साथ बैठी थीं।

× × × ×

ब्रह्मानुभूति में तल्लीन, बाह्य दशा से शून्य। जब तुम्हारा पत्र पूरा पढ़

---

१ श्रीमती वेलमैन (सूर्यानन्द) अकस्मात् गीं और विना शक्ति से अच्छी हो गईं।

पत्रों के साथ लाकर राम के हाथो रखा गया, तब राम बाह्य-दशा में आया। पत्र खोलने के पूर्व एक हार्दिक, उल्लास भरा, दीर्घ अट्टहास तुम्हारी कल्याणमयी आत्मा के पास भेजा गया। ओम्, शान्ति, शान्ति ! सबसे प्यारी माता ! लो, तुम्हारा पत्र पढने के अनन्तर, राम पुन उल्लासमयी हँसी की एक दूसरी गूज तुम्हारे पास भेज रहा है।

माता, तुम्हारी हर एक बात बिलकुल ठीक है। राम तुम्हारे शुद्ध, मधुर, सुकोमल स्वभाव को समझता है। ईश्वर के आदेशानुसार वह इस समय विभिन्न विषयों पर कुछ गद्य और कुछ पद्य लिख रहा है।

बाबू गगाप्रसाद वर्मा को भारत के अन्य प्रान्तों में, यहाँ की कन्या पाठशालाओ को देखने एव स्त्री-शिक्षा प्रचार-सम्बन्धी योजनाओं के अध्ययन के लिये जाना था, जिससे लखनऊ एव अन्य स्थानो में स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी सुधार शीघ्र से शीघ्र व्यवहृत किये जा सकें। प्रान्तीय सरकार ने उन्हें यह काम सौंपा है। इस कारण वे मार्च से पहले राम से मिलने नही आ सकते। राम कदाचित ग्रीष्म ऋतु में मैदानों में न ठहरे। राम को कश्मीर से प्रेम है और यदि इस यात्रा में तुम्हारा सुखद साथ रहा, यदि राय भवानीदास एव अन्य मित्र साथ चलें, तो बडा आनन्द हो। निस्सन्देह वहाँ राम की उपस्थिति, समापणा से अनेक प्यासी आत्माओ को आत्मिक तुष्टि मिल सकती है। अतएव राम तुम्हारे साथ कश्मीर चल सकता है। किन्तु ऐ कल्याणमयी माँ, मनुष्य का सर्वोच्च अधिकार केवल इतना है कि उसका शरीर, मन एव हृदय सत्य और मनुष्यता की वेदी में निरन्तर होम होता रहे और तभी उस परमात्मा को हमारी भेंट एक निरहकार, विशुद्ध, सूक्ष्म और शान्त अन्तर्ध्वनि के रूप म स्वीकार होती है।

"यदि कर्त्तव्य लोहे की तप्त दीवारो का सामना करने के लिये आह्वान करे, तो वहाँ से हटने वाला, कितना मूर्ख, कितना निन्दनीय होगा ?"

माता, उत्सगमय जीवन तो किसी अज्ञात, अद्‌भुत दिव्य प्रज्ञा के आधार पर चलता है, हम उसका विश्लेषण नही कर सकते।

राम कश्मीर-यात्रा में तुम्हारा साथ दे सकेगा। किन्तु ठीक चलने की घडी के पूर्व तक कुछ निश्चित नही कहा जा सकता।

तुम्हारा निजात्मा

रामतीर्थ

निम्नलिखित पत्र स्वामी राम ने श्रीमती मोलिन ह्विटमैन (कमलानन्द) को लिखे थे।

पुष्कर, जिला अजमेर
फरवरी २२, १९०१

परम कल्याणमयी भगवती,

जहाँ राम है, वहाँ कैसी सुन्दर और मनोहर ऋतु है। प्रतिदिन अब का नव दिन और प्रतिरात्रि क्रिसमस की रात्रि बनी हुयी है। नीलाम्बर है मेरा प्याला और चमकदार किरणें हैं मेरी सुरा।

मैं पहाड़ियों की मन्द मन्द वायु हूँ, जो उठती है और बराबर उठती ही रहती है। पहाड़ियों से मैं कस्बों और नगरों में उतर जाती हूँ—हरी भरी और स्वच्छ—मैं गली-गली में, सड़क-सड़क में फैल जाती हूँ।

मैंने उसे स्पर्श किया, पुरुष को स्पर्श किया, स्त्री को स्पर्श किया, तुम्हें स्पर्श किया, यह सब मेरी क्रीड़ा और विनोद चलता ही रहता है।

मैं प्रकाश हूँ। अपने प्यारे बच्चों—फूलों और पौधों—को प्रेम से खिलाता रहता हूँ। मैं उन्हीं को आँख, उन्हीं के हृदय में रहता-बसता हूँ, जो सुन्दर और सबल है।

तुम मेरे साथ रहो तब करूँगा मैं प्रापना
तुम मेरे ही संग रहो सदा दिन भर, निशि भर—
औ' तब तक जब कि दिया निशि हो जाते विलुप्त
तुम चुपके-चुपके साथ रहो, अब दूर यहाँ से मत जाओ!
मुझको तुम छोड़ न जा सकते।
मैं भी हूँ वहीं, जहाँ तुम हो।
दृढ़ता से मैंने तुम्हें पकड़ रक्खा है।
बालुका तटों पर? नहीं, न सागर लहरों पर,
प्रत्युत अपने प्राणों में मैंने बाँध रखा है तव प्राणों को।

प्रकाशों के प्रकाश में निवास करने से मार्ग अपने आप खुल जाता है। जब प्रेम और ब्रह्मज्ञान के मधुर प्रकाश की छटा फैलती है, तब काम-काज अपने-आप सुचारु रूप से सम्पादित होने लगते हैं (जैसे गुलाब की कली सूर्य-ताप से स्वतः अपना मुँह खोल देती है।)

आशा है तुम्हें 'थण्डरिंग डॉन' (घनघोर प्रभात) का जनवरी अंक पूरन, सूत्रमंडी, लाहौर से प्राप्त हुआ होगा।

तुम्हारा अपना आप
स्वामी रामतीर्थ

जनवरी के अक में तुम्हारी कवितायें 'कमलानन्द' पूर्ण सन्यासी के नाम—से प्रकाशित हुई हैं।

आगे यदि तुम कोई नूतन रचना भेजना, और तुम्हें पसन्द पडे, तो 'ओम्' के नाम से प्रकाशित कराना।

प्यारी कल्याणमयी गिरिजा और सब को प्रेम, आशीर्वाद आनन्द।

शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

ॐ ॐ ॐ

पुष्कर, जिला अजमेर, भारतवर्ष

आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

शान्ति, कल्याण, प्रेम, आनन्द

परम कल्याणमयी प्रियतम आत्मन्,

शान्त, स्वच्छ, गम्भीर और गहरी झील के तट पर राम का डेरा जमा है। उसके चारो ओर प्राय एक-सी ऊँचाई की पहाडियो की लम्बी पक्ति फैली है, जिन पर मानो सुन्दर हरित वर्ण का शाल चढा हुआ है। राम के निवास स्थल में दो फुलवगियाँ हैं, जहाँ शानदार मोरों के झुण्ड निरन्तर आलाप किया करते हैं। बत्तखें झील में गोता लगाती, तैरती हुई मौज लूटती हैं। नारायण स्वामी (जिनके सबध में राम ने तुम्हें बताया होगा) यहाँ राम के लेखो की प्रतिलिपि में सहायता दे रहे हैं।

यह झील पृथ्वी की आँख कहलाती है। जगल से भरी हुई पहाडियो और चट्टानो को उसकी लटकती हुई भौं समझो। वह एक दर्पण है, जिसे कोई पत्थर तोड नही सकता, जिसका पारा कभी उतरता नही। ऐसा दर्पण है, जिसमें फेंकी हुई सारी गन्दगी नीचे बैठ जाती है, जो सूर्य के चचल प्रकाश के झाडन से निरन्तर स्वच्छ और परिष्कृत होता रहता है।

यह सरोवर सचमुच अपने में एक सुन्दरतम चरित्र है, जो राम के देखने में आया है। उसकी पवित्रता कितनी सुन्दरता से स्थिर रहती है! इतनी अधिक लहरों के पश्चात् क्या कही उसमें एक भी सिकुडन पडती है? जब देखो, तब पूर्ण तरुण।

बस ऐसा ही हो जाय, हमारा हृदय !
ये हरे, लाल पछी पेडों पर बैठे गाया करते हैं,
या वक्र पक्ति में बैठ, झुका सिर, सपने देखा करते हैं
हर एक वृक्ष पर इन्द्रधनुष छा जाता है।
' मेरे सिर के ऊपर डालों पर गाते ये—

मृदु गायन ज्यों गाते-गाते सो जाते थे !
ध्वनि क्षीण कि ज्यों दूरागत झरने का स्वर हो !
ये पछी कभी नहीं देखा करते हमको।

अपनी आत्मा का आशीर्वाद, प्रेम और शान्ति
तुम्हारी ही आत्मा
स्वामी राम

स्वामी राम पुष्कर में लगभग तीन महीने तक रहे। तत्पश्चात् वे नारायण स्वामी के साथ जयपुर गये। वहा बहुत थोडे दिन रुके। जयपुर से उन्होंने एक पत्र श्रीमती वेलमैन को लिखा। उस पत्र में राम की आन्तरिक वृत्ति का प्रतिबिम्ब भली भाँति लक्षित होता है। वे अत्यधिक अ तर्मुख और बाह्य जीवन के प्रति एकदम उदासीन और विरक्त हो चुके थे। ऐसा प्रतीत होता है कि वे शरीर भावना से नितान्त ऊपर उठ चुके थे। पत्र इस प्रकार है—

ॐ

जयपुर,
मार्च ९, १९०५

परम कल्याणमयी भगवती,

राम के चलने के सबध में तुम्हारी भविष्यवाणी यहाँ तक तो ठीक उतरी कि राम ने पुष्कर छोड दिया। अब यहाँ से राम किस दिशा में पदार्पण करेगा, यह उसके ठीक चलने के समय तक सूर्यों के सूर्य—उस परमात्मा के हाथों में सौंपा गया है। अजमेर के टाउन हाल में दो व्याख्यान दिये गये। लोग जयपुर के टाउन हाल में भी व्याख्यानो की व्यवस्था कर रहे हैं। पूरन पुष्कर आया था और दो-तीन दिन तक राम के साथ पहाडियो पर भ्रमण करता रहा। दिलजग सिंह कितना मृदु है! राम के दर्शन के लिये लोगो का तांता बँधा रहता है! किन्तु यह सब तो अब बन्द होना चाहिये। रहे केवल राम और उसका ईश्वर!

आज हम दिन भर (ईश्वर के) साथ ही रहेंगे। रात्रि में भी प्रेम वृत्ति से, (जो कभी लुप्त नही होती) हम साथ ही सोयेंगे। प्रात उषाकाल में हम चल पडेंगे, फिर चाहे जिस ओर पैर ले जायें—एकान्त में अथवा भीडभाड में—वह सब कल्याण ही होगा। न तो हम कभी यात्रा की समाप्ति की कामना करेंगे और न ही सोचेंगे कि हमारा अन्त कहाँ होगा। क्या सचमुच ही यहाँ की सारी वस्तुओं का ऐसा ही अन्तिम परिणाम नहीं होगा?

ओम् ओम्, ओम्।

शीघ्र ही राम जगलों में, पर्वता पर, परमात्मा में, तुम्हारे अन्तर्गत पहुँच जायेगा, जहाँ पत्रो की पहुँच की गम नही हैं। नही कहा जा सकता कि दुबारा कब लिखना होगा।

तुम्हारा ही निजात्मा
राम

शान्ति, प्रेम, कल्याण सदा तुम्हारा साहचय करें।

जयपुर से स्वामी राम और नारायण स्वामी पृथक-पृथक् दिशा में चल पड़े। स्वामी राम दार्जिलिंग की ओर अग्रसर हुये और नारायण स्वामी सिन्ध तथा अफगानिस्तान की ओर उन्मुख हुये। राम के प्रकृति प्रेम ने उन्हें राजपूताना की मरुभूमि से निकाल कर दार्जिलिंग को ओर आकर्षित किया। वहाँ पहुँच कर राम नें अपने को पूणतया प्रकृति देवी के चरणो में समर्पित कर दिया। प्रकृति ने उन्हें पूण स्वास्थ्य प्रदान किया और साथ ही आत्मस्वरूप के चिन्तन में स्थित कर दिया। उन्होंने सरदार पूर्णसिंह को इसका संकेत इस प्रकार किया था—

"दिन बीत कर रात्रि में परिवर्तित हो जाता है और फिर रात्रि व्यतीत होकर दिन में बदल जाती है। यहाँ तुम्हारे राम को कोई भी काम करने का अवसर नही मिल पाता। वह 'कुछ न करने' में अत्यधिक व्यस्त है। इस स्थल की निरन्तर जलवृष्टि की प्रतिस्पर्द्धा में मेरी आँखो ने भी अश्रुवर्षा की झड़ी लगा दी है। आनन्द की अतिशयता में रोम पुलकित रहते हैं। आँखें खुली की खुली रहती हैं, पर देखती कुछ भी नही। वार्ता बन्द, काम बन्द। ओह, मुझे अकेला छोड दो, एकदम अकेला।

आनन्द की लहरो पर लहरें आ रही हैं। उनका क्रम टूटता ही नही। ओ प्रेम! यह क्रम चलने दो। ओ, आनन्द दायिनी पीडा!

लिखने से एकदम दूर!
भाषणों से विदाई।
नाम-यश से नितान्त विमुख।
प्रतिष्ठा? मूखता।
निन्दा? अर्थविहीन।
क्या ये खिलवाड ही जीवन के लक्ष्य है?"

इसी प्रकार दार्जिलिंग से लिखे गये उनके अन्य पत्रों में भी 'कुछ न करने' के महान् कम का वणन प्राप्त होता है। राम के अन्त करण से गद्य और पद्य की सरिता ठीक उसी प्रकार प्रवाहित होती है, जैसे हिमालय पर्वत से गगा जी सहज

भाव से नि:सृत होती है। उन पत्रों में से दो पर दृष्टि डालना, राम के अन्त:करण में प्रवेश करना होगा—

ॐ

दार्जिलिंग पार्व
३० अगस्त, १९०५

आनन्द ! कल्याण ! शान्ति ! प्रेम !

परम कल्याणमयी प्रियतम आत्मन्[1],

तीन महीने से राम एक पहाड़ की चोटी पर (लगभग ८००० फुट) संसार के सर्वोच्च शिखर 'माउण्ट एवरेस्ट' के सामने रहता है! परसों वह नीचे मैदान में उतरेगा। पाँच पुस्तकें लिखी गयी और बीस पढ़ी गयी।

राम का हृदय शान्ति और आनन्द से परिपूर्ण है। मानो मन से संसार ही विदा हो गया है।

ईश्वर, केवल ईश्वर
सर्वत्र, स्थान-स्थान पर!
भीतर और बाहर
पार और दूर!
ओ, आनन्द।
उद्वेलित शान्ति
हलचल रहित आनन्द
दिव्य स्वर्ग!
शान्ति ! आशीर्वाद ! प्रेम !

स्वास्थ्य, आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक और सभी चिरभिलषित कल्याण गिरिजा को, चम्पा को और तुम्हारे सब प्यारों को!

वर्षा की बूँदों में झरती है शान्ति अमर
सुधाधार गिरती है स्वर की वर्षा बनकर
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम!
घन ये गौरवशाली उड़ते आनन्द भरे
विश्व नये, हीरक कण जैसे ये बूँदें झरें
रिमझिम, रिमझिम रिमझिम!

---

१ यह पत्र श्रीमती व्हिटमैन को लिखा गया था।

मेरी यह नियम-वायु बहती सगति भरी
झरती उससे है राष्ट्रों की पत्ती पखुरी
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम !
मेरी ही साँसें हैं इस जग का नियम-पवन
बहता है जो सुन्दर, सुन्दरतर, सुन्दरतम
उसमें वस्तुयें जगत की हिलतीं ज्यों रहती
और कुछ गिरा करती ओस, बूद बन कर ज्यों
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम !
मेरी गौरवशालिनी ज्योति श्वेत सागर है
या कि दुग्ध महासिन्धु लेता है हिलकोरें,
उठतीं उर्मियां यहा लघु लघु, कोमल-कोमल !
फिर करता गजन शतधा हो होकर गिरता—
बरसाता मैं हूँ तारे जैसे फुलझडियां।
रिमझिम, रिमझिम रिमझिम !

—राम
दार्जिलिंग पाश्व

ॐ। ॐ। ॐ।

परम कल्याणमयी परमात्मन्[1]

शान्ति, कल्याण, प्रेम, आनन्द

शायद तुम्हें यह ज्ञात होगा कि राम मसूरी से लगभग एक हजार मील दूर पर्वतों में निवास करता है। राम नितान्त एकाकी एक पुराने मकान में रहता है, जो बगाल प्रान्त के जगल विभाग का है। ओ, कैसा दिव्य है यह स्थान, रेल से दूर, डाकखाने से पृथक, मिलने-जुलने वाले आगन्तुको की पहुँच से बाहर, ससार के सुन्दरतम दृश्यो से घिरा हुआ, पास ही में छोटी-छोटी क्रीडाशील जलधारायें और निर्झर, स्वच्छावाश होने पर कुछ दूरी पर ससार के सर्वोच्च शिखर 'माउण्ट ऐवरेस्ट' का पूण दिग्दशन ! यहाँ पर भी जगल के निवासी पहाडी राम के लिये ताजा दूध ले आते हैं। जगलों के विचरण एव अध्ययन में राम का समय बीतता है।

भला, उस नाम-धाम, इच्छा, यश, घन और सफलता को लेकर क्या होगा,

---

१ यह पत्र श्रीमती वेलमैन को लिखा गया था।

जब जंगलों में भगवान् का साक्षात् दर्शन होता हो। क्यों हम कर्तापन के ज्वर से अभितप्त हों और उसे चाहें ?

राम तो ईश्वरमय रहेगा। प्रातःकालीन समीर चलती है, उसे परवाह नहीं, कितने और किस प्रकार के फूल खिलते हैं उससे। वह तो केवल यत्र-तत्र स्पन्दन करती है। जो कलियाँ वयस्क होती हैं, झट से अपनी आँखें खोल देती हैं। सिंह की माँद, जंगलों की दावाग्नि, अँधेरी गुफायें, भूकम्प के धक्के, गिरती हुयी चट्टानें, तूफान, युद्धक्षेत्र और निगलने वाली कब्रें—यदि उनके साथ ईश्वर-चेतना—ब्रह्मभाव स्थिर रह सके, तो वे उस यश, वैभव, तड़क भड़क, राज्य सिंहासन, आमोद-प्रमोद एवं अन्य समस्त गौरवों से कहीं बढ़कर हैं, जिनके साथ मनुष्य अपनी पूर्णता में नहीं रह पाता, अपने हृदय के एकान्त में परमात्मा के साथ, अद्वितीय के साथ नहीं रम पाता। ओ, सारे काम पूरे होने की खुशी, हलके पैरों से पर्यटन, कदम-कदम अपनी यात्रा का अन्तिम लक्ष्य, प्रत्येक रात्रि शारीरिक मृत्यु और प्रत्येक दिन एक नया जन्म !

अलविदा, ऐ साथियो, नमस्कार !
यह सृष्टि महल है लघु, लघुतम।
मैं ले निज प्यार, दूर इससे जा खेलूंगा
और साथ साथ यह जलक्रीडा, आनन्द परम !
पर नहीं साथ क्या ?

तैराकों की खुशी सिन्धु लहरों में ही घुल मिल जाती है।

आनन्द ! आह्लाद !

ओम्

तुम्हारा अपना आप, दोनू

१ सितम्बर, १६०५ को स्वामी राम मैदानों में उतर आये और उन्होंने बंगाल तथा बिहार के कतिपय स्थानों में भ्रमण किया। १६०५ के अक्टूबर के प्रारम्भ में लखनऊ पहुँचे। लखनऊ में वे बाबू गंगाप्रसाद वर्मा के अतिथि हुये। वर्मा जी लखनऊ के प्रसिद्ध वकील और बाल-ब्रह्मचारी थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन, तन मन, धन समाज के उत्थान के निमित्त अर्पित कर दिया था। जनता सेवा में उनकी अत्यधिक अभिरुचि थी। लखनऊ के वे 'बिना ताज के बादशाह' समझे जाते थे। वे विलक्षण कर्मठ थे। प्रतिदिन प्रातःकाल [illegible] मील से अधिक आठ मील तक भ्रमण करते थे। जल्दी-जल्दी में स्नान और भोजन करते थे। तत्पश्चात् सार्वजनिक काम में जुट जाते थे। वे दो साप्ताहिक पत्रों का सम्पादन

कुशलता से सम्पादन करते थे—उर्दू भाषा में 'हिन्दुस्तानी' और अग्रेजी में 'एडवोकेट' का। अनेक विषयो में दक्ष थे और बडे पटु आलापप्रिय थे। उनके पास मुलाकातियो की भीड जमी रहती थी। रात्रि में वे बडी देर तक काय में रत रहते थे। अपने सहयोगियो के जन-कल्याण के कार्यों में उलझे रहते थे। आधी रात के कुछ पहले वे छुट्टी पाते थे। तत्पश्चात् अल्पाहार करके सोते थे। स्वामी राम को पाकर वर्मा जी अत्यधिक आह्लादित हुये। स्वामी राम कायक्षमता में वर्मा जी से भी बढ-चढ कर थे। वर्मा जी के अनुनय विनय के कारण स्वामी राम उनके साथ लगभग एक पखवारे तक रहे। प्रत्येक दिन प्रात काल कालेज के छात्रो का झुण्ड का झुण्ड स्वामी राम के दर्शन के निमित्त आता रहा। स्वामी राम के साथ वे सब प्रणव की पवित्र ध्वनि से उदित होते हुये सूय का अभिवादन करते थे। फिर स्वामी राम वर्मा जी के साथ भ्रमण करने के लिये निकलते थे। तत्पश्चात स्नान और जल-पान से निवृत्त होकर स्वामी राम आगन्तुको से मिलते थे। प्राय दिन भर दर्शनार्थियों की भीड लगी रहती थी। वे अपनी अपनी जिज्ञासाओ का लेकर स्वामी जी की सेवा में उपस्थित होते थे। स्वामी जी अनुभवपूण युक्तियो द्वारा उनका समाधान कर देते थे।

अपराह्न के समय स्वामी राम प्राय कालेजों और स्कूलो में छात्रो के सम्मुख व्याख्यान देने जाया करते थे। उनके नाम का ढिढोरा सारे लखनऊ शहर में पिट चुका था। छात्रो एव शिक्षित नवयुवका के तो वे सवस्व हो चुके थे। लगभग पाच बजे सायकाल क़ैसरबाग के विस्तृत मैदान में उन्मुक्त आकाश के चँदोवे के नीचे सहस्रो की भीड राम की अमृतवाणी सुनने को एकत्र होती थी। अक्टूबर के सूय की निमल धूप में बैठकर वे स्वामी राम के पवित्र दशन की प्रतीक्षा बडी आतुरता और उत्सुकता से करते थे। क़ैसरबाग़ के दक्षिणी फाटक से अकस्मात् 'ओम्' की दिव्य सगीत-लहरी सुनकर लोगों में सात्त्विकता की अपूर्व लहर दौड जाती थी। समवेत स्वर में ॐ को प्रवल ध्वनि से सारा आकाश निनादित हो उठता था। यह प्रत्यक्षानुभूति होने लगती थी कि उस पवित्र मगलमय ध्वनि से वहाँ समस्त वायुमण्डल सात्त्विक हो गया है और वहाँ के पाप-ताप नष्ट हो गये हैं। वहाँ का समस्त वातावरण मर्त्यलोक से सत्यलोक में परिवर्तित हो जाता। इस प्रकार राम स्वामी की आध्यात्मिकता का सक्रामक रूप प्रत्यक्ष देखने में आता था। स्वामी राम पीतवस्त्रधारी, मुण्डित सन्यासी-वृन्द से आवेष्ठित पीछे की झाडियों से निकल कर सभामच पर विराजमान हो जाते। एक ओर तो बादलों के मध्य सूय अस्त होने जा रहा था और दूसरी ओर गेरुवे वस्त्र से आच्छादित प्रात कालीन सूर्य अपनी नवीन प्रभा से सभामच पर सुशोभित हो रहा था। स्वामी

राम ने ॐ का पवित्र संगीत प्रारम्भ किया। साधु-संन्यासियों ने उसमें योगदान दिया। श्रोताओं में भी यह ध्वनि प्रतिध्वनित होने लगी। कैसरबाग की पीली दीवारें वैरागियों की पंक्ति के समान खड़ी थीं। प्रतीत होता था कि उनसे भी प्रणव का मधुर संगीत निनादित हो रहा है। प्रत्येक ईंट, प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक फूल, प्रत्येक पत्ती, घास के प्रत्येक अंकुर, पृथ्वी के कण-कण, इस ओंकार की सुमधुर ध्वनि की स्वर-लहरी पर आनन्द से नृत्य करने लगते। प्रत्येक श्रोता के हृदय की दशा विलक्षण हो जाती थी। ऐसा था राम का अद्भुत प्रभाव, विलक्षण जादू, अलौकिक सम्मोहन शक्ति। उनका अलौकिक ब्रह्मतेज जड़-चेतन—सब को दीप्तिमय कर देता था।

जब आनन्द के नशे में सब मस्त हो जाते थे, तब राम के ओष्ठ बोलने को स्वाभावतः खुल जाते थे। ऐसा प्रतीत होता था मानों उनके हृदय रूपी आनन्द सरोवर से अमृत-सरिता निकल कर उनके मुख-द्वार से अजस्र गति से प्रवाहित हो रही है और प्रत्येक श्रोता उन्मुक्त भाव से उस अमृत-सरिता में गोते लगा रहा हो। चार-चार घंटे तक यह क्रम अनवरत रूप से चलता रहता। श्रोतागण मूर्तिवत अपने स्थान पर बने रहते।

व्याख्यान देने के अनन्तर जब स्वामी राम वापस लौटते, तब का दृश्य तो और भी अनोखा होता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई दूल्हा अपनी नयी दुलहन को लेकर अपने घर लौट रहा हो। उनके आगे-पीछे भक्तों, जिज्ञासुओं की अपार भीड़ चलती रहती थी। राम का मुखमण्डल निर्विकार बना रहता था। ब्रह्मज्ञान की दिव्य मुस्कान उनके ओठों पर सदैव विराजमान रहती थी। उनकी दृष्टि ब्रह्ममयी हो गयी थी, सर्वत्र, सदैव ब्रह्म का दर्शन होता रहता था। अद्वैतवादी किससे अनुराग करे, किससे विराग करे? उसकी दृष्टि, मति, मनीषा, स्मृति सब कुछ एक हो जाती है।

निवास-स्थान पहुँचने पर, वर्मा जी तो अपने बिस्तर पर लुढ़क जाते, पर स्वामी राम को आराम कहाँ! वे उस समय भी अनेक दर्शकों से घिरे रहते। छात्रों के प्रति उनका असीम अनुराग और स्नेह था। वे छात्रों से बड़े ही स्नेह और मृदुता से मिलते थे। अपनी ओजस्वी वाणी से उन्हें चमत्कृत कर देते थे। स्वामी जी छात्रों को सदैव शिक्षा देते थे कि 'नित्यप्रति व्यायाम करो। मातभूमि की सेवा के निमित्त अपने तन, मन एवं धन को न्यौछावर कर दो। समस्त भारत को एक समझो।'

स्वामी राम और सब के साथ तो न्याय करते किन्तु अपने शरीर के साथ अन्याय करते थे। बात यह है कि वे अपने शरीर से बहुत कस कर काम लेते थे।

यद्यपि वे नियमित व्यायाम करते थे और अल्पाहारी थे, फिर भी जिस शरीर से अठारह-अठारह घण्टे—निरन्तर मशीन की तरह काम लिया जाय, तो उसके पुरजे तो बिगड़ेंगे और ढीले पड़ेंगे ही। इतना अधिक कार्य करने से उनका शरीर रुग्ण हो गया। किन्तु वेदान्ती राम शरीर के प्रति अत्यन्त उदासीन एवं तटस्थ भाव रखते थे और कदाचित् वे शरीर के पिंजरे में अधिक रहना भी नही चाहते थे। उन्हें तो समस्त ब्रह्माण्ड का शरीर—समष्टि—अपना ही विराट् स्वरूप अनुभव होना था। ऐसी स्थिति में उनके अन्तरगों ने उन्हें जलवायु परिवर्तित करने की सम्मति दी। परमात्मा की इच्छा मान कर स्वामी राम ने उनकी सलाह मान ली और हरद्वार पहुँचे। उनके भक्तो ने दवा-दारू का प्रबन्ध किया अवश्य, पर हालत बिगड़ती ही गयी। नारायण स्वामी उस समय वेदान्त के प्रचार कार्य के निमित्त हैदराबाद (सिन्ध) में थे। उन्हें तत्काल बुलाया गया।

नारायण स्वामी के आने पर दवा दारू खतम कर दी गयी। शिष्य और गुरु दोनों ने समान रूप से अनुभव किया कि आधुनिक चिकित्सा प्रणाली सर्वथा दोषपूर्ण है। अत स्वास्थ्य-सुधार-सम्बन्धी प्राकृतिक विधान अपनाया गया। परिणाम अच्छा रहा। रोग विमुक्त होकर, राम पहले की भाँति स्वस्थ हो गये। स्वस्थ होने पर वे मुजफ्फरनगर पहुँचे। वहाँ से उन्हाने एक पत्र पूर्णसिंह जी को लिखा—

मुजफ्फरनगर,
१८ अक्टूबर, १९०५

प्रियवर,

विशाल हृदय !

हाथो में लिपटी हुई राख हमारी चमड़ी को साफ़ कर देती है।

सो उन शारीरिक रोगों के भाग्य को कितना सराहा जाय। जब वे अपने साथ चमचेतना, देहाध्यास को भी वहा ले जाते है।

स्वागत ! बीमारी और दर्द, स्वागत !

जितनी देर तक निर्जीव मुर्दा शरीर घर में पड़ा रहता है, उतने समय तक प्रत्येक प्रकार के सक्रामक रोगो का भय बना रहा है। जब लाश हटा दी जाती है, स्वास्थ्य का अटल राज्य हो जाता है। ठीक उसी भाँति जब तक शरीर चेतना का पुतला बना हुआ है, तब तक ससार के हर एक दुख-दर्द को आने का लालच रहता है। शरीर और उसके बोझ को उतार फेंको, तुरन्त तुम शाहों के शाह बन जाओगे।

कितना प्रसन्न, कितना सुखी मैं !
ईर्ष्या द्वेष मिटे सभी, प्रिय का प्रियतम जब मैं—
मिटे पाप—पश्चात्ताप !
भूत और भविष्यत अब कुछ पास नहीं !
मुझे सब खुश करते, सुख देते हैं,
इतना पवित्र, इतना प्रसन्न
मैं आज बना, मैं आज बना !

विद्वान् महात्मा, जिसके सिर पर लम्बे बाल खड़े हैं और शोचनीय तोंदें हैं।

चश्माधारी प्रोफेसर जो सीधे-सादे विद्यार्थियों को प्रयोगशाला और वेधशाला में चमत्कृत करते है।

वह दरिद्री श्रीमान् भी जिसे किसी न किसी प्रकार की शिकायत बनी रहती है—

यह सब मैं हूँ,
मैं ही गगन और मैं ही तारे
हैं दूर निकट के विश्व सभी,
मेरे उर स्वर में बँधे हुये,
मैं जिसे गुनगुनाया करता।
कोई प्रतिस्पर्द्धी शत्रु नहीं।
अब हानि-कष्ट व्यापते नहीं,
नुकसान करेगा क्या कोई ?
वह अमृतात्मा धारा बन कर
मेरी प्रिय आत्मा में मिलती।
ओ, सच्चा स्वास्थ्य यही तो है
कलकल करने वाले झरने,
खुशियाँ भरने वाले सपने,
रावण हो, या हों राम,
मुझे सब खुश करते, सुख देते हैं।
इतना पवित्र, इतना प्रशान्त।
मैं आज बना ! मैं आज बना।

—राम

नारायण स्वामी जनता-जनार्दन की सेवा के निमित्त लखनऊ भेज दिये गये, पर अधिक दिनों के लिये नही। राम की इच्छा पुन हिमालय के एकान्त-सेवन के लिये जाग पडी। वहाँ वे अमेरिका में दिये गये भाषणो को ग्रन्थ का रूप, देना चाहते थे। नारायण को मुजफ्फरनगर बुलाया गया। गुरु और शिष्य हिमालय के लिये चल पडे। दोनो व्यक्ति साथ-साथ हरद्वार पहुँचे। तब किसी को क्या आभास था कि अब स्वामी रामतीर्थ मैदानो में नही उतरेंगे, वे हिमालय पहुँच कर सदैव के लिये वही के हो जायेंगे।

दशम अध्याय

महा-समाधि की ओर

(१९०५-१९०६)

पजाबी हिन्दुओ के लिए हरद्वार की यात्रा शारीरिक जीवन की अन्तिम यात्रा समझी जाती है। मरणोपरान्त उनकी अस्थियाँ वही गगाजल में विसर्जित की जाती है। किन्तु स्वामी रामतीर्थ के जीवन में ब्रह्मज्ञान प्राप्ति की दिशा में हरद्वार की यात्रा, जीवन की प्रथम यात्रा थी। वहाँ से कुछ दूरी पर तपोवन नामक स्थान पर उन्हें आत्म स्वरूप का बोध हुआ था। तदन्तर वे मुक्त विहग की भाति एक स्थान से दूसरे स्थान में विचरण करते रहे। स्वामी राम की गगा जी के प्रति अनन्य एव विलक्षण भक्ति थी। गगा जी के दर्शन मात्र से उनके हृदय में भावों का अनन्त सागर लहराने लगता था। वे गगा मैया को भारत की अधिष्ठात्री देवी मानते थे। ब्रह्मविद्या की जननी और उसकी पोषिका भी वे गगा जी को ही समझते थे।

स्वामी राम ने हरद्वार से कुछ पत्र श्रीमती वेलमैन को लिखे। उन पत्रो से उनकी तत्कालीन मनस्थिति पर अच्छा प्रकाश पडता है—

ॐ

हरद्वार,
बृहस्पति, सायकाल

परम कल्याणमयी माता,

तुम्हारी भविष्यवाणी सच हुई। राम देहरा और अपनी दिव्य माता के पास आ रहा है किन्तु अतिशय प्रेम से वशीभूत होकर लोग उसे स्थान-स्थान पर रोक लेते हैं। अलवर, मुरादाबाद, अजमेर, जयपुर आदि कई स्थानो पर व्याख्यान हुए। रेलगाडी में ही अपने प्यारे भाग्यवान् बाबू ज्योतिस्वरूप को विदा करके राम हरद्वार में रुका है। लोगो को यहाँ राम की उपस्थिति का पता लग चुका है। वे बडी उत्सुकता और प्रेम से यहाँ कुछ समय तक रुकने का आग्रह करते है और राम भी इस सुअवसर को हाथ से जाने देना ठीक नही समझता। यहाँ अन्य लोगों के साथ बहुत से नवयुवक सन्यासी हैं, जो राम की वाणी सुनने

के लिए बेतरह भूखे और प्यासे हैं। उनकी दशा सुधारने के लिये कुछ करना ही ही चाहिये। माँ, मथुरा में अपनी भेंट के समय तुमने भी राम से इस काम का अनुरोध किया था। अनेक शुद्धात्मा एव प्रेमी साधु-सन्यासी राम की शिक्षाओ को बडे उत्साह से ग्रहण कर रहे हैं।

राम आज गगा के दूसरे तट पर चण्डी के मन्दिर में गया। यह मन्दिर एक छोटी-सी सुन्दर पहाडी पर है। गगा के उस तट पर सघन वन हैं और दृश्य अत्यन्त मनोहर। गगा जी का अनेक छोटी-छोटी धाराओं में पृथक हो जाना और फिर एक में मिल जाना, कैसा अनुपम है, कैसा भव्य है। चण्डी के मन्दिर से हिमालय की हिमशिलाओं का जगमगाता हुआ स्वर्णिम दृश्य मन को बरबस मोह लेता है।

कल्याणमयी आत्मन्,

न प्रशसा से काम और न निन्दा से मतलब !
न है कोई मित्र, न कोई शत्रु,
न किसी से प्रेम, न किसी से घृणा,
न शरीर और न उसके सबधी,
न है घर और न है बाहर

नही, इस ससार की कोई भी बात महत्व की नही होती। ईश्वर है, ईश्वर ही सच्चा है और वही एकमात्र सच्चाई है।

किसी की परवाह नही, सब कुछ चला जाय। केवल परमात्मा, मात्र परमात्मा ही सब कुछ है। अनादि शान्ति जल-बूदो के समान बरसती है। जल वर्षा में अमृत की वृष्टि हो रही है। राम का हृदय शान्ति से लबालब भरा हुआ है। मुझसे आनन्द का प्रवाह चारों ओर बह रहा है।

आनन्दमय राम सदा आनन्दमग्न है,
तुम भी प्यारी माता, शान्ति और कल्याण का स्रोत बनो।
प्रेम, आनन्द, आनन्द, ओम्, ओम, ओम !
प्रेम और आशीर्वाद, तुम्हारे शिष्यों को,
तुम्हारे मेजबान और मेजबानी को—
(श्रीमान् और श्रीमती ज्योतिस्वरूप को)

तुम्हारा ही निजात्मा
राम

जुलाई ५, १९०५

परमकल्याणमयी आत्मन्,

राम का एक सप्ताह पूर्व मसूरी के पते पर भेजा हुआ पत्र पहले ही तुम्हारी पवित्रात्मा को प्राप्त हो गया होगा। इस वर्ष की गर्मी में राम तुम्हारे साथ कश्मीर न जा सकेगा। इसलिये तुम आनन्दपूर्वक कैलाश, मानसरोवर आदि स्थानों में भ्रमण करो, कोई जल्दी नहीं। इन सुन्दरतम पर्वतीय दृश्यों में तुम्हें निश्चय ही अपने घर (अमेरिका) जैसा आनन्द प्राप्त होता होगा। इन प्राकृतिक दृश्यों से तुम्हें अपने कल्याणमय अमेरिका के मनोहर दृश्यों का स्मरण होता होगा—कैसा अपूर्व सामजस्य!

मुझमें आ मिलती शान्ति सरित् धारा-बन-बन,
मुझ तक बहती है शान्त मधुर बन मलय पवन,
है शान्ति बह रही मुझ में ज्यों गंगा निर्मल।
प्रति रोम, उँगलियों से झरती है शान्ति विमल।
उत्तुंग तरंगें शान्ति-महासागर की उठ, उठ-उठ
जन-जन के सिर-पद उर से होकर बह जायें।
ओम परमोल्लास, ओम महानन्द, ओम महाशान्ति!

× × ×

राम है महा प्रसन्न।
जीवन की बाढ़ और कार्यों की आंधी में—
ऊपर-नीचे में उड़ता फिरता,
इधर उधर सभी ओर
जन्म से मरण तक बुनता रहता
अन्तहीन जाली में!
परिवर्तनशील सिन्धु—
यह परम प्रकाश भरे जीवन का!
इसी भाँति काल के सतत स्वरमय करघे पर,
परमात्मा का सजीव वस्त्र मैं बुनता रहता।

तुम्हारा ही निजात्मा
राम

ॐ

अगस्त १०, १९०५

कल्याण, प्रेम, आनन्द !

शान्ति, शान्ति !

परम कल्याणमयी भगवती,

कुछ दिन पहले तुम्हारा पत्र मिला था। किन्तु राम ने इधर किसी भी पत्र का उत्तर नही दिया। आज तीन बडी उपयोगी पुस्तकें समाप्त हुई हैं। जन-कल्याण के निमित्त उन्हें राम हिन्दी में लिख रहा था। अब तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है ? राम की इच्छा है कि तुम पूर्ण स्वास्थ्य और पूण बल प्राप्त करो।

ओम, ओम ओम !

तुम्हारी अमेरिका-यात्रा के व्यय के लिये रुपये जुटाना कोई कठिन काम नही, किन्तु हम लोग तुम्हें अपने साथ रखना चाहते हैं। शायद यह हमारा स्वाथ हो, किन्तु तुम स्वय यहाँ के लोगो को प्यार करती हो। क्या तुम्हें पूरा निश्चय है कि तुम्हारे शारीरिक शैथिल्य का एकमात्र कारण भारत का जलवायु है और अमेरिका लौटने पर वह अपने आप जाता रहेगा ? यदि ऐसा है, तो हम लोगों में से किसी को भी तुम्हें यहाँ रोकने का आग्रह नही करना चाहिये। तुम आनन्द से कैलीफोर्निया पहुँच जाओ, हम सब इसके लिये उद्योग करेंगे।

शान्ति, हार्दिक आशीर्वाद, प्रेम।

आशा है यह पत्र तुम्हें उत्तम स्वास्थ्य में पायेगा।

ओम्

तुम्हारा ही निजात्मा

राम

स्वामी राम के हरद्वार में रहते समय, एक बार पूर्णसिंह उन्हें खुदादाद से भेंट कराने के लिये लिवा ले गये। खुदादाद पंजाब विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट थे। बाद में डाक्टर भी हो गये थे। उनकी परमात्मा में अपूर्व,निष्ठा और प्रीति थी। स्वामी राम खुदादाद से मिलकर बडे प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए। उनकी भगवद् भक्ति से प्रभावित होकर स्वामी राम ने पूर्णसिंह स कहा, "ऐसे व्यक्तियों से राम के परिचय का क्या मतलब ? वे तो पहले ही से राम के ढग पर बने हुये हैं। राम उन्हें अपने ही रूप में देखता है।" जब तक राम खुदादाद के साथ रहे, तब तक निरन्तर अपनी दिव्य मुस्कान से उन्हें मुग्ध करते रहे।

राम ने खुदादाद से इस प्रकार कहा, "राम को आपका नाम अच्छा नहीं लग रहा है। 'खुदा' का अर्थ 'परमात्मा' होता है और 'दाद' का अर्थ 'दिया हुआ'। नाम तो केवल 'खुदा' होना चाहिये था।" डाक्टर खुदादाद ने उत्तर दिया, "जिनकी आँखें खुल गयी हैं, उनके लिये यह (अर्थात् खुदा), और जिनकी आखें अभी तक नही खुल पायी है, उनके लिये वह (अर्थात खुदादाद)।" इस उत्तर से राम अत्यधिक आह्लादित हुये। महीनो बाद जब पूर्णसिंह, खुदादाद से मिले, तो उन्होंने इस आशय का एक शेर सुनाया, जिसमें उन्हाने राम का समस्त जीवन चित्रित कर दिया था—

ओ स्वामी राम, तेरी मुसकराहट है कैसी जादू भरी !
जीवन का रहस्य है उसमें समाया हुआ।

हरद्वार में एक बार स्वामी योगानन्द (बाद में वे अपने को आनन्द स्वामी कहने लगे) ने अपनी आन्तरिक इच्छा स्वामी राम से अभिव्यक्त की कि म कुछ दिनो तक आपके साथ एकान्त-सेवन करना चाहता हूँ। स्वामी राम ने उन्हें अपनी स्वीकृति सहर्ष दे दी। स्वामी योगानन्द अच्छे जादूगर और नकलची थे। वे विविध पक्षियो की बोली हुबहू वैसी ही बाल लेते थे। विनोदी योगानन्द, स्वामी राम और नारायण स्वामी के साथ ऋषीकेश तक १९०५ के नवम्बर में गये। दीपावली के आस पास का समय था। ऋषीकेश पहुँचने पर स्वामी राम ने नारायण स्वामी को तो कुछ आवश्यक सामग्री लेकर आने का निर्देश देकर वही छोड दिया। स्वयं योगानन्द जी को लेकर बदरीनाथ की ओर, एकान्त-स्थल की तलाश में चल पडे। एकान्त-वास के निमित्त उपयुक्त स्थान चुनने में स्वामी राम बहुत परिश्रम और प्रयास करते थे। अन्त में उन्होने व्यास-आश्रम का चयन किया। यह स्थान ऋषीकेश से लगभग तीस मील की दूरी पर है। बदरीनाथ के माग में गगा के जगल वाले तट पर एक पठार पर यह पावन स्थल स्थित है। वहा लोगो का आना-जाना बहुत ही कम होता है। यह टेहरी-गढ़वाल स्टेट में है। कहते है इसी पवित्र स्थल पर ब्रह्मर्षि व्यास ने कठोर तपश्चर्या की थी। यहीं उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना और सकलन किया था। इस स्थल की पवित्रता एव एकान्त की सुरक्षा के लिये, प्रकृति ने सामान्य लागो की पहुँच से इसे दुगम बना दिया है। स्वामी राम अपने दोनों साथियो के साथ वहाँ पहुँचे। आधे आधे मील की दूरी पर तीन घास-फूस की झोपड़ियाँ बनाई गयी। भोजन एक स्थान पर बनता था। भोजन के समय के अतिरिक्त तीनो अपनी-अपनी कुटिया में रहकर अहंग्रह-उपासना में निमग्न रहते थे। काली-कमला क्षेत्र के बाबा रामनाथ

ने स्वामी राम एव उनके साथियो की भोजन-व्यवस्था करा दी थी। भोजन सबधी सारी सामग्री क्षेत्र से आती थी और एक रसोइये की नियुक्ति भोजन बनाने के लिये कर दी गयी थी। वहाँ रहते समय स्वामी राम ने अपनी दाढी रख ली थी और विनोद में प्राय कहा करते थे, "देखो, राम ने व्यास महर्षि की दाढी पा ली है।"

व्यास-आश्रम में स्वामी राम ने नियमित रूप से सस्कृत व्याकरण और साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ किया। बात यह थी कि प्रयाग और वाराणसी में वेदान्त विषय पर व्याख्यान देते समय कुछ स्थानीय पडितो ने इस प्रकार का कटाक्ष किया, "स्वामी जी आप संस्कृत के पण्डित नही, फिर आप वेदान्त-दर्शन का किस प्रकार समुचित प्रचार कर सकते है ?" स्वामी राम को यह बात लग गयी। इसके अतिरिक्त हरद्वार के एक विद्वान् महात्मा ने भी स्वामी राम के मन में यह बात भली भाँति दृढ़ कर दी थी कि मात्र अग्रेजी भाषा के माध्यम से भारतीय नवयुवकों का उत्थान नही किया जा सकता। अत उनको प्राचीन भारतीय ज्ञान की भित्ति पर वेदान्त मत का प्रचार करना चाहिये। स्वामी जी सकल्प के अत्यधिक पक्के थे। अत उन्होंने सुव्यवस्थित ढग से सस्कृत के व्याकरण का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया साथ ही साथ सस्कृत साहित्य, निरुक्त के साथ वेदों, सायण भाष्य, शाकर-भाष्य के आधार पर प्रस्थानत्रयी (उपनिषद, ब्रह्मसूत्र एव श्रीमद्भगवद्गीता) का अध्ययन भी मननपूवक करने लगे।

पूर्णसिंह ने स्वामी जी को रोकने की चेष्टा की और कहा, 'स्वामी जी, आप इस घिसे पिटे प्राचीन सस्कृत के व्याकरण के चक्कर में पडकर, अपने सहजानन्द को क्यों नष्ट कर रहे हैं ?" किन्तु स्वामी राम ने उत्तर दिया, "अभी राम में अप्रतिम शक्ति और स्फूर्ति सुरक्षित है। इसका प्रयोग देववाणी के अध्ययन में क्यो न दिया जाय ? चाहे जो हो, मैं कठिन से कठिन परिश्रम करके वेद का प्रत्येक मत्र पढूगा और समझूगा। सस्कृत साहित्य का अध्ययन करके वेदान्त को प्राचीन परिपाटी के अनुसार सिद्ध करके दिखा दूँगा।" वही उन्हाने किया भी। व्यास-आश्रम के निवास के पश्चात, जितने भी पण्डित उनसे मिले, उन सबने स्वामी जी में विलक्षण परिवर्त्तन पाया। वे सस्कृत विद्या के पूर्ण पण्डित हो चुके थे। स्वामी जी ने प्राचीन पद्धति के अनुसार वेदो के परम्परागत भाष्यो का अध्ययन किया, साथ ही पाश्चात्य जगत की आलोचनात्मक एव नूतन शोधात्मक पद्धतियों से उन पर नवीन प्रकाश भी डाला।

"व्यास-आश्रम के निवास क समय एव उसके अनन्तर भी स्वामी राम का अधिकाश समय संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्ति और व्याकरण के नियमो के अध्ययन

में ही व्यतीत होता था। वे वैदिक मन्त्रों के शब्द-सौन्दय के उपभोग में ही तल्लीन रहते थे। कभी कभी वेदो के उन उल्टे पुल्टे, अलूल-जलूल ऊपरी अर्थों और भ्रम पूर्ण व्याख्याओं पर वे जी खोलकर हँसा करते थे जो वेदों के अकाट्य और अतर्क्य होने की अध श्रद्धा के साथ कुछ क्षेत्रो में फैलायी जा रही थी। जब वे यह देखते थे कि उसी श्रद्धा के बात पर वेदो में आधुनिक विज्ञान के सभी सिद्धान्तो को खोजने की व्यर्थ चेष्टा हो रही है, तब तो उनकी हँसी रोके नहीं रुकती थी।" उन्होंने कहा, "निस्सन्देह, प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक वस्तु का अपने लिय अपनी इच्छानुसार अर्थ लगाने का अधिकार है। उदाहरणार्थ, राम हाफिज की हाला का अर्थ करता है—'भगवद् प्रेम का उन्माद' और इसी प्रकार उसे ग्रहण कर राम हाफिज की शराब का अपने ढग से खूब मजा भी लेता है, किन्तु उसे हाफिज के उस शब्द को यह अर्थ देने का तो कोई अधिकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार वैदिक सस्कृत के प्राचीन परम्परागत अर्थों को परिवर्तित करने का किसी को क्या अधिकार? स्वामी राम वेदो के अध्ययन के लिये सायणाचार्य को एकमात्र पथ-प्रदर्शक मानते थे। वे पाश्चात्य विद्वानो की शैली के बड़े प्रशसक थे। हिन्दू पण्डितो के प्रमादजन्य अज्ञान की निन्दा करते थे।[1]"

सस्कृत के अध्ययन के फलस्वरूप उनकी गम्भीरता और अन्तर्मुखता अत्यधिक बढ़ गयी। जो ज्ञान की मस्ती बाह्य रूप में सदैव छलकती रहती थी, वह ठढी सी पड गयी। इसी गम्भीर वृत्ति में स्वामी राम ने कुछ ही महीनो के अन्तर्गत प्राय सभी वेदों का वेदाङ्गों सहित अध्ययन कर लिया। १६०६ के फरवरी मास का मध्य था। शीत ऋतु विदा हो रही थी और ग्रीष्म के आने की तैयारी हो रही थी, स्वामी राम ने और अधिक शीतल और एकान्त स्थान में जाने का निश्चय किया। अत स्वामी राम और नारायण स्वामी व्यास-आश्रम से विदा होकर देवप्रयाग की ओर उन्मुख हुये।

देवप्रयाग पर भागीरथी और अलकनन्दा का संगम होता है। दोनों नदियों के सगम के अनन्तर, वे अपना नाम त्याग कर 'गगा' का नाम ग्रहण कर लेती हैं। पूर्व दिशा से अलकनन्दा हरित-वर्ण के जल से परिपूर्ण भयानक गर्जन करती हुई देवप्रयाग में आती हैं। उत्तर दिशा से दुग्ध के समान श्वेत जल लिये हुये, भागीरथी शान्त भाव से आती हैं। दोनों का सगम अत्यन्त दिव्य प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि हरित वर्ण श्वेत वर्ण का एकदम भक्षण कर जायगा।

---

१ दी स्टोरी आफ़ स्वामी राम, लेखक पूर्णसिंह (प्राचीन सस्करण) पृष्ठ १७४-१७५।

किन्तु श्वेत वर्ण की सात्विकता के सम्मुख हरित वर्ण की दाल गल नही पाती। देखते ही देखते हरित-वर्ण उसी में लीन हो जाता है और श्वेत वर्ण की प्रधानता हो जाती है।

अलकनन्दा और भागीरथी का मिलन पुरुष और प्रकृति के मिलन के सदृश प्रतीत होता है। प्रकृति जब अपने समस्त नाम रूप के साथ नवीन रगीनी लेकर पुरुष से मिलती है तो वह अपनेपन को विनष्ट कर पुरुष का रूप धारण कर लेती है। पुरुष का रूप धारण करने पर प्रकृति का कोई अस्तित्व नही रह जाता। इस अलौकिक दृश्य को देखकर स्वामी राम अत्यधिक प्रभावित हुये और कुछ दिनो तक इस स्थान पर रुके।

देवप्रयाग में राम के कुछ अन्तरगो ने उन्हें यह सलाह दी कि 'वशिष्ठ आश्रम' बहुत ही एकान्त स्थल है। वहाँ ठडक भी काफी रहती है। वहा आप आनन्द-पूर्वक निर्विघ्न भाव से एकान्त सेवन कर सकते हैं।' स्वामी राम के हृदय में उनकी सलाह जम गयी। अत स्वामी राम नारायण स्वामी के साथ वशिष्ठ आश्रम की ओर चल पडे। वशिष्ठ आश्रम टेहरी से लगभग पचास मील की दूरी पर है और समुद्र तल से इसकी ऊँचाई बारह से तेरह हजार फीट के बीच में है।

दोनों सन्यासियों का आगमन जान कर टेहरी के महाराज साहब बहुत आह्लादित हुये। महाराज साहब ने उन दोनो सन्यासियो को बडे आदर-सत्कार से अपने उद्यान 'सिमलसू' में ठहराया। सिमलसू भृगुगगा के तट पर स्थित है। दोनों सन्यासियो के खच का सारा भार महाराज साहब ने अपने ऊपर लिया। हाँ, कालीकमली क्षेत्र वालो ने एक रसोइये का प्रबन्ध अवश्य कर दिया था।

टेहरी में स्वामी राम को मैदानो से अनेक आमत्रण प्राप्त हुये। किन्तु उन्हें अब एकान्त-त्याग बहुत अधिक खलता था। अब वे निश्चित रूप से निवृत्तिमार्गी हो चुके थे। एक दिन के लिये भी प्रवृत्ति-पथ ग्रहण करना उन्हें असह्य था। अत उन्होने नारायण स्वामी को अपने प्रतिनिधि के रूप में मैदानो में भेज दिया और स्वयं १९०६ के मार्च में वशिष्ठ आश्रम चले गये। वहा पहुँच कर उन्हाने वही गुफा अपनायी, जिनमें प्राचीन समय में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र के सामर्थ्य शाली गुरु वशिष्ठ ने आत्मानुसन्धान किया था। किन्तु लगभग एक महीने के भीतर ही स्वामी राम प्रचण्ड ज्वर से आक्रान्त हो गये।

पहले तो नारायण स्वामी को केवल दो महीने के लिये मैदानो में भेजा गया था किन्तु वशिष्ठ-आश्रम के एकान्त-सेवन से स्वामी राम इतने अन्तर्मुख हो गये कि उन्होंने नारायण स्वामी को लिख दिया, "तुम्हारा कार्यकाल दो महीने के बजाय दो साल के लिये बढाया जा रहा है।" नारायण स्वामी, स्वामी राम के

इस प्रकार लिखने पर हतप्रभ हो गये। स्वामी राम का संग एक दिन के लिये भी छोडना उन्हें असह्य प्रतीत होता था। नारायण स्वामी ने स्वामी जी की इस आज्ञा का प्रत्यक्ष विरोध किया। इस विषय को लेकर एक गुरु शिष्य के बीच पत्रों का लम्बा सिलसिला चला, जो प्रकाशन के लिये 'अनन्त जीवन का नियम' शीर्षक के अन्तगत सक्षिप्त कर लिये गये थे। उनके इन पत्रों से राम की तत्कालीन मानसिक स्थिति का सुन्दर बोध होता है। इनमें उनकी ज्ञान-गरिमा का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है—

राम किसी 'मिशन' का दावा नही करता। उसे देवदूत बनने की इच्छा नही। काय तो मात्र परमात्मा के है। हमें बुद्ध और अन्य ५ देवदूतों के उदाहरणों और प्रमाणों से क्या करना है? हमारे मन को तो सीधे 'ईश्वरीय नियम' की आज्ञाओ का वशवर्ती होना चाहिये। बुद्ध और ईसामसीह को भी मित्रो और अनुयायियो ने छोड दिया था। देखो, अरण्यजीवन के सात वर्षों में से बुद्ध को अन्तिम दो वर्ष बिलकुल एकाकी बिताने पडे थे और तब कही उन्हें देदीप्यमान प्रकाश प्राप्त हुआ था। और उसके बाद शिष्यों के झुण्ड के झुण्ड एकत्र हाने लगे। तब उनका स्वागत हुआ। अपने शुभचिन्तक आदरणीय परामर्श दाताओ की रायो और विचारो से प्रभावित होना व्यर्थ है। यदि सचमुच उनके विचार उस 'ईश्वरीय नियम' से एकस्वर होते, तो उन्होंने न जाने कब के ढेरों के ढेर बुद्ध ससार में उत्पन्न कर दिये होते।

धीरे धीरे और दृढता के साथ जैसे मधु में फँसी हुई मक्खी एक-एक करके अपने पैरो को खीचने की चेष्टा करती है, उसी प्रकार हमें नाम रूप और व्यक्तियो के प्रति अपनी आसक्ति के कण-कण को हृदय से दूर करना होगा। एक के बाद एक सभी नाते-रिश्ते काटने होगे। सभी सबध तोडने पडेंगे—इसके पहले कि ईश्वर की कृपा के रूप में मृत्यु हमें अनिच्छापूवक सब कुछ त्याग करने के लिये बाध्य कर सके।

'ईश्वरीय नियम' का चक्र बडी निर्दयता के साथ घूमता है। वह उस पर सवारी करता है, जो उसके विरुद्ध अपनी इच्छा को खडा करता ह। ऐसा व्यक्ति अवश्य कुचला जायेगा और नारकीय यन्त्रणायें भोगेगा।

ईश्वरीय नियम अग्निरूप है। वह सभी सासारिक आसक्तियों को जला डालता है। वह अज्ञानी मस्तिष्क को झुलस देता है, किन्तु वह हृदय को रद्द करके आत्मा को आवृत करने वाले सभी विषैले कीडों को भी समूल नष्ट करने वाला है।

धर्म हमारे प्राणों का प्राण है और हमारे जीवन में उसी प्रकार व्यापक है,

जसे भोजन की क्रिया। धर्म से विमुख सफन नास्तिक मानो स्वयं अपनी पाचन-शक्ति से अनभिज्ञ है। ईश्वरीय नियम हमें तलवार की मार से धार्मिक बनाता है। वह हमें कोडे मार-मार कर जगायेगा। उस नियम से किसी प्रकार हमारी मुक्ति नही हो सकती। ईश्वरीय नियम ही सत्य है और सब मिथ्या। सभी नाम-रूप और व्यक्ति उस ईश्वरीय नियम के महासागर में बुल-बुले मात्र हैं। सत्य की परिभाषा है यह, जो सदा विद्यमान रहे। अब देखो कि क्या ससार की काई भी वस्तु, कोई नाम-रूप, कोई सबध, कोई शरीर, कोई सगठन, कोई समाज, उतनी ही दढता से विद्यमान रह सकता है, जितनी दृढता से त्रिशूल का यह नियम स्थिर है।

प्रश्न यह है कि भ्रान्त, अदूरदर्शी जीव उस अटल और आदर्श नियम की अपेक्षा नाम रूपात्मक व्यक्तियों से अधिक प्यार क्यों करते हैं? इसलिये कि अज्ञान के कारण उसे ससार के सभी व्यक्ति एव अन्य दृश्य पदार्थ शाश्वत और ठोस प्रतीत होते हैं और वे ईश्वरीय नियम को कल्पित, क्षणभगुर एव मेघो की छाया के समान चचल समझते है।

प्रकृति उन्हें यह पाठ पढाना चाहती है कि एकमात्र त्रिशूल का नियम ही अन्तिम तथ्य है और ससार के सभी व्यक्ति एव हमारे प्यार की समस्त वस्तुयें थोडी देर के तमाशे की छाया अथवा माया जैसी काल्पनिक हैं। यदि सीधे सीधे उस पाठ को सीखने लगते है, तो कठोर ठोकरों और दुखद धक्को से बचा लिये जाते हैं। प्रकृति नियामक 'बिहारी जी' खेल खेलने में बडा पटु हैं। हमारे जीवन की मीठी और कडवी चीजें, बाह्य सौन्दय एव कुरूपता तथा भयकरता उसी के विभिन्न वेश है, जो वह अपने दर्शन, अपना प्रकाश दिखलाने के लिये धारण किया करता है।

जब हम अपने मित्रो और शत्रुओ के रूपों को सच्चा मान बैठते हैं। तब वे हमें धोखा देते और विश्वास भग करके साथ छोड बैठते हैं। और जब हम बदला लेना प्रारम्भ करते है, उन्हें दुष्ट प्रकृति समझ कर उनके प्रयोजनों पर सन्देह करते है, तब मामला और भी बिगड जाता है। उनका पहला विद्रोह तो इस कारण हुआ था कि प्रेम के मारे उन्हें हम वह सच्चाई और वास्तविकता प्रदान कर बठे थे, जो एक मात्र उस ईश्वर का स्वरूप है। अब जब हम उनका विरोध करते हैं, तो मानो हम अपनी पहली भूल को और गम्भीर बनाते हैं? उनसे घृणा करके हम उनके रूपो को और सच्चा मानते है। और इस प्रकार हम अपने ऊपर और भी अधिक दुख दद बुलाते है। सावधान हो जाओ, पूण त्याग, पूण सन्यास, शिव रूप ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य और प्रयोजन है। यही एक-

मात्र जीता-जागता तथ्य है, ठोस कहलाने वाले पत्थरों से भी वह कही अधिक है। अत पाषाण लिंग द्वारा उसे अभिव्यक्त करना कुछ अनुचित नही हुआ। असावधान हृदय को ठीक मार्ग पर लाने के लिये, वह पत्थरो से अधिक चोट करता है। उसे निरन्तर ध्यान में रखना हमारी अनिवार्य आवश्यकता है।

मुसलमान और ईसाइयो ने उस ईश्वरीय नियम को ध्ययर (ईर्ष्यालु) और कहर (भयानक) कहने में कोई गलती नही की। यथाथ में वह व्यक्तियों का सकोच और शील रखने वाला नही। चाहे कोई हो, जो भी ससार की किसी भी चीज में दिल लगायेगा, प्रकृति का कोप अवश्यमेव उसे भोगना पडेगा और फिर भोगना पडेगा। लोग सत्य का यह पाठ सीखने में प्रमाद करते हैं, क्योंकि उनमें यथाथ निरीक्षण-शक्ति का अभाव होता है। जब स्वय उनके व्यक्तित्व के सबध की कोई बात नही होती है, तब वे अधिकतर उसका कारण स्वय अपने में नही ढूढते, अपितु तुरन्त दूसरो को उन अपराधो के लिये दोष देने लगते है। व एक निष्पक्ष साक्षी की भाति स्वय अपने ही अन्त करण की वृत्तियों, भावनाओं और उनसे होने वाले दुष्परिणामों का विश्लेषण और आत्म निरीक्षण करना नहीं जानते। धोखा और प्रवचना हमें मिलेगी और बार-बार मिलेगी, जब तब हम नाम-रूप का विश्वास करेंगे अथवा जब हम अपने हृदय के अ तस्तल में उन मिथ्या वस्तुओ और व्यक्तियों को आदर प्रदान करेंगे, जो एकमात्र उस अतिम सत्य परमात्मा को मिलना चाहिये। दूसरे शब्दो में, जब हम अपने हृदय मन्दिर में परमात्मा के बदले केवल पाषाण की प्रतिमा प्रतिष्ठित कर बैठते है। तर्क सगत अन्वय-व्यतिरेक का नियम बिना किसी अपवाद के सदा अनात्म पदार्थों का मिथ्यापन और खोखलापन ही सिद्ध करता है।

ऐसे कितने ही अवसर आते हैं, जब हम सब भांति शिष्ट और भद्र पुरुषों वचनों पर अवलम्बित होकर, उन लोगों में ईश्वर की अपेक्षा कहीं अधिक विश जमा कर उनको ऐसा बना देते है कि वे फिर अपने वचनो का पालन नह पाते। कितनी ही बार हम स्वय ईश्वर के नियम को भूलकर अपने व शरीरों को इतना अधिक प्यार करने लगते हैं कि स्वय उनके नाश अ का कारण बनते है। कितनी ही बार हम अपने सच्चे मित्रों पर इत आश्रित हो जाते हैं, उनके व्यक्तित्व पर इतना अधिक आन्तरिक वि लेते हैं, जो केवल उस परमात्मा को, ईश्वरीय नियम के अटल निरू चाहिये। हम ही उन्हें झूठा, वचनभग करनेवाला बना देते हैं। हम अपने जीते-जागते गुरुओं को उनकी आध्यात्मिक ऊँचाई से आते हैं, क्योंकि हम उन्हें अपने में इतना अधिक विश्वास करने

देते हैं और हम स्वय उन पर अधिक अवलम्बित हो जाते हैं। ईश्वरीय नियम बिलकुल स्पष्ट है। अत हमें अपने गुरुओ के व्यक्तित्व को भी प्रभात होने से पहले, मुर्गे के बाँग देने से पहले तीन बार, तीन से भी अधिक बार—सत्यता प्रदान करने की भावना से नमस्कार कर लेना चाहिये। कितनी ही बार हम अपनी स्त्रियो को दिल सौप कर, उन पर पूर्णत अवलम्बित होकर, स्वय गृहस्थी के झगडो के कारण बनते हैं और अनेक विपत्तियो को आमत्रण देते हैं। एक शब्द में, उस ईश्वर की अपेक्षा किसी भी वस्तु को अधिक महत्त्व दो, तो वह ईश्वरीय 'प्रेम' अपने तीक्ष्ण कटाक्ष से तुम्हारे हृदय को भेद बिना, क्षत विक्षत किये बिना न रहेगा, न रहेगा।

अन्य लौकिक अयोग्य प्रेमों की क्या चर्चा की जाय, स्वय गोपियों का उदाहरण—क्या नही देखते ? उन्होने भगवान विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के मनोहरतम स्वरूप में आसक्ति की, फिर भी उन्हें अपनी इस भूल के कारण रक्त के आँसू बहाने पडे। हाथ क्या लगा ? शुद्ध एव विशुद्ध प्रेम की साकार प्रतिमा सीतादेवी भगवान श्री रामचन्द्र के देदीप्यमान स्वरूप की सत्यता में विश्वास कर बैठी ! लो, उन्हें भी अपनी इस भूल के कारण उस निष्ठुर अमूर्त्त राम के द्वारा, वास्तविक राम के द्वारा, अपने स्वामी, जगत् के स्वामी के द्वारा घनघोर वनो में घिसटना पडा।

× × × ×

यह ठीक है कि लोगो ने मुहम्मद को गलत समझा और प्राय गलत ढग से ही उनका अनुकरण किया। किन्तु वह जो सत्य का दर्शन करता है, अवश्यमेव उसके आगे झुकेगा। यद्यपि उनका सत्य एकागी ही था कि और नही तो (तलवार की धार से ही) तुरन्त उसका नाश कर दिया जाय, जो एकमात्र सत्य में—ईश्वर के सिवा और कोई वस्तु सत्य नहीं—में व्यवहारत विश्वास न करने के कारण धीरे धीरे अनेक आधि-व्याधियों का शिकार होता हुआ तिल तिल करके मृत्यु के मुख में प्रवेश कर रहा है। ईसा मसीह ने सत्यता का यही पाठ पढाया है, बुद्ध भगवान् का भी यही उपदेश था और नि सन्देह हमारे अपने ऋषियों में से प्रत्येक ने किसी न किसी रूप में इसी सत्य का उद्घोष किया है। किन्तु क्या इतने मात्र से काम चलता है ? क्या उनके उपदेश और शिक्षायें इतने दिनों तक जीवित रह सकती थी यदि उनके श्रोताओं के निजी अनुभवों द्वारा भी उनका हार्दिक समर्थन न हुआ होता ? यदि युग-युगान्तरों में उस प्रकाश के सच्चे और शुद्ध हृदय भक्तों ने बारम्बार उनके उपदेशों की परीक्षा न की होती और बारम्बार उसको अटल सत्य, एकमात्र सत्य न पाया होता, तो क्या उनकी शिक्षायें और उपदेश अब तक चलते रहते ?

त्याग और सन्यास का नियम एक कठोर सत्य है। कोई हवा में उडने वाली मात्र कल्पना नही। राष्ट्रो के राष्ट्र, क्या इन पैगम्बरों और नेताओं को केवल ऐसी भ्रमात्मक कल्पनाओं से इतने दिनो तक धाखे में पडे रह सकते थे, उनके चक्कर में पडे रह सकते थे ? शताब्दि यों के बाद शताब्दिया बोतती जाती ह और क्या अभी तक इन पागलों की कल्पनाओ का भण्डाफोड न हो गया होता !

जो लोग अपनी विपत्तियों के वास्तविक कारण को नही जानते ह, वे केवल उस 'ईश्वरीय नियम' की धारा से मोहित और बेसुध हो जाते हैं और अपनी यातना के बाह्य चिह्नों, वत्तमान परिस्थितियों से लडना झगडना प्रारम्भ करते हैं। चाहिये ता यह कि हम, लागो की अच्छी या बुरी बातें, उनका अच्छा या बुरा स्वभाव, इस प्रकार अपनी चेतना से बाहर निकाल दें, जैसे रात वे धूमिल स्वप्न अपने आप विस्मत होकर लुप्त हो जाते हैं। स्वप्न चाहे भयकर हो अथवा मृदु, हम कभी उन्हें अपने अनुकूल बनाने अथवा उनसे झगडने की चेष्टा नही करते। करते हैं तो केवल अपने ही पेट को ठीक करने की चेष्टा करते ह। इसी प्रकार, अच्छे या बुरे, चाहे जैसे लोगो से हमारा मिलना-जुलना हो, हम उनकी कतई परवाह न करके, सदा अपना आध्यात्मिक दशा सुदृढ और उन्नतिशील करें। देखो, तुम्हारे और तुम्हारे ईश्वर के बीच में कोई बुरी लगने वाली बात अथवा कोई अभाग्य किसी प्रकार बाधा न डाले। महान् से महान् अपमान इतना बडा नही हो सकता कि हम उसे क्षमा करके आत्म-सन्तुष्ट न हो सकें।

परमात्मा की तुलना में कभो किसी वस्तु का मूल्य अधिक नही होना चाहिये। ईश्वर के समान और कुछ मूल्यवान नही होना चाहिये। निन्दा-स्तुति, आधि व्याधि एव आमोद प्रमोद एक समान घातक हो जाते हैं, यदि हम समझते हैं कि उनसे आत्मा आक्रान्त होती है। अपने आप को ईश्वर अनुभव करो और अपनी ब्रह्मभावना में आनन्द के गीत गाओ। निन्दा और स्तुति को ठीक एसे समझो, जैसे राम शारीरिक व्याधियो को उस ईश्वरीय दरबार का चपरासी मानता है, जो सर्वोच्च अधिकार के साथ हमें यह आदेश दिया करते हैं, 'तुरन्त इस मकान, शरीर-चेतना से बाहर निकल जाओ।' पर जब मैं स्वय दरबार के राज्य सिंहासन पर विराजता हूँ, ता वे तुरन्त मेरे आज्ञानुवर्ती बन जाते ह। और जब तक मैं इस अन्धगुफा रूपो शरीर चेतना, देहाध्यास में घुसा रहता हूँ, तब तक वे कोडे मारते हैं और बार-बार वार पर वार करते हैं।

वे राजसत्तायें भी, जिनके तथाकथित नियम (कानून) 'त्रिशूल' के उस ईश्वरीय नियम से साम्य नहीं रखते, स्वय अपनी मृत्यु के लिये गढढा खोदती हैं। प्रसिद्ध कृपण 'शाइलाक' की भाँति अपनी व्यक्तिगत सम्पत्तियों पर बल देना, इस

या उस वस्तु को अपनी समझना, सम्पन्नता की भावना रखना, यह कहना कि ऐसा करना कानून-सम्मत है, उस वास्तविक नियम का विरोध करना है, जिसके अनुसार हमारा एकमात्र 'हक' केवल 'हक' (परमात्मा) है और दूसरे सब हक मिथ्या और गलत है। यदि और कोई दूसरे इस सिद्धान्त को स्वीकार नही करते है, तो कम से कम सन्यासियो को तो अवश्य इसे अपन जीवन में व्यवहृत करना चाहिए।

यह ईश्वरीय नियम सर्वव्यापक है। यह प्रत्येक मनुष्य के अस्तित्व मात्र की उन्चतम आत्मा है। इस रूप में वे स्वय राम है। वही इस व्यक्तिगत आत्मा को ठोकरें मार-मार कर प्राणहीन कर देगा। वह है तो निदय किन्तु उसकी निदयता ही प्रेम का मूल स्वरूप है, क्योकि बस दिखावटी आत्मा की मृत्यु से ही उस वास्तविक आत्मा और अनन्त अनादि जीवन का पुनरुत्थान होता है। जो इस झूठी आत्मा से चिपटता है, जो इसके लिये परमात्मा—स्वामी आत्मा के विशेषाधिकारों का दावा करता है, वह एक दिन अवश्य ही मिथ्याहकारों की पहाडियों पर गिद्धों द्वारा हडप लिया जायेगा। वेदान्त की स्वतत्रता का यह अर्थ नही है कि इस परिच्छिन्न स्थानीय आत्मा—व्यक्तित्व और शरीर—को उस ईश्वरीय नियम से मुक्ति मिल जाय। यह तो खुद खुदा को शैतान बना देता है। लाखों-करोडो जीवन प्रतिक्षण इस भूल के कारण नष्ट हो रहे है। हजारो मस्तिष्क निराशा के गर्त में गिर रहे है और हजारो-लाखो हृदय प्रतिक्षण उस 'ईश्वरीय नियम' के अज्ञानजनित विपरीत ज्ञान से भग्न-मनोरथ हो रहे है। स्वय यही नियम बन जाने से, उस ईश्वरीय नियम से मुक्ति मिल सकती है। दूसरे शब्दो में केवल 'शिवोऽहं' का साक्षात्कार ही हमें वह मुक्ति दिला सकता है।

इन्द्रियो का शिकार, जो उन चीजो को गिनता रहता है, जिन्हें तथ्य और आँकडे कहते है, जो नाम रूप के आधार पर आश्रित है, वह मानो बालू की दीवार पर खडा है और वह एक न एक दिन अवश्य डूब जायगा और वह सचमुच अटल आधार शिला पर खडा हुआ है, जिसके हृदय के अन्तस्तल में यह विराजमान है—

'ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है। ईश्वरीय नियम जीती-जागती परम शक्ति है।'

× × × ×

वैदिक युग में किसी किसी अवसर पर कुमारी कन्यायें हाथ जोडकर अग्नि के चारो ओर एकत्र होती थी और उस ज्योति की परिक्रमा करती हुइ ऐसा गीत गाया करती थी, "हे भगवन, हम सब उस सुगन्धमय भगवान्, उस सर्वद्रष्टा

परमात्मा, उस पतिभ्राता ईश्वर की आराधना में निमग्न हो जायें। जैसे बीज भूसी से अलग होता है वैसे ही हम भी यहाँ (पितृगृह) के बन्धन से मुक्त हों, किन्तु वहाँ (पतिगृह) से कभी पृथक न हो, कभी पृथक् न हो।"

वही प्राचीन आर्य-कन्याओं की प्रार्थना राम के अन्तस्तल से, हृदय की गम्भीरतम गहराई से निकल रही है। और आँसुओ-आँसुओ, तुम क्यों पागलों की भाँति बहे जा रहे हो!

हे ईश्वर, हे त्रिशूल, हे सत्य, यह सिर और यह हृदय तुरन्त उसी क्षण अलग-अलग कर देना, यदि तेरे सिवा अन्य सम्बन्ध उनमें निवास करें। ओ, शरीर के रक्त, तू भी तुरन्त जम कर पत्थर हो जाना, परमात्मा के विचार के अतिरिक्त कोई अन्य विचार मेरी नस-नाड़ियों मे चक्कर काटे।

दूसरी श्रुति—

"जैसे स्त्री पुरुष से, वैसे ही मैं तुमसे दीक्षित हूँगा। मैं तुम्हें अधिकाधिक अपने पास खींचूगा। मैं तेरे ओठों को चूमूगा। और तेरे अग अग के गुह्य रसों का पान करूँगा। ओ त्रिशूल, ओ नियम, ओ स्वतन्त्रते, मैं तुम्ही से गर्भ धारण करूँगा।"

क्या राम 'त्रिशूल' के साथ नहीं ब्याहा गया? क्या सत्य के साथ, नियम के साथ उसका विवाह नहीं हुआ, जो उस पर अब भी पति-वचवा की भाँति अन्य शंका की जाती है।

'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।'

—मीराबाई

लोग भगवान् को प्रेम करने में झिझकते हैं, क्योंकि वे सोचते है कि उससे हमें कोई वैसा प्रत्युत्तर नहीं मिलता, जैसा कि इन काल्पनिक ससार के प्रेम-पात्रों से मिलता है। यही मूलता, यही अज्ञान उन्हें भ्रमित किये रहता है। ऐ प्यार, देखो तो, उसका हृदय राम की श्वास प्रश्वास के स्वर में तुरन्त ही नहीं साथ ही साथ, प्रत्युत्तर के रूप में किस प्रकार बराबर गिरता उठता है।

अपने दिखावटी मित्रो और शत्रुओ में उनके व्यवहार का कारण ढूँढने की चेष्टा मत करो। वास्तविक काय कारण तो एकमात्र तुम्हारी वास्तविक आत्मा में प्रतिष्ठित है। ध्यान से देखो तो सही।

जैसे जब चिड़िया का बच्चा उड़ना सीखता है, तो पहले वह एक पत्थर से दूसरे पत्थर पर, अथवा एक डाली से दूसरी डाली पर सहारा लेता है, किन्तु पृथ्वीतल के इन पदार्थों को छोड़कर वह नभमण्डल में उन्मुक्त होकर विचरण नहीं कर सकता। उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान का शिशु किसी एक विशेष पदार्थ से

अपनी हार्दिक आसक्ति हटा कर अथवा किसी व्यक्ति से घृणापूर्वक उपराम होकर तुरन्त किसी दूसरे पर अवलम्बित हो जाता है। वह उसी प्रकार के किसी दूसरे भ्रम का पल्ला पकड लेता है, किन्तु इन तिनको और नाजुक बेलो का सहारा छोडना पसन्द नही करता। वह अपने हृदय से एक साथ सम्पूर्ण पृथ्वी का त्याग नही कर पाता। किन्तु जो अनुभवी ब्रह्मज्ञानी है, वह जगत के एक ही पदार्थ की असारता का निश्चय कर लेता है और उसी को ब्रह्मज्ञान को साधन समझ कर, मार्ग का पत्थर समझ कर उस पर से छलाग मार कर ब्रह्मज्ञान के अपार सागर में कूद जाता है। धर्म की कला इसी बात में है कि हम अपने प्रत्येक छोटे से अनुभव को उस अनन्त में निमग्न होने का साधन बना लें। बाहर दिखायी देने वाली वस्तुयें सब एक ही सूत्र में पिरोई हुई हैं। एक वस्तु का बाह्यत त्याग करते समय ज्ञानी अपने हृदय में उसे अन्य सब कुछ त्यागने का चिह्न और प्रतीक बना लेता है।

घोरतम मूर्ख है वह, जो सचमुच इस तीक्ष्णतम सत्य को स्वीकार नही करता कि इस स्वार्थपूर्ण व्यक्तित्व की एकमात्र मृत्यु ही जीवन का नियम एव अटल विधान है। त्रिशूल हमारे क्षुद्र और सकीर्ण व्यक्तित्वो का नाश करने वाला है। अपने हृदय से क्षुद्र व्यक्तित्व की सकीर्ण भावना को फेंक देना और उस अनादि, अनन्त जीवन में जागना ही वास्तविक पुनरुत्थान का मार्ग है। तू सदा उसी में निवास कर! अलविदा!

अपने कुछ पत्रों एव सस्मरणों में स्वामी राम ने वशिष्ठ आश्रम एव इस बीच जिन अन्य स्थानो पर विचरण किया, उनका हृदयग्राही चित्रण किया है।

यह पत्र राय साहब बैजनाथ को लिखा गया था—

ॐ

वशिष्ठ आश्रम
२७, मार्च १९०६

परम कल्याणमय भगवन,

यह आश्रम हिमरेखा के ऊपर है। यह अत्यन्त सुन्दर निर्झर—'वशिष्ठ गगा' ठीक राम की गुफा के नीचे से बहती है। निर्झर में पाँच-छ जलप्रपात हैं। निर्झर की घाटी में मानो शिव ने स्वय अपने हाथो से कठोर चट्टानो को तोड-फोड कर प्राय दो दजन सुन्दर सरोवरो का निर्माण किया है। पहाडियों पर जगल के सीधे सादे, प्रकाशप्रेमी विशालकाय वृक्ष सीधे खडे हैं। उनकी हरियाली उस समय भी कम नही होती, जब कि छ-छ फुट ऊँची बर्फ की तहें उनके ऊपर जम जाती हैं।

निस्सदेह, वे ही उस महान वनमाली कृषक की कृपा और प्रेम के सर्वथा योग्य पात्र हैं।

भगवान् महादेव के बच्चे—कोमल हृदय पक्षिगण एव हरित स्कन्ध वृक्ष ही—यहाँ राम के एकमात्र सगी हैं। नारायण स्वामी नीचे मैदानो में भेज दिया गया है। कम से कम दो वर्ष तक राम से भेंट न करने की उसे आज्ञा हुई है। एक नवयुवक आकर प्रतिदिन भोजन बना जाता है और रात किसी समीपवर्ती ग्राम में काटता है। सबसे समीपवर्ती ग्राम भी यहाँ के तीन मील से कम दूर नही हैं।

पहाडियो पर केवल आध मील चढकर राम इस पर्वत (बसूस) की चोटी पर चढ जाता है। वहा से सभी पवित्र हिमस्रोत—केदार, बदरी सुमेरु, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी और कैलाश स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

'केदार खण्ड' में इस स्थान का विस्तारपूर्वक वर्णन है। 'योग वासिष्ठ' के निर्माता ने आश्रमवास के लिये ऐसा ही उपयुक्त स्थान चुना था। बडा भाग्य है कि अभी तक इधर कोई बस्ती नही हैं और न ही सडक निकली है। मस्ती, आनन्द! राम के आनन्द के विषय में मत पूछो। राम की सर्वश्रेष्ठ कृति, कुछ वर्षों के अनन्तर नीचे मैदान में प्रकाशन के हेतु भेजी जायेगी। उसी से राम के हृदय में न समाने वाली आह्लाददायिनी शान्ति का कुछ अनुमान हो सकेगा। कृपया उस समय तक कोई राम से भेंट करने की बात न सोचे।

ईश्वर परमात्मा ही एक मात्र सत्य है।

(इसके बाद एक उर्दू की कविता है, जिसका भाव इस प्रकार है)

> रात्रि में यदि प्यारे से भेंट न हुई,
> तो फिर आँखों की ज्योति मेरे किस काम की ?
> जो पडा सो रहा हो निष्प्राण कब्र में—
> उसे भला क्या मिलेगा—
> कब्र के ऊपर की हरी-भरी घास से ?
> भला या बुरा लोग कहते हैं,
> मेरे बारे में।
> जब शरीर से ऊपर उठ गया मैं—
> तब उनकी प्रसन्नता और रोष
> सब हो गया बेकार हो !
> पाप और पुण्य, भलाई अथवा बुराई
> हैं सब उसके पास पहुँचने के जीने !
> दो, आग उस सीढ़ी में

अब मुझे उतरने की इच्छा ही नहीं।
ओ दुनिया, तेरा तुझको दे दिया,
फिर जाती क्यों नहीं तू ?
मुझे तेरी जरूरत ही नहीं
अब नहीं करूँगा तेरी आवभगत।
लो, नाचूगा अब तो अपने प्रभु के साथ,
न कोई साज, और न कोई रोक,
व्यय है जीवन (जहाँ ब्रह्म की श्वास नहीं)
कब्र में कीडे चुन-चुन खा जायेंगे,
और कहाँ है वह कब्र, इस शरीर के अतिरिक्त।
यह देहात्मा भी धोखा निकली,
ओ हो ! अब तो कृपा करके
भगा दो, उडा दो उसे—
सदा के लिये !

प्रयाग के कुम्भ के अवसर पर आपका दिया हुआ व्याख्यान बहुत सुन्दर रहा। राम ने उसकी एक प्रति टेहरी महाराज को भेंट की। प्यारे, सुनो, वेदान्त कोई धोखाधडी नही है और न कोई इस ससार का अस्तित्व ही है। वह जो इसे सत्य मानता है, अवश्य नष्ट होगा। एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है। हाँ, हाँ, निश्चय, निश्चय ही। ओम ! ओम

—राम

— ० —

निम्नलिखित पत्र भी राय साहब बैजनाथ को लिखा गया था—

ॐ

वशिष्ठ आश्रम
जून का अन्त, १६०६

ब्रह्मभाव में स्थित होने पर यह सारा ससार ही सौन्दय का स्फुरण, आह्लाद का प्रकाश, आनन्द का अजस्र स्रोत-सा बन जाता है। जब दृष्टि की समीपता नष्ट हो गयी, तब फिर हमारे लिए असुन्दर और अमगल कुछ भी नही रह जाता। सारा ससार ही निमल और सुन्दर हो उठता है। प्रकृति की शक्तियाँ सचमुच हमारे हाथ पैर और अन्य इन्द्रियों की भाति काम करने लगती हैं।

आत्मा ही आनन्द है, वही सब कुछ है। अत आत्म-साक्षात्कार का अर्थ है

देखने से राम सत, चित आनन्द के अनन्त सागर में हिलोरें लेने लगते थे। वे तो आनन्द के पूण समुद्र हो चुके थे। लोक-कल्याण के निमित्त वे अपने पत्रो, लेखों, व्याख्यानो एव वार्तालाप में उस आनन्द को अभिव्यक्त करते थे—

वशिष्ठ आश्रम

आज सध्या समय वर्षा रुक गयी। तरह-तरह के अद्‌भुत वेश धारण करने वाले मोटे-पतले बादल विभिन्न दिशाओ में उड रहे है। सूय के प्रकाश से चमत्कृत ये बादल स्वय अपनी चमक से सम्पूण दृश्य को आभामय सरोवर में परिणत कर देते ह। आकाश-मण्डल के ये खिलाडी बालक कैसे तरह-तरह के लुभावने रग धारण करते है। ओ हो, कौन चित्रकार उनका यथार्थ चित्रण कर सकता है? कौन निरीक्षक उनके क्षण क्षण पर बदलने वाले रग और छायाओ का विश्लेपण कर सकता है? चाहे जिघर दृष्टि डालो, गुलाबी, नारगी बैंगनी, हरे-पीले रगो की दमक से आँखें तृप्त हो जाती है। उनके क्षणिक परिवर्तनो का क्या कोई वणन हो सकता है? हाँ, इस दृश्य के बीच कभी-कभी उस चिरन्तन, मधुर, शस्य श्यामला भूमि पर हमारे नेत्र गड जाते है। आभा के इस अनुपम वैभव से स्वत आनन्द का उद्रेक होने लगता है और राम की आँखो से वरबस प्रेम के आँसू झरने लगते ह। बादल विलीन हो जाते है, किन्तु एक अमर सदेश हमें छोड जाते हैं। क्या वे प्रभु के पास से अमत का प्याला भर-भर कर लाते हैं और फिर उसी के पास चले जाते है? सासारिक आकर्षक वस्तुओ की ठीक ऐसी ही स्थिति होती है। वे उधर होते है और क्षण भर राम की प्रभा छितरा कर न जाने कहाँ विलीन हो जाते ह! पागल ह वे सचमुच, जो इन नाशवान बादलो के प्रेम में फँस जाते ह। जानबूझ कर ही लोग इन नश्वर वस्तुओं के चचल बादलो को पकडने की जिद करते है और उनके लोप होने पर बच्चो की भाँति रो पडते है। कैसे मजे की बात है! ओ हो, राम तो अपनी हँसी किसी प्रकार नही रोक पाता।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपना सारा समय इन बादलो (दृश्य जगत्) को शरीर से घोंसते में नही घुमेडते। उनकी उपस्थिति में, उनके सहवास में मनुष्य अपेक्षाकृत आसानी से साक्षी का आसन ग्रहण कर सकता ह। भौतिक दृष्टि से वनस्पति-जगत में उतना ही, शायद उससे भी अधिक सघर्ष, प्रयास और अस्थिरता होती है, जितनी कि किसी सभ्य मानव-समाज में देखी जाती है। किन्तु उस समय उसका सघप भी आकपण का विषय बन जाता है, जबकि मनुष्य देवदार, चीड आदि के कानन में अपने आप को उनसे पृथक समझता हुआ निर्द्वन्द्व विचरता है। प्रकाश रूप साक्षी को उस सघप से कोई कष्ट नही होता। जिस प्रकार कोई भी

कि हम अपनी ही आत्मा को सच्चिदानन्द मानें, जो सम्पूर्ण ससार के परदो में झाँक रहा है।

अखिल ब्रह्माण्ड, मेरी ही आत्मा का स्थूल रूप होने के कारण अत्यन्त मीठा, स्वय साक्षात माधुर्य है। फिर मै किसे दोष दूँ? और किसकी आलोचना करूँ?

ओ परम सुख! सब कुछ मै ही तो हूँ। ओम्

सफलता और विफलता (अभाव) के विषय में आध्यात्मिक नियम बिलकुल स्पष्ट है। वेदो ने उसे किस सुन्दर ढग से अभिव्यक्त किया है—'जहाँ किसी ने अपने हृदय के अन्तस्तल में छोटी बडी किसी वस्तु पर अपना दिल जमाया, उसे सत्य माना, अपने विश्वास के योग्य समझा, बस अनिवार्यत या तो वह पदार्थ उसे छोड जायेगा, या देगा धोखा।' यह नियम गुरुत्वाकर्षण के नियम से भी अधिक ठोस अधिक सत्य है। एक मात्र सत्यस्वरूप आत्मरूप भगवान हमें मार मार कर ससार की अनित्यता का पाठ पढाया करता है, जिससे हम किसी भी वस्तु को सत्य मान कर कभी उसके भ्रम में न पडें।

कोई वस्तु, कोई वैचित्र्य—
ज्ञानी को बन्द नहीं कर सकता, भीतर—अज्ञान में,
किन्तु सर्वोपरि सूर्य की भाँति वह तो,
दुर्ग पर विजय पाकर निश्चय
चमकेगा भीतर और बाहर।
आकाश की भाँति वह स्थिर रहेगा,
जिसमें बादल आते जाते हैं,
जो अनादि दिवस के साथ रहता है एकरस
उसमें कभी—
क्या कोई अन्तर आता है कभी?

जब तक किसी भी प्रकार की कोई इच्छा या वासना मनुष्य के हृदय में निवास करती है, तब तक आत्म साक्षात्कार नही हो सकता, नही हो सकता! यह अटल सत्य, ध्रुव नियम है।

—राम

— o —

इसी प्रकार एक और पत्र में स्वामी राम ने प्रकृति सौन्दर्य के निरीक्षण के माध्यम से चरम सत्य का उदघाटन किया। सामान्य से सामान्य वस्तुओं के

देखने से राम सत, चित् आनन्द मे अनन्त सागर में हिलोरें लेने लगते थे। वे तो आनन्द मे पूण समुद्र हो चुके थे। लोक-कल्याण के निमित्त वे अपने पत्रो, लेखो, व्याख्याना एव वार्तालाप में उस आनन्द को अभिव्यक्त करते थे—

वशिष्ठ आश्रम

आज सध्या समय वर्षा रुक गयी। तरह-तरह के अद्‌भुत वेश धारण करने वाले मोटे-पतले बादल विभिन्न दिशाओं में उड रहे है। सूय के प्रकाश से चमत्कृत ये बादल स्वय अपनी चमक से सम्पूर्ण दृश्य को आभामय सरोवर में परिणत कर देते ह्। आकाश-मण्डल के ये खिलाडी बालक कैसे तरह-तरह के लुभावने रग धारण करते ह। ओ हो, कौन चित्रकार उनका यथाथ चित्रण कर सकता है? कौन निरीक्षक उनके क्षण क्षण पर बदलने वाले रग और छायाओ का विश्लेपण कर सकता है? चाहे जिधर दृष्टि डालो, गुलाबी, नारगी बैंगनी, हरे-पीले रगो की दमक से आँखें तृप्त ही जाती है। उनके क्षणिक परिवर्तनो का क्या कोई वणन हो सकता है? हाँ, इस दृश्य के बीच कभी-कभी उस चिरन्तन, मधुर, शस्य श्यामला भूमि पर हमारे नेत्र गड जाते हैं। आभा के इस अनुपम वैभव से स्वत आनन्द का उद्रेक होने लगता है और राम की आँखो से बरबस प्रेम के आँसू झरने लगते ह। बादल विलीन हो जाते हैं, किन्तु एक अमर सदश हमें छोड जाते हैं। क्या वे प्रभु के पास से अमृत का प्याला भर-भर कर लाते हैं और फिर उसी के पास चले जाते हैं? सासारिक आकपक वस्तुओ की ठीक ऐसी ही स्थिति होती है। वे उधर होते ह और क्षण भर राम की प्रभा छितरा कर न जाने कहाँ विलीन हो जाते है। पागल ह वे सचमुच, जो इन नाशवान बादलों के प्रेम में फँस जाते हैं। जानबूझ कर ही लोग इन नश्वर वस्तुओ के चचल बादलो को पकडने की जिद करते ह और उनके लोप होने पर बच्चा की भाँति रो पडते हैं। कैसे मजे की बात ह! ओ हो, राम तो अपनी हँसी किसी प्रकार नही रोक पाता।

कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अपना सारा समय इन बादलो (दृश्य जगत्) को शरीर से घोसले में नही घुसेडते। उनकी उपस्थिति में, उनके सहवास में मनुष्य अपेक्षाकृत आसानी से साक्षी का आसन ग्रहण कर सकता है। भीतरी दृष्टि से वनस्पति जगत में उतना ही, शायद उससे भी अधिक सघर्ष, प्रयास और अस्थिरता होती हैं, जितनी कि किसी सभ्य मानव-समाज में देखी जाती है। किन्तु उस समय उसका सघप भी आकपण का विषय बन जाता है, जबकि मनुष्य देवदार, चीड आदि के कानन में अपने आप को उनसे पृथक समझता हुआ निर्द्वन्द्व विचरता है। प्रकाश रूप साक्षी को उस सघप से कोई कष्ट नही होता। जिस प्रकार कोई भी

इस जगल में मगल के साथ विचर सकता है, उसी प्रकार जब वह व्यक्ति नगरों की हलचल में निर्द्वन्द्व भ्रमण करता है, जो अपने आप शरीर के साथ तादात्म्य न रखता हुआ अपने शरीर को उस जगल का केवल एक वृक्ष मात्र समझ लेता ह, उसके लिये ससार और स्वर्ग में कोई अन्तर नही रह जाता। सारी सृष्टि आनन्द का उद्यान बन जाती है। वे सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्त्तनो को ध्यानपूवक देखने और उन्हें यथाथत लिपिवद्ध करने में ही व्यतीत कर देते ह। शोक, इन जीवो को क्या कहा जाय? उनके चारों ओर प्रभा का सरोवर लहरें मार रहा ह और वे उसमें अपने प्रकाश की प्यास बुझाने की परवाह नही करते। ऐसे ही लोगों को दुनिया वैज्ञानिक और दार्शनिक कहती है। वे वाल की खाल निकालने हा में डूबे रहते है। उन्हें प्यारे के ज्योतिमय मस्तक का पता नही चलता, जिसके बालों की खोज में ये लगे रहते है। इसीलिये तो राम की हँसी रोके नही रुकती।

कैसा धन्य और आनन्दमय है यह, जिसकी दृष्टि नाम-रूप के इन बादलों में कुण्ठित नही होती, जो उस आकपक और लुभावने प्रकाश के सहारे उसके आदि स्रोत (आत्मा) तक पहुँच जाते है, जिनका प्रेम वास्तविक लक्ष्य (परमात्मा) को बेधता है, जो बीच ही में, रास्ते में सूख जाने वाले चश्मो की भाँति पथभ्रष्ट न होकर सागर तक पहुँच जाते है। मन को प्रसन्न करने वाले सम्बन्धों को नाश होना ही है। वे तो मात्र चिट्ठीरसा है। बस, प्रभु के उस प्रेमपत्र का सावधानी से सँभालो, जो वे तुम्हारे लिये लाये है। दियासलाई की काडी को तो शीघ्र जल ही जाना है, किन्तु धन्य है वह जिसने उसके द्वारा अपना दीपक स्थायी रूप से जला लिया है। कोयला और भाप तो अल्पकाल में समाप्त हो जायग, पर भाग्यवान है वह नाव जो घातक विनाश के पूव ही अपने घर (बन्दरगाह) पर जा लगती है। जीवित यहा वही रह सकता है, जो प्रत्येक पदाथ को ईश्वर की ओर अग्रसर होने का साधन बना लेता है, जिसे ससार की प्रत्यक वस्तु में परमात्मा की झाकी दिखलायी देने लगती ह। यह वहत ससार, उसके नक्षत्रगण उसके पवत और सरितायें, उसके राजा एव वैज्ञानिक है, सब उसी के लिये बनाये गये है। यह निस्सन्देह बिलकुल सत्य है और राम तुमसे सत्य ही सत्य कहता ह।

खेत और प्राकृतिक दृश्यो का स्मरण मात्र चित्त को पुलकित और आनन्दित कर देता है। इसके विपरीत नगरो की धूल और धूल भरी सडको की स्मृति हमारे चित्त की सहज आनन्दावस्था को विकृत कर देती ह। प्रकृति के मनोरम दृश्य मनुष्य में सकीणता की भावना नही भरते, बल्कि उनके सान्निध्य में मनुष्य शुद्ध, चेतन, साक्षी का भाव आसानी से ग्रहण कर सकता है। ब्रह्मज्ञान का वह अतुल

नीय प्रकाश निर्द्वन्द्व दर्शन के रूप में प्रकट होता हुआ, सारी सृष्टि, समस्त दृश्य जगत का प्राण रूप प्रतिभासित होता है।

प्राण-सरिता सवेग प्रवाहित हो रहा है। परमात्मा के अतिरिक्त और किसका अस्तित्व है ? जब मेरे सिवा कोई दूसरी वस्तु है ही नही, फिर मुझे भय किसका हो ? प्राण मात्र मेर प्रभु का प्राण है, उसके सिवा कोई है नही, मैं भी तो वही हूँ। सारा ससार हिमालय का आनन्द-कानन है। जब प्रकाश होता है, तब समस्त पुष्प राशि विहँसने लगती है, पक्षीगण कलरव करने लगते है, निर्झर हर्ष से नृत्य करने लगते ह। यहाँ उजालो का उजाला, प्रकाश का सागर लहरा रहा है, आनन्द की वायु वह रही है।

इस सुन्दर कानन में राम हँसता है, गाता है और ताली बजा कर नाचता है।

क्या कोई राम की खिल्ली उडाता है ? अरे, यह तो वायु की सरसराहट है। क्या कोई दिल्लगी करता है ? अरे, यह तो पत्तियो की खडखडाहट है। राम का ही प्राण निर्झरों में, देवदारो में, पक्षियों में, वायु की सनसनाहट में श्वास ले रहा है।

वसून की चोटी (वशिष्ठ आश्रम)

आनन्द, आनन्द ! चन्द्रमा छिटक रहा है। चारो ओर शुभ्र शान्ति का सागर उमड रहा है। राम की तृण शय्या पर चन्द्रिका क्रीडा कर रही है। साधारण से अधिक ऊँची श्वेत गुलाब की झाडियाँ, जो इस पवत पर पूर्ण निर्भय और उन्मुक्त हो अन्धाधुन्ध उगती हैं, अपनी छाया से चन्द्रप्रकाशित शय्या को इस प्रकार सजाती है और झूम झूम कर ऐसी आह्लादित होती हैं, मानो वे उस शान्तियुक्त चन्द्रिका के छोटे-छोटे स्वप्न हो, जो राम के सम्मुख निर्द्वन्द्व भाव से साते हैं।

> सो जा, मेरे बच्चे सो जा।
> ले, ले नींद में ही गुलाबी स्वप्नों का मजा।

यमुनोत्तरी, गगोत्तरी, सुमेरु, केदार और बदरी की हिम-नदियाँ (ग्लैशियर) यहाँ से इतनी पास मालूम होती है, मानो हम हाथ बढाकर उनका स्पर्श कर सकते हैं। वास्तव में हीरक प्रभा से देदीप्यमान शिखरो का एक अर्द्धवृत्त इस वशिष्ठ आश्रम को परिवेष्टित किये है। मणि-माणिक जैसे इन पवतों के हिमाच्छादित शुभ्र शिखर एक साथ चन्द्रिका के क्षीर-सागर में स्नान करते है और शीतल

पवन के झोके के रूप में उनकी गम्भीर सोऽहं के श्वास प्रश्वास की ध्वनि यहाँ निरन्तर सुनायी देती है।

इस पर्वत की बर्फ अब प्राय सारी की सारी पिघल चुकी है और चोटी के समीप का विस्तीर्ण, उन्मुक्त क्षेत्र पूर्णत नीले, गुलाबी, पीले और श्वेत पुष्पों से लद गया है। इन पुष्पो में से कोई कोई तो अत्यधिक सुगन्धित है। लोग वहाँ जाने के घबराते है, क्योकि उनकी धारणा है कि वह परियो का उद्यान है। उनकी इस धारणा का प्रत्यक्ष फल यह है कि देवताओ का यह सुरम्य अरण्य प्राकृतिक सौन्दर्य को नष्ट करने वाले अपवित्र मनुष्यो के ससग से एकदम सुरक्षित है। राम इस पुष्प शय्या पर बडी कोमलता से, अत्यधिक सावधानी से विचरण करता है, कारण यह है कि वह अपने पैरों को ककश दाब से किसी नन्हे से मुसकराते हुए फूल के मुख को कुचलना नही चाहता।

कोयल, फाख्ता एव अन्य सगीत-प्रिय पक्षीगण अपनी कोमल और सुरोली तान से नित्य प्रात काल राम को रिझाते है और उसका मनारजन करते ह। कभी कभी विकराल वेशधारिणी मक्षिका भी गुफा की छत के समीप आकर अपनी अनोखी रहट जैसी सगीत ध्वनि के साथ भनभनाने लगती है। उसकी इस विचित्र ध्वनि से राम की हँसी रोके नही रुकती। मध्याह्न के समय पक्षिराज गरुड आकाश में इतने ऊँचे उडते है कि काले बादलो के साथ एकरूप हो जाते है। यही गरुड तो विष्णु भगवान् को अपनी पीठ पर सवार कराते हैं न ?

समीपवर्ती पवतीय सरोवर के चारो ओर हरे भरे कानन के दिग्गज वृक्षा का कैसा जमघट है, मानो कोई सुरम्य नगर बसा हो। भला, इन्हें कौन सी शक्ति एकता के सूत्र में पिरोये हुये है ? सब 'पृथक पृथक न कोई सम्बन्ध, न कोई व्यक्तिगत नाता रिश्ता। हाँ, उनका एक सामाजिक सगठन अवश्य है, क्योंकि आखिर वे सबके सब उसी सरोवर में ही तो अपनी अपनी जड़ें फलाये हुए है। उसी एक पानी का प्रेम उन्हें आपस में बाँधे हुये है। अत उसी एक सत्—सत्य के प्रेम और भक्ति में हमें एक हो जाना चाहिये। हम एक आनन्द-कानन में एक हृदय में, एक राम में आकर मिलें।

जगदेवी का सौन्दर्य

जलवृष्टि ने यमुन पर्वत के शिखर की प्राय सभी गुफाओ को भील बना दिया था। अत शिखर-स्थित अप्सराओं के उद्यानों को राम ने छोड दिया। वह नीचे उतर कर एक अत्यन्त मनोरम, उच्च और चौरस हरे भरे मैदान में ठहर गया। यहाँ सुरम्य समीर नित्य अठखेलियाँ किया करती है। श्वेत और पीत

चमेली अन्य अनेक महोदर पुष्पों के साथ यहाँ राशि राशि में उत्पन्न होती है। रक्तवर्ण, गुलाबी और रंग बिरंगे जंगली फूलों की तो यहाँ बाढ़-सी आयी है। अभी-अभी नयी बनायी हुई झोपड़ी के एक ओर एक विशाल हरे भरे मैदान को दो द्रुतगामी निर्झर दोआबा-सा बना दिये हैं। सामने का चित्रपट कितना चित्ताकर्षक है—प्रवाहित जल, नयी-नयी कोंपलों से आच्छादित पहाड़ियां, लहरियादार जंगल और खेत। हरियाली के बीच-बीच में नंगी, चिकनी शिलायें राम के लिए सिंहासन और मेजों का काम देती हैं। यदि छाया की आवश्यकता होती है, तो पास के कुंज सहर्ष उसका स्वागत करते हैं।

तीन घंटा में ही जंगल निवासी गडरियों ने एक कुटिया तैयार कर दी। अपनी शक्ति भर उन्होंने उसे मेंह से अगम्य बनाया। रात्रि में आँधी और पानी का भयंकर तूफान आया। प्रत्येक तीन-तीन मिनट पर बिजली चमकती थी और भयंकर गर्जन होता था। उस गर्जन से समीप के पर्वत कँप-कँप कर दहल उठते थे। भगवान् इन्द्र लगातार तीन घंटे तक अपना वज्र घुमाते रहे। अंधाधुंध वृष्टि हुई। बेचारी झोपड़ी बुरी तरह चूने लगी। ऐसे भयंकर तूफान का सामना करना उसके बूते से बाहर था। छत ने जवाब दे दिया। राम का पुस्तकों को भीगने से बचाने के लिये छाता खोलकर रखना पड़ा। कपड़े पानी से भीगकर लथपथ हो गये। हाँ, झोपड़ी में काफी घास बिछी होने कारण, कीचड़ न हो पाया। किन्तु झोपड़ी में बिछी घास भी पानी के चूने के कारण तर-बतर हो गयी। राम को इस अपार जलवृष्टि के बीच मछली और कछुवे के जीवन का आनन्द आया। उस रात जल-जीवन के अनुभव ने राम को एक विशेष आनन्द दिया।

अपने जीवन की पूरी आयु में से एक रात कम कर दो और बिलकुल न सोचो—

धन्य है वह झंझावात जो हमें प्रभु के संसग में लाकर खड़ा कर देता है—'ओ, पर्वतों को हिलाने वाले प्यारे, मैं तुझे किसी भी कीमत पर, ओ वज्र, मैं तुझे सैकड़ों गुने मूल्य पर, हजारों गुने मूल्य पर भी बेचने के लिये तयार नहीं हूँ। तू तो मेरे लिय अनन्त सौन्दय का आगार है।'

'ओ शक्र (सवशक्ति सम्पन्न) चाहे तू दूर दूर (गरजते हुये बादलों में) निवास करे, ओ वृत्रघ्न चाहे तू मेरे हाथ के पास (सरसराती वायु के रूप में) आ जा, यहाँ तो प्रत्येक समय आकाश-मण्डल में गूंजने वाले गीत (चित्त को भेदने वाली प्रार्थना) तेरे लिये निकलते रहते हैं, जो लम्बी अयाल वाले घोड़ा की भाँति तेरी सवारी के लिये प्रस्तुत किये जाते हैं। फिर तू तेजी के साथ उसके समीप क्यों न

आयेगा, जिसने (अपने जीवन) का रस तेरे लिये निचोडा हो। आ, मेरे हृदय में पैठ और मेरे जीवन की सुरा (सोम) का पान कर।'

मनुष्य इसलिए नही बनाया गया कि वह अपना सारा जीवन छोटी-छोटी शकाओं और समाधानो में खपा दे। ओ, यदि मैं ऐसा करूँ तो मेरी क्या गति होगी? इस मूर्खता का क्या परिणाम होगा? मैं कसे जीवित रहूँगा? राम को कम से कम उतना गौरव तो रखना ही चाहिये जितना कि पानी की मछलियाँ, हवा की चिडियाँ, नही, नही, धरती के पेड रखते है। उन्हें कभी किसी ने क्या झझावात की तेजी पर अथवा धूप की प्रखरता पर बडबडाते सुना है? ये तो प्रकृति के सुर में सुर मिला कर ही जीवित रहते है। मेरी आत्मा, मैं ही स्वय जलरूप से घनघोर वर्षा करता हूँ। तूफान में मेरा बल कितना सुन्दर खिलता है। हृदय में सदैव 'शिवोऽह' की हूक उठती रहती है।

दिन और रात—एक भी ऐसी नही जाती, जब पानी की एक तेज बौछार न मार जाती हो। राम नित्य ही अपने पर्वत पर्यटन में इसी घनघोर वृष्टि में आता है। यहा आस पास, पडोस में कोई गुफा भी नही, अत गरजने वाले घन ही राम के लिये छाता बन जाते है और राम उनकी अपूर्व वर्षा का स्वाद लेता है—ओ, कसा दिव्य!

कैसे आनन्दमग्न है वे कानन के देवदार और चीड आदि के वृक्ष, जो कँपते और थरथराते रहते हैं, फिर भी अपने शरीर को गगा की झाग की ठडी फुहार का निशाना बनाने में कभी कुण्ठित नहीं होते।

ओ वैसा सौभाग्य कब प्राप्त होगा, जब झझावात की शीतलता, प्रलय के सौन्दर्य के आगे, हम सहर्ष अपना वक्षस्थल खोल सकें?

× × ×

नारायण स्वामी को स्वामी राम की बीमारी एव भोजन छाजन की कुव्यवस्था की सूचना भेजी गयी। उन्हें इस सनसनीखेज खबर का भी पता चल चुका था कि स्वामी राम के पीछे पुलिस हाथ धोकर पड गयी है और उन पर कडी निगरानी रख रही है। अत उन्होंने अपने प्रचार का कार्यक्रम स्थगित कर दिया। १९०६ के मई महीने में वे वशिष्ठ गुफा के लिये रवाना हुये। नारायण स्वामी जब वशिष्ठ गुफा पहुँचे, तब उन्होंने राम को एक शिला पर लेटे पाया। बीमारी के कारण उनका शरीर ककाल-मात्र दिखलायी पडता था। वहाँ पहुँचने के दो दिन के पश्चात् नारायण भी बीमार पड गये। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि गेहूँ के अभाव में आटे में अन्य प्रकार के अन्नों का मिश्रण दिया जाता था। व अहारा उनके स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद था। अत वे उस गुफा को

छोडकर छ मील और ऊपर चले गये। यह स्थान इतना रमणीक था कि स्वामी राम इसे अप्सराओं का उद्यान कहा करते थे। नारायण स्वामी ने तो अपने रहने के लिये भृगुगगा के तट पर एक छोटी-सी झोपडी बना ली, किन्तु राम ने गुफा में ही रहना पसन्द किया। यह गुफा पहली गुफा की ऊँचाई से और अधिक ऊँचाई पर थी। सुन्दर भोजन और भृगुगगा के स्वास्थ्यवर्द्धक जल से नारायण स्वामी का स्वास्थ्य सुधर गया। किन्तु स्वामी राम के स्वास्थ्य में सुधार का कोई चिह्न नही दिखायी पडा। बल्कि वास्तविकता तो यह थी कि स्वास्थ्य और अधिक खराब हो गया। स्वामी राम ने अन्न का परित्याग कर दिया और वे मात्र दूध पर रहने लगे। परिणाम स्वरूप ज्वर छूट गया, किन्तु उनके शरीर पर मास नही चढा। वे अत्यधिक क्षीणकाय हो गये थे।

स्वामी राम का समीपस्थ पडोसी एक विशाल अजगर था, जो पास की गुफा में रहता था। इन गुफाओ के सामने एक छोटी घाटी थी। घाटी के उस पार, राम की गुफा के ठीक सम्मुख एक सिंह की माद थी। जगल का सिंह, अध्यात्म-जगत के सिंह की गुफा के समीप से प्राय गुजरता था, किन्तु उसने कभी राम की गुफा में प्रविष्ट होने का चेष्टा नही की। स्वामी राम की गुफा बहुत अधिक खुली थी, अत पानी से रक्षा का साधन नहीं था। जलवृष्टि होने पर जल गुफा में चला जाता था। इससे उनके वस्त्र एव पुस्तकें भीग जाती थी। एक बार सात दिना तक लगातार वृष्टि होती रही। उनकी गुफा जलधार से भर गयी। अत बाध्य होकर राम को उसे छोडना पडा। वे कुछ मील तक नीचे उतर आये और एक पहाडी के पास खुले क्षेत्र में अपना डेरा जमाया। पास में गडरियो का निवास था। वे यदा कदा राम का दर्शन करने आया करते थे। उन्हें अपने समीप पाकर, गडरियों को बडी प्रसन्नता हुयी। कुछ ही घण्टों में उन्होने राम के लिये एक छोटी-सी सुखद कुटिया तैयार कर दी। नारायण भी स्वामी राम से लगभग पाँच मील की दूरी पर पृथक् रहते थे।

इस नये स्थान पर स्वामी राम को कुछ ही दिन हुये थे कि पूर्णसिंह पडित जगतराम के साथ वहाँ पहुँच गये। नारायण जी तुरन्त बुलाये गये।

पूर्णसिंह को ज्ञात हुआ कि स्वामी राम एकदम परिवर्तित हो गये ह। उन्होने स्वामी राम के इस परिवर्तन की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है—

"वे अब बहुत बदल गये थे, उनका आह्लाद कम हो रहा था। क्षण-क्षण पर फूट पडने वाला प्रफुल्लता का प्रवाह नीचे गहराई में पैठ गया था। चलते समय वे जब कभी फिसलते और गिर पडते, तो झट उनके मुँह से निकलता 'ओ, देखा, राम ने अपने प्रियतम को भुला दिया है, तभी तो गिरा है, नही तो गिरना

कैसा ! पहले हम भीतर गिरते हैं और फिर बाहर। बाह्य-पतन तो केवल परिणाम है। तुम सदैव भीतर का ध्यान रखो। श्वास श्वास पर प्रियतम की याद करो। उसके बिना एक क्षण भी व्यतीत न हो।' सध्या समय वे अपने आप गाने लगते, ताली बजाते और नाचते थे। वे पक्के वैष्णव जैसे हो गये थे। उन्हें देख कर हमें कुछ चैतन्य महाप्रभु के हरि-सकीर्तन का स्मरण हो रहा था। इन्हीं दिनों उन्होंने स्वर्गीय जज लाला बैजनाथ की उपासना-विषयक हिन्दी पुस्तक के लिये भूमिका लिखी थी। वह छोटा लेख स्वामी जी की तत्कालीन मानसिक स्थिति का यथार्थ चित्रण करता है। उन दिनों वे वशिष्ठ आश्रम में निवास करते थे।"

वेदों की व्याख्या के सम्बन्ध में स्वामी राम ने वशिष्ठ गुफा में अपना अभिप्राय पूर्णसिंह से इस प्रकार अभिव्यक्त किया था—

"एक दिन राम एक शिला पर बैठा हुआ था। आकाश मेघाच्छन्न था और बूंदें रिमझिम रिमझिम पड़ रही थीं। बड़ा सुहावना समय था। राम स्नान करके उठा ही था कि उसे ऐसी अनुभूति हुई कि वह एक स्त्री है और अपने पति—परमात्मा की प्रतीक्षा में बैठी है। इस दिव्य भाव के आवेश राम का सारा हृदय उद्वेलित हो गया। रक्त में सनसनी फैल गयी और प्रत्येक नस और नाड़ी वीणा के तार की भाँति झंकृत हो उठी। सारी प्रकृति शृंगार रस से आतप्रोत होने लगी। राम—स्त्री रूप राम—चुपचाप इस आशा में बैठ गया कि उसका पति—परमात्मा—कब आकर उसे निहाल करेगा। राम का हृदय मन ही मन प्रार्थना करने लगा। 'हे प्रभु, हे भगवान्। आओ, जल्दी आओ और मुझे सनाथ करो। मैं तुझे अपने गर्भ में धारण करना चाहती हूँ। अब तो ये प्राण तेरे हाथ में हैं।' भावावस्था से बाह्य जगत में आने पर सकल्प हुआ कि राम वेद पढ़ेगा और पुस्तक खोली कि पुस्तक खोलते ही जो भी मन्त्र सामने दिखलायी देगा, उसी को पढ़ने लगेगा। ग्रंथ खोलते ही देखता क्या है कि वही मन्त्र सामने है जिसमें राम के हृदय की ठीक तत्कालीन दशा का विवरण है उपस्थित है। अपने लिये वेदों के पढ़ने और उनकी व्याख्या करने का ठीक यही ढग है और प्राचीन परम्परागत पद्धति के अनुसार उनकी व्याख्या करना विद्वानों का ढग है। और इसी तरह विद्वानों को करना भी चाहिए। परन्तु ज्यों-ज्यों मनुष्य के मस्तिष्क और उनके विचार उन्नत होते जाते हैं, त्यों-त्यों इस प्राचीन परम्परागत अर्थों में से एक से एक नूतन सैकड़ों-हजारों उन्नतिशील व्याख्यायें अपने आप निकलती रहती हैं और सदा निकलती रहेंगी। हम अपनी आँखों के सामने प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि मूल बाइबिल, जो पहले थी, वह अब भी है, किन्तु समयानुकूल विचारों के अनुसार

उसकी सैकड़ो व्याख्यायें बराबर होती चली जाती हैं।"[1]

उन दिनो राम आत्म भक्ति के पीछे दीवाने हो गये थे। उन दिनों की उनकी सभी कृतियो में यह भावना पूर्णरूपेण अभिव्यक्त होती है। पाचन क्रिया की गड़बड़ी के कारण, स्वामी राम केवल दूध और फल पर रहते थे। वसून के आस-पास के पहाड़ी लोग बड़ी श्रद्धा से उन्हें कुछ फल पहुँचा देते थे। ये अनजान, भोले भाले पहाड़ी राम के गम्भीर दर्शन को तिल मात्र भी समझने में असमर्थ थे, किन्तु अपनी श्रद्धा और भक्ति के कारण स्वामी राम को साक्षात् परमात्मा का स्वरूप समझते थे। स्वामी राम में अलौकिक आकर्षण था। तभी तो वे भोले भाले पहाड़ी उनके ऊपर अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिये उद्यत थे। स्वामी राम प्रेम और ब्रह्मज्ञान के साकार विग्रह बन चुके थे। उनकी गम्भीरता बहुत अधिक बढ़ गयी। बाह्य मस्ती अन्तर्मुखता में परिवर्तित हो गयी। वेदान्त का बाह्य-उन्माद पूर्ण शान्ति और गम्भीरता में बदल गया था। पूर्णसिंह जी को यह प्रतीत हुआ कि राम की मस्ती और खिलखिलाहट समाप्त हो चुकी है। उन्होंने स्वामी राम से प्रश्न किया, 'आप इतने परिवर्तित क्यों हो गये हैं? इतने उदासीन और विरक्त क्यो दिखलायी पड़ते हैं?' स्वामी राम ने उत्तर दिया, "पूरन जी, लोगो को केवल मेरे फूलों से मतलब है। मुझे तभी सूंघना चाहते हैं, जब मैं फूलों के रूप में खिलता हूँ। किन्तु इस बात का पता नहीं है कि मुझे कितनी एकान्त साधना करनी पड़ती है। जनसमूह से पृथक होकर सुनसान एकान्त स्थलों में, अँधेरी गुफाओं में, अपनी जड़ों को पुष्ट करने में कितनी घोर तपश्चर्या और परिश्रम करना पड़ता है। जिससे फूल और फल बराबर मिलते रहें। इस समय मैं अपनी जड़ (मूल आत्मस्वरूप) में हूँ। मौन एक महान् कार्य है। उपदेशों की फुलझड़िया छुड़ाने की अपेक्षा मौन महत्तर कार्य है। गौडपादाचार्य और गोविन्दाचार्य की मौन तपश्चर्या का ही यह परिणाम था कि शंकराचार्य को ऐसी देदीप्यमान सफलतायें प्राप्त हुई। उनके मौन के बिना यह कैसे सम्भव होता?"[2]

स्वामी राम ने आध्यात्मिक स्थिति की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर ली थी, शरीराध्यास का नितान्त अभाव हो चुका था। मुण्डकोपनिषद् की यह श्रुति स्वामी राम की ब्राह्मी स्थिति पर अक्षरशः सत्य घटित होती है—

प्राणो ह्येष सर्वभूतैर्विभाति
विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी

---

१ दी स्टोरी आफ स्वामी राम, पूर्णसिंह (प्राचीन संस्करण) पृष्ठ १७५।

२ दी स्टोरी आफ स्वामी राम, पूर्णसिंह (प्राचीन संस्करण) पृष्ठ १७७।

आत्मक्रीड आत्मरति क्रियावा—
नैष ब्रह्मविदा वरिष्ठ ॥
(मुण्डकोपनिषद्, मुण्डक ३, खण्ड १, श्रुति ४)

अर्थात "ये सर्वव्यापी परमेश्वर ही सबके प्राण है। जिस प्रकार शरीर की सारी चेष्टायें प्राण के द्वारा होती ह, उसी प्रकार इस विश्व में भी जो कुछ हो रहा है, परमात्मा की शक्ति से ही हो रहा है। समस्त प्राणियो में उन्ही का प्रकाश है और वे ही उन प्राणियों के द्वारा प्रकाशित हो रहे ह। इस बात को समझने वाला ज्ञानी भक्त कभी भी बढ बढकर बातें नही करता, क्योकि वह जानता ह कि उसके अन्दर भी उन सर्वव्यापक परमात्मा की अखण्ड शक्ति अभिव्यक्त ह। फिर वह किस बात का अभिमान करे? वह तो लोक सग्रह के निमित्त कर्म करता हुआ सब की अन्तरात्मा पूर्णब्रह्म में ही क्रीडा करता है। वह सदा परमात्मा में ही रमण करता है। ऐसा यह परमात्मा का ज्ञानी भक्त ब्रह्मवेत्ताओ में भी अति श्रेष्ठ ह।"

पूर्णसिह ने स्वामी राम का दर्शन और सत्सग उनकी इसी स्थिति में किया था। उनका कथन इस प्रकार है, "हिन्दू जीवन का जो आदर्श, वेदान्त दर्शन के अनुसार जो आत्मनिष्ठ का स्वरूप है, वे उसके समीप पहुँच गये थे। कई दिनों तक लगातार पदमासन लगाये बैठे रहते, न शरीर का ध्यान और न शीत उष्ण आदि द्वन्द्वो की परवाह! वे कह उठते, 'कहता कौन है कि ससार ह? ससार न कभी हुआ, न है और न कभी होगा।' जब हम लोग उनके पास पहुँच जाते, तब वे कहते, 'तुम लोग आ आ कर राम को यह सुनावा देना चाहते हो कि तुम भी सच्चे हो। किन्तु राम परम सत्य को नही भूल सकता। प्रभु के, अपनी अन्तरात्मा के विस्मरण के कारण ही समस्त सम्बन्धो की सृष्टि होती ह।' यह स्पष्ट था कि ज्यों-ज्यों उनका दार्शनिक अध्ययन गम्भीर होता जाता था, त्यों-त्यो व बाहर से उदासीन होते जाते थे। वे बार बार, क्षण क्षण सच्चे भक्त की भाँति मन को आत्मा में लीन करते रहते थे। उस समय उनके हृदय में प्रेम की प्रधानता थी। वे आत्मा को प्रेम रूप में ही देखते सुनते थे। और प्रेम रूप में ही रहना सहना और श्वास लेना चाहते थे।

"एक दिन की बात है हम लोग बाक (ओक) वृक्षों की छाया में भ्रमण कर रहे थे। राम मुझसे बोले, 'तुमने विवाह करके अच्छा किया ह। गृहस्थ जीवन में स्थायित्व है। तुम्हारी पत्नी को आत्म-साक्षात्कार में तुम्हारा सहायक बनना चाहिये। आओ, दोनों ससार का त्याग कर दो और आकर यहाँ इन पहाड़ियों

की चोटी पर निवास करो। जैसे राम इस पहाडी पर रहता है, वैसे ही तुम लोग भी यहाँ से कुछ दूर दूसरी पहाडी पर रह सकते हो।

"मुझे यह याद नही कि फिर कैसे हरद्वार में उनकी पत्नी और बच्चे के आने की बात चल पडी। वे मुझसे कहने लगे, 'ब्रह्मानन्द की माँ का चेहरा कैसा दिव्य था ? उस दिन तो यह ज्योतिर्मयी प्रतीत हो, रही थी। क्या तुमने इस पर ध्यान दिया था ?'

"तुम्हें याद होगा कि राम ने तुमसे हरद्वार में कहा था कि राम के घरवालों को वापस लौटा दो और तुम इतने क्रुद्ध हो गये थे। राम के भी हृदय है, किन्तु उस समय राम ने सन्यास-वेश के नियमो को मानना ही ठीक समझा, जिसे उसने स्वेच्छा से धारण किया है। उन लोगो से मिलना अस्वीकार करना केवल नियम की बात थी। मनुष्य तब-तक अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों को कैसे भूल सकता है, जब तक उसके वक्षस्थल में हृदय की धडकन विद्यमान है, फिर वह तडप चाहे राम के लिये हो, चाहे मनुष्य के लिये। कवियो को जड पाषाण के रूप में कैसे बदला जा सकता है ? आध्यात्मिक विकास का यह आशय नही कि हम भावना-विहीन हो जायें। कवि कीटस को लोगो ने केवल कटु शब्दो से मार डाला, उत्थान जितना ऊँचा होता है, भावना भी उतनी प्रबल और सतेज हो जाती है।'

"पूरन जी, राम को यह मालूम न था कि अब इस देश में यह गेरुवा वस्त्र स्वतन्त्रता का प्रतीक नही रह गया। गुलामो ने यह वेश धारण करना प्रारम्भ कर दिया है और उन्होने इसे नियमा में इतना अधिक जकड दिया है। उसे ऐसा दिखाऊ बना दिया है कि अब राम को उससे बेचनी मालूम होने लगी है। अब की बार जब राम नीचे मैदानों में जायेगा, तो जनता के सामने, भरी सभा में इस वेश की धज्जियाँ उडा देगा। राम घोषणा करेगा कि अब सन्यासी के रक्तवर्ण वेश द्वारा स्वतन्त्रता की साधना नही की जा सकती, क्योंकि वह परतन्त्रता का द्योतक बन गया है।"[1]

वशिष्ठ आश्रम में उन्होंने सन्यासी-वेश का परित्याग भी कर दिया। उन्होने भूरे पट्टू का अँगरखा और काले धूमिल वर्ण का रगीन साफा बाँधा था। सन्यासी का लम्बा चौडा झोंगा उतार कर उन्होने कुरता और पायजामा पहनना प्रारम्भ कर दिया था। और पूर्णसिह से पूछते थे, "देखो, अब तो राम भारी अमामा (मुसलमानी साफा) बाँधे हुये मौलवी जसा मालूम होता है, न ?"

१ दी स्टोरी आफ स्वामी राम, पूर्णसिह (प्राचीन सस्करण) पृष्ठ १७७-१७८

पूर्णसिंह के उपर्युक्त संस्मरणों से सामान्य पाठको को स्वामी राम के जीवन के सम्बन्ध में भ्रम की सभावना हो सकती है। एक भ्रम तो यह कि स्वामी राम सन्यास धम एव उसकी वाह्य वेशभूषा के विरोधी हो गये थे और दूसरा भ्रम यह कि वे अब गृहस्थ धम में अधिक स्थायित्व समझने लगे थे। इसलिये इनका निराकरण कर देना अनिवार्य प्रतीत होता है जिससे कि कही राम के व्यक्तित्व को गलत न समझ लिया जाय।

स्वामी राम सच्चे सन्यास धर्म के पुजारी अपने जीवन की अन्तिम श्वास तक रहे। उन्होने पूर्णसिंह से एक बार बातचीत के प्रसग में कहा था कि जब ईश्वर से विमुखता होती है, तभी बाहरी सम्बन्धी रिश्ते भले लगते ह। सन्यास धर्म का अभिप्राय है लोकेषणा, वित्तेषणा आदि का पूर्णतया त्याग। जो सन्यासी होकर नाम यश, धन सपत्ति के चक्कर में पड गया हो, निस्सन्देह ही वह सन्यास धम के विमुख जा रहा ह। बहुत से लोग गेरुआ वस्त्र पहन कर, दण्ड कमण्डल लेकर भजन का स्वाद नहा ले पाते, शिष्य शिष्या बनाने के फेर में पडकर, धाखाधडी करके, शिष्य का धन हर कर, धर्म के अगुवा उसी रूप में बने हुये ह, जस अन्धा अन्धे को मार्ग दिखा रहा हो ऐसे सन्यासियो की भारत में न कमी रही ह और न रहेगी। पहले भी इन्द्र ने ऐसे छद्मवेषधारी पाखण्डी सन्यासियो का अपने वज्र से शिरच्छेद किया था। हाँ, राम को ऐसे सन्यासियो से अवश्य विरक्ति रही होगी, तभी सन्यास धम के विरोध में कुछ बातें निकलनी सभव ह। रह गया भगवा वस्त्र के प्रति उनका वैराग्य। उन्होने कहा 'यह वेशभूषा गुलामों की वेशभूषा बन गयी है।' सचमुच जो व्यक्ति इन्द्रिय निग्रह के बिना गेरुआ धारण कर लेता है, और इन्द्रिया के विषया का दास है, वह 'गुलाम' ही है। अत राम का इन्द्रिय लालुप व्यक्तिया को 'गुलाम' कहना सर्वथा समीचीन था। इस सम्बन्ध में एक प्रश्न और हो सकता है कि उन्होने स्वय क्यो वशिष्ठ आश्रम में रहते समय सन्यासी-वेशभूषा का परित्याग किया ? स्वामी राम निर्द्वन्द्व महापुरुष थे। वे मानापमान से परे उच्चकोटि के परमहस थे। परमहस जगत् के सभी व्यक्तियों से निराला होता है उसकी मौज आयी, तो शाहशाहाना वस्त्र धारण कर लेता है, मौज आयी, तो फकीरी लिबास और मौज हुयी तो नग्न अवधूत ! अत उनके इस कथन का पूर्वापर सम्बन्ध जोडे बिना इस सम्बन्ध में कोई निष्कर्ष निकाल लेना समीचीन नही होगा।

अब रही दूसरी शंका कि स्वामी राम अपने अन्तिम जीवन में गृहस्थ आश्रम में अधिक स्थायित्व देखने लगे थे। यह बात भी निराधार है। स्वामी राम ने सदैव से सन्यास धर्म को सभी आश्रम धर्मों से श्रेष्ठ माना ह। उन्होंने

भक्त धन्नाराम को लिखे एक पत्र में इसकी वृहत व्याख्या भी की ह। उन्होने स्पष्टत इस बात का उल्लेख किया है कि गृहस्थ और विरक्त अथवा प्रवृत्तिमार्गी और निवृत्तिमार्गी दोना ही प्रकार के ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ और पूजनीय हैं। जैसे बी० ए० और एम० ए० दोनो ही समाज में सम्मान की दृष्टि से देखे जाते ह, किन्तु एम० ए० का स्थान बी० ए० की अपेक्षा अधिक ऊँचा होता है, ठीक उसी भाँति प्रवृत्तिमार्गी जनक और निवृत्तिमार्गी शुकदेव दानो ही ब्रह्मज्ञान की दृष्टि से पूजनीय है, पर शुकदेव का दर्जा जनक की अपेक्षा अधिक ऊँचा है। यदि उनमें इस अनुभूति के प्रति दृढता न हाती, तो नारायण जी को सन्यासी क्या बनाते ? फिर उन्होने पूर्णसिह से गृहस्थ धम में स्थायित्त्व के ऊपर क्यो बल दिया ? बात यह है कि स्वामो राम पूर्णसिह को गृहस्थ धम के लिये अधिक उपयुक्त समझते थे। पूर्णसिह ने जापान दश में स्वामी राम की दखा-देखी भावुकतावश सन्यास धर्म अवश्य ग्रहण कर लिया, पर वे उसे निभा नही पाये। अत उन्हाने सन्यास धम का परित्याग करके गृहस्थ धम में प्रवेश किया। स्वामी राम उनकी इस निष्कपटता से प्रभावित हुये और उन्होंने भावुक पूर्णसिह से गृहस्थ धम में स्थायित्त्व की बात कही। जो राम फूल-पत्तियो को भी पीडा नही पहुँचाते थे, वे राम भावप्रवण पूर्णसिह के हृदय को कसे ठेस पहुँचाते ? अत गृहस्थ धर्म में स्थायित्त्व की बात जो राम ने कही है, वह पूर्णसिह के लिये व्यक्तिगत बात है। उससे यह धारणा बनाना कि स्वामी राम की सन्यास वृत्ति से विरक्ति हो गयी थी, स्वामी राम के व्यक्तित्त्व के साथ घनघोर अन्याय करता है। दूसरी बात यह भी है कि ब्रह्मज्ञानी जगत में जोडने के लिये आता ह, तोडने के लिये नही। वह महान् समन्वयवादी होता ह। पूव जन्मों के सस्कारा एव प्रारब्धानुसार जा व्यक्ति जिस आश्रम में स्थित है, ब्रह्मज्ञानी उसका वही से उत्थान करता है। उसमें किसी प्रकार का बुद्धि भेद नही उत्पन्न करता। स्वामी राम ने इसी दृष्टि स पूर्णसिह से गृहस्थ धम के स्थायित्त्व पर जोर दिया। पूर्णसिह से उन्होंने जो अन्तिम वाक्य कहा, वह उल्लेखनीय है "आमो, दानों दुनिया को छोड दा और आकर यहाँ इन पहाडियों की चोटी पर निवास करो।" अत ऊपर के विवेचन से यह भली-भाँति स्पष्ट हा जाता है कि स्वामी राम सन्यास धम को सर्वोपरि मानते थे। हाँ, यह बात अवश्य थी कि साधक इसके योग्य हो।

वशिष्ठ आश्रम में स्वामी राम की आन्तरिक स्थिति का चित्रण पूर्णसिह ने इस प्रकार किया ह—

"स्वामी राम अत्यधिक अध्ययनशील थे। मैं उनके अध्ययन के लिये कुछ पुस्तकें ले गया था। वे अपनी कुटिया में प्राय लेटे अथवा बैठे रहते। मैं इन

पुस्तकों की ओर उनका ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा करता। यदा-कदा उनमें से एकाध उठा कर उनके हाथों में रख देता था। किन्तु मैंने देखा कि अब उनसे कुछ भी नही पढा जाता था थोडी ही देर में पुस्तक उनके हाथो से नीचे गिर पडती और आँखो से अश्रुधारा की लडी निकलने लगती। अकस्मात प्यार भरे निरपेक्ष शब्द उनके मुह से निकल पडते, 'पूरन, अब राम से पढा नही जाता।' क्या यह उनकी आत्यन्तिक थकावट थी अथवा अन्तर्मुखता की चरम सीमा?

"उनके शिष्य नारायण स्वामी का कथन था कि यह सब शैथिल्य उनकी पाचन क्रिया की गडबडी के कारण है। वे बहुत दिनों से अनुपयुक्त आहार कर रहे हैं। स्वामी राम के प्रति अनन्य निष्ठा और भक्ति होने के कारण वे कभी-कभी उनसे उलझ पडते थे और वाद-विवाद करने लगते थे कि स्वामी जी सामान्यावस्था में आ जायें।"[1]

वास्तविकता तो यह है कि स्वामी राम अन्तर्मुखता की पराकाष्ठा पर पहुँच गये थे। बाह्य वस्तुओं का आकर्षण उनके लिये सदैव के लिये समाप्त हो चुका था। जब चाक अत्यधिक तेजी में चलता रहता है, तब वह हमारी दृष्टि में एकदम स्थिर सा प्रतीत होती है। बात यह है कि गति की एक सीमा के अनन्तर हमारी आखें काम नही कर पाती। इसी भाँति स्वामी राम आत्म-साक्षात्कार की अन्तिम सीमा तक पहुँच गये थे, अत बाह्य विषयो के प्रति नितान्त उपराम बन गये थे। सामान्य जन की सामान्य बुद्धि से उनकी स्थिति का अनुमान नही लगाया जा सकता। आदि शकराचार्य जी जब समस्त लोक-सग्रह के कार्यों से निवृत्त हो गये, तो उनकी भी यही स्थिति हो गयी थी। स्वामी विवेकानद जी की वृत्ति भी अन्तिम दिनो में इसी प्रकार उच्च भूमिका में स्थित हो गयी थी।

अष्टावक्र सहिता में इस अद्वितीय ब्राह्मी स्थिति का चित्रण बडे सुन्दर ढग से किया गया है—

व्यापारे खिद्यते यस्तु निमेषोन्मेषयोरपि।
तस्यालस्यधुरीणस्य सुख नान्यस्य कस्यचित्॥

(अष्टावक्र-सहिता, अध्याय १६, श्लोक ४)

अर्थात् "उसी आलस्य-धुरीण (परम आलसी) को सच्चा आनन्द प्राप्त होता है, जिसे आँखों का खोलना और बन्द करना भी क्षोभ का कारण बन जाता है अन्य व्यक्ति को नही।"

---

१ दी स्टोरी आफ स्वामी राम, पूर्णसिंह (प्राचीन सस्करण) पृष्ठ १८० १८१

यह बात नही थी कि नारायण जी स्वामी राम की इस स्थिति से अनभिज्ञ थे। वे इसे भली भांति समझते थे। उनकी इस स्थिति से भली-भांति परिचित थे। किन्तु वे स्वामी राम को उत्तेजित कर उन्हें सामान्यावस्था में लाना चाहते थे, ताकि ससार का अधिकाधिक कल्याण हो। पर राम तो उत्तेजना आदि से नितान्त ऊपर उठ चुके थे।

कुछ वप पूव स्वामी जी की इस अन्तर्मुखी वृत्ति की प्रगाढता के संबध में अमेरिका के कुछ मनोवैज्ञानिकों ने यह भविष्यवाणी की थी—"स्वामी जी की भाँति जो व्यक्ति परमानन्द की अतिशयता में अहर्निश नितान्त अन्तर्मुख हो गया हो, जिसे अपने शरीर का बोध ही न हो, वह अधिक समय तक शरीर के सीमित दायरे में बद्ध नही रह सकता।"

पूर्णसिंह ने स्वामी राम की इस उपरामता का जीता जागता चित्र अपनी पुस्तक में अंकित किया है—

"वास्तव में उन दिनों स्वामी नारायण को स्वामी राम की इस शान्ति से बडी बेचैनी हो रही थी। एक दिन हम सब ने निश्चय किया कि 'पावली कान्ता' से होते हुये 'बुद्ध केदार' की हिम शिलाओं को देखें। स्वामी जी भी तैयार हो गये। चलना प्रारम्भ हुआ। हम लोग वसून की चोटी पर चढ गये और हिमरेखा के ऊपर विस्तृत हरे-भरे मैदान में पहुँचते-पहुँचते सध्या हो गयी। सामने एक गडरिये की झोपडी थी। गडरिये ने बडी अभद्रता दिखलायी। हम लोगों को ठहराने के लिये वह किसी प्रकार तैयार न हुआ। मैंने प्रार्थना की। स्वामी नारायण ने भी बहुत समझाया। पर सब व्यर्थ। किन्तु जब स्वामी राम सीधे आगे बढे और उनके पीछे-पीछे हम सब हुये, तब गडरिया बडी प्रसन्नता से हमारा स्वागत करने लगा। हम लोग रात्रि भर गडरिये की चटाइयों में तम्बू में बडे आराम से रहे। प्रात स्वामी राम बाहर निकले और मुझे हिमालय की हिम शिलाओं के भव्य और सुन्दरतम दृश्य दिखलाने लगे, जो बदरीनारायण से यमुनोत्तरी तक फैले हुये थे। प्रात कालीन सूर्य के स्वर्णिम प्रकाश में उनकी शोभा देखते ही बनती थी। उसी समय मुझे ज्ञात हुआ कि वे और आगे जाने के लिये तैयार नही है। उनका कहना था, 'इस घूमने से—निरुद्देश्य घूमने से क्या लाभ ? यदि हम अपने प्रियतम को ही भूल जायँ, तो पहाडियों पर विचरण करने से क्या लाभ हो सकता है ? घर में पडे रहना सौ बार धन्य है यदि वह 'प्रियतम सदा हमारे साथ विद्यमान रहे।' मानो उनकी इस इच्छा-पूर्ति के निमित्त मैंने उन्हें अपनी घायल एँडियाँ दिखलायी और आगे चलने में अपनी असमर्थता प्रकट की। उन्होंने नारायण स्वामी को बुलाया और कहा, पूरन जी आगे नहीं बढ़

सकते। उन्हें इतने दूर दूर तक घूमने का अभ्यास नही है। अतएव हमें आश्रम में वापस लौट चलना चाहिये।' स्वामी नारायण मेरी ओर अभिमुख होकर बोले, 'सचमुच, आप जैसो के साथ चलने में बुद्धिमानी नही है। आप पैरों के इतने कच्चे है। स्वामी जी, आप स्वयं तो चलना नही चाहते और पूरन जी का बहाना करते है। मुझे विश्वास है कि यदि आप चलेंगे, तो वे अस्वीकार नही करेंगे।'

'स्वामी नारायण की बात काफी कडवी थी, किन्तु स्वामी राम ने केवल इतना कहा, 'नारायण जी, हम लोगो को लौट ही जाना चाहिये।' अत हम सब लौट पडे।

"अनेक अवसरों पर नारायण स्वामी इसी प्रकार के कठोर वाद विवादो में उलझ पडते थे। स्वामी राम उन्हें सदैव यही याद दिलाते, 'कृपया वाद विवाद बन्द कीजिये।' उन्होने आज्ञा दे रखी थी कि हम लोग अपनी वार्ता के बीच किसी व्यक्ति विशेष की चर्चा न करें, चाहे हमारे हृदय में उसके विरुद्ध किसी प्रकार भी का कटु विचार क्यो न हो। पर हम सब बार-बार ऐसी गलतियाँ कर बैठते थे और स्वामी राम टोकते रहते थे।

"एक बार नारायण स्वामी बडी निर्दयता से किसी व्यक्ति की काट-छाँट कर रहे थे। स्वामी राम ने उन्हें आश्रम के आदेशों की याद दिलाई। स्वामी नारायण ने उत्तर दिया 'नही, नही, स्वामी जी, मैं उसकी आलोचना नही कर रहा हूँ, बल्कि उसकी मानसिक दशा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर रहा था।' इस पर बडी देर तक हँसी के कहकहे लगते रहे।

"यहाँ पर उन्हें एक दिन एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था—'भारतीय पुलिस आपके पीछे पडी है। वह आपको एक महान क्रान्तिकारी और विद्रोही नेता मानती है, जो भारत में ब्रिटिश शासन के तख्ते को उलट देना चाहता है।' स्वामी जी बोले 'उनसे कह दो राम अपनी रक्षा के निमित्त एक शब्द भी कहना नही चाहता। वे इस शरीर के साथ चाहे जैसा व्यवहार कर सकते हैं। मैं जो कुछ हूँ उससे अन्यथा नही हो सकता। एक भारतीय होने के नाते मैं सदा अपने देश की स्वतन्त्रता चाहता हूँ। स्वतन्त्र तो वह एक दिन होगा ही। किन्तु यह राम देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा, अथवा अन्य सहस्रों राम उसे प्राप्त करेंगे, यह कोई नहीं कह सकता।"[1]

हरी शर्मा नामक एक सज्जन ने जंगल में राम के दर्शन के लिए दो बार प्रयास किये पर वे अपने मनोरथ में असफल रहे। तीसरी बार वे पूर्णसिंह के

---

१ दी स्टोरी आफ स्वामी राम, पूर्णसिंह (प्राचीन संस्करण), पृष्ठ १८१ १८३

साथ हो लिये। सारे रास्ते भर पूर्णसिंह शर्मा जी को समझाते रहे कि हिमालय की यात्रा के समय शरीर पर जो कष्ट गुजरे, उनकी ओर तनिक भी ध्यान नही देना चाहिये। तपश्चर्या में कष्ट तो होता ही ह। इतना समझाने के बावजूद भी हरी शर्मा उस स्थान पर पूर्णसिंह के पहुँचने के अनन्तर, एक दिन बाद पहुँचे। उनका मन इतना अधिक उद्विग्न हो गया था कि स्वामी राम ने वापस लौट जाने की सलाह दी। केवल दो दिन तक ठहरने के पश्चात हरी शर्मा नीचे मैदानो में वापस लौट गये और पूर्णसिंह और पडित जगतराम स्वामी जी के साथ लगभग एक महीने तक रहे।

राम उन दिनों अन्न नही ग्रहण करते थे। इसकी जानकारी पूर्णसिंह को नही थी। अत वे सदैव की भाँति अपने साथ भोजन के लिये स्वामी राम को आमन्त्रित किया। राम ने उनका आमन्त्रण स्वीकार करके दो तीन दिनो तक लगातार उनके साथ भोजन किया। परिणाम यह हुआ कि वे अपच एव ज्वर से पीडित हो गये। जब पूर्णसिंह को नारायण स्वामी द्वारा यह जानकारी प्राप्त हुई कि स्वामी राम अन्न ग्रहण करने के कारण बीमार पडे है, तब उन्होने अपना आग्रह समाप्त कर दिया।

अपौष्टिक भोजन के कारण पूर्णसिंह और पंडित जगतराम भी कई दिनो तक ज्वर की चपेट में आ गये। नारायण स्वामी ने स्वामी राम के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा, "या तो आप किसी नगर में रहिये, यदि नगर न चल सकिये, तो कम से कम टेहरी में रहिये। यदि यहाँ भी न चल सकिये, तो मुझे आज्ञा दीजिये कि समीपवर्त्ती गाँवो में जाकर पौष्टिक आहार-सामग्री ले आऊँ अथवा किसी मित्र द्वारा उसका प्रबन्ध करूँ।' स्वामी राम टेहरी जाने के लिये राजी हो गये।

नारायण स्वामी, राम स्वामी से पहले चले, ताकि स्वामी राम को पुस्तकालय को ले जाने का प्रबन्ध कर सकें। पूर्णसिंह का अवकाश भी समाप्तप्राय था। अत उन्होने अपने मित्र पडित जगतराम को लेकर नारायण स्वामी के ही साथ जाने का निश्चय किया। १९०६ के सितम्बर में नारायण स्वामी और पूर्णसिंह वशिष्ठ आश्रम से चल पडे। पूर्णसिंह ने अपने विदाई वाले दिन का वणन कडो भावमयी एव रोचक शैली में किया है—

"जिस दिन मैं वशिष्ठ आश्रम से चलने वाला था, उस दिन उन्होने कहा, 'मुझे नहला दो।' मैंने उनका कमण्डल और तौलिया उठाया और निर्झर की ओर उनके पीछे-पीछे चल पडा। अब वे स्वय कोई काम नही करना चाहते थे। मैंने उनका वस्त्र उतार कर उनका बदन उघाडा। वे जाकर निर्झर में खडे हो गये। मैंने अपने हाथो से उन्हें नहलाया। प्रात काल से ही आकाश मेघाच्छन्न

था। जब हम लोग कुटिया पर वापस पहुँचे, तो मेरे चलने का समय हो चुका था। स्वामी जी ने मुझसे कहना प्रारम्भ कर किया, 'पूरन जी, चाहे जहाँ जाओ, रहो सदा इसी स्वर्ण भूमि में—अपने आन्तरिक प्रकाश में। और उस कार्य को आगे बढाना, जिसे राम ने प्रारम्भ किया है। क्योंकि राम अब मौन हो जायेगा।'

"मैंने उत्तर में कहा, 'स्वामी जी, जब मैं आऊँगा, तब आपको गुदगुदाऊँगा और आप हँसेंगे, बोलेंगे। मैं आपकी मौन प्रतिज्ञा भग कर दूँगा।"

"उनके नेत्र लाल हो उठे। उन्होंने अत्यन्त गभीर होकर कहा, 'मौनी को कौन फिर से बुलवा सकता है?' मैं भय के मारे आगे एक भी शब्द न बोल सका।[1]"

पूर्णसिंह, पडित जगतराम और नारायण स्वामी जब वशिष्ठ आश्रम से रवाना होने को हुये, तो स्वामी राम उन्हें छोडने के लिये पहाडी के नीचे बहुत दूर तक आये। वे उस समय झरने से स्नान करके आये थे और केवल गमछा मात्र पहने थे। ठीक उसी स्थिति में, नगे बदन पूर्णसिंह आदि के साथ हो लिये। मद मद फुहारें पड रही थी। पूर्णसिंह की आखो से आसू की झडी लगी थी। राम ने अत्यन्त करुण स्वर में पूर्णसिंह से कहा, "पूरन जी, आप राम की शारीरिक अवस्था देख ही रहे हैं। उसकी कलम और जबान अब जल्दी ही मौन हो जाने वाली हैं। इसे कौन जान सकता है? अब सभवत राम तुमसे नही मिल पायेगा, न ही वह मैदान में लौटेगा। आप अपने को राम में निमग्न करके, रामस्वरूप ही हो जाइये। पढिये, लिखिये और लोक सग्रह निमित्त कर्म कीजिये। अब राम से किसी प्रकार की आशा रखनी व्यर्थ है। राम की इस बातो को सुनकर पूर्णसिंह के नेत्रों से अविरल अश्रुवर्षा होने लगी। जब पूर्णसिंह ने स्वामी राम को अतिम विदाई का प्रणाम किया, तो स्वामी राम उनके प्रणाम का बिना कोई उत्तर दिये, अकस्मात पीठ फेर कर द्रुत गति से दौडने लगे। पीछे मुडकर देखा भी नही। ऐसा प्रतीत होता था कि उन्होंने अपने सभी व्यक्तिगत सबंधो को एक झटके में तोड दिया। वह तेजी राम की अपनी तेजी थी। वैसी तेजी अन्यत्र नही दिखलायी पडती।

पूर्णसिंह ने टेहरी के हाई स्कूल के छात्रो के सम्मुख एक व्याख्यान दिया। टेहरी पहुँचने के एक दिन पश्चात् पूर्णसिंह तो मसूरी के लिये रवाना हो गये और नारायण स्वामी कुलियों का एक दल लेकर वशिष्ठ आश्रम की ओर चल

---

१ दी स्टोरी आफ स्वामी राम, पूर्णसिंह (प्राचीन सस्करण) पृष्ठ १८३ १८४

पड़े। अक्टूबर के प्रारम्भ में स्वामी राम टेहरी पहुँचे। वे टेहरी-नरेश के अतिथि के रूप में सिमलसू वाले 'चन्द्रभवन' में ठहरे। पाँच दिनों के पश्चात् नारायण स्वामी सारे सर सामान के साथ वशिष्ठ-आश्रम से वापस आये और स्वामी राम के साथ ही सिमलसू में ठहरे।

मुश्किल से पन्द्रह दिन बीते थे कि स्वामी राम का एकान्त-सेवन-भाव बड़े जोरों से उमड़ पड़ा। वे गंगा-तट पर ऐसे स्थान की खोज में निकल पड़े, जो सभी ऋतुओं में सुविधाजनक और सुखप्रद हो। अन्त में उन्होंने एक त्रिभुजाकार मैदान की खोज की। यह स्थान राम की 'गंगी' द्वारा तीन ओर काट दिया गया था। एक शताब्दी के ऊपर हुआ जब से यह साधु सन्यासियों का साधनास्थल बना हुआ था। स्वामी केशवाश्रम ने इस स्थान पर लगभग पचास वर्ष तक ऐकान्तिक साधना की थी और सौ वर्ष की आयु में इसी स्थल पर अपने नश्वर शरीर का परित्याग किया था। उनके कई गुरु भाइयों ने उनका अनुसरण करके प्रत्येक ने बीस-बीस वर्ष के ऊपर उसी पुनीत स्थल पर तपश्चर्या की थी। उनकी कुटियों के भग्नावशेष अब भी थे। एक कुटी तो अभी भी रहने योग्य थी। सड़क से इसकी दूरी लगभग एक मील थी। इस स्थल की विशेषता यह थी कि यहाँ गंगा जी उत्तर-वाहिनी थी। ऐसे स्थल बहुत कम हैं जहाँ गंगा उत्तराभिमुख प्रवाहित होती हैं और यमुना पश्चिमाभिमुख। ऐसे स्थान विशेष पुनीत समझे जाते हैं। स्वामी राम ने इस स्थान पर निवास करने का तुरन्त निश्चय कर लिया। गाँव के कुछ व्यक्ति उनके साथ-साथ गये थे। उन्होंने उन ग्रामवासियों से उस कुटी की मरम्मत करने को कहा।

जब यह समाचार टेहरी नरेश को मिला, तो उन्होंने अपने राज्य के पी० डब्ल्यू० डी० के नौकरों को यह निर्देश देकर भेजा कि वे राम के मनोनुकूल कुटिया का निर्माण कर दें। स्वामी राम ने जब टेहरी-नरेश की इस उदारता की बात सुनी, तो वे तुरन्त उच्च स्वर में बोले, "कीर्ति (महाराज कीर्तिशाह) भक्ति की साकार प्रतिमा हैं। राम उसके राज्य से कभी बाहर नहीं जायेगा। उसका शरीर अन्तिम दिनों तक यहीं रहेगा।" और अपने वचन की राम ने पूर्ति भी की।

स्वामी राम के निवास स्थान का निर्माण हो रहा था। अब उन्होंने नारायण के लिये पृथक निवास-स्थल के संबंध में विचार किया। नारायण का सिमलसू के 'चन्द्रभवन' में रहना स्वामी राम ने उचित नहीं समझा। स्वामी राम ने वभरोगी की गुफा में इसके पहले निवास किया था। यह गुफा यहाँ से तीन मील दूर थी और जंगल में गंगा-तट पर स्थित थी। स्वामी राम ने नारायण जी को उसी

गुफा में जाकर एकान्त अभ्यास करने का आदेश दिया और उनसे यह भी कहा कि सप्ताह भर में केवल रविवार को उनसे मिलने आयें। नारायण स्वामी अपना सामान लेकर तुरन्त उस गुफा की ओर चलने को उद्यत हो गये। वे स्वामी राम के पास विदा होने के लिये गये। नंगे-बदन और नंगे सिर राम स्वामी नारायण जी के साथ चले। अपराह्न का समय था। दोनो सन्यासी शान्त भाव से चल जा रहे थे। दिन भर के परिश्रम के पश्चात सूर्य पश्चिम की पहाड़ियो की आट में विश्राम करने जा रहे थे। चरम शान्ति थी। अन्त में स्वामी राम ने अपना मौन भंग किया। उन्होंने गहरी साँस ली और ललकती आखो से नारायण जी को देखते हुये कहा, 'तात अब राम शीघ्र ही शान्त हो जायेगा। कदाचित अब उसकी लेखनी और जिह्वा उसका साथ छोड़ देंगी। तुम देखते ही हो कि राम का शरीर अब उत्तरोत्तर क्षीण होता जा रहा है, उसका मन ससार से अब एकदम भर गया है। किसी भी वस्तु के प्रति उसका आकर्षण नही रह गया है। मुझे अनुभव हो रहा है कि अब मेरा मैदानों को जाना न हो सकेगा। कोई आश्चर्य की बात नही कि राम का शरीर शीघ्र ही निष्क्रिय हो जाय। वह अपनी प्यारी गंगा की गोदी नही छोड़ेगा। यदि राम किसी उत्सव में आमन्त्रित किया जाता है, तो उसके प्रतिनिधि के रूप में तुम उसमें सम्मिलित हो। अत अब तुम अपनी गुफा में जाओ। एकान्त साधन का सतत अभ्यास करो। प्रतिक्षण राम में गहराई से डूबने का प्रयास करो। और वेदान्त के साकार विग्रह के रूप में प्रकट हो जाओ। दु:ख, चिन्ता एवं परेशानी आदि से ऊपर उठ जाओ। अपने साथ सदैव राम के सानिध्य की अनुभूति करो। अपने भीतर और बाहर राम के अस्तित्व की प्रत्यक्षानुभूति करो। वह तुम्हारा शरीर है वह तुम्हारा मन है। वह तुम्हारा सर्वस्व है। वह तुम्हारी ही अन्तरात्मा है। अपने एकान्तवास से स्वयं राम बन कर निकलो।''

स्वामी राम की बातें सुनकर नारायण स्वामी का हृदय बुझने लगा। स्वामी राम की इस वाणी से नारायण जी का मन एकदम उद्वेलित हो उठा। नाना प्रकार की आशंकायें उनके मस्तिष्क में मँडराने लगी। उनके नेत्रों से अश्रु की अपार वृष्टि होने लगी। अन्त में नारायण जी स्वामी राम के चरणों में अपना मस्तक रखकर उभय नेत्रो की गंगा-यमुना की धारा से उनका पद प्रक्षालन करने लगे। स्वामी राम ने अत्यधिक स्नेह से उन्हें उठाकर गले लगा लिया। स्वामी राम की आँखो में से ठंडी अश्रुधार बह कर उनके उष्ण वक्षस्थल को शीतल करने लगी। कुछ क्षणो तक वे मूक भाव से खड़े रहे और परस्पर एक-दूसरे को करुणामयी दृष्टि से निहारते रहे। यह अद्भुत विदाई थी। शरीर दो, मन एक, प्राण एक, अन्तरात्मा

भी एक अन्त में स्वामी राम ने नारायण को यह कहकर विदा किया, "मेरे पुत्र, दुखी मत हो। एकान्त में निरन्तर अध्ययन, मनन, चिन्तन एव आत्मानुसन्धान करो। ध्यान में केन्द्रीभूत हो जाओ। अपने मन को आत्मा में ही अनुरक्त कर दो। जब राम अपने नये निवास स्थान पर जायेगा, तो तुम प्रति रविवार को उससे मिलने आना। इस बीच में राम के शारीरिक वियोग की ओर रत्ती भर भी ध्यान मत देना। उसका पाचभौतिक शरीर शीघ्र ही निष्क्रिय हो जायेगा। इसकी सेवा-शुश्रूषा के सबध में कुछ सोचो ही मत। आत्मोन्नति पर दृष्टि रखो। किसी अन्य का अवलम्ब मत ग्रहण करो। अपने पैरो पर खडे हो, स्वावलम्बी बनो। वेदान्त के मूर्तिमान स्वरूप हो जाओ। ससार के कल्याण के निमित्त उसमें विचरण करो, दृष्टि सदैव आत्मा की अमरता, अखण्डता पर ही होनी चाहिये।" स्वामी राम के ये वाक्य नारायण स्वामी के मस्तिष्क में उनके जीवन-पर्यन्त गूजते रहे। नारायण स्वामी भारी मन से सिर झुकाये अपने नवीन स्थान की ओर चल पडे। वे गन्तव्य स्थान की ओर बढ तो अवश्य रहे थे, किन्तु उनके कदम कहाँ पड रहे थे, इसका ज्ञान उन्हें नही था।

इन बातो का अभिप्राय क्या हो सकता है? क्या स्वामी राम अपनी दह-लीला सवरण करने जा रहे थे? क्या वे चिरकालीन महा समाधि में निमज्जित होना चाहते थे? गगा मैया की गोदी का वे कभी परित्याग नही करेंगे! निस्सदेह ही वे गगा के पुनीत तट को छोडकर अन्यत्र नही जायेंगे। क्या वे गगा जी के वक्षस्थल पर सदैव के लिए सो जायेंगे? नही, नही, इतना शीघ्र स्वामी राम हम लोगो को नही छोडेंगे! नये स्थान में स्वामी नारायण के मस्तिष्क म इसी प्रकार विचार रात दिन मँडराते रहे। नारायण स्वामी इन्ही विचारो में पाच दिनो तक डूबते-उतराते रहे, तब तक शुक्रवार की शाम को उनके पास राम का यह सन्देश प्राप्त हुआ, "आत्मोन्माद, प्रगति का इकरारनामा (नामक निबन्ध) एक या दो दिन में पूरा हो जायेगा। रविवार को चले आओ। इसकी प्रतिलिपि कर लो। इसे 'जमाना' पत्रिका अथवा अन्य किसी पत्रिका में छपने के लिए भेज दो।"

नारायण जी गुरु के अपूर्व मिलन के भावी सुख की कल्पना में आत्मविभोर होकर बडी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे। स्वामी राम ने वियोग के असह्य कष्ट में एक एक दिन एक एक युग के समान बीत रहे थे। शनिवार की सध्या के समय जब स्वामी नारायण गुरु के मिलन की कल्पना में मन ही मन अत्यधिक आनन्दित हो रहे थे कि ठीक उसी समय टेहरी-नरेश का अदली उनके पास पहुँचा और यह सन्देश सुनाया, "स्वामी जी, टेहरी-नरेश ने आपको याद किया है।" नारायण स्वामी ने उत्सुकता वश प्रश्न किया, "क्यों क्या बात है?"

अदली का उत्तर था, "महाराज, स्वामी राम को गगा जी ने ले लिया है। मै आपको खबर देने के लिए भेजा गया हूँ।" जिस क्षण नारायण स्वामी ने यह समाचार सुना, उस क्षण वे हक्के बक्के और स्तम्भित हो गये। सन्ध्या की शान्ति उन्हें मृत्यु की शीतलता के समान प्रतीत होने लगी। वे तत्क्षण टेहरी की ओर दौड पडे और आठ बजे रात को वहाँ पहुँच गये। सारा टेहरी नगर शोकनिमग्न था। वहा के सारे मनुष्यों के ऊपर मुर्दनी छा गयी थी। सब के सब प्रेत की छाया के समान प्रतीत हो रहे थे। सब अधकार में भूतों की भाति घूम रहे थे। सभी की जबान पर यही वाक्य था—'राम कहाँ हैं? ओह राम कहा है?' उस क्षण नारायण स्वामी की दशा बडी विचित्र हो गयी थी। वे शोक में उन्मत्त हो गये। उनके मुख से एक भी शब्द नही निकल पाया। अन्त में किसी प्रकार धैर्य धारण करके नारायण स्वामी ने स्वामी राम के रसोइया, भोलादत्त को बुलाकर पूछा, "मेरे राम को क्या हो गया है?" भोलादत्त ने स्वामी राम के देहावसान की विस्तृत गाथा बताया।

भोलादत्त अपनी आखो की देखी घटना इस प्रकार बतलायी—"स्वामी जी मुझे अपने साथ लेकर स्नान करने गये। मैंने उनसे पहले स्नान कर लिया। स्नान करने के बाद मैं तट पर बैठ गया और देखा कि स्वामी जी नीचे के पत्थरों पर व्यायाम कर रहे हैं। पन्द्रह मिनट के पश्चात वे गगा जी में घुसे। उन्होंने उस स्थान पर स्नान करना प्रारम्भ किया जहा गगा जी की धार अत्यधिक प्रबल थी। वे गले तक जल में स्नान कर रहे थे। मैंने कहा, 'महाराज, आगे न बढ, धार बहुत ही तेज है।' उन्होंने उत्तर दिया, प्यारे डरो मत। मैं तैरना जानता हूँ।' इतना कहकर वे उस स्थान पर चट्टान की भाति अडिग होकर खडे हो गये। उन्होने अपने हाथ पैरों को मला और डुबकिया लगायी। पाच मिनट तक वे उसी प्रकार स्नान करते रहे। तत्पश्चात् फिर डुबकी लगायी। जिस पत्थर पर खडे होकर वे स्नान कर रहे थे धार ने उसे बहा दिया परिणाम यह हुआ कि स्वामी जी फिसल गये और उन्होने अपना सन्तुलन खो दिया और तत्क्षण तेज़ धार में बहने लगे। थोडी दूर बहने के पश्चात वे एक भँवर में फँस गये। मैं अत्यधिक भयभीत हो गया। उनकी सहायता के लिए चिल्लाने लगा। स्वामी जी ने भँवर के बीच से कहा, 'प्यारे! डरो मत। मैं तैरकर निकल आऊँगा।' मैंने देखा कि वे कुछ मिनटो तक भँवर से निकलने के लिए सघर्षरत हैं। जिस समय वे भँवर से बाहर निकले, ठीक उसी क्षण तेज धार ने उन्हें फिर भँवर में ला पटका। मैं पागल की भाँति उत्तेजित हो गया। मैं इधर-उधर दौड कर उनकी सहायता के लिए चिल्लाने लगा। किन्तु आस-पास कोई व्यक्ति नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति महाराजा साहब के स्वागत की तयारी में एक भव्य जुलूस में

सम्मिलित होने के लिए चला गया था, क्योकि महाराजा साहब उस दिन गंगोत्तरी की यात्रा से वापस लौट रहे थे। स्वामी जी अपनी समस्त शक्ति लगाकर भँवर से एक बार फिर बाहर निकल आये। किन्तु वे मध्य धार में पहुँच गये, जहाँ कि धार अत्यधिक तीव्र थी। उनकी श्वास की गति रुकनी प्रारम्भ हो गयी और उनके मुह में जल भरने लगा। ऐसी अवस्था में राम जोर से कहने लगे, 'जाना है तो जाओ। अपनी माँ का स्मरण कर! यदि तेरे भाग्यविधान में इसी भाँति जाना लिखा है तो जाओ।' इतना कहने के बाद उन्हाने 'ॐ' का उच्चारण एक अथवा दो बार किया। अब उनके मुंह में तेजी से पानी घुसने लगा। और उनकी 'ॐ' ध्वनि का प्रयास भी चल रहा था। अब स्वामी जी ने अपने समस्त अगो को सकुचित कर लिया और अपने मन को आत्मा में केन्द्रीभूत कर दिया और धार में लगभग दो सौ फुट तक बहते रहे। तत्पश्चात धार के वेग से उनका शरीर गुहा में प्रविष्ट हो गया। ज्यो ही उनका शरीर आँखो के सामने से ओझल हुआ, त्यों ही तोपों की सलामी की आवाज सुनायी पडी।"

इस प्रकार स्वामी राम के शरीर का अलक्षित होना एव टेहरी के महाराजा का राजधानी में आगमन दोनो साथ साथ घटित हुये। तोपो की गजन ने दोनो महाराजाओ का साथ-साथ स्वागत किया—टेहरो के महाराजा का अपनी राजधानी में प्रविष्ट होने के निमित्त और राम बादशाह का उस राजधानी में प्रविष्ट होने पर जहा, 'जहा', 'कहाँ' का अस्तित्व ही नही ह और जहाँ सत्, चित् आनन्द का शाश्वत सिंहासन विराजमान है।

इस प्रकार १७ अक्टूबर १९०६ को दीपावली के दिन ठीक तैतीस वर्ष पूरा होने पर १२ बजे मध्याह्न स्वामी राम ने अपना शरीर गगा-मैया को समर्पित कर दिया। इस दुर्घटना के कुछ दिन बाद ही स्वामी राम को लिखने वाली मेज पर उनके अन्तिम लेख "आत्मोन्माद प्रगति का इकरारनामा" के अन्तिम पृष्ठ पर एक लिखावट उदू में पायी गयी। उसमें उन्होंने मृत्यु का सम्बोधित करके उसे चुनौती दी थी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका देहावसान आकस्मिक न था। लिखावट इस प्रकार थी—

"इन्द्र! रुद्र! बेरुत! विष्णु! शिव! गगा! भारत!

ओ मौत! बेशक उडा दे इस एक जिस्म (शरीर) को, मेरे और शरीर ही मुझे कुछ कम नही। सिर्फ चाँद की किरणें, चाँदी की तारें पहन कर चैन से काट सकता हूँ। पहाडी नदी-नालों के भेस में गीत गाता फिरूँगा। बहरे मव्वाज (आनन्द के महासागर) के लिबास में लहराता फिरूँगा। मैं ही बादे-खुश-खराम (मनोहर वायु) और नसीमें मस्ताना गाम (प्रातःकालीन समीर की मस्ती)

हूँ। मेरी यह सूरते-सैलानी (मनमौजी मूर्ति) हर वक्त रवानी (हलचल, गति) में रहती है। इस रूप में पहाड़ों में उतरा, मुरझाते पौधों को ताजा किया, गुलों (फूलों) को हँसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाजों को खटखटाया, सोते को जगाया, किसी का आसू पोछा, किसी का घूघट उड़ाया। इसको छेड़, उसको छेड़, तुझको छेड़, वह गया! वह गया! वह गया! न कुछ साथ रखा, न किसी के हाथ आया।"

उपर्युक्त लिखावट की अन्तिम पंक्ति पेंसिल से लिखी गयी थी। स्वामी राम के रसोइये ने फिर बताया, "गगा में स्नान करने के कुछ घंटे पहले स्वामी इन कागजों को लिख रहे थे। जब यह कागज (अभिप्राय यह कि मृत्यु सम्बन्धी अंतिम पत्र) लिखा जा रहा था, तो उनका मुखमण्डल अलौकिक आभा से चमक रहा था, वे अत्यधिक प्रसन्न दिखायी पड़ते थे। साथ ही मोतियों की लड़ी की भाँति अश्रु-बिन्दु उनके नेत्रों से निकल रहे थे वे ध्यान में निमग्न थे। मैं बड़ी देर तक उनके पास खड़ा रहा। किन्तु मेरी अवस्थिति का उन्हें भान न था। ११ बजे दोपहर का समय था। म उन्हें यह सूचित करने गया था कि उनका भोजन तैयार है। पर वे ध्यान में लीन थे। उनकी आँखें मुदी थी। पहले उनके हाथ से पेंसिल छूट कर गिर गयी, तत्पश्चात कागज। वे ध्यान में इतने अधिक डूबे थे कि मेरे खड़े होने का उन्हें पता नही चला। बड़ी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद मैंने धीरे से कहा, 'महाराज आपका भोजन तैयार है।' किन्तु मुझे कोई उत्तर नहीं मिला। दोपहर होने के करीब था। मैं खुद बहुत भूखा था। मुझसे भूख सही नही जा रही थी। कुछ मिनट बीतने के बाद मैंने जोर से कहा, 'महाराज, भोजन तैयार ह।' स्वामी जी ने अपनी आँखें खोल दी और मुझसे पूछा, 'प्यारे क्या कह रहे हो?' मैंने उत्तर दिया, 'महाराज साढ़े ग्यारह बज रहे हैं, भोजन तैयार है। मैं आपके स्नान के लिए ऊपर जल लाऊँ अथवा आप स्वय चलकर गगा जी में स्नान करेंगे?' (बात यह थी कि कुछ दिन पूर्व गगा तट पर व्यायाम करते समय स्वामी जी के घुटने में पत्थर से चोट आ गयी थी। अत उनके स्नान के लिये नीचे से गगाजल लाया जाता था।) स्वामी जी ने मुसकरा कर मुझसे पूछा, 'तुमने भोजन कर लिया है अथवा नही?' मैंने उत्तर दिया, 'महाराज आज मै स्नान करके, तब भोजन करूँगा। आपको स्नान भोजन कराने के पश्चात मैं नहाना चाहता था। अत अब तक कुछ भी नही खाया है।' मेरी इस बात पर स्वामी जी दिल खोल कर हँसे और कौतूहलवश उन्होंने मुझसे पूछा, 'भाई, क्या बात है, जो स्नान करके भोजन करोगे?' (स्वामी जी को आश्चर्य हुआ कि उनका रसोइया भोलादत्त अन्य पहाड़ियों की भाँति हफ्तों स्नान नहीं करता था) मैंने उत्तर दिया, 'महाराज,

आज दीवाली, सक्रान्ति और अमावस्या है। ऐसे शुभ पव के दिन, मैं बिना गगा स्नान किये अन्न नही ग्रहण कर सकता। स्वामी जी बोल उठे, 'अच्छा आज ऐसा पुनीत पव है! तब तो राम भी गगा स्नान करेगा! चलो, साथ साथ चलें' और हम लोग गगा-तट पर साथ साथ गये, जहाँ से स्वामी जी फिर नही लौटे।" अत भोलादत्त के उपर्युक्त कथन से इस बात की भलीभाति पुष्टि हो जाती है कि स्वामी राम ने अपने देहावसान के पूर्व मृ यु को सम्बोधित करके उपर्युक्त बातें लिखी।

स्वामी राम के देहावसान की बात को लेकर कुछ व्यक्तियों ने अनेक प्रकार के ऊहापोह किये हैं। पूर्णसिंह का विचार इस प्रकार है, "मैंने उस समय सोचा था कि इस सदभ के द्वारा राम ने हमें अपनी ही मृत्यु की पूवसूचना दी है। कि तु कुछ कहा नही जा सकता। वे इसी शैली के लेख लिखा करते थे। हाँ, यह ध्यान देने की बात है कि उन्हें मृत्यु की याद आयी उन्होने उसके बारे में सोचा और वह आ गयी! सभव है कि महासमाधि के विचारों ने ही, जो इधर कुछ दिनो से उन पर छाये रहते थे और जिन्हें हम लोग उनके मन और मस्तिष्क की उदासीनता और थकान समझते थे, उनमें उस आत्यन्तिक वैराग्य का भाव पैदा किया हो, जिसे उस समय न म और न कोई दूसरा ही स्पष्ट रूप में सागोपाग देख सकता था। उससे उन्हें लौटाने की बात तो बहुत दूर थी।"[1]

स्वामी नारायण ने अपनी राय इस प्रकार दी है, "स्वामी राम का शरीर इतना अधिक दुर्बल हो गया था कि उन्होंने सोचा कि अब इसके द्वारा ससार का कोई लाभप्रद म त य नही सिद्ध हो सकता। अतएव राम ने उसे गगा जी के हवाले कर दिया। अथवा राम में आ तरिक आनन्द की इतनी अधिक बाढ आ गयी, आत्मानुभूति के आन द की इतनी अधिक प्रगाढता हो गयी, कि समस्त जगत उन्हें शून्यवत प्रतीत होने लगा। ऐसी स्थिति में उन्हें पाचभौतिक शरीर का भार-वहन असह्य प्रतीत होने लगा। अत, उन्होने मृत्यु को आमन्त्रण दिया कि वह इस शरीर को उडा दे।' इसके साथ नारायण स्वामी यह भी स्वीकार करते हैं, "किन्तु स्वामी राम के तेज धार से सघर्ष करने, बचने की चेष्टा करने आदि से उपर्युक्त सिद्धान्तों की पुष्टि नही होती।"[2]

अत यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्वामी राम का देहावसान या तो आकस्मिक हुआ और या उन्होंने स्वय जानबूझ कर अपना शरीर गगा जी को समर्पित कर दिया।

---

१ दी स्टोरी आफ स्वामी राम, पूर्णसिंह (प्राचीन सस्करण) पृष्ठ १८६।

२ कुल्लियाते राम, द्वितीय भाग, पृष्ठ ३३४।

स्वामी राम ने अपने देहावसान के कुछ ही पूर्व मृत्यु को सबोधित करके जो बातें लिखी हैं, उनसे आकस्मिक देहलीला सवरण की कल्पना ता सन्तोषप्रद नही प्रतीत होती। साथ ही आकस्मिक देहावसान की बात राम के बार-बार कह गये, इस प्रकार के वाक्यो से मिथ्या प्रतीत होती है—"यदि राम के पास मृत्यु बिना उसके बुलाये आती है, तो उसकी स्वय मृत्यु हो जायेगी।" जब तक भारत दासता से मुक्त नही हो जाता, तब तक राम अपना शरीर नही छोडेगा।", "राम की आज्ञा के बिना, मौत सांस भी नही ले सकती।", "राम तब तक नही मर सकता, जब तक वह स्वय इस बात का सकल्प नही कर लेता।" यदि राम का देहावसान आकस्मिक मान लिया जाय, तो उनके द्वारा ऊपर दिये हुये बयान शेखी बघारने, डींग हाकने के समान निरर्थक प्रतीत होते है। साथ ही वे सभी व्यक्ति भी झूठे सिद्ध होते है, जिन्होने प्रकृति के ऊपर स्वामी राम का स्वामित्व देखा है और उसका लिखित उल्लेख भी किया है।

क्या स्वामी राम ने शरीर की अत्यधिक दुर्बलता के कारण आत्महत्या की? जैसा कि मृत्यु को सबोधित लिखावट से प्रतीत होता है। किन्तु स्वामी राम के समस्त जीवन पर विहगम दृष्टि डालने से आत्म हत्या वाली बात नितान्त विरोधी प्रतीत होती है। वे तो भीषण से भीषण शारीरिक यत्रणाओ में हँसते रहते थे। बल्कि बीमारी को वे आत्मानुसन्धान के निमित्त परमात्मा का वरदान समझते थे। यदि आत्महत्या की गयी, तो राम ने अपने अन्तिम लेख—'आत्मोन्नाद उन्नति का इकरारनामा' में ससार को क्यो सदेश दिया? जगत को शून्य समझने पर, तो आत्महत्या का कोई प्रश्न ही नही उठ सकता। यदि स्वामी राम ने जगत के प्रति घृणा भाव रख कर आत्महत्या की होती तो उन्होंने अपनी समस्त कृतियो का गट्ठर बाध कर गगा जी में प्रवाहित कर दिया होता। नारायण स्वामी ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि यदि राम ने जानबूझ कर आत्महत्या की होती तो वे अपने बचाव के प्रयत्न के लिये सचेष्ट न हुए होते। सकल्प के परम धनी होने के कारण स्वामी जी का जो भी निश्चय होता, उससे रत्ती भर टस से मस न हुए होते। अत आत्महत्या के निश्चय करने पर, वे किसी भी दशा में अपने को बचाने की चेष्टा नही करते।

अतएव गगा में राम के शरीर के प्रवाहित हो जाने का कुछ अन्य गम्भीर कारण है। बात यह है कि ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि में सभी प्रकार के कार्यों का नितान्त अभाव हो जाता है। वह शरीर भाव से ऊपर उठकर आत्मभाव में स्थित हो जाता है। प्रारब्धानुसार लोगो की दृष्टि में वह शारीरिक एव मानसिक कर्म करता हुआ दिखायी पडता है, किन्तु उसकी वृत्ति सदैव ब्रह्माकार रहती है।

श्रीमद्भगवद्गीता के पाँचवें अध्याय में इसका विश्लेषण इस भाँति किया गया है–

नैवकिञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥८॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥९॥

—श्लोक ९-१०

अर्थात, "हे अर्जुन तत्त्व को जानने वाला ब्रह्मज्ञानी, देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ तथा आँखा को खोलता और मीचता हुआ भी सब इन्द्रिया अपने-अपने अर्थों में बरत रही है, इस प्रकार समझता हुआ, निस्सन्देह ऐसे माने कि मैं कुछ भी नही करता हूँ।"

ब्रह्मज्ञान प्राप्त होने पर अज्ञान और मोह की निवृत्ति तो हो जाती है, किन्तु प्रारब्ध कर्म ज्ञानवान को भी भोगने पडते है प्रारब्ध कर्मों के भोग से कर्म का नितान्त अभाव हो जाता है। मनुष्य की इच्छा स्वतन्त्र होती है। कोई भी ज्योतिषी, व्यक्ति के सुनियोजित कर्मों के संबंध में किसी प्रकार की भविष्यवाणी करने में असमर्थ है। प्रारब्ध कर्मों के फल के संबंध में भविष्यवाणी की जा सकती है। स्वामी राम के संबंध में ज्योतिषियो ने भविष्यवाणी की थी कि इनकी मृत्यु जल में डूबने से तीस और चालीस वर्ष की आयु के बीच होगी। ब्रह्मज्ञानी व्यष्टि भाव से उठकर समष्टि रूप हो जाता है, विश्वात्मा हो जाता है। उसी की आज्ञा से अग्नि और सूर्य तपते है, इन्द्र शासन करते है, वायु बहती है एवं मृत्यु भी अपने कार्य में रत होती है। उसकी आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नही हिल सकता, एक वनस्पति भी नही उग सकती और बादलों से एक बूंद जल भी नही बरस सकता। अत स्वामी राम का मृत्यु के संबंध में अपने स्वामित्व की बात कहना बिलकुल यथार्थ है, वह शत प्रतिशत सही है। किन्तु उन्हें प्रारब्ध कर्म तो क्षय करना ही था। प्रारब्ध कर्म का नाश हो जाने पर उन्होंने मृत्यु को आमंत्रण दिया कि वह उनका शरीर उडा दे। बचने का प्रयास इसलिये दिया कि जीव धर्म है कि वह मृत्यु से बचने का प्रयास करे। शरीर और मन का धर्म है कि मृत्यु से बचा जाय। किन्तु उन्होंने जब यह समझ लिया कि अवसान अपरिहार्य है, तब आत्मस्थ होकर 'ॐ ॐ' का उच्चारण करने लगे और जलधारा पर सवार होकर अपनी अन्तिम बादशाहत की तेजस्विता प्रकट की। उनका देहावसान कितना भव्य था। जिस प्रकार उनका जीवन उदात्त था, उसी प्रकार

उनके पाचभौतिक शरीर का निधन भी महान था। उन्होंने अपने शरीर का उसी भाँति परित्याग किया, जैसे साँप अपनी केंचुली का परित्याग करता है। प्रणव का उच्चारण करते हुये शरीर छोड़ना योगी, ब्रह्मज्ञानी की परम सिद्धावस्था मानी जाती है। श्रीमदभगवदगीता के आठवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने शरीर-परित्याग करते समय प्रणवोच्चारण के माहात्म्य का वर्णन इस भाँति किया है—

ओमित्येकाक्षर ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
य प्रयाति त्यजन्देह स याति परमा गतिम ॥ १३ ॥

—श्लोक १३

अर्थात "जो पुरुष, ॐ ऐसे इस एक अक्षर रूप परब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ रूप मेरा चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।"

इसमें सन्देह नहीं कि पाचभौतिक शरीर भौतिक स्तर पर आत्मा की अभिव्यक्ति का माध्यम है, किन्तु ससार की अन्य नश्वर भौतिक वस्तुओं के समान, इस शरीर की भी एक सीमा निर्धारित रहती है। ब्रह्मज्ञानी को कभी-कभी यह पाचभौतिक शरीर आध्यात्मिक प्रगति में साधक की अपेक्षा, बाधक सिद्ध होता है। कदाचित् इसी भावना से अनुप्रेरित होकर स्वामी राम ने अपने शरीर के विनष्ट होने की बात नारायण स्वामी एव पूर्णसिंह से कही थी। किन्तु अपनी इच्छा से शरीर का परित्याग करने से कर्मों की नयी शृङ्खला का निर्माण हो जाता है। अत स्वामी राम ने प्रारब्ध कर्मों के क्षय की प्रतीक्षा बड़े धैर्य से की थी। प्रारब्ध कर्म के पूर्णतया क्षय होने के पश्चात् उनके शरीर का पात सहज रूप से ठीक उसी भाँति हो गया, जैसे फल पक जाने पर अपने आप डाली को छोड़ देता है।

स्वामी राम की जल-समाधि की घटना के लगभग एक सप्ताह पश्चात्, उनका शरीर सियलसू उद्यान के समीप गगा जी के ऊपर बहता पाया गया। उसी स्थान के समीप, जहाँ शरीर डूबा था। बड़ी कठिनाई से गगा-मैया ने अपने परम प्रिय भक्त, राम का शरीर लोगों को अन्तिम सस्कार करने के लिए दिया। बड़े आश्चर्य की बात यह देखी गयी कि उनका शरीर ज्यों का त्यों था। वह समाधि अवस्था के आसन में स्थित था—पद्मासन की स्थिति में, दोनों हाथ पलथी मारे हुये पैरों पर स्थित, मेरुदण्ड और गर्दन एकदम सीधे, आँखें बन्द और ओठ इस भाँति खुले हुये, जैसे ओंकार के उच्चारण करने में रत हों। टेहरी के महाराजा साहब ने स्वामी राम के प्रति शोक-प्रदर्शन के निमित्त अपने राज्य के समस्त दफ्तरों को बन्द कर दिया।

स्वामी राम का शरीर नये वस्त्र (कफन) से लपेट कर प्रवाहित करने के लिये गगा जी में लाया गया। भिलिंग की गगा में नही। (जहाँ इसकी प्राप्ति हुयी थी), बल्कि भागीरथी गगा में उस गगा में, जो भारत के समस्त हिन्दुओं की 'माँ गंगा के रूप में, आराधित हैं। गगा-तट पर पहले विधिवत अन्तिम सस्कार किया गया। तत्पश्चात उनके शव को काठ की मजूषा में रख कर गंगा जी में प्रवाहित कर दिया गया। बडे कौतूहल की बात यह हुयी कि यह काठ की मजूषा जल में डूबी नही, हालाकि उसमें काफी पत्थर के टुकडे भर दिये गये थे। वह मजूषा गगा जी की उद्वेलित तरंगो पर तैरती रही। लगभग सौ फुट तक प्रवाहित होकर वह गगा जी की बीच धार में एक चट्टान से जा लगी। नारायण स्वामी अपनी जान हथेली पर रखकर, उस मजूषा को जल में डुबोने के लिये वहाँ जा पहुँचे। ज्यों ही उन्होने उसका स्पर्श किया, त्यों ही वह मजूषा उलट गयी। यद्यपि मजूषा का ढक्कन लोहे की मजबूत कीलो मे जकड दिया गया था, तथापि वे कीलें छिन्न-भिन्न हो गयी, और राम का शव मजूषा से बाहर निकल कर गगा जी की उन्मुक्त लहरो पर तिरने लगा और थोडी देर बाद स्वत गगा जी की अनन्त जलराशि के नीचे बैठ गया। इस प्रकार स्वामी राम की प्रतिज्ञा पूरी हुयी—

'गगा जी में तुझ पै बलि जाऊँ।'

एकादश अध्याय

स्वामी राम की राष्ट्रीयता एव देशभक्ति

प्रारम्भ के दस अध्यायो में स्वामी राम के जीवन वृत्त के प्रारम्भ, क्रमिक विकास, चरमोत्थान, एव महा प्रयाण के प्रसगो का वर्णन किया गया है। उनका जीवन प्रारम्भ से अन्त तक महान् कर्मठता, साधना, स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, निदिध्यासन, आत्मानुसन्धान, अद्वैतानुभूति का अलौकिक जीवन है। उन्होंने अथक परिश्रम, मतत अभ्यास, ऐकान्तिक साधना एव आत्मानुभूति से जो कुछ भी प्राप्त किया उसे अपने देश एव ससार के सम्मुख बिखेर दिया, अपने गुह्य से गुह्यतम भावों और विचारो को रत्ती भर भी छिपाने की चेष्टा नही की। उन्होंने अपने लेखो, व्याख्यानो, सामान्य वार्तालापों में अपना सवस्व दे देने का प्रयास किया। ब्रह्मज्ञानी का एक एक शब्द वेदवाक्य हो जाता है। वेद भी तो मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की ही वाणी ह। अब हम स्वामी राम के उन विशिष्ट गुणों को देखने का प्रयास करेंगे, जिनके कारण वे प्रत्येक शिक्षित भारतवासी के हृदय में बसे हुये हैं।

स्वामी राम सन्यासी हो गये और प्रत्येक वस्तु का परित्याग कर दिया। त्याग सन्यासी का भूषण माना जाता है। सवसाधारण की दृष्टि में देशभक्ति अथवा राष्ट्रीयता की भावना सन्यास धम के प्रतिकूल है, क्योकि यह भी एक प्रकार की कामना है। अत जिस सन्यासी की दृष्टि में समस्त जगत मृग मरीचिका के समान है, उसका इस प्रकार के प्रपचों में फँसना शोभनीय नही प्रतीत होता।

किन्तु स्वामी राम व्यावहारिक वेदान्त की साक्षात प्रतिमा थे। श्रीकृष्ण भगवान् ने श्रीमद्भगवद्गीता में स्थान-स्थान पर इस बात पर बल दिया है कि 'आसक्ति और कामनाविहीन कर्म बन्धन का हेतु नही होता।' लोकसग्रह के निमित्त इस प्रकार के कार्यों के सम्पादन से ब्रह्मज्ञानी की तो कोई हानि नही होती, हाँ उसके आस-पास के वातावरण में ऐसे कर्मों के सम्पादन से सात्विकता एव शुद्ध रजोगुण की सृष्टि अवश्य होती है।

स्वामी रामतीर्थ ने यह भलीभाँति अनुभव कर लिया था कि सदियों की दासता के कारण देश तमोगुण की प्रगाढ़ निद्रा में सो रहा है। स्वामी राम के पाचभौतिक शरीर का निर्माण, भारत के पचतत्त्वों से हुआ था। उसी के अन्न-जल

से उनके शरीर का विकास हुआ। उसी का नमक उन्होने खाया था, अत वे नमक हलाली कैसे न करते ? यदि वे अपनी साधना में देशभक्ति अथवा राष्ट्रीयता को रचमात्र बाधक समझते, तो वे उसका तत्क्षण परित्याग कर देते। फिर कोई भी शक्ति उन्हें अपने इस सकल्प से विचलित नही कर सकती थी। अत स्वामी राम देशसेवा को 'आत्म विकास' और 'देश के कल्याण' का मूल मत्र समझते थे। उनकी देशभक्ति की विशेषता यह थी, कि वह वेदा त की अनुपम मस्ती के पुट से युक्त थी। हृदय की प्रबल अनुभूति एव वेदान्त की मस्ती से समन्वित स्वामी राम की देशभक्ति, तुर त देशवासियो का हृदय-स्पश कर लेती थी। ब्रिटिश सरकार की पैनी एव क्रूर दृष्टि ने स्वामी राम के अप्रतिम प्रभाव को तुर त ताड लिया। तभी तो उनकी गति विधियो पर सरकार के गुप्तचर विभाग की कडी निगरानी रहती थी।

देशभक्ति की प्रचण्ड अग्नि उनके हृदय में 'धू धू' करके जल रही थी। अतएव व भारत की धार्मिक, सामाजिक एव राजनीतिक, सभी समस्याओ पर निरन्तर अपने महाप्रयाण के अन्तिम दिनों तक कुछ न कुछ लिखते और बोलते रहे। वे अपने देशवासियो के सामने नवीन दृष्टिकोण रखना चाहते थे, उनमें नवीन स्फूर्ति भर देना चाहते थे और साथ ही उनमें शक्ति सम्पन्न प्राणों का सचार कर देना चाहते थे। वे देशवासियो को अकमण्यता से जगाकर प्रबल कर्मानुष्ठान की सीख बराबर देते थे। इसलिये जापान क टोकियो नगर में दिये गये व्याख्यान—'सफलता के रहस्य' को अनेक रूपो, अनेक पुस्तकों में विस्तृत किया है। स्वामी रामतीर्थ की विलक्षण बुद्धि ने अत्य त सफलतापूवक वेदान्त जैसे निर्गुण दशन को व्यावहारिक अथवा प्रयोगात्मक धरा त में परिणत करके उसे देश-भक्ति का जीता-जागता सदश बना दिया एव प्राचीन सामग्री के आधार पर देश-भक्ति का यह दशन शास्त्र सुगमता और स्वाभाविकता से निर्मित कर दिया। हमारी तो यह निश्चित धारणा है कि स्वामी विवेकान द और स्वामी रामतीर्थ के देश-भक्ति सम्ब धी इन उदात्त विचारो से आगे चलकर लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, योगी अरविन्द, महात्मा गाधी एव लाला लाजपत राय अत्यधिक प्रभावित हुये और उन लोगो ने अपने अपने ढग से उन विचारो को परिपुष्ट करके और आगे बढ़ाया। त्यागी स यासियो की देशभक्ति में अपूव शक्ति होती है। सामा य जनता बरबस उनकी ओर आकृष्ट हो जाती है। वास्तव में सम्पूण त्यागी, निस्पृह, द्वन्द्वातीत पुरुष की देशभक्ति में जो अन यता होगी, वह लोभी-लालची, कामनायुक्त के हृदय में नही हो सकती।

स्वामी रामतीर्थ के 'आलोचना और विश्व प्रेम', 'धम के मन्तव्य,' 'भारत के

नवयुवकों से', 'उन्नति का निश्चित विधान', 'नकद धर्म' आदि लेखों में देशभक्ति का प्रचण्ड बड़वानल धधक रहा है। भारतीय राष्ट्रनिर्माणकारी साहित्य में स्वामी जी के उद्‌बोधन युक्त आह्वानों का अप्रतिम स्थान है। उनके शब्द शब्द में देशभक्ति का ज्वार सा उमड़ता दिखलायी पड़ता है—

"भारतवर्ष मेरा शरीर है। कोमोरिन मेरे पैर और हिमालय मेरा सिर है। मेरी जटाओं से गंगा बहती है और मेरे सिर से ब्रह्मपुत्र और सिन्धु निकली है। विन्ध्याचल मेरे कमर की लंगोटी है। कोरोमण्डल मेरी बायीं और मालाबार मेरी दाहिनी टाँगें हैं। मैं समूचा भारतवर्ष हूँ। उसका पूर्व और पश्चिम मेरी बाँहें हैं जिन्हें मैंने मानव-समाज का आलिंगन करने के निमित्त फैला रखा है। मेरा प्रेम सार्वभौमिक है। ओ मेरे शरीर की आकृति कैसी है! मैं खड़े होकर अनन्त आकाश की ओर दृष्टिपात कर रहा हूँ। मेरी अन्तरात्मा विश्वात्मा है। जब मैं चलता हूँ, तो मैं सोचता हूँ कि भारत चल रहा है। जब बोलता हूँ, तब सोचता हूँ कि भारत बोल रहा है। जब श्वास लेता हूँ, तब भारत ही श्वास लेता हुआ प्रतीत होता है। मैं भारतवर्ष हूँ, मैं शंकर हूँ मैं शिव हूँ। यही देशभक्ति का सर्वोत्तम साक्षात्कार है। यही है व्यावहारिक वेदान्त।

"ओ अस्ताचलगामी सूर्य, क्या तू भारत में उदय होने जा रहा है? क्या तू दया करके राम का यह संदेश उस पुण्य और प्रताप की भूमि तक पहुँचा देगा? ओ, मेरे प्रेम के ये अश्रुबिन्दु मेरे भारत के खेतों में प्रातःकालीन ओसकण बन जावें। जैसे शैव शिव को पूजता है, वैष्णव विष्णु को, बौद्ध बुद्ध को, ईसाई ईसा को, मुसलमान मुहम्मद को, उसी प्रकार जलते हुए हृदय की लौ के साथ मैं अपने भारत को एक शैव, विष्णु बौद्ध ईसाई मुसलमान, पारसी, सिक्ख, सन्यासी, शूद्र अथवा किसी भी भारतवासी की स्थिति से देखना और पूजना चाहता हूँ। ऐ भारतमाता, मैं तेरे सभी रूपों, सभी प्रादुर्भावों का उपासक हूँ। तू ही मेरी गंगा, मेरी काली इष्टदेव मेरा शालिग्राम है। उपासना के बारे में उपदेश करते हुये वे भगवान्, जिन्हें इस पुण्यभूमि की मिट्टी खाने से बड़ा प्रेम था कहते हैं, 'जो अपना दिल उस अव्यक्त परमात्मा में लगाते हैं, उनका मार्ग बड़ा दुष्कर होता है क्योंकि शरीरधारी को निराकार, अव्यक्त के पथ पर चलना बड़ा कठिन है।' ऐ मनमोहन श्रीकृष्ण तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य। मुझे भगवान की उस पूजा का मार्ग ग्रहण करने दो जिसकी सम्पत्ति के बारे में कहा जाता है एक बूढ़े बैल, एक टूटी खाट, एक पुरानी कुल्हाड़ी धूनी की भस्म, सर्प और नरमुण्डमाला के सिवा उनकी गृहस्थी में और कुछ था ही नहीं। पर केवल मौखिक अधूरे दिलवाली प्रशंसा अथवा सहानुभूति से काम नहीं चलेगा राम तो भारत के प्रत्येक

वर्ग से सक्रिय सहयोग चाहता है कि वह राष्ट्रीयता के इस गति फैलाने के लिये कटिबद्ध हो जाय। बच्चा युवावस्था को तब तक नहीं सकता, जब तक वह पहले किशोरावस्था प्राप्त नहीं कर लेता। कोई व्यक्ति समय तक कदापि परमात्मा के साथ, उस अखिल परमात्मा के साथ एकता का अनुभव नहीं कर सकता, जब तक सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ एकता का भाव उसकी नस-नस में जोर न मारने लगे। तो, भारत का प्रत्येक सपूत सम्पूर्ण भारत की सेवा के लिये सन्नद्ध हो जाय, क्योंकि अखिल भारत उसके प्रत्येक पुत्र में मूर्तिमान हो रहा है। हमारे यहाँ प्रत्येक नगर, सरिता, वृक्ष और शिला, यहाँ तक की पशु को भी देवता के रूप में माना और पूजा जाता है। क्या वह समय नहीं आया कि हम समूची भारतभूमि को भगवती माता के रूप में पूजा के लिये तत्पर हो जायें और उसका प्रत्येक आंशिक प्रादुर्भाव हममें सम्पूर्ण भारत की भक्ति भर दे। प्राण प्रतिष्ठा के द्वारा हिन्दू दुर्गा की मूर्ति को सजीव बना लेते हैं। क्या ही अच्छा हो, अरे क्या वह समय नहीं आया जब हम भारतमाता की जीती-जागती मूर्ति में प्राण और प्रकाश का संचार करें और उसके अप्रकट अनन्त गौरव को विकसित करने के लिये सन्नद्ध हो जायें! हम पहले अपने हृदय एक कर लें, फिर हमारे सिर और हाथ पैर, सब अंग-प्रत्यंग एक होकर काम करने लगेंगे।

ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिये, संन्यासी भाव ग्रहण करना होगा। दूसरे शब्दों में स्वार्थलिप्सा का पूर्ण त्याग करके, अपनी क्षुद्र आत्मा को भारतमाता की महान् आत्मा का सच्चा अनुगामी बना देना होगा। सच्चिदानन्द परमात्मा के अनुभव के लिये, हमें ब्राह्मण भाव ग्रहण करना होगा, अर्थात् अपने मस्तिष्क को पूर्णत राष्ट्र की उन्नति के विचारों में लगा देना होगा। सच्चिदानन्द की प्राप्ति के लिये हमें सच्चा क्षत्रिय भाव ग्रहण करना होगा जिससे प्रेरित होकर हम प्रतिक्षण देश के लिये जीवन उत्सर्ग करने को कटिबद्ध हो जायें। ईश्वर की प्रत्यक्षानुभूति के लिये हमें सच्चा वैश्य भाव सीखना पड़ेगा, जिससे हम अपनी सम्पत्ति को सदैव राष्ट्र की धरोहर मानने लगें। किन्तु आज इस लोक अथवा परलोक में आनन्द और राम के अनुभव के लिये हमें मानसिक विचार प्रधानता को व्यावहारिक स्थूल रूप देना होगा। हमें इस संन्यास भाव को क्रिया के रूप में परिणत करना होगा। उसे अपने हाथों-पैरों के द्वारा शारीरिक श्रम के कार्यों में व्यक्त करना होगा, जो किसी समय केवल पवित्रहृदय शूद्रों का धर्म माना जाता था। आज संन्यास भाव और अस्पृश्य वर्गों का पाणिग्रहण हो। आज केवल, एकमात्र यही मार्ग है। जागो, जागो!

देखो, संसार के अन्य देश भी अपने व्यवहार के द्वारा हमारी मातृभूमि

को संसार की एकमात्र 'ब्रह्मभूमि' को आज इसी व्यावहारिक धर्म की शिक्षा दे रहे हैं।

जब कि एक जापानी नवयुवक अपनी माता की सेवा में (गृहस्थ धर्म) व्याघात होने के भय से सेना में भरती नहीं हो पाता, तो माता आत्महत्या कर लेती है। निम्न श्रेणी के (गृहस्थ) धर्म को उच्च श्रेणी के (राष्ट्रीय) धर्म की वेदी पर बलिदान कर दिया जाता है।

भला, उन तेजपुंज आदर्श गुरु गोविन्दसिंह के त्याग का दृष्टान्त संसार में अन्यत्र कहाँ मिल सकता है, जिन्होंने राष्ट्रीय धर्म के पीछे व्यक्तिगत, गार्हस्थ्य और सामाजिक धर्मों का पूर्ण परित्याग करके आत्मोत्सर्ग का महानतम आदर्श उपस्थित किया है।

लोग शक्ति के पीछे पागल रहते हैं। एक बार अपनी आत्मा का समस्त राष्ट्र की आत्मा के साथ तादात्म्य तो कर लो और देखो अनन्त शक्ति तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती है या नहीं ? अन्त में राम इस्लाम धर्म के पैगम्बर के सुन्दर शब्दों में इस भाव को दुहराना चाहता है—

'यदि सूर्य मेरी दाहिनी ओर खड़े होकर और चन्द्रमा मेरी बायीं ओर खड़े होकर मुझे लौटने का आदेश दें, तो मैं कदापि उनकी आज्ञा नहीं मान सकता।' ओम्, ओम !

बी० ए० और एम० ए० की डिगरियाँ तो तुम्हें विश्वविद्यालयों से मिलती हैं, किन्तु तुम कायर बनते हो अथवा शूरवीर ? इन दोनों लक्ष्यों के बीच तुम्हें स्वयं निर्णय करना होगा। बताओ, तुम्हें कौन सा स्थान पसन्द है ? पददलित गुलाम का अथवा स्वतंत्र जीवन के स्वामी का ? शक्तिसम्पन्न शुद्ध जीवन ही सदा इतिहास में निर्णायक सिद्ध होता है। 'न्यूटन' का गति सम्बन्धी द्वितीय नियम शक्ति की परिभाषा इस प्रकार करता है, 'जो पदार्थ पर कार्य करके उसकी गति दिशा में परिवर्तन कर दे, उसे शक्ति कहते हैं।' अनेकानेक शताब्दियों से अस्वाभाविक विरोध और उससे भी भयंकर उदासीनता और तटस्थता हमारे देश को रीतिरिवाज और अन्धविश्वास के प्राचीन ढर्रे और परिपाटी पर लिये जा रहा है। ओ सुसंस्कृत और चरित्रवान नवयुवको, अब यह तुम्हारा काम है कि तुम इस अनावश्यक अपकारक ढाँचे में परिवर्तन लाने के लिए जीती-जागती शक्ति बन जाओ। पुरातन तमोगुण पर विजय प्राप्त कर आवश्यकतानुसार देश की गतिविधि में दिशा-परिवर्तन करो। जहाँ चाहो, उसकी गति तीव्र करो और जहाँ उचित हो उसके मूलस्वरूप में परिवर्तन और परिवर्द्धन कर दो। काम करो, दिन रात काम करो। भूतकाल को वर्तमान के अनुसार ढालो और अनुकूल

बनाओ और फिर वीरता के साथ अपने शुद्ध, पवित्र और शक्तिशाली वर्त्तमान को भविष्य की दौड में सबसे आगे बढने दो।

एक साधारण स्थिति का भारतीय परिवार हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र का परिचायक है। अत्यन्त स्वल्प साधन, आहार-ग्रहण करने वाले मुखो की दिन प्रति दिन वृद्धि, इस पर भी निस्सार, निदय उत्सवों में अनावश्यक व्यय का भार ऊपर से। अरे एक ही अस्तबल में बँधने वाले पशु भी एक दूसरे से लडते भिडते मर जायेंगे, यदि चारा केवल एक-दो के लिये होगा। उनकी सख्या सकडों तक पहुँच जाय, तो भगवान् ही मालिक है। सघष की जड को न मिटाना और लोगों को शान्ति की शिक्षा देना उपदेश का उपहास करना है। मेरे देशवासी हृदय से शान्त और विनीत है। उनका हृदय विद्रोह नही चाहता। किन्तु दशकाल एव वातावरण की विषम परिस्थितियो में इन्द्रिया के वेग उनके सिर पर सवार हो, तब वे बेचारे ईर्ष्या द्वेष और स्वाथ लिप्सा से कैसे बच सकते है? यदि हम जनसख्या की समस्या को यो ही पडी रहने देंगे, तो राष्ट्रीय एकता और पारस्परिक सद्भावना की चर्चा आकाश-कुसुम की कल्पना, जल्पना मात्र होगी। हमें इस जटिल ग्रथि को अवश्यमेव सुलझाना पडेगा, अन्यथा हमारी मृत्यु निश्चित है। प्राणि विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार ऐसे अति सामान्य सामाजिक वातावरण में, जहाँ घनघोर यत्रणायें नित्य प्रति उसके सदस्यो को भोगनी पडती हों सहानुभूति और स्वाथ साधन साथ-साथ कभी नही चल सकते। ओ भारतवासियो, ऐसी भयकर दरिद्रता के बीच सहानुभूति एव प्रेम के विकास की कल्पना करना आशा के विरुद्ध आशा करना है। भौतिक विज्ञान के विद्यार्थी जानते है कि कोई भी, किसी प्रकार का भौतिक पदाथ तभी तक अपना अतरग सामजस्य स्थिर रख सकता है, जब तक उसके सम्पूरक कण एक दूसरे से इतनी समान दूरी पर स्थित रहते है कि प्रत्येक कण को अपने पडोसी की नियमित नृत्यमय गतिविधि में कोई बाधा उपस्थित किये बिना ही स्वय अपनी गतियो को सम्पादन के हेतु यथेष्ट अवकाश मिलता रहे। अब जरा भारतवष के विशाल जन-समुदाय पर दृष्टि डालिये। क्या उसका प्रत्येक व्यक्ति बिना दूसरे से लडे भिडे अपने शान्तिमय क्रिया कलापो का सम्पादन कर सकता है? क्या उन्हें स्वतन्त्र एव प्राकृतिक कार्यों के निमित्त यथेष्ट अवकाश मिलता है? यदि एक प्राणी के भरपेट खाने से दस को भूखा मरना पडता है, तो निस्सन्देह तुम्हें तुरन्त ही राष्ट्रीय सामजस्य को सुस्थिर रखने के लिए उद्योगशील होना चाहिये। अन्यथा भारत के लिये एक ही माग बचता है कि चुपचाप स्वच्छन्द प्रकृति के भयकर अक में जा पडे और उन भयकर कष्टों, को भोगे, जिन्हें महर्षि वशिष्ठ ने अकाल, महामारी, प्रलयकारी

युद्ध और भूकम्प आदि की संज्ञा दी है।

एक समय था, जब कि भारत के आय निवासियों में बडी सख्या में सन्तान का पैदा होना वरदान स्वरूप माना जाता था। किन्तु वे दिन चले गये, देशकाल की परिस्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया। भारत की जनसख्या में बाढ सी आ गयी। ऐसी परिस्थिति में वृहत परिवारा का होना अभिशाप रूप हो गया है। आओ, अब हम उस महाभयकर और हानिप्रद विचार का, जो इतने दिनो तक हमारे व्यवहार को चक्कर में डाले रहा, भारत के धरातल से बाहर कर दें। कौन-सा विचार, कौन-सा सिद्धान्त? 'विवाह करो, अन्धाधुन्ध सन्तान उत्पन्न करो, जीवन की श्वासें पूरी करो और गुलामी में मर जाओ।

नवयुवको, इसे बन्द करो! इस प्रथा को बन्द करो! ऐ नवयुवको तुम भारत के भविष्य के लिये उत्तरदायी हो, तुम्हें इसे बन्द करना ही होगा। धर्म के नाम पर, अपने देश, भारत के नाम पर, स्वय अपने हित के लिए, अपनी सन्तानो के कल्याण के निमित्त, दया करके देश में अधाधुध, असामयिक, विचार-विहीन विवाह पद्धति का अन्त कर दो। इससे लोगो के जीवन में पवित्रता आयेगी और किसी अश में जनसख्या की गम्भीर समस्या भी हल होगी।

भारत के प्राचीन इतिहास पर ध्यान देने से हमें पता चलता है कि जैसा दूसरे देशों में हुआ, वैसे ही हमारे भारत में भी निशाकाल के आगमन का एक मात्र अन्तिम अन्तरग कारण बनी है हमारी पार्थक्य नीति। 'ओ हो, हमारे इस कमरे (भारत) में सूर्य का कैसा विशाल, उज्ज्वल, गौरवमय प्रकाश है! ओ, यह मेरा है, केवल मेरा है, मैं किसी को उसमें साझीदार नही होने दूँगा।'—बस ऐसा कहकर हमने सचमुच परदे लटका दिये, किवाड लगा दिये और खिड़किया बन्द कर दी। और परिणाम क्या हुआ? भारतवर्ष के प्रकाश पर एकछत्र अधिकार करने की लालसा में ही, हमने उसमें अन्धकार फैला दिया। किन्तु भगवान् व्यक्तियो का पक्षपात करने वाला नही है।

सक्षेप में यज्ञ का अर्थ है कि हम व्यवहार्यत अपने पडोसी को अपनी ही आत्मा मानने लगें। हमें उसका प्रत्यक्ष अभ्यास और अनुभव हो। हमारा सबके साथ तादात्म्य हो जाय। सर्वात्मा राम बनने के लिए, हम अपनो क्षुद्र आत्मा का परित्याग कर दें। यज्ञ में स्वार्थपरता की आहुति दी जाती है और तब सर्वात्मा—परमात्मा का उदय होता है। इसी भाव को प्राय एक दृष्टि से भक्ति का नाम दिया जाता है और दूसरी दृष्टि से उसी को यज्ञ कहते हैं।

ओम, अखिलेश्वर ओम

मेरे इस जीवन को ले लो, मेरे प्रियवर

मैं इसे समर्पित करता हूँ तुमको सादर,
मैं तुम्हें समर्पित करता, लो ये मेरे कर,
ये रहें तुम्हारे सेवाकार्यों में तत्पर।
मैं हृदय दे रहा हूँ तुमको अपना प्रियवर!
तुम पूर्ण रूप से दो इसको अपने से भर
तुम ले लो मेरे नयन और इनको कर दो—
अपनी छवि की मदिरा से पागल, ओ सुन्दर!
ले लो मेरा मस्तिष्क, बना दो इसको फिर
निशि दिन निज प्रतिभा से अपना मन्दिर!

ज्योंही इस आत्म बलिदान, सवस्व त्याग की आहुति पूर्ण होती है, त्योंही साधक उस महाकाव्य 'तत्वमसि' का ब्रह्मानन्द अनुभव करने लगता है।

आँखों के मेहराबदार द्वार में होकर—
मैं करता हूँ प्रवेश हृदय के स्वर्ग में।
वहाँ जब शान से मेरी सवारी मार्ग प्रदर्शन करती है—
तब फिर कोई मुझसे बिछुड़कर, कहाँ जा सकता है?
पृथ्वी और स्वर्ग के
आनन्ददायक विवाहों और सम्मेलनों में
रहती है एक धुंधली झलक
मेरे उस सार्वभौमिक प्रेम की!
और जिसमें सम्पूर्ण मानव-जाति समा जाती है।
ओ हो मेरा आलिंगन कितना कठोर, कितना कोमल
सूर्य की तीक्ष्ण दृष्टि के
स्वर्णिम भालों की भांति
मैं ही पुष्पों का हृदय बेधता
और परम प्रसन्न पूर्णचन्द्र
की शुभ्र रजत किरणों के द्वारा
मैं ही बुलाता सागर को अपने आनन्द के कुंजों में।
ओ विद्युत! ओ प्रकाश!
ओ विचार, तेज और चमकदार
आओ, दौड़ो मेरे साथ होड़ लगाकर
ओ हो, तुम तो कितने पीछे-पीछे रह गये
मैं निकल गया आगे तुमसे—

बहुत आगे, बहुत आगे
तुम नहीं चल सकते कभी मेरे बराबर
ओ पृथ्वी और ओ सागर !
ओ वनस्पति और ओ पुष्प !
तुम हो सब मेरी सन्तान
पुत्र और पुत्रियाँ
सीमाओं को, देश काल के परिच्छेदों को
उतार फेंको, फेंको उतार
और गाओ मेरे साथ
हरि ओम तत्सत् ओम, ओम, ओम !"

स्वामी राम की राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति की यह विशेषता थी कि उसमें उन्होंने धार्मिक भावना एवं आध्यात्मिकता का पुट देकर उसे विशुद्ध और हृदय-ग्राहिणी बना दिया। स्वामी राम के अनुसार जिस मनुष्य ने सम्पूर्ण प्राणियों में एक ही आत्मा के स्पन्दन की अनुभूति कर ली, उसमें द्वैत भावना की कोई गुंजाइश ही नहीं रहेगी जिसका परिणाम होगा एकता, समानता और सहानुभूति। जिस राष्ट्रप्रेमी में एकता, समानता और सहानुभूति की पूर्ण भावना होगी, उसके लिये फूट और मनमुटाव का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, उसकी दृष्टि में 'सभी एक हैं और एक सभी है।' स्वामी राम ने धर्मों एवं सम्प्रदायों के पारस्परिक कलह पर अपना क्षोभ इस भाँति अभिव्यक्त किया है—

"ओह, हमारे देश, भारत में कितनी अपरिमित शक्ति है। किन्तु बड़े दुःख की बात है कि धर्म अथवा सम्प्रदाय दूसरे धर्म और सम्प्रदाय की निन्दा, आलोचना में उस शक्ति का ह्रास कर रहे हैं। हमें सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों के समान गुणों एवं विशेषताओं को ढूंढ निकालना चाहिये, और उन्हीं के आचरण और व्यवहार पर बल देना चाहिये। कुछ व्यक्तियों को आर्य-समाज अच्छा लगता है और कुछ को सनातन धर्म। इसी प्रकार किसी को 'ब्रह्मसमाज' प्रिय लगता है और किसी को वैष्णव धर्म आदि। ऐसी स्थिति में यदि कोई मेरे मत को नहीं मानता, तो हमें क्या अधिकार है कि हम अपने धर्म को न मानने वाले का छिद्रान्वेषण करें?

चाहे वे हमारा धर्म मानें अथवा न मानें, चाहे वे हमारे सम्प्रदाय में रहें अथवा उसे छोड़कर किसी अन्य सम्प्रदाय में चले जायें, इससे किसी का क्या बिगड़ता है? प्रत्येक वस्तु को उसकी स्वाभाविक गति के अनुसार चलने दो। मेरा तो इसी स्वाभाविकता में विश्वास है। हम उस पर एकाधिकार करने की

चेष्टा क्यों करें ? हमारा अधिकार तो सेवा करने का है, सभी व्यक्तियो की सेवा करना हमारा लक्ष्य होना चाहिये, ऐसे व्यक्तियो की जो हमसे प्रेम करते हैं और ऐसे व्यक्तियों की भी जो हमसे घृणा अथवा द्वेष करते हैं (यदि कोई हों)। माता अपनी सबसे दुर्बल और पापी सन्तान को सर्वाधिक प्यार करती है। जो तुम्हारे विचारो के प्रतिकूल है, क्या वे सब के सब गलत मार्ग पर हैं ? यदि ऐसी बात हो भी, तो भी ऐसे मनुष्यों की भी देश को आवश्यकता है। जो भ्रमणशील व्यक्ति मात्र दाहिने पैर से चलना चाहता है, उसकी स्थिति सचमुच चिन्त्य एव दयनीय है। सच्ची शिक्षा का अभिप्राय होता है—प्रत्येक वस्तु को परमात्मा की दृष्टि से देखना।"

बडे दुख की बात है कि १६१३ ई० में पुलिस ने स्वामी राम की तलाशी ली और उनकी समस्त पाण्डुलिपिया को अपने कब्जे में कर लिया जो भारतीय राजनीति से सबधित थी। उन पाण्डुलिपियो में भारत की राजनीतिक एव आर्थिक दशा का यथार्थ चित्रण था और साथ ही साथ सुधार सबधी स्वामी राम के अमूल्य सुभाव भी थे। अत उनके राजनीतिक विचारो को उनकी अन्य कृतियो से ही ढूढ-ढांढ कर निकालना पडा है।

स्वामी राम ब्रिटिश शासन के लाभो पर कटाक्ष नही करते थे। किन्तु ब्रिटिश शासन की दूषित नीति द्वारा उत्पन्न देश की निधनता के प्रति उनके विचार बडे विरोधी एव उग्र थे। इस निधनता के कारण भारत के नैतिक और भौतिक जीवन में अत्यधिक ह्रास हुआ। स्वामी राम देश की दरिद्रता को महान् अभिशाप समभते थे।

स्वामी राम ने अपने अमेरिका प्रवास के समय में 'अमेरिकनों से अपील' भारत की ओर से की थी। उसी अपील में उन्होने अग्रेजा की लूट-खसोट की तीव्र आलोचना की थी—

"अधकारपूर्ण देश की भयकर राजनीतिक दुदशा से राम अछूता नही रह सकता। उसके देश में लाखों व्यक्ति अकाल में भूखो मर रहे है, वहा अल्पवयस्क बच्चे और बच्चियाँ निरन्तर भुखमरी के ग्रास बनते जा रहे है, कितने होनहार नवयुवक दरिद्रता और प्लेग के शिकार हो रहे हैं, वहाँ सुकुमार बच्चों और बच्चियो के सूखे अधर अपनी माँ के दुग्ध पान के लिये ललक रहे है, किन्तु उन माताओ का शरीर ककालप्राय हैं। उनके स्तनों का दूध उपवास के कारण सूख गया है। उस देश में कठिनाई से विरले ही मनुष्यो को दो जून का भोजन मयस्सर होता है। वहाँ जिसे दोनो वक्त भोजन मिल जाता है, धनी और सम्पन्न समझा जाता है। तुर्रा यह कि वहा की सरकार वहाँ की आलीशान सरकार नगे,

भूखे, दीनों पर भी कर लगा कर उनका रहा सहा रक्त चूस रही हैं। "बड़े-बड़े पदों पर अंग्रेज सुशोभित हैं। इंगलैण्ड की पार्लियामेण्ट में तीस करोड़ भारतीयों का कोई भी प्रतिनिधि नहीं है। भारत के सभी देशी धन्धों और कारीगरों का अंग्रेजों ने सत्यानाश कर दिया है। भारतीय पैदावार के सर्वोत्तम अंश से अन्य राष्ट्र तो गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, किन्तु वह स्वयं भूखों मर रहा है। भारतीयों के हिस्से में चूनी-चोकर और गंदा पानी ही आता है। और कभी-कभी तो वह भी देना अस्वीकार कर दिया जाता है। देश के सभी उद्योग-धन्धे, कला-कारीगरी आदि नष्ट कर दी गयी हैं। अंग्रेजी शराबों का पीना यही देश की कृत्रिम स्वतंत्रता है, यही नकली आजादी है। इस कृत्रिम स्वतंत्रता में देशवासियों के स्वास्थ्य, धन और नैतिकता का जो ह्रास हो रहा है, वह वर्णनातीत है। अंग्रेजी शराबों का प्रचलन अंग्रेजों द्वारा किया गया। इससे आप लोग भारत की राजनीतिक दुर्दशा का सहज में अनुमान लगा सकते हैं।"

स्वामी राम ने भारत की गुलामी और गरीबी का कारण अपनी 'नोट बुक' में इस प्रकार बताया है—

"भारत की हरी भरी फुलवाड़ी इसलिये उजाड़ी और लूटी गयी कि उसकी रक्षा के लिये उसके चारों ओर कँटीली झाड़ियाँ अथवा चहारदीवारी नहीं थी।"

राजनीतिक बातों को समझने में स्वामी राम की बुद्धि अत्यधिक पैनी थी। लार्ड रिपन उदार वाइसराय रहे। वे भारतीयों के पक्षपाती थे। लार्ड कर्जन अत्यन्त संकीर्ण मनोवृत्ति के पक्के अंग्रेज थे। वे भारत को पददलित करके सदैव गुलाम बनाये रखना चाहते थे। स्वामी राम ने इन दोनों वाइसरायों की तुलना बड़ी खूबी से की है—

"अंग्रेजों के शासन में भारत के वाइसराय कर्जन अंग्रेजी औरंगजेब हैं। अनाड़ी राजनीतिज्ञ ! रिपन अकबर थे।"

स्वामी राम के समय में कांग्रेस की नीति अत्यन्त नम्र थी। कांग्रेस के नेता-गण भाषण मात्र से देश की उन्नति कर लेना चाहते थे। अभी बलिदान की भावना नहीं जगी थी। स्वामी राम कांग्रेस की इस दुर्बल नीति के विरोधी थे। उन्होंने एक स्थान पर कांग्रेसी नेताओं के बारे लिखा।

"देश के कांग्रेस के लोग, बुजदिल, दुनियादार हैं।" कांग्रेस नेताओं के संबोधन मात्र से स्वामी राम के अन्तर्गत जलते हुए प्रचण्ड शोले का हमें यथार्थ बोध हो जाता है।

भारत के राजनीतिज्ञों को संबोधित करते हुए स्वामी राम ने उनके प्रति अपने उद्गार इस भाँति अभिव्यक्त किये थे—

"भारत के राजनीतिज्ञो, तुम लोगा ने एक-दूसरे की ग्रालोचना प्रत्यालोचना करने का बीडा उठा लिया है ग्रौर साथ ही एक दूसरे के प्रति हृदय-विदारक शिकायतो के ग्रस्त्र का प्रयोग करते हो। किन्तु, समझ लो, इससे चीजें बनने के बजाय ग्रौर ग्रधिक बिगडती जा रही हैं। ग्रत हम लोगो को सही रास्ता ग्रपनाना चाहिये। मान लो, कोई दल गलती करता है, ग्रौर उसके जवाब में दूसरा दल भी गलती करता है, तो इससे गलतियो का सिलसिला बराबर चलता रहेगा। इस तरह स्याह से स्याह की पुनरावृत्ति होती जायेगी, स्याह से सफेद नही बन सकेगा। एक बार एक लडके ने एक वृद्ध सज्जन से ग्रशिष्टता बरती। वे वृद्ध सज्जन लडके को तमाचा मारने को उद्यत होकर कहने लगे, 'बेवकूफ, तुमने बदतमीजी क्यो की ?' लडके ने तुरन्त उत्तर दिया, 'श्रीमान् जी, ग्रापके कथनानुसार मैं 'बेवकूफ' था, ग्रतएव ग्रपनी बेवकूफी के कारण शरारत की। पर ग्राप तो बुद्धिमान हैं। ग्रतएव ग्राप तो बुद्धिमानों की भाति व्यवहार ग्रौर ग्राचरण कीजिये।' ग्रतएव यदि तुम विवेक ग्रौर तक के ग्राधार पर कोई समस्या हल करना चाहते हो, तो ग्रपने हृदय में जाति भाव ग्रथवा कुटुम्ब भाव को स्थान न दो। ऐसी भावनाग्रा से हृदय एक नही हो सकते, बल्कि हम पतन के भयावह कगारे पर खडे हो जायेंगे। ग्रत परिणाम तुम्हारी इच्छा के सवथा प्रतिकूल होगा। जब तक तुम किसी व्यक्ति को प्रेम न करोगे तब तक तुम उसे बिलकुल न जान पाग्रोगे।"

स्वामी राम की धारणा यह थी कि काग्रेस के प्रस्तावो एव व्याख्यानो से देश में एकता नही लायी जा सकती। इस सबध में उनके विचार इस भाँति हैं—

"प्रत्येक देश की भाँति, भारत की राष्ट्रीय एकता को प्राप्ति तब तक ग्रसम्भव है, जब तक कि नग्न सत्य के प्रतिपादन के लिये उसके सैकडो ही नही, हजारो सपूत ग्रपनी ग्रात्मबलि नही दे देते, फाँसी के तख्ते पर नही झूल जाते, एव रक्त की होलियाँ नही खेल लेते।"

"एकता, एकता। सभी व्यक्ति एकता की महिमा की ग्रनुभूति करते हैं। ग्रसख्य शक्तियाँ एक दूसरे से उदासीन हो रही हैं। फलदायिनी शक्ति का नितान्त ग्रभाव है। ग्रसख्य मस्तिष्क एव हाथ प्रवाह में बह रहे हैं, पर वे सब जानते ही नही कहाँ जा रहे हैं ? हजारो फिरके ग्रौर सम्प्रदाय ग्रपने वहम के ग्रनुसार मनोनुकूल, दिशा में नाव खेये जा रहे हैं। सयमित, सुसघटित एव योजनाबद्ध खेवे का सवथा ग्रभाव है। डाँड पृथक पृथक् दिशा में चलाने के बजाय, एक ही दिशा में चलाये जायें। ग्रपने-ग्रपने स्थान पर दढ़तापूवक जमे रहो। एक ही दिशा में एक ही शक्ति से डाँड चलाग्रो। इस प्रकार की मैत्री एव ग्रनेकता में एकता के भाव स प्रगति ग्रवश्यम्भावी है। ग्रपने स्थान पर काय करते समय ग्रानन्द के गीत गाते

जाओ और निरन्तर बढ़ते चलो। सम्पूर्ण राष्ट्र के उत्थान एवं कल्याण में व्यक्ति का भी कल्याण निहित है।"

'यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना उद्धार कर लेता है, तो समाज का उद्धार अपने आप हो जायगा'—इस प्रकार के तर्क का स्वामी राम ने ऐसा उत्तर दिया—

"समाज को एकाकी छोड़ कर, केवल अपने उद्धार की बात सोचना, क्या सम्भव है? पतनोन्मुख समाज से तुम अछूते नहीं रह सकते। यदि समाज डूबता है तो तुम भी निश्चय ही उसके साथ डूबते हो, यदि उसका उत्थान होता है, तो तुम्हारा उत्थान भी अवश्यम्भावी है। इस बात की कल्पना करना नितान्त जड़ता है कि अपूर्ण समाज में कोई व्यक्ति पूर्ण बन सकता है। यह कल्पना तो ठीक उसी प्रकार की है जैसे हाथ समस्त शरीर से अपना विच्छेद कर के पूर्ण शक्ति-प्राप्ति की कल्पना करे।

"समाज से विच्छिन्न होने का भाव भारत में बहुत पहले से चला आ रहा है। ऐसी भावना अत्यन्त दारुण और दयनीय है। यह भावना वेदान्त की विचार-धारा के सर्वथा प्रतिकूल है। होनहार नवयुवको, भारत का भविष्य तुम्हारा भविष्य है, उसका उज्ज्वल भविष्य बनाने का उत्तरदायित्व तुम्हारे ही कन्धों पर है। बहुमत की रूढ़ियों और अन्ध परम्पराओं से कायर ही प्रभावित होते हैं। शुद्धात्मा पुण्य लोगों के हृदयों और विचारों पर शासन करते हैं।"

स्वामी राम निराशावादी नहीं थे। सच्चा वेदान्ती ऐसा हो ही नहीं सकता। वे अपने देश के परमोज्ज्वल भविष्य की कल्पना में निमग्न रहते थे। उनका कथन है—

"हमारे लिये यह सौभाग्य की बात है कि हम भारत के इतिहास के इस सकटकालीन युग में उत्पन्न हुये हैं। ऐसी परिस्थिति में हमें सेवा करने का अधिक अवसर प्राप्त है। हमारे कार्य और अधिक अनोखे, काव्यमय एवं प्रगतिशील होने चाहिये। यह ठीक ही कहा गया है कि 'जो खूब सोते हैं, वे भलीभाँति जागते हैं। भारत ने लम्बी प्रगाढ़ निद्रा ली है, अतः उसका जागरण भी बहुत ही अनोखा होने जा रहा है। हम लोगों का कर्त्तव्य है कि हम निम्न कोटि की टीका टिप्पणी से दूर रहें। परस्पर एक दूसरे के सुन्दर कार्यों की प्रशंसा करें।"

'यज्ञ का भावार्थ' में उन्होंने भारतवासियों को जो उद्बोधन दिया है वह भारत की वर्तमान परिस्थिति के लिये कितना समीचीन है। भारतवासी यदि स्वामी जी के भावों को ग्रहण कर लें, तो देश अपूर्व शक्तिसम्पन्न, समृद्ध और तेजस्वी हो जाय—

"संक्षेप में यज्ञ का अर्थ है कि अपने हाथों को सारे हाथों के प्रति अर्पण

कर देना, अपने नेत्रों को सब नेत्रों के लिये अथवा सारे समाज के लिये समर्पण करना, अपने मन को सब मनों के प्रति भेंट करना, अपने हित को देश-हित में लीन करना और समष्टि में ऐसी अनुभूति करना कि मानो सब के सब मेरे ही स्वरूप (आत्मा) है। दूसरे शब्दो में इसका अभिप्राय है—'तत्वमसि' (वह है तू) को व्यवहार में लाना और अनुभव करना। जैसे शूली पर चढाने के अनन्तर ईसा के दिव्य रूप का पुनरुत्थान हुआ था, उसी प्रकार देहात्म भाव के नाश के पश्चात आप ही विश्वात्म रूप में उठता है। यही वेदान्त है।"

उपर्युक्त अवतरण पर भली भाति मनन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वामी जी ने देशभक्ति एव राष्ट्रीयता को अध्यात्मवाद का दिव्य पुट देकर उसे अत्यन्त तेजस्वी बना दिया है। इस प्रकार की देशभक्ति दुर्लभ है। यदि ऐसी राष्ट्रीयता थोडे व्यक्तियो में भी जाग्रत हो जाय, तो देश का कायाकल्प हो जाय। निर्भीकता, त्यागवृत्ति, कर्तव्यपरायणता, सात्विकता, सहानुभूति, परोपकार आदि की लहर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त हो जाय और 'राम-राज्य' की कल्पना सार्थक हो जाय।

स्वामी राम ने देशवासियो को स्थल-स्थल पर कमठ बनने की चेतावनी दी है। निष्क्रिय मनुष्य को मृत ही समझना चाहिये। इस सम्बन्ध में केवल एक अवतरण से उनकी तेजस्विता का अनुमान लगाया जा सकता है—

"बाह्य परिस्थिति के अनुरूप निर्भीक एव यथार्थ क्रियाशक्ति का होना बुद्धिमानी का यथार्थ लक्षण है। आवश्यकतानुसार काम करने की क्षमता का न होना पागलपन की निशानी है। प्रकृति का कठोर अनुशासन सब के सिर पर है—'बदलो या मर मिटो।' आगे बढते हुये समय के साथ कन्धे में कन्धे मिलाकर चलो और मात्र इसी नुसखे से तुम जीवन-सग्राम में विजयी बन सकते हो। (भारतवर्ष, प्रकृति के इस आदेश को नोट कर लो।)

स्वामी राम ने समय-समय पर भारतीय नवयुवकों को अपनी उद्बोधक वाणी से जाग्रत करने का अथक प्रयास किया ये वाणियाँ देश भक्ति एव राष्ट्रीयता से ओत प्रोत है। इनमे उनकी अपूर्व दूरदर्शिता पर प्रकाश पडता है। इनसे देश की तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एव आर्थिक स्थिति का भी सुन्दर बोध होता है। ये वाणियाँ, सत् साहित्य की अक्षय निधि के रूप में हैं। किसी किसी वाणी से तो सूक्तियों का-सा आनन्द प्राप्त होता है। कुछ इस प्रकार है—

"कोई मनुष्य उस समय तक परमात्मा के स्वरूप के साथ अपनी अभिन्नता कदापि अनुभव नही कर सकता, जब तक कि समस्त राष्ट्र के साथ अभेदता उसके शरीर के रोम रोम में जोश न मारने लगे।

अपने हाथ से जलायी हुयी अग्नि के मुख में उस बहुमूल्य घी को व्यर्थ नष्ट करने के स्थान पर आप सूखी रोटी के छिलके उस जठराग्नि को अर्पण क्यों नहीं करते, जो कि भूख-मरते किन्तु जीवित लाखों नारायणों के हाड़ माँस को खाये जा रही है ?

सर्वोपरि श्रेष्ठ दान जो आप किसी मनुष्य को दे सकते हैं, वह विद्या या ज्ञान का दान है। आप किसी मनुष्य को भोजन खिला दें, कल वह फिर उतना ही भूखा हो जायेगा। आप उसको कोई कला सिखा दें, तो वह जीवन पर्यन्त अपनी जीविका प्राप्त करने के योग्य हो जाता है।

देश की आधी जनता तो भूखा मर रही है और शेष आधी स्पष्टतः फिजूल खर्ची, आवश्यकता से अधिक सामान, सुगन्ध की बोतलों, मिथ्या गौरव, ऊपरी चमक दमक एवं सभी प्रकार के बहुमूल्य आमोद प्रमोद, गन्दे धन और दृण दिखावे के तले दबी है।

भारतीय राजा और भारतीय अमीर अपने सारे बहुमूल्य रत्नों और शक्तियों को खोकर थोथी लम्बी चौड़ी उपाधियों और बेमतलब की पदवियों से युक्त 'गलीचे के शेर' जैसे रह गये हैं।

कुछ लोग ऐसे हैं जिनके लिये देशभक्ति का अर्थ है भूतकाल के लुप्त गौरव पर निरन्तर सोच विचार में डूबे रहना। ये दिवालिये साहूकार अपने उन बही-खातों की गहरी देखभाल किया करते हैं, जो वस्तुतः बेकार हो गये हैं।

ऐ नवयुवक, भावी सुधारक, तू भारत की प्राचीन रीतियों और परमार्थ निष्ठा की निन्दा मत कर। निरन्तर विरोध के नये-नये बीज बोने से भारत के मनुष्य एकता नहीं प्राप्त कर सकते।

क्षुद्र अहंकार को त्याग कर और इस प्रकार देश के साथ तदाकार होकर आप जो ध्यान करेंगे, देश आपके उस ध्यान में आपका साथ देगा। आप आगे बढ़ो, तो आपका देश आपके पीछे-पीछे चलेगा।

उन्नति के लिये वायुमण्डल तैयार होता है सेवा और प्रेम से, न कि विधि निषेधात्मक आज्ञाओं और आदेशों से।

जो मनुष्य लोगों का वास्तविक नेता होता है, वह अपने सहायकों की मूर्खता, अपने अनुयायियों के विश्वासघात, मानव-जाति की कृतघ्नता और जनता में गुणग्रहण शीलता के अभाव की कभी शिकायत नहीं करता।

किसी देश की शक्ति छोटे विचारों के बड़े आदमियों से नहीं, बल्कि बड़े विचारों के छोटे आदमियों से बढ़ती है।

पूर्ण प्रजातन्त्र-शासन, समता, बाहरी सत्ता का भार उतार फेंकना, धन एकत्र

करने के व्यय भाव को दूर रखना समस्त असाधारण अधिकारों को परे फेंकना, बडप्पन की शान को ठुकरा देना, और छोटेपन की घबराहट को उतार डालना—यही सब भौतिक क्षेत्र में वेदान्त हैं।

पत्येक मनुष्य को अपना स्थान स्वय निर्धारित करने के लिये एक समान स्वतन्ता दी। हमारा सिर चाहे जितना ऊँचा रहे, परन्तु पाव सदा सबके साथ पृथ्वी पर ही जमे रहे। वे कभी किसी मनुष्य के कधे अथवा गर्दन पर न पड़ें, चाहे वह निबल और स्वय राजी ही क्यो न हो।

झूठे राजनीतिज्ञ शक्ति के भावो को जाग्रत किये बिना ही, अर्थात स्वतन्त्रता और प्रेम के भाव को लाये विना ही राष्ट्र को उन्नत करने की चेष्टा करते हैं।

अमेरिका और यूरोप का उत्थान ईसा के व्यक्तित्व के कारण से नही हुआ है। उन्नति का असली कारण तो अज्ञात रूप से वेदान्त का आचरण हुआ है। भारत का पतन वेदान्त के आचरण के अभाव के कारण हुआ है।

विदेशी राजनीति से बचने का एकमात्र उपाय है आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विधान को अपनाना, अर्थात अपने पडोसी से प्रेम करने के नियम को जोवन में उतारना।

हमें हिन्दुओं में नुक्ताचीनी का भाव जाग्रत नही करना है, बल्कि जाग्रत करना है गुण-ग्राहकता, भ्रातृत्व की भावना, समन्वय की बुद्धि, कार्यो और श्रम के गौरव में सहयाग।

अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण समाज, सम्पूण राष्ट्र और प्रत्येक वस्तु के समक्ष दृढतापूवक प्रतिपादन करो।

जबकि जाति-पाँति के भावो का काँच जैसा जल्द टूटने वाला परदा हृदयों का मिलाप नही होने देता, उस समय यदि अपनी समस्यायें विवेक और न्याय द्वारा निपटाना चाहें, तो उसका और भयकर उल्टा परिणाम हाता है।

मत-मतान्तरों की साम्प्रदायिकता ने मनुष्य के मनुष्यत्व को मेघाच्छादित कर डाला है और उनके सव-सामान्य स्वदेशाभिमान को ग्रहण वन कर ग्रस लिया है।

जिन्हें भूल से तुम 'पतित' कहते हो, वे अभी 'उठे नही' है। वे अभी उसी प्रकार से विश्वविद्यालय के नवागन्तुक विद्यार्थी है, जिस प्रकार किसी समय तुम भी थे।

भारत के प्यारे पुराणप्रिय, शास्त्रपरायण भाइयो, शास्त्रों का उचित प्रयोग करो। देश का धम तुमको जाति-पाँति के कठोर बन्धनों को ढीला करने और तीक्ष्ण जाति भेद की कटुता को राष्ट्रीय सहानुभूति से दवा देने का आदेश देता है।

यदि तुम नयी रोशनी को आत्मसात् करने को सहर्ष तैयार नहीं हो, उस नये प्रकाश को जो तुम्हारे देश की ही प्राचीन रोशनी है, तो जाओ और पितृलोक में पुरखों के साथ निवास करो। यहाँ क्यों रुके हो ? प्रणाम।

आज की न पूछो, भारत के स्वामी और पंडितगण तो अपनी जाति की तमोगुणी निद्रा बनाये रखने के लिये लोरियाँ गा रहे हैं।

स्वतंत्र विचार भारत में पाखण्ड ही नहीं, बल्कि घोर पाप समझा जाता है। केवल वही, जो कुछ संस्कृत भाषा में पाया जाता है, पवित्र माना जाता है।

यदि कोई बालक ईसाई हो जाता है, तो वह अपने हिन्दू पिता का हाड मांस होते हुये भी गली के कुत्ते से अधिक गया गुजरा, अपरिचित हो जाता है।

सभ्य समाज में स्त्री को निर्जीव पदार्थ का दर्जा दिया जाता है। पुरुष अपने कार्यों में सर्वथा स्वतंत्र है, स्त्री के हाथ-पाँव कसकर जकड़े हुये हैं। वह आज एक पुरुष की सम्पत्ति है, तो कल दूसरे पुरुष की बन जाती है।

सभ्य समाज के मुख पर यह बड़ा भारी कलंक है कि 'स्त्री' व्यापार की वस्तु बनी हुयी है। और जिस प्रकार पेड़, घर अथवा धन-सम्पत्ति मनुष्य की सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार स्त्री भी मनुष्य की सम्पत्ति और उसके अधिकार की वस्तु मानी जाती है।

स्त्रियां, बालकों और श्रमजीवी जातियों की शिक्षा पर ध्यान न देना, उन्हीं शाखाओं को काट गिराना है, जिनके सहारे हम खड़े हुये हैं। इतना ही नहीं, बल्कि यह तो राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड़ पर घातक कुठाराघात करना है।

सिर में दर्द कौन पैदा करता है ? कमर क्यों झुक जाती है ? छाती में धड़कन कैसे पैदा होती है ? पैरों के बदले सिर के बल चलने से। देखो, तुम्हारे पैर सदैव पृथ्वी पर जमे रहें और तुम्हारा सिर वायु (परमानन्द) में लहराता रहे। अन्यथा दैवी विधान की अवज्ञा होगी। अपने सिर पर पृथ्वी का भार उठाना और उसे बुद्धिमानी का जीवन कहना ? उस दिव्यात्मा, परमात्मा की अपेक्षा नाम रूप दृश्य जगत् को कदापि अधिक महत्त्व मत दो।

प्रचलित रीतियों के अनुसार हवन-कार्य यज्ञोत्सव का एक महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक अंग है। उसके कुछ वर्तमान भक्तों के ओठों पर एक बड़ा मामूली सा तर्क यह रहता है कि हवन के द्वारा वायु शुद्ध होती है और सुगंध की लपटें चारों ओर बिखरती हैं। वास्तव में यह बड़ा ऊल-जलूल का तर्क है। सुखदायी सुगन्ध की ये लपटें नासिका को अन्य उत्तेजक पदार्थों की भाँति क्षण भर के लिये स्फूर्ति देती हैं, किन्तु प्रतिघात रूप उनके अनन्तर अवसाद का होना भी अनिवार्य है। उत्तेजक वस्तुयें भले ही हमें अपने भावी शक्ति भाण्डार से कुछ उधार लेने में

सहायक हो किन्तु वे सदा चक्रवृद्धि ब्याज की दर पर ही हमें उधार दिलाती हैं और ऋण को चुकाने का नाम नही लेती।

राम तुम्हें यह बतलाना चाहता है कि तुम्हारे धर्म-ग्रथो में यज्ञोत्सव के अवसर पर जो देवताओ के प्रकट होने की बात लिखी है—यह अक्षरश: सत्य है। किन्तु वह तो केवल सामूहिक एकाग्रता की शक्ति का महत्त्व है। मनोविज्ञान की आधुनिकतम शोधो ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि एकाग्रता का प्रभाव एक ही अवसर पर उपस्थित एक हृदय मनुष्यो की सख्या के वग के अनुपात में बढता है। इसीलिये हमारे यहाँ सत्सग की इतनी महिमा गायी गयी है।

जन-साधारण में और विशेषकर स्त्री और बच्चो में (इसीलिये आगामी पीढियो में) प्रेम और ऐक्य पैदा करने का एक प्रभावशाली उपाय नगर-सकीर्तन भी हो सकता है। जिसमें सम्मिलित होकर लोग निर्भयता से गाते-बजाते और नाचते हुये अपने नगर के कोने-कोने में सत्य की घोषणा कर दें।"

स्वामी राम की उपदेश शृखला प्रधानतया धार्मिक एव आध्यात्मिक थी। उनकी सूक्तियाँ, नीतिकथायें, कवितायें, भारतीय सामाजिक एव राजनीतिक समस्याओं पर उनके विचार सब कुछ आध्यात्मिक भावना से ओत प्रोत हैं। उनकी समस्त कृतियाँ वेदान्त के व्यावहारिक प्रयोग के लिये निर्मित हैं। वे सभी को डके की चोट पर यह बता दना चाहते थे कि वेदान्त मात्र कल्पना और मनोराज्य की विद्या नही है, बल्कि वह समस्त विद्याओ की सिरताज है। उसके व्यावहारिक प्रयोग से श्रेयस् और प्रेयस की प्राप्ति अत्यन्त सुगमता से हो सकती है। वेदान्त के व्यावहारिक प्रयोग से दुखमय ससार आनन्द की क्रीडाभूमि में परिणत किया जा सकता है। ससार की जटिल से जटिल गुत्थिया, इसके द्वारा सुगमता से हल की जा सकती ह। उन्होंने इस जगत् को जो सबसे मूल्यवान् निधि दी है वह है वेदान्त के जाज्वल्यमान स्वरूप की जीवन के सभी क्रिया-कलापो में प्रतिष्ठा। इसी के बल पर उन्होने राजनीति ऐसी दूषित वस्तु को भी पवित्रता और साधना की परम रमणीय स्थली बना दिया। उनकी ब्रह्ममयी अनुभूति का स्पर्श पाकर देशभक्ति एव राष्ट्रीयता में सात्त्विकता की अपूर्व लहर आ गयी।

———

द्वादश अध्याय

हिन्दू समाज और स्वामी राम

'मैंपन' का भान ही प्रत्येक व्यक्ति का सहज स्वरूप है। इसी 'मैंपन' में सत् चित् और आनन्द का निवास है। इसी के अन्वेषण में सृष्टि का जीवमात्र प्रयत्न शील है। किन्ही भी परिस्थितियों में प्राणी 'मैंपन' को नही भूलता। इस 'मैंपन' का विस्तार जाग्रत, स्वप्न एव सुषुप्ति तीनो अवस्थाओ में है। किसी भी अवस्था में 'मैंपन' का परिवर्त्तन नही होता है। बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था, रुग्णावस्था, मूर्च्छावस्था—आदि सभी प्रकार की अवस्थाओ में, 'मैंपन' शाश्वत रूप से विराजमान है। सूक्ष्म विचार और चिन्तन करने पर हम इस तथ्य पर पहुँचते है कि अनन्त 'मैंपनो' में एक ही 'मैंपन' विराजमान है। अत केवल एक 'म' है और उसका स्वरूप सत्य, ज्ञान, आनन्द और अनन्त है। इस प्रकार 'अनेकता' में 'एकता' दिखलायी पडती है। अनेकता में एकता की प्रत्यक्षानुभूति ही वेदान्त है। ऐसी स्थिति में 'ज्ञाता' एक है। वह सर्वद्रष्टा, सर्वान्तर्यामिन्, सर्वनियन्ता, सर्वाधिष्ठाता है। यह महान् 'अह' है। इसी 'अह' की सत्ता अनन्त क्षुद्र 'मैंपनो' में भासित हो रही है। अतएव अहज्ञानी का निवास महान 'अह' में होता है, और सामान्य मायाच्छन्न प्राणी क्षुद्र 'अह में ही मरते-पचते रहते हैं। अत सर्वान्तरात्मा—आत्मा—परमात्मा एक है और जीवात्मायें अनन्त है।

ससार में जो प्रतिद्वन्द्विता, सघर्ष, मारकाट, पीडा, उत्पीडन दिखलायी पड रहा है, वह सब क्षुद्र अह अपने अनन्त विकास और व्यापकता के लिये कर रहे हैं। अज्ञातरूप से वे अपनी सच्ची अन्तरात्मा (परमात्मा) की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील है, क्योकि वही सर्वव्यापी है। प्रत्येक व्यक्ति का सघर्ष अपनी पृथक अहमन्यता लिये हुए है। इसी पृथक्ता के कारण ससार में सघर्ष और प्रतिद्वन्द्विता परिलक्षित होती है। जहाँ व्यक्ति का सबध, पिता, पुत्र, माता, पति-पत्नी, स्वामी-सेवक, गुरु शिष्य का होता है वहाँ सघर्ष के लक्ष्य में एकरूपता दिखलायी पडती है। इसी एकरूपता के कारण झगडे फसाद के मौके भी उन व्यक्तियों के बीच कम देखे जाते हैं। हा, जहा विचार-वैभिन्न्य होता है, वहाँ दूसरी बात होती है। जिन व्यक्तियो के सबधो में जितना अधिक सामीप्य

एव एकरूपता होती हैं, वहा उनकी आत्माओ में अभेदभावना की प्रगाढता देखी जाती है। अभेद भावना की प्रगाढता के कारण यदि व्यक्ति को अपने क्षुद्र अह की बलि भी करनी पडे, तो वह सहप उसे स्वीकार कर लेता है। इस दृष्टि से अज्ञानी व्यक्ति भी क्षुद्र अह को तिलाजलि देकर, अज्ञात रूप में महान् अह से युक्त होने की चेष्टा करता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाज में रहता है। व्यक्ति पर समाज का अत्यधिक प्रभाव पडता है। समाज से यदि शिशु को एकदम अलग कर दिया जाय, तो न वह ठीक से अपने अगो पर सन्तुलन रख सकेगा, न मनुष्यों की भाति चल-फिर सकेगा, न बोल सकेगा। वह मनुष्य के रूप में मूक पशु-सा प्रतीत होगा। वह तर्क शक्ति, विचार शक्ति, वास्तविक क्रियाशक्ति से विहीन बन्दर अथवा वनमानुस की तरह लगेगा। अत शिशु के प्रशिक्षण में समाज का बहुत बडा हाथ होता है। इसलिये मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, नैतिक एव आध्यात्मिक विकास में समाज का बहुत अधिक महत्त्व है। जिस प्रकार शारीरिक जीवन के लिये वायु, जल और प्रकाश आवश्यक है, उसी प्रकार मानव-जीवन के विकास के लिये समाज भी अपरिहार्य है।

हिन्दू ऋषियो एव मनीषियो ने समाज की सस्थापना महान् आदर्शों पर की थी। उनकी दृष्टि में समाज 'विराट पुरुष' का साकार विग्रह था। समस्त समाज में एक अभिन्न शरीर की कल्पना की गयी। सभी मनुष्य उस विराट पुरुष—ब्रह्म के अग से उत्पन्न माने गये। उसके मुख से ब्राह्मणो, बाहु से क्षत्रियों, उदर से वैश्यो एव चरणों से शूद्रो की उत्पत्ति मानी गयी। तदनुसार उनके कर्मों का विभाजन भी किया गया। ब्राह्मणो को विद्यानुष्ठान का सिरताज माना गया, और वे समाज के ज्ञान दाता माने गये, क्षत्रिय बाहुबल एव शौर्य के प्रतीक समझे गये और उन्हें राष्ट्र का प्रहरी एव रक्षक समझा गया। वैश्यो की समाज में धन-सम्पत्ति के अधिष्ठाता-के रूप में प्रतिष्ठा की गयी, समाज एव राज्य की सकटकालीन स्थिति में उन्हें अपना सब कुछ समर्पित करने का निर्देश दिया गया। गहन सेवाधर्म का उत्तरदायित्व शूद्रो के कधा पर सौंपा गया। सभी वर्णों के बीच अपूव सामंजस्य की चेष्टा की गयी। सभी एक दूसरे के पूरक थे। इस वण व्यवस्था की सबसे बडी विशेषता यह थी कि स्वधम के पालन के द्वारा स्वय आत्म-साक्षात्कार करना और अन्य वर्णो को परमात्म प्राप्ति में सहायता देना। हमारे आप्त ग्रयो में ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलते है जहाँ वैश्या एव शूद्रो ने ब्राह्मणों एवं क्षत्रिया को आत्म विद्या का रहस्य बताया है।

समय की अनेक कसौटियो पर हमारे यहाँ की यह वण व्यवस्था बिलकुल

खरी उतरी है। स्वामी राम का जन्म ब्राह्मण वर्ण में हुआ था और उसी के विधानानुसार उनकी शिक्षा दीक्षा हुयी थी। हालाकि, वे ऐकान्तिक साधक थे और उनका एकान्त प्रेम जीवन के अन्तिम क्षणो तक ज्यो का त्यों बना था। किन्तु वे समाज का महत्व बहुत अधिक समझते थे। वे अपनी महती आध्यात्मिक साधना से समाज से एकदम ऊपर उठ चुके थे, किन्तु फिर भी सामाजिक उत्थान के लिए वे अन्तिम श्वासो तक चेष्टा करते रहे। उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि हिन्दुओ की सामाजिक व्यवस्था में बुराइया पर्याप्त मात्रा में प्रवेश पा चुकी हैं। उन्हाने काल की तरह ही नही बल्कि पाषाण के समान अपना स्वरूप धारण कर लिया है। समयानुसार सामाजिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन न होने के कारण, उसमें जडता का घुन लग गया है, और वह समाज को बुरी तरह खाकर उसे जीर्ण शीर्ण बनाये जा रहा है। स्वामी राम सामाजिक कुरीतियों, बुराइयों, रूढियो, आदि का सर्वथा उन्मूलन करके, समाज को शक्तिशाली, दृढ़ एव युगानुकूल बनाना चाहते थे। उनकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि ऋषियो द्वारा प्रतिष्ठापित समाज-व्यवस्था को उन्होंने स्वीकार किया—

"तुम्हारे शरीर के अगों के कार्यों का विभाजन स्पष्ट है। उदाहरणार्थ, आँखें केवल देखने का कार्य करती ह, वे सुनती नही। कान केवल सुनते हं, वे देखने का काय नही सम्पादित करते। हाथ अपना काय करते हैं, पैरों का नही। यदि हम आँखा से सुनना चाहें, हाथो से सूघना चाहें, कानो से खाना चाहें, तो क्या सम्भव हो सकेगा? कदापि नही। यह तो वैसा ही होगा जैसे उदर भोजन पचाता है, तो वही हाथो, आँखा, कानो, एव नासिका आदि सभी इन्द्रियो का काय सम्पादित करे अत पृथक् पृथक शक्ति-सम्पन्न मनुष्यों के लिए कार्यों का विभाजन स्वाभाविक एव प्राकृतिक नियमों के सर्वथा अनुकूल है। इसी आधार पर प्राचीन समय में भारत में वर्ण व्यवस्था की प्रतिष्ठा की गयी थी और उनके सामार्थ्यानुसार कार्यों का विभाजन भी किया गया था। कार्यों को समुचित ढग से सम्पादित करने के लिए इसकी व्यवस्था की गयी थी, किसी अन्य उद्देश्य के निमित्त नही। समाज के अन्तर्गत सबको स्वाभाविक शक्ति एव प्रकृति के अनुसार काय का उत्तरदायित्व सौंपा गया। कुछ मनुष्यों के भीतर, अध्ययन, मनन, चिन्तन की शक्ति अधिक थी, अत उन्हें ब्राह्मण वर्ण के अन्तर्गत रखा गया, कुछ के भीतर युद्ध करने की प्रवृत्ति अधिक थी, अत उन्हें क्षत्रिय वर्ण के अन्तर्गत केन्द्रीभूत किया गया था। क्षत्रिय के स्वभाव में कठोरता अधिक थी, ब्राह्मणों की भाँति कोमल और दयालु नही था, शत्रुओं, आततायियो के दमन करने में अधिक दक्ष था, अत सोच-समझ कर उसे क्षात्र कर्मों से मण्डित किया

गया था। इसी प्रकार कुछ व्यक्ति ऐसे थे, जो न तो अध्ययन-अध्यापन का कार्य कर सकते, न ही युद्ध-कला में विशारद थे, किन्तु उनमें व्यापार एव दूकानदारी की अधिक क्षमता थी, धनोपार्जन में अधिक निपुणता थी, अत उन्हें वैश्य वर्ण के अन्तर्गत रखा गया था। अन्त में कुछ ऐसे लोग भी शेष बच रहे, जिनमें बौद्धिक प्रतिभा, युद्ध-कुशलता अथवा धनोपाजन-शक्ति का अभाव था, (क्योंकि धनोपाजन में बुद्धि-चातुरी और व्यवहार-कुशलता की पग-पग पर आवश्यकता पडती है), उन्हें सब वर्णों की सेवा का काय सौंप कर शूद्र वर्ण में स्थान दिया गया। ऐसे व्यक्ति सामान्य मजदूर, झाड बहारू अथवा सडक की गिट्टिया ताडने के कार्य के लिए उपयुक्त थे। इसी आधार पर प्राचीन भारत में वण-व्यवस्था का निर्माण हुआ था, जिससे समाज एव राष्ट्र का काय सुचारु रूप में सम्पादित हो रहा था।

'मनु-स्मृति' हिन्दुओ का कानून-ग्रथ माना जाता है। उसमें सभी वर्णों का विभाजन करके, उनके विशिष्ट-कार्यो का विभाजन किया गया है। सभी वर्णों के लिए यह मनु-स्मृति अत्यन्त सहायक और उपयोगी मानी जाती थी। प्रत्येक वण के लोगो के लिए इसमें विभिन्न निर्देश, व्यवस्था और नियम निर्धारित किये गये हैं, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्या एव शूद्रो के लिए उनके कतव्यो का विशद विश्लेषण किया गया है।"

स्वामी राम की दृष्टि में धीरे धीरे वण व्यवस्था में शिथिलता और अस्त-व्यस्तता आनी प्रारम्भ हो गयी। यह शास्त्रीय मर्यादा के प्रतिकूल जाने लगी। उन्होने इस सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्त किये हैं—

"धीरे धीरे इस ग्रथ (मनु-स्मृति) का अध्ययन गलत ढग से होने लगा और इसके भ्रामक अर्थ निकाले जाने लगे। और अन्त में परिस्थिति यहाँ तक पहुँची कि सारी व्यवस्थायें और मान्यताएँ अस्त-व्यस्त और ऊल-जलूल हो गयी। प्रत्येक वस्तु बेतरतीब हो गयी। सारी वण व्यवस्था और तदनुसार विभाजित कर्मों की सम्पादन शृखला, रुढिबद्ध, निर्जीव, शुष्क और पाषाणवत् बन गयी। लोगो ने इसे कठोर नियमो के अन्तगत जकड दिया। परिणाम यह हुआ राष्ट्र की जीवनी शक्ति समाप्तप्राय हो गयी। सारी वस्तुयें यत्रवत्, कृत्रिम और अस्वाभाविक हो गयी। मनु-स्मृति देशवासियो की सेवा और कल्याण करने के स्थान पर एकच्छत्र व निदय शासिका के रूप में परिणत हो गयी।

"वण व्यवस्था भी अपने स्थान पर ठीक और उपयुक्त थी। विभाजन भी बिलकुल उचित था। किन्तु भारत में इस सम्बन्ध में गलतियाँ और भयकर भूलें की गयीं। उन भयकर भूलों के परिणाम स्वरूप वर्णों के आधार पर जातियों,

उपजातियों में निरन्तर वृद्धि होने लगी। उनकी शाखायें उपशाखायें उत्तरोत्तर बढने लगी। अत समाज जडवत् और पगु हाने लगा। जातिया की उत्पत्ति हिन्दू समाज के लिए अभिशाप और विष के रूप में सिद्ध हुई।

"मनु-स्मृति के नियम समाज की तत्कालीन परिस्थिति का ध्यान में रख कर निर्मित किये गये थे। अत वे शाश्वत नहीं थे। किन्तु लोग उन नियमो को शाश्वत मान बैठे। धीरे-धीरे भारत के लोगो ने उन्हें इतनी महत्ता प्रदान कर दी कि मनु-स्मृति के नियम उपनिषदो एव वेदान्त के शाश्वत सत्य पर हावी हो गये। लोगों ने मनु-स्मृति के विधि निषेध के नियमो में अपने को आबद्ध कर लिया और वेदान्त एव उपनिषदों के परम सत्य की अनुभूति के प्रति उदासीन हो गये। लोग हाड मास के धम को सर्वस्व मानने लगे और प्रत्यक्ष आत्मा, सभी प्राणियो में व्याप्त परमात्मा को विस्मृत करने लगे।"

भारत में समय समय पर ऐसे दूरदर्शी मनीषी, धर्म-सुधारक, साधु महात्मा उत्पन्न होते आये हैं, जिन्हाने हिन्दू धर्म की बुराइयो, रूढियों और अन्ध-परम्पराओं को मिटा कर, उसे विशुद्ध, शक्तिसम्पन्न, लोकोपकारक, युगानुकूल, व्यवहारोपयोगी बनाने का प्रयास किया। स्वामी रामतीर्थ ऐसे नेताओ में अग्रगण्य माने जा सकते ह। उन्होंने वेदान्त के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक समस्याओ को सुलझाने की चेष्टा की। उन्होने इस सम्बन्ध में अपनी धारणा इस प्रकार अभिव्यक्त की—

"लोगो में व्यावहारिक ज्ञान का अभाव होने लगा। इस कारण समाज में अनेक बुराइया प्रविष्ट होने लगी, उदाहरणाय शारीरिक श्रम के प्रति घृणा-भावना, सभी वर्णों में अस्वाभाविक विभाजन के फलस्वरूप अनेक जातियों एव उप जातियो की उत्पत्ति, विदेश-यात्रा को पाप समझना, बालविवाह एव स्त्रियो में अज्ञानान्धकार की वृद्धि (शारीरिक और मानसिक दोनो ही दृष्टियों से)। ये बुराइयाँ समाज में इतने गहरे रूप से प्रविष्ट हो गयी हैं, कि इन्हें दूर करना लोहे के चने चबाना है। प्राचीन प्रथाओ को तोडकर, उनसे मुक्ति पाना, सचमुच टढ़ी खीर है। सुधार के प्रयास में निन्दा आलोचना का प्रबल सामना करना पडता है। इसके अतिरिक्त सुधारक को समाज की निन्दा और कोप का भाजन भी बनना पडता है। अत पग-पग पर भ्रम और पारस्परिक फट की सभावना भी बनी रहती हैं। तो फिर क्या इन कठिनाइयो से बचने के लिय हम समाज से नितान्त पराङमुख हो जायें और केवल अपनी गति मुक्ति तक सीमित रह जायें? अपनी मुक्ति के लिये प्रयत्नशील होना और समाज का मँझधार में डूबने के लिये छोड देना, भला कहाँ की बुद्धिमानी है? तुम भी समाज के एक

अग ही हो। डूबते समाज में से तुम अकेले बच नही सकते। उसके डूबने से, तुम्हारा भी डूबना अवश्यम्भावी है। यदि समाज का उद्धार होता है, तो उसके साथ-साथ तुम्हारा भी निश्चित उद्धार होगा। यह सोचना निरी मूखता और जडता है कि अधकचरे और विकृत समाज में कोई व्यक्ति सुरक्षित रह सकेगा। ऐसा सोचना तो ठीक उसी प्रकार होगा जैसे हाथ शेष शरीर से अपना सम्बन्ध-विच्छेद करके शक्ति की पूणता प्राप्त कर ले।

" भारत शताब्दियो तक इन रूढियो एव परम्पराओं का शिकार बना रहा। अत भारत के कणधार ऐ नवयुवको, इन रूढियो और परम्पराओ को तहस नहस कर दो। अपनी अपरिमित जीवनदायिनी शक्ति से उन्हें एकदम परिवर्तित कर दो। अब उनकी तिलमात्र भी आवश्यकता नही रह गयी है। रूढिग्रस्त और प्राचीन तमोगुण पर विजय प्राप्त करो। आवश्यकतानुसार गति में परिवतन कर दो। जहा जरूरत पडे, वहा जनता-जनादन को परिवर्तित कर दो। कार्य करते चलो, निरन्तर कार्य रत रहो।"

कट्टरपथी हिन्दुओ ने सुधार से भयभीत होकर अपना मुख प्राचीनता की ओर मोड लिया। वे उसी में अपना और समाज का कल्याण मानते थे। अग्रेजी शिक्षा प्राप्त अधीर सुधारकों ने पश्चिमी सुधारो के अन्धानुकरण में समाज का हित समझा। किन्तु स्वामी राम प्राचीनता और पश्चिमी अन्धानुकरण दोना के विरोधी थे। उन्होने इस सम्बन्ध में अपनी स्वतन्त्र सम्मति इस भाति अभिव्यक्त की है—

"भूत को मोडकर वत्तमान में बदल दो। साथ ही अपने विशुद्ध, सुदृढ एव शक्तिसम्पन्न वर्तमान को भविष्य की दौड के अनुरूप बनाओ। हम अपने पूर्वजा की पैतृक-सम्पदा के विना कुछ नही कर सकते। जो समाज अपने पूर्वजा की अर्जित सम्पदा का परित्याग करता है, वह पूर्णतया नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। किन्तु यदि हम सभी प्राचीन बाता को विवेकविहीन होकर अपनाने लग जायेंगे, तो समाज भीतर से खोखला हो जायेगा।

"राम की दृष्टि में समाज के कुचले हुये लाग, राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड है। तथाकथित उच्च वर्ग के लोग उसके फल है। यदि जड की उपेक्षा और अवहेलना करोगे, तो शाखायें, टहनियाँ, पत्तियाँ, फूल, फल—सभी कुछ नष्ट हो जायेंगे।"

"समाज-व्यक्तित्व धनी-सम्पन्न व्यक्तियो के माध्यम से अभिव्यक्त होता है, किन्तु सच्चाई की अभिव्यक्ति निर्धन व्यक्तियों के माध्यम से ही होती है। अतएव मूल (जड) को सीचो।"

जिन व्यक्तियों की दृष्टि में निर्धनों, पीडितो, शोषितो का मूल्य नगण्य था, उन्हें स्वामी राम ने इस प्रकार सचेत किया है—

"शून्य का मूल्य यद्यपि कुछ भी नहीं है। किन्तु जब यही शून्य समुचित स्थान पर रख दिया जाता है, तो किसी ग्रक के मूल्य को दसगुना बढ़ा देता है। ठीक उसी भाति तथाकथित निम्न वर्ग के लोग, चाहे तुम्हारे अनुयायी ही क्यों न हो, तुम्हारे समाज की शक्ति बढाने वाले हैं।"

"जिस भाति प्रत्येक शिशु को पूर्ण युवा बनने के लिये विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पडता है—शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था आदि से, ठीक उसी भाति नैतिक और आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त करने के लिये भी शैशवावस्था, बाल्यावस्था एव किशोरावस्था आदि अवस्थाओं से गुजरना आवश्यक ही नही अनिवार्य है। तथाकथित पापी व्यक्ति अभी नैतिक दृष्टि से बच्चों की स्थिति में है। फिर क्या बच्चे का अपना निजी सौन्दर्य नहीं है? जिन्हें तुम भूल से 'गिरा हुआ—पतित' व्यक्ति की सज्ञा देते हो, अभी तक वे उठ नही पाये हैं। अत वे विश्वविद्यालय के नवागन्तुक छात्र के सदृश हैं। तुम भी एक समय उन्ही के समान थे।"

एक बार अमेरिका में व्याख्यान देते समय स्वामी राम ने जाति-व्यवस्था की विकृतियों—दोषों की ओर इस प्रकार सकेत किया था—

"सभी प्रकार के कार्य उच्च और महान् हैं, सभी प्रकार के श्रम पवित्र हैं। किन्तु वर्ण-व्यवस्था के दोष के कारण उन कार्यों एव श्रमों के साथ प्रतिष्ठा एव अप्रतिष्ठा का भाव सयुक्त कर दिया गया है। जो व्यक्ति अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अपने को शिक्षित करने में असमर्थ होते हैं, उन्हें अपने प्रारम्भ के आलस्य और शैथिल्य के लिए युवावस्था में कठिन शारीरिक श्रम के द्वारा प्रारम्भ के जीवन का प्रायश्चित्त करना पडता है। ऐसी स्थिति में तुम्हें क्या अधिकार है कि तुम उनके शारीरिक श्रम को शूद्र-कर्मों की सज्ञा दो? क्या उनका कार्य, समाज के लिये ब्राह्मणो एव क्षत्रियों के कार्य के समान ही आवश्यक नहीं है? आजकल लोगों ने उनके शारीरिक श्रम को इतना हेय और निकृष्ट समझ रखा है कि ऐसे व्यक्तियों को उन गलियों से भी नही गुजरने देते हैं, जिन पर ब्राह्मण, क्षत्रिय एव शूद्र चलते हैं। वे तथाकथित शूद्र ग्रामो और नगरों से दूर जीर्ण शीर्ण झोपडियो में रहते है,—ब्राह्मण, क्षत्रिय एव वैश्यों की बस्तियों से एकदम पृथक। यदि उन शूद्रों की छाया अकस्मात् उच्च वर्ण वालों पर पड जाती है, तो वे अपने को अपवित्र मान कर स्नान आदि द्वारा पुन पवित्र करते हैं। शूद्रों द्वारा स्पर्श की हुई वस्तु उच्च वर्ण वालों के काम की नहीं रह जाती। उच्च वर्ण वाले लोग,

तथाकथित निम्न वर्ण के कठोर परिश्रम करने वाले लोगा को रूखा-सूखा भोजन उनके कठोर परिश्रम का पुरस्कार देते हैं। वे निम्न वण के शूद्र अथवा 'परिया' कितना श्रम करते ह,—सडकों पर झाडू लगाते हैं, गदी नालियाँ साफ करते हैं, यहा तक कि पाखाना साफ करते है, और हम उच्च वण के लोग उनके कठोर श्रम के पुरस्कार के रूप में देते है, उन्हें रूखा-सूखा भोजन एव फटे-चीथडे वस्त्र। वे अत्यधिक निधन ह, उनके धनी बनने की कल्पना ही नही की जा सकती। उनकी दशा पर सोचने मात्र से राम का हृदय दु ख से भर जाता है। निम्नवण वालो के लडके उन स्कूलो में प्रविष्ट नही होने पाते, जहा उच्च वर्ण वाले लोगों के लडके अध्ययन करते हैं क्योकि उनके स्पश से उच्चवण वालो के लडके अपवित्र हो जायेंगे। भला बताइये, ऐसी स्थिति में वे बेचारे किस प्रकार शिक्षा प्राप्त कर सकते है? वे बेचारे अत्यन्त कठिनाई से अपना उदर-पोषण कर पाते है। वे दरिद्रता और अभाव में नित्य मर रहे ह। ये बेचारे निम्न वण के लोग प्राय प्लेग एव अन्य संक्रामक बीमारियो के शिकार होते रहते ह। निर्धन और निम्न वर्ण के लोग समाज के पाँव हैं—वे ही समाज के आधार-स्तम्भ है। जा समाज अपने निधन और निम्न वण के लोगो की अवहेलना करता है, तिरस्कार करता है, उन्हें शिक्षा नही देता, वह समाज अपने पैरो को स्वय काट देता है, जिससे वह निश्चय ही नष्ट भ्रष्ट हो जायेगा।"

स्वामी राम भारत की जनसख्या में निरन्तर वृद्धि को निधनता का प्रमुख कारण मानते थे। उन्होने इस सम्बन्ध में अपनी सम्मति इस प्रकार दी है—

"सारे ससार में कोई भी देश भारत की भाँति जनसख्या में नही बढा है और इसी कारण निरन्तर उसकी गरीबी भी बढती जा रही है। यदि हम इस जनसख्या की समस्या को या ही पडी रहने देंगे तो राष्ट्रीय एकता और पारस्परिक सद्भावना की चर्चा आकाश-कुसुम की कल्पना के समान होगी। हमें इस जटिल ग्रथि को अवश्यमेव सुलझाना पडेगा, अन्यथा हमारी मृत्यु निश्चित है।"

स्वामी राम ने सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये कुछ समाधान भी ढूढने का प्रयास किया था। उनमें से कुछ इस प्रकार है—

"हिन्दुओं की यह धारणा कि भारत देश के बाहर पैर रखते ही, हम स्वग के अधिकारी नही रह जायेंग, अत्यन्त भ्रामक है। इसका सदैव के लिये परित्याग कर देना चाहिये, अत जितने भी भारतीय बाहर जाकर प्रवास कर सकें, उतना ही देश के लिये कल्याणकारी है। अत यहाँ से कूच करो और बाहर प्रवास करो। यहाँ कूप-मण्डूक बनकर रहने में क्या आनन्द है? क्या तुम यह नही देख सकते

कि इतने बहुसख्यक देश में रहना कालकोठरी में रहने के समान है, क्या ऐसे सकीण स्थान में रहने से दम नहीं घुटेगा ?"

स्वामी राम का दूसरा निदान है अविवेकपूण अधी बालविवाह प्रथा का समाप्त करना। उनकी राय थी—

"एक समय था, जबकि भारतवष के प्राय निवासियो में बडी सख्या में सन्तान का होना वरदान रूप माना जाता था। किन्तु वे दिन चले गये। देश-काल की परिस्थिति से आकाश पाताल का अन्तर हो गया। भारत की जन सख्या में बाढ आ गयी। अत वृहत परिवारो का होना अभिशाप रूप बन गया है। विवेकहीन व्यक्ति बच्चों की-सी इस भ्रामक धारणा से चिपटे है कि सन्तान के बल पर ही उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी। उन्हें आँखें खोलकर इस तथ्य को भली भाँति देख लेना चाहिये कि स्वर्ग जाने के पूव उन्होने सन्तानो की अति वृद्धि करके, अपने घर को नरक के रूप में परिणत कर दिया है। अजुन के मन में भी कदाचित यही धारणा थी कि सन्तान से ही स्वग की प्राप्ति होती है। भगवान् श्री कृष्ण ने उनके मन के उस भाव को तुरन्त ताड लिया और श्रीमदभगवद्गीता के दूसरे अध्याय के बयालीसवें से पैतालीसवें श्लोक तक में अर्जुन के उस भाव की भत्सना की। तुम्हारे लिये यह श्रेयस्कर होगा कि उन श्लोको को पढकर उनके स्वतन्त्र भावो को ग्रहण करो। अत देशवासियों को अपने मस्तिष्क से इस घातक सिद्धान्त को तुरन्त निकाल देना चाहिये कि—'विवाह करो, अज्ञानता की वद्धि करो, ब धन ही में जोवित रहो और उसी में मरो'। इस सिद्धान्त का बहुत दिनों तक बोलबाला रहा।"

स्वामी ने शिक्षा प्राप्ति को तीसरा निदान माना है। शिक्षा के सम्बन्ध में उनका मत इस प्रकार है—

"शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य यह होना चाहिये कि हम देश के प्राकृतिक साधनों का समुचित प्रयोग करना जानें। वास्तविक शिक्षा वह है, जिसके प्रयोग से देश की पैदावार में वृद्धि हो, खानो से अधिक खनिज-पदाथ मिलें, व्यापार अधिक उन्नतिशील हो, शरीर अधिक क्रियाशील हो, मस्तिष्क की मौलिकता में अभिवृद्धि हो, हृदय परिष्कृत हो और शुद्ध भावो का आगार बने, देश के उद्योग धन्धों में अनेकरूपता हो एव राष्ट्र अधिक सुसगठित और एकता-सम्पन्न हो। जिस शिक्षा का हम जीवन की वास्तविकता में प्रयोग नहीं कर सकते, वह शिक्षा, सच्ची शिक्षा नहीं है, वह केवल तोता रटन्त विद्या है। प्राचीन शास्त्रों के उन लम्बे उद्धरणों की कोई सार्थकता नहीं है जिनका जीवन में व्यवहार न किया जा

सके। जिस ज्ञान को हम व्यावहारिक रूप नही प्रदान कर सकते, वह ज्ञान आध्यात्मिक कब्ज और मानसिक बदहजमी है।

"जो शक्ति और स्फूर्ति अनावश्यक कार्यों के सम्पादन में नष्ट हो रही है, उसे स्त्रियों को शिक्षा देने में और ऊँचा उठाने में लगाओ। सामान्य जनता को शिक्षित करो। इससे तुम्हारा और राष्ट्र दोनो का उत्थान होगा। इसके लिये सबसे सरल और सीधा तरीका है भारतीय समाचारपत्रो को सुदृढ और शक्तिशाली बनाना। कल्याणकारी समाचारपत्रो को निकालना। जो समाचारपत्र पहले से चल रहे हैं, उनकी दशा में सुधार करो। देश की भाषाओं के पत्रो से स्त्रियो और सामान्य जनता का स्तर ऊँचा करो।

'यदि भारत का अपना अस्तित्व बनाये रखना है, तो स्त्री शिक्षा का व्यापक ढग से प्रचार और प्रसार करना होगा। फिर यह शुभ काय तुम्हारे ही हाथो से क्या न सम्पन्न हो? यह देखना तुम्हारा कत्तव्य है कि प्रान्त में कोई भी स्त्री अथवा निधन व्यक्ति अशिक्षित न रह जाय। देश के मुख से अशिक्षा के इस कलक को मिटा दो। क्या तुम्हें अपने पडोस में रहने वाली मेहतरानी को पढ़ाने में किसी प्रकार की लज्जा अथवा भय की प्रतीति होती है? यदि ऐसा है, तो तुम्हारी नतिकता और व्यवहार को धिक्कार है! मातृत्व का प्यार एव सहानुभूति लेकर निधन, निरक्षर जनता के बीच में पहुँचो और उन्हें शिक्षित करो। यह कैसा अनुपम देवदूत का काय है!

'किन्तु इसके साथ तुम यह न भूलो कि तुम्हारे सम्मुख एक और आवश्यक एव महत्त्वपूर्ण काय है—वह है उन्नतिशील देशों से उद्योग धन्धे एव कृषि सबधी शिक्षा को ग्रहण करना और उस शिक्षा का समस्त देश में प्रचार और प्रसार करना।"

स्वामी राम का चौथा और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निदान है धम के प्रति विश्वास और निष्ठा। वास्तव में स्वामी राम के जीवन की समस्त अनुभूतियों का सार धम और दशन ही है। इसी की उपलब्धि के लिये तो उन्होंने अपने जीवन का परमोत्सग किया। उनका विचार है—

"गृह धम, समाज धम और राष्ट्र धम की गणना कमकाण्ड के अन्तगत की जानी चाहिये। अज्ञान के भीतर शुभ कर्मों का सम्पादन दुलभ है। अज्ञान के भीतर अज्ञानपूर्ण कर्मों का प्रतिपादन सभव है। धम के प्रकाश में जीवित रहे बिना और अपने हृदय में ज्ञान की मशाल प्रज्वलित किये बिना, तुम कुछ भी नही प्राप्त कर सकते, जीवन में एक कदम भी आगे नही बढ सकते। अपने कानो से तुम जो नियम, उपदेश आदि की बातें सुनते रहते हो, वे शरीर के बाह्य अग

हैं, धर्म में पूर्ण आस्था और प्रज्वलित ज्ञान ही वास्तविक प्राण हैं। बिना प्राण के शरीर का अस्तित्व नहीं रह सकता। भौतिकवाद, संशयवाद, प्रत्यक्षवाद, निरीश्वरवाद एवं अज्ञेयवाद के प्रबल समर्थकों को जो कुछ भी सफलतायें प्राप्त हुई हैं, उनका प्रमुख श्रेय उनके अज्ञात भाव से धर्म में प्रबल विश्वास करने को ही जाता है। कहीं कहीं तो उनका जीवन धर्म में तथाकथित शिक्षकों के जीवन से अधिक धर्ममय रहा है।"

भारत के सामान्य साधु सन्यासियों के प्रति स्वामी राम की धारणा अच्छी नहीं थी। उन्होंने भारत के वर्तमान साधुओं के संबंध में अपनी विचारधारा इस प्रकार अभिव्यक्त की है—

"भारत के वर्त्तमान साधु इस देश के लिये अनोखे दृश्य हैं। जिस प्रकार बँधे जल के ऊपर हरा आवरण (काई) छा जाता है, उसी प्रकार वर्त्तमान समय में भारत में पूरे बावन लाख साधुओं की जमात दिखायी पड़ती है। उनमें से कुछ साधु तो सचमुच ही समाज रूपी सरोवर के सुन्दर कमल हैं। किन्तु साधुओं की अधिकांश संख्या (उस समाज रूपी सरोवर पर) अस्वास्थ्यकर—हानिकर झाग के रूप में ही है। यदि बँधा हुआ जल प्रवाहित होने लगे, गतिशील हो जाय तो यह झाग (कूड़ा-कर्कट) स्वयं साफ हो जायेगा।"

स्वामी राम का ध्यान हिन्दुओं के खाने-पीने की समस्या पर भी गया। खाने-पीने को ही धर्म मान लेना कहाँ की बुद्धिमानी है? सारा हिन्दू समाज इसी रूढ़ि में बुरी तरह जकड़ा था। स्वामी राम की दृष्टि इस ओर भी गयी और उन्होंने कहा—

"सचमुच ही भोजन के प्रश्न ने हिन्दू समाज में इतना अनावश्यक विस्तार और महत्त्व धारण कर लिया है, कि कुछ व्यक्तियों ने उपहास में इस धर्म का नाम 'चूल्हे चौके का धर्म' रख दिया है। खाने-पीने की समस्या ने हमारी शक्ति और स्फूर्ति को गलत दिशा में लगा दिया है इससे हमारी बुरी तरह हानि हो रही है। हमने वैज्ञानिक रीति से इस प्रश्न पर कभी नहीं ध्यान दिया कि हमें क्या और किस प्रकार खाना चाहिये। 'जिस प्रकार का तुम भोजन करोगे उसी के अनुरूप तुम्हारे कर्म और विचार होंगे।' जो मनुष्य मांस-पेशी-वर्द्धक अथवा मस्तिष्क-वर्द्धक आहार नहीं करेगा, वह किस प्रकार बलशाली अथवा बुद्धिमान हो सकेगा? सब्जियों, फलों एवं अनाजों में हम अपनी आवश्यकतानुसार ऐसी वस्तुओं को अपने भोजन में उपयोग कर सकते हैं, जिनसे यथेष्ट पौष्टिक तत्त्व प्राप्त हों और हम शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अधिक सक्रिय और स्वस्थ रह सकें। हम अपने भोजन में घी को बहुत महत्त्व देते हैं, किन्तु क्या इस बात

पर भी कभी विचार किया है कि इससे हमारे मस्तिष्क और स्नायुओं का कितना विकास होगा ? हम जौ को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, किन्तु हम यह नही समझते कि छात्रो के लिए यह कितनी लाभ की वस्तु है । मिच मसालो एव औषधियो के प्रयोग से पाचन क्रिया में गडबडी पैदा हो जाती है, सहज स्वाद विकृत हो जाता है, अनेक प्रकार की बीमारियाँ शरीर में डेरा जमाने लगती हैं, दुर्बलता आती है । परिणाम यह होता है कि हम जल्द ही मृत्यु के शिकार बन जाते है । मक्खन, चीनी आदि खाद्य वस्तुओ को हम अपने भोजन में बहुत अधिक महत्त्व देते हैं । पर हम यह नही समझ पाते कि इनका अधिक प्रयोग फेफडों और मस्तिष्क के लिए हानिप्रद है । इनसे स्नायुओ एव मस्तिष्क को भी लाभ नही पहुँचता । परिणामस्वरूप हम आलस्य और तन्द्रा के शिकार हो जाते हैं, हमारी शक्ति का ह्रास अवश्यम्भावी हो जाता है । अतएव ज्ञान (विज्ञान) को अन्न (भोजन) का अधीक्षक बनाओ ।"

स्वामी राम ने सामाजिक सुधार के सम्बन्ध में हिन्दुओ से बडा जोशीला आग्रह किया है—

"भारत के कट्टरपंथी प्यारे भाइयो, शास्त्रो का यथोचित शक्तिशाली प्रयोग करो । देश का आपद् धर्म तुमसे माँग करता है कि अपने वर्ण-व्यवस्था सबधी कठोर नियमो को ढीला कर दो । तथाकथित निम्न वर्ण के लोगों के प्रति तुम्हारी राष्ट्रीय भ्रातृ भावना की बुद्धि जगे । क्या तुम देख नही रहे हो कि जिस भारत ने तमाम शरणार्थियों को शरण दी और उनका हार्दिक स्वागत किया, जिसने अनेक जातियो एव देशो को आर्थिक सहायता प्रदान की, वही भारत आज अपने बच्चो को भोजन देने में असमर्थ है ? प्रत्येक देशवासी को अपना यथोचित स्थान पाने के लिए समान स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये । तुम अपना सिर चाहे जितना ऊँचा रखो, पर तुम्हारे पैर सामान्य भूमि पर रहें । कमजोर, दुर्बल व्यक्ति के कधो अथवा गर्दन पर तुम्हारे पैर नही होने चाहिए ।

"देश के भावी नवयुवक सुधारको, भारत की प्राचीन परम्पराओ एव उसकी आध्यात्मिकता की अवहेलना मत करो । फूट में नवीन तत्त्व का समावेश करने से भारतवासी एकता के सूत्र में कभी न गूथे जा सकेंगे । भारत के धर्म और आध्यात्मिकता को देश की भौतिक अवनति का कारण कभी नही माना जा सकता । भारत की हरी भरी फुलवाडी इसलिए उजाडी और लूटी-खसोटी गयी, कि उसके चारा ओर रक्षा के लिए कँटीली चहारदीवारियाँ एव चुभीली झाडियाँ न थी । उनके निर्माण का विधान करो । सुधार अथवा उन्नति के नाम पर सुन्दर गुलाबो अथवा फलदायी वृक्षो को केन्द्रित करने की जल्दबाजी न करो । ओ सुन्दर

काँटो और चुभीली झाडियो तुम रक्षक तत्वा से परिपूर्ण हो। तुम्हारी भारत को नितान्त आवश्यकता है।

जब राम शूद्र-श्रम की महत्ता का गुणगान करता है, तो इसका अभिप्राय यह नही की वह तमोगुण को रजोगुण और सत्वगुण पर लाद रहा है। मेरा कहना मात्र इतना है कि हमने तमोगुण की पर्याप्त अवहलना की है। हमें तमोगुण के समुचित प्रयोग की यथाथ रीति जाननी चाहिए।

भला बताओ, वाटिका कैसे फूल फल सकती थी, यदि हमने गदी खाद को फेंक दिया होता और उसका ठीक प्रयोग नही किया होता ?

तमोगुण कोयला है। विना उसके न अग्नि वन सकती है न भाप (रजोगुण) और न प्रकाश (सत्वगुण) ही हो सकता है। अत जिस अनुपात में तमोगुण होगा उसी अनुपात में रजोगुण एव सत्वगुण की भी उत्पत्ति होगी।

' इन्ही कारणो से हिन्दुओं ने शकर को 'महादव' नाम से सबोधित किया और उन्हें तमोगुण का अधिष्ठाता माना।"

इस प्रकार स्वामी राम अपनी क्रान्तिकारी विचारधारा से हिन्दुओं में बल, पौरुष, ओज, शक्ति, ऐक्य, सहानुभूति, प्रेम, समन्वय आदि भावो से भर देना चाहते थे। उनकी दृष्टि अत्यन्त पैनी थी। वे समाज में सबका यथोचित सम्मान पूर्ण स्थान देने के पक्के हिमायती थे।

क्या स्वामी राम समाजवादी थे ?

इसी प्रसग में स्वामी राम की समाजवादी विचारधारा को समझ लेना अप्रासगिक न होगा। समाजवाद के सम्बन्ध में उनके विचारो को समझने के लिए केवल दो स्रोत है—उनकी 'नोटबुक' जिसमें उन्होने समाजवाद पर एक छोटी सी टिप्पणी लिखी है और उनका एक व्याख्यान—'वदान्त और समाजवाद'।

अपनी टिप्पणी में उन्हाने समाजवाद के सम्बन्ध मे अपनी धारणा इस प्रकार प्रकट की है—

"सम्पत्ति का विभाजन एकदम कृत्रिम है, स्वाभाविक नहीं है और न ही मनुष्य की व्यवस्था के अनुरूप है। किन्तु तथाकथित समाजवाद से समस्या का निदान सम्भव नही है। इससे तो प्रत्येक क्षेत्र में सघर्ष बढता जायेगा।"

स्वामी राम को 'समाजवाद' के स्थान पर 'व्यक्ति स्वातन्त्र्यवाद' नाम अधिक पसद था। उन्होंने अपनी सम्मति इस प्रकार दी है—

'सबसे पहले समाजवाद नाम के विषय में ही कुछ कहना है, राम उसे 'व्यक्तिस्वातन्त्र्यवाद' कहना अधिक पसन्द करेगा। 'समाजवाद' का नाम समाज

के शासन की कल्पना को प्रधानता देता है। किन्तु राम कहता है कि सत्य का यथार्थ तत्त्व तो यह है कि व्यक्ति को ही सारी दुनिया, सम्पूर्ण विश्व और ब्रह्माण्ड के समक्ष प्राधान्य दिया जाय, जहा न कोई हैरानी हो, न कोई चिन्ता और न कोई झंझट। इसी को राम 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवाद' कहता है। लोगों की यदि इच्छा हो, तो वे उसे 'समाजवाद', 'समष्टिवाद' चाहे जो कहें, पर व्यक्ति के स्थिति बिन्दु से वेदान्त की शिक्षा ऐसी ही है।"

हमें यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि स्वामी राम राजनीति के विद्वान नही थे, और न राजनीति में उनकी अभिरुचि ही थी। वे तो पूर्णतया धर्म और अध्यात्म के अध्येता थे और उन्ही विषयो के अभ्यासी थे। आपद्-धर्म के नाते उन्हें राजनीति की ओर अपना ध्यान आकृष्ट करना पडा था। ऐसी स्थिति में धर्म, अध्यात्म एव अद्वैतवाद के माध्यम से ही उन्होने राजनीतिक सामाजिक एव आर्थिक समस्याओं का समाधान करने की चेष्टा की थी। और इसमें तनिक भी सन्देह नही कि उन्होंने अत्यत मौलिक ढग से उन्हें हल भी किया था। उन्हें इस बात का पूरा भान था कि समाजवाद, पूजीवाद का घनघोर शत्रु है और वह पूजीवाद को पूरी तरह से ढहा देना चाहता है। वे यह भलीभाँति जानते कि व्यक्तिगत अधिकार-भावना का परित्याग समाजवाद का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। वेदान्त को भी यह सिद्धान्त शत प्रतिशत मान्य है। यह सिद्धान्त वेदान्त के व्यावहारिक पक्ष का महत्त्वपूर्ण अग है। व्यक्तिगत अधिकार भावना का परित्याग किये बिना वेदान्त के व्यावहारिक पक्ष में साधक आगे बढ ही नही सकता। इस दृष्टि से वेदान्त धर्म समाजवाद से बहुत आगे है। स्वामी राम ने समाजवाद के इस गुण की प्रशसा की है। उन्होने कहा है—

दूसरी बात जिस पर ध्यान देना है, यह कि तथाकथित समाजवाद का लक्ष्य पूँजीवाद की बाढ को ढहा देना है। और इस बात में वह वेदान्त के लक्ष्य से पूर्णत एकमत है, क्योंकि वेदान्त भी आपको साधारणत स्वामित्व के हर प्रकार के भाव से रहित कर देना चाहता है। वेदान्त सम्पत्ति के भाव, सग्रह के भाव तथा स्वार्थपूर्ण अधिकार के भाव को हवा में उडा देना चाहता है। यही वेदान्त है और यही समाजवाद है। दोनो के लक्ष्य एक है।

वेदान्त समता की शिक्षा देता है और यही लक्ष्य निस्सन्देह सच्चे समाजवाद का भी है। समाजवाद में भी बाहरी सम्पत्तियो के लिये कोई सम्मान, कोई आदर और कोई इज्जत नही है। यह आदर्श बहुत ही विकट और बडा कठोर सा प्रतीत होता है। किन्तु जब तक मनुष्य सम्पत्ति के भावों और अधिकारों को, मोह तथा आसक्ति को सम्पूर्णत त्याग नही देता, तब तक पृथ्वी पर कोई सुख

और आनन्द विद्यमान नही हो सकता। समाजवाद केवल इतना ही चाहता है कि मनुष्य इन सब बातों को त्याग दे, किन्तु वेदान्त ऐसा करने के लिये एक महान् कारण भी बतलाता है। तथाकथित समाजवाद तो वस्तुओ की केवल ऊपरी सतह, बाह्य रूप का ही अध्ययन करता है और इस परिणाम पर पहुँचता है कि मानव जाति को समता, बन्धुत्व और प्रेम के आधार पर जीवन बिताना चाहिये। *वेदान्त इस दृश्यमय जगत् का अध्ययन स्वाभाविक और आन्तरिक दृष्टिकोण से* करता है। वेदान्त के अनुसार किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति पर अधिकार जमाना अपनी आत्मा, आन्तरिक स्वरूप के विरुद्ध पापाचार करना है। वेदान्त के अनुसार मनुष्य का एक मात्र अधिकार केवल अर्पण करना है, लेना अथवा माँगना याचना नही। यदि तुम्हारे पास देने को और कुछ नही है, तो अपनी देह ही कीडो को खाने के लिये दे दो। जो कुछ तुम्हारे पास है, उसका कोई मूल्य नही, उसके कारण तुम्हें कोई भी धनी नही कह सकता। जो कुछ तुम दे डालते हो, उसी से तुम अमीर होते हो। प्रत्येक व्यक्ति काम करे किसी वस्तु का स्वामी बनने के लिये नही, बल्कि प्रत्येक वस्तु को दे डालने के लिये। दुनिया सबसे बडी भूल यह करती है कि वह लेने में सुख का भाव मानती है। वेदान्त चाहता है कि आप सत्य को पहचाने और अनुभव करे कि सुख सबको सब देने में है, और लेने या याचना करने में नही। ज्योही, तुम माँगने या भिक्षा वृत्ति का अपने भीतर प्रवेश होने देते हो, उसी क्षण तुम अपने आपको सकीण या सकुचित बना डालते हो और अपने आन्तरिक आनन्द को बाहर निचोड देते हो। आप चाहे जहाँ हो, दाता के रूप में काम करें, भिखारी के रूप में कदापि नही, तभी आपका काय विश्वव्यापी कार्य होगा और उसमें व्यक्तिगत स्वाथ की गन्ध भी न पैठ सकेगी।

"भारत के वेदान्तवादी साधु आज भी ऐसा समाजवादी जीवन हिमालय के बनों में व्यतीत करते हैं, ऐतिहासिक काल के पूव से ही वे ऐसा जीवन व्यतीत करते आये हैं। वे कडी मेहनत करते हैं, निठल्ले नही रहते। वे आरामतलब और विलासी नही होते, क्योकि उन्ही के प्रयत्नो से भारत के विशाल और महान् साहित्य की सृष्टि हुई है। यही लोग भारत के सवश्रेष्ठ कवि, नाटककार, वैज्ञानिक, दार्शनिक, वैयाकरण, गणितज्ञ, ज्योतिर्विद, रसायनशास्त्री, आयुर्वेदज्ञ हुये हैं। और ये वे लोग है जिन्होने रुपये-पैसे का कभी स्पश तक नही किया। ये ही वे लोग हैं, जिन्होने यथासाध्य कठोरतम जीवन व्यतीत किया है। इसस समाजवाद पर लगाया जाने वाला यह कलक धुल जाता है कि यह लोगों को कायर, आलसी और परावलम्बी बना देगा। काम वही खूब कर सकता ह, जो अपने को स्वतन्त्र समझता हो।'

किन्तु पश्चिमी समाजवाद और वेदान्त के समाजवाद में बहुत अन्तर है। वेदान्त का समाजवाद तो हमें स्वत सब कुछ त्याग करने की शिक्षा देता हैं, किन्तु पश्चिम का समाजवाद जबदस्ती व्यक्ति की सम्पत्ति उससे छीन लेता हैं। दानो के दृष्टिकोण में अत्यन्त मौलिक भेद है—एक तो व्यक्ति के आन्तरिक परित्याग का द्योतक है और दूसरा बाह्य शक्ति से व्यक्ति को दबाकर त्याग करने को बाध्य करके कराया जाता ह। वदान्ती के स्वत त्याग में शान्ति, परितृप्ति और स तोष की भावना अन्तर्हित है, इसके विपरीत तथाकथित आधुनिक समाजवादी के मन में कुण्ठा, असन्तोष और परिताप की भावना व्याप्त होता ह। एक का हृदय शान्ति और आनन्द के सागर में हिलोरें ले रहा ह और दूसरे का हृदय असन्तोष, ग्लानि की ज्वाला से दग्ध हो रहा है। वेदान्ती का त्याग उसकी आन्तरिक प्रेरणा का त्याग है, जबकि आधुनिक समाजवादी का त्याग, बलपूवक कराया गया त्याग ह। तभी तो स्वामी राम ने कहा है, "सही व्यक्ति वही है, जो अपना सवस्व द देता है, याचना नही करता। तुम लेने में नही, बल्कि देने में धनी समझे जाते हो।"

अत स्वामी राम की समाजवादी विचारधारा, वतमान समाजवादी विचारधारा से सवथा भिन्न थी। स्त्रियो के सबध में उन्होने जो विचार अभिव्यक्त किये है, उससे उनके उच्चादर्शों का सहज अनुमान लगाया जा सकता है—

वेदान्त और समाजवाद के भी अनुसार आपका अपने बच्चो स्त्री, घर-बार या अन्य सभी वस्तुओ पर अधिकार जमाने का काई हक नही है।

सभ्य समाज के मस्तक पर यह कलक का टीका लगा हुआ है कि स्त्री वाणिज्य की वस्तु बनी हुई है और मनुष्य उसी अथ में उस पर अपना अधिकार जमाता और शासन करता है जैसे वृक्षो पर धरा पर अथवा रुपये-पैस पर। इस प्रकार सभ्य समाज में नारी की स्थिति जड-पदार्थों जैसी हो गई ह तथा नारी के हाथ और पैर दोनो बाँध दिये गये है, जबकि मनुष्य अपने कामो में सवथा स्वतन्त्र है। स्त्री कभी एक मनुष्य की सम्पत्ति हो जाती है और कभी दूसरे की। समाजवाद और वेदान्त के अनुसार भी यह स्थिति अति विचित्र जान पडती है। किन्तु नारी को भी अपनी स्वतत्रता ठीक उसी तरह पहचानना और पकडना चाहिये, जिस तरह पुरुष अपनी स्वतत्रता को पहचानता और पकडता ह। नारी भी उतनी ही स्वाधीन है जितना कि पुरुष। हाँ, यदि पुरुष के लिए किसी वस्तु पर अपना अधिकार रखना ठीक नही है तो नारी को भी किसी वस्तु पर अपना अधिकार न जमान चाहिये। अपना आनन्द स्थिर रखने के लिये, उसे भी अपने पति पर स्वत्त्व जमाने का कोई अधिकार न होगा। यहाँ पर, समाजवाद के विरुद्ध एक गम्भीर आपत्ति उठती है। यदि समाजवाद नर और नारी का पूण स्वाधीनता दे देता है,

डाक्टरो की। समाजवाद के पास इनके उपचार का कोई निदान नही हैं। स्वामी राम ने इस संबध में अपनी सम्मति इस पर अभिव्यक्त की है—

" 'हमें इस बच्चे या इस स्त्री अथवा इस बहिन की चिन्ता करनी है'—निरन्तर ऐसी भावना का बोझ मनुष्य को अपने अध्ययन या अपने ब्रह्मत्त्व का अनुभव करने में बाधक होता है। समाजवाद अथवा वेदान्त तुम्हारी छाती पर से यह बोझ हटा देना चाहता है, तुम्हें स्वच्छन्द कर देना चाहता है। जब तुम किसी अन्वेषण के सागर में उतरते हो, तो तुम विजय-पताका उडाते हुये बाहर निकलते हो। जब तुम किसी अनुसंधान की रणभूमि में प्रवेश करते हो, तो तुम पूर्ण कृतकार्य होते हो, यदि तुम स्वच्छन्दता से पाशमुक्त होकर सब प्रकार के बन्धनो और चिन्ताओ से मुक्त होकर काम करते हो, तो हर समय तुम अपने को स्वतन्त्र समझते हो, और तुम निश्चयपूर्वक इस विशाल जगत को अपना घर समझते हो।

हमें करना केवल इतना ही है कि लोग केवल यह समझ जायँ कि उनके रोगो और विपत्तियो की एकमात्र दवा दूसरो पर स्वत्त्व जमाने की कल्पना को दूर कर देना है। एक बार जब सारा जनसमुदाय इस बात को समझ लेगा, तो समाजवाद सारे समाज में दावाग्नि की भाँति व्याप्त हो जायेगा। यही वेदान्तिक समाजवाद उन सब रोगो की एकमात्र औषधि है। एक बार जहाँ यह वेदान्तिक समाजवाद दुनिया की समझ में आ गया, कि वह स्वर्ग बन जायेगी। उस समय हमारी उल्टी दृष्टि तथा आसपास की परिस्थिति से उत्पन्न होने वाली आपत्तियाँ गायब हो जायँगी। इस समाजवाद की छाया में बादशाहो, राष्ट्रपतियो, धर्माचार्यो की जरूरत नही होगी, सेनाओं की भी कोई आवश्यकता नही होगी। विश्व विद्यालयो की भी कोई आवश्यकता नही पडेगी, क्योकि प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपना विश्वविद्यालय आप ही होगा। हम ऐसे पुस्तकालय रखेंगे, जिनमें प्रत्येक मनुष्य आकर पढ सकेगा। केवल छोटे बच्चो के निमित्त अध्यापक होंगे, और नही। डाक्टरो की भी आवश्यकता न पडेगी, क्योकि वेदान्त के उपदेशानुसार प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने से आप कभी बीमार ही नही पड सकेंगे। फिर आपको डाक्टर क्यो चाहिये? लोग चाहे जो करेंगे, जहा जी चाहेगा, घूमेंगे, आज की तरह अपने ही भाइयो का डर उन्हें न होगा। वे भलाई करेंगे और वास्तव में कल्याणप्रद अध्ययनो, तत्त्वज्ञानो और अध्यात्म के अनुसंधानो में अपना समय लगायेंगे, जिससे अपने ब्रह्मत्व और परमेश्वरत्त्व का अनुभव करते हुये, वे जीवन्मुक्त हो सकेंगे।

ॐ, ॐ, ॐ, ।"

वास्तव में स्वामी राम के मन में इसी प्रकार के वेदान्तिक समाजवाद की कल्पना थी। उनके मन में वेदान्त के विशुद्ध समाजवाद की रूपरेखा थी। उनके निम्नलिखित कथन से इसकी पुष्टि भी हो जाती है—

"संगठनों एवं सहयोग की भावना से भारत में समाजवाद का पथ निर्मित हो सकता है।"

स्वामी राम धर्म और अध्यात्म के मर्मोहा थे। उन्होंने संसार को जिस वस्तु का प्रतिपादन किया, उसे अध्यात्म के रंग में रंग कर बिलकुल मौलिक रूप प्रदान कर दिया। वे ऐसे कुशल कीमियागर थे जिन्होंने अपनी वेदान्त की रासायनिक विद्या से मिट्टी को भी सोने में परिवर्तित कर दिया। उनके हाथों में पड़कर सांसारिक समाजवाद ने अध्यात्म और वेदान्त का स्वरूप धारण कर लिया। उन्होंने जिस समाज की प्रतिष्ठा कल्पना की, उसमें हिन्दू धर्म की समस्त आध्यात्मिकता, निस्पृहता, त्याग भावना, सहृदयता, प्रेम, ईश्वर में अखण्ड विश्वास— सभी कुछ अन्तर्हित हैं। स्वामी राम द्वारा प्रतिपादित समाजवाद अन्तर के स्वतः त्याग से अभिषिक्त है, उसमें बाहर का बलात आरोपित त्याग नहीं है। इस प्रकार स्वामी राम का समाजवाद पश्चिमी समाजवाद से सर्वथा भिन्न है। यदि स्वामी राम द्वारा प्रतिपादित समाजवाद की प्रतिष्ठा हो जाय, तो संसार में सर्वत्र शान्ति, सन्तोष, सहृदयता, प्रेम, सहानुभूति आदि सात्त्विक गुण अपने आप प्रतिष्ठित हो जायें।

त्रयोदश अध्याय

स्वामी राम—अध्यात्मवादी कवि

कवि दो प्रकार के होते हैं—एक नर्सगिक और दूसरे परिश्रम-साध्य। नैसर्गिक कवि हमारे हृदय पर शासन करते है और परिश्रम-साध्य कवि मस्तिष्क का सस्कार करते ह। नैसर्गिक कवियो को हम हार्दिक प्रेम करते हैं और परिश्रम-साध्य कवियो की प्रशसा करते हैं। स्वामी राम उच्चकोटि के नैसर्गिक भावप्रवण कवि थे। उनकी कवितायें हमारे हृदय को तुरन्त स्पश कर लेती हैं, हम बरबस उनकी काव्य रस धारा में प्रवाहित होने लगते हैं। बायरन ने परिश्रम-साध्य कवियो के सम्बन्ध में अपनी धारणा इस प्रकार अभिव्यक्त की है, "कवि क्या हैं? उसका क्या महत्त्व है? उसका कार्य क्या होता है? वह मात्र बडबडिया बकवादी है।"

स्वामी राम काव्य का निर्माण नही करते थे, बल्कि काव्य स्वत उनसे मन से निकल कर प्रवाहित होता था। उनके हृदय में काव्य के असख्य स्रोत विद्यमान थे। अवसर पाते ही वे बरबस फूट पडते थे। उनका समस्त जीवन असीम भाव मय था। उनका उठना-बैठना, सोचना विचारना, वार्ता करना,—सब काव्यमय था। उनकी मति, धृति, मनीषा, स्मृति, सकल्प—सब में रहस्यात्मक काव्य की अखण्ड माधुरी पायी जाती है। उनकी मुसकान में इतनी रहस्यात्मकता और प्रभावोत्पादकता थी कि उस पर बडे से बडे लोग न्यौछावर हो जाते थे। उसमें काव्य की अद्भुत सरिता प्रवाहित होती थी।

थोरो ने एक स्थान पर लिखा है, "शारीरिक श्रम के लिये तो लाखों जागे हुये हैं। परन्तु करोडा में से कही एक काव्यमय दैवी जीवन के लिये सचेत और क्रियाशील होता ह।" राम एक ऐसे ही दुलभ महान् कवि थे। अनेक बार सारी रात वे रोते रहे और सबेरे उनकी धर्मपत्नी को उनके बिछौने की चादर आँसुओ से भीगी मिली। आखिर उन्हें कष्ट क्या था? वे किसलिये इतने दुखी थे। उसका प्रमुख कारण यही था कि एक विरहिणी आत्मा अपने पति परमात्मा से मिल कर एक होना चाहती थी। इसी विरहानुभूति की तीव्रता ने स्वामी राम को उच्चतम कवि रूप में परिणत कर दिया। नदिया के तटों पर, जगलो में सुनसान

अधकार में, प्रकृति के पल पल परिवर्तित होते दृश्यो के अवलोकन में एव स्वरूपानुसधान में उन्होंने अनेक रातें जागकर काटी। इस दशा में कभी तो अपने सगी से बिछुडे हुये बिरही पक्षी के लोक-सन्तप्त स्वर में अपने रचे हुये गीत गाते थे और कभी-कभी उत्कट ईश भक्ति से मूच्छित हो जाते थे और सचेत होने पर अपने नेत्रो के पवित्र गगाजल में स्नान करते थे। उनकी प्रेमावस्था सदैव अज्ञात रहेगी। विचारक लोग अपने भावो के अनुसार उन अवस्थाओं को निरन्तर जानने की चेष्टा करते रहेंगे। पर सही रूप में कितना जान पायेंगे, इसका अनुमान लगाना कठिन होगा।

किन्तु इसमें सन्देह नही, कि कवि और ईश्वरीय दूत होने के पूर्व उन्होंने अत्यधिक स्वाध्याय, सत्सग एव साधना की थी। स्वाध्याय की दृष्टि से उन्होने ईरान के सूफी कवियो, पाश्चात्य कवियो एव दार्शनिको, भारतीय साहित्य के सस्कृत के प्राप्त ग्रन्थो एव मध्यकालीन कवियों का विचारपूवक अध्ययन किया था। ईरान के सूफी कवियो में हाफिज अत्तार, मौलाना रूमी और शम्स तबरेज उनके विशेष प्रिय कवि थे। उनकी अनेक कवितायें स्वामी राम को कण्ठाग्र थी। पाश्चात्य साहित्य में उन्होने इमर्सन, काट, गेटे, कारलाइल, ह्विटमैन, थोरो, विलफोड, हक्सले, टिंडल, मिल, डार्विन, स्पेंसर आदि का विशद अध्ययन किया था। भारतीय साहित्य में उपनिषद, योगवासिष्ठ, श्रीमद्‌भगवदगीता, अष्टावक्र गीता, अवधूत गीता स्वामी राम के अत्यन्त प्रिय ग्रन्थ थे। इन्ही ग्रन्थो के भावो एव विचारो में स्वामी राम रमण करते थे। इसके अतिरिक्त हिन्दू और मुसलमान दोनो ही भक्तो, ज्ञानियो के प्रति स्वामी राम की अगाध निष्ठा थी। तुलसीदास एव सूरदास से उन्होने निश्चित ही प्रेरणा ग्रहण की थी। चैतन्य महाप्रभु के प्रेम की तो मानो स्वामी राम ने अपने जीवन में पुनरावृत्ति ही की थी। तुकाराम एव नानक की मधुरता एव विनयशीलता की मानो स्वामी राम साकार प्रतिमा थे। प्रह्लाद एव ध्रुव का दृढ विश्वास उनके जीवन के पग-पग में दृष्टिगोचर होता है। मीराबाई, बुल्लेशाह एव पजाबी सन्त गोपालसिंह की आध्यात्मिकता स्वामी राम के प्राणो में स्पन्दित होती थी। श्रीकृष्ण भगवान् की निष्काम कर्म योगपरायणता उनके छोटे से छोटे कार्यों में भी देखी जा सकती थी। भगवान् आशुतोष महादेव के त्याग एव तपस्या को तो स्वामी राम ने अपने जीवन का लक्ष्य ही बना रखा था। कहने का अभिप्राय यह कि उनकी स्वाध्याय-परायणता, मननशीलता, और अभ्यास-वृत्ति से उन्होंने अपने व्यक्तित्व को असाधारण और अलौकिक बना लिया था। यही कारण है कि स्वामी राम का व्यक्तित्व इतनी विलक्षणता से परिपूर्ण था। उनकी उपस्थिति आस-पास के समस्त वातावरण को

परिवर्त्तित कर देती थी। उनकी उपस्थिति मात्र से साधका का मन बेकाबू हो जाता था। जो जिस भाव का साधक था, उसको अपनी साधना का वही भाव स्वामी राम में देखने को मिल जाता था। उनके सानिध्य में किसी में कवि की, किसी में चित्रकार की, किसी में उत्कट योगी की, किसी में क्रान्तिकारी समाज-सुधारक की, किसी में अनुपम देशभक्त की, किसी में अद्वैतनिष्ठ ब्रह्मज्ञानी की एव किसी में निष्काम कर्मयोगी की अभिरुचि अपने आप उत्पन्न हो जाती थी। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व अप्रतिभ आध्यात्मिक था। जिस प्रकार उनका व्यक्तित्व आध्यात्मिक था, उसी प्रकार उनका काव्य भी आध्यात्मिक भावनाओं से ओतप्रोत था। श्रुतियाँ और स्मृतियाँ, पद्य और गीत, विचार और विषय, तत्त्व-ज्ञान और धर्म तथा राजनीति और समाज की समस्यायें—ये सब एक साथ ही उनके निर्मल अन्त करण के ज्योति-समुद्र में उद्भासित होती थी और स्वामी राम की प्रत्यक्षानुभूति का जामा पहनकर सुन्दर और मधुर काव्य के रूप में बाहर निकलती थी कोई भी भावना, कोई भी समस्या, कोई भी विचार राम की अन्तरात्मा के रहस्यमय प्रभावों से परिवर्तित नये काव्य के नवीन स्वरूप में प्रकट होते थे। स्वामी राम यह उद्घोषित करते थे—'सूर्य की लाल किरण मेरी नसें हैं'। वे सृष्टि के समस्त विषयों को अपनी आत्म-ज्योति से देखते थे। इसी से वे जो कुछ बोलते थे लिखते थे अथवा उपदेश देते थे, वह सब आत्मा की परम ज्योति से उद्भासित होकर आनन्दमय, रसमय काव्य का रूप धारण कर लेता था। उन्होंने समस्त विराट प्रकृति को अपने आत्मस्वरूप में लीन कर लिया था। वे प्रकृति के नहीं थे, बल्कि प्रकृति उनके महान् स्वरूप का एक अंग मात्र बन गयी थी। इसी से तो "उनका मुसकराना वर्षाऋतु में धूपवत् था और रोना गरमी की ठीक दोपहरी में जलवृष्टिवत। मेघ उनके सिर पर छाया रखते थे। वे घने जगलों के बीच निशक और निर्भय निवास करते थे। आधी रात को मार्गशून्य कदराओ में विचरते थे और वहाँ इस सुगमता से प्रविष्ट होते थे, जैसे पक्षी हवा में उडते हैं।"

वे सच्चे अर्थ में कवि थे। ईशावास्योपनिषद् के आठवें मन्त्र में 'कवि' को परमात्मा का विशेषण माना गया है जिसका अर्थ होता है 'सर्वद्रष्टा'। स्वामी राम उसी अर्थ में 'कवि' थे। अत उन्हें 'कवियो का कवि' सुगमता से माना जा सकता है। प्रकृति के वैभवों को उन्होने आत्मसात् कर लिया था। पर्वतीय सरिताओ एव निर्झरो का कलकल निनाद उनके सत्सग का साधन था। वृक्षों की छाया में बैठे हुए पक्षी उन्हें प्रकृति के रहस्यो का उदघाटन करते हुए प्रतीत होते थे। उन्हें समस्त जगत् के कोलाहल में 'अनाहत नाद' सुनाई पडता था। समुद्र की थिरकती हुई

तरगो में, वना के वृक्षा के स्पन्दन में, वृक्षो की हरीतिमा में, चन्द्र ज्योत्स्ना में, नक्षत्रा की टिमटिमाहट में, सूर्य के प्रभातकालीन स्वर्णिम प्रकाश में, मध्याह्न की प्रचण्ड चिलचिलाती धूप में उन्हें अलौकिक सौन्दर्य की अनुभूति होती थी। वास्तव में अपनी साधना की प्रत्यक्षानुभूति के बल पर स्वामी राम ने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया था। अत उन्हें प्रकृति की समस्त वस्तुऐं अपने से भिन्न नही प्रतीत होती थी। इसीलिए उन्हें प्रकृति के कोमल और परुष दोना पक्षो से समान अनुराग था।

प्रकृति के बाह्य स्वरूप के अतिरिक्त स्वामी राम ने उसके अन्तपक्ष—मानवीय पक्ष का अत्यन्त सूक्ष्मता एव गभीरता से पयवेक्षण किया था। मानव के विविध रागात्मक सम्बन्धों—राग-द्वेष, हर्ष-शोक, अनुराग विराग, ईर्ष्या-कपट-पाखण्ड—की उन्हें पूण जानकारी थी। उनके काव्य में स्थल-स्थल पर इन वस्तुओं का सक्षिप्त चित्रण मिलता ह। किन्तु मजाल हैं कि वे कभी उनमें रमते हुए प्रतीत हुए हा। उन्होंने इनका चित्रण केवल दृश्य रूप में किया है। उनका चित्रण वरते समय वे सदैव द्रष्टा और साक्षी रूप में दिखलाई पडते हैं।

उनकी कविताओं के सम्बन्ध में सी० एफ० एण्ड्र ज ने अपने विचार इस भाँति अभिव्यक्त किये हैं—

'उन्होने अपनी कविताओ में छन्दशास्त्र के नियमो के अनुसार सशोधन भी किया होता। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें ज्योंही कोई अन्त प्रेरणा हुई, त्यांही अपने भावो को बिना किसी यथेष्ट सशोधन केरे अपने तात्कालिक शब्दों में कागज पर अकित कर लिया। किन्तु इस प्रकार जहाँ उनके पाठको को कुछ हानि हुई है, वहाँ उतना ही लाभ भी है, क्योंकि सजावट और सशोधन की कमी उनके चिर नावीन्य और सजीवता के द्वारा आशा से अधिक पूरी हो गयी। अत पाठका का पुनरुक्ति दोष तथा चमक-दमक का अभाव उतना नही खटकना चाहिये, जबकि इन पाण्डुलिपियो में स्वामी राम का व्यक्तित्व हमारी आँखो के सामने इतना सजीव हो उठता हैं।

''उनकी कविताओ के इस वणन से मैं उनके जीवन एव उपदेशों के उस अतिम पहलू पर पहुँचता हूँ जिसका मैं यहाँ उल्लेख करना चाहता हूँ और जिसमें यथेष्ट सकोच एवं आत्मविश्वास की कमी का भी अनुभव करता हूँ। क्योंकि यह सम्भव है कि बहुत से लोग मेरी राय से सहमत न हों। फिर भी जो बात मैं यहाँ कहने का साहस करता हूँ वह सक्षेप में यह है कि मुझे स्वामी राम की कविताओं में ही, उनके साहित्य का सबसे अधिक मूल्य दिखायी देता है, क्योंकि उनके दशनशास्त्र के पीछे उनका कवि हृदय बराबर झलक मारता रहता

है। प्रकृति के प्रति उनका अद्भुत प्रेम—जीवन पर्यन्त और मृत्यु में भी एक समान, प्रबल त्याग और सन्यास की उत्कट इच्छा, अन्तिम सत्य (परमात्म-तत्व) के लिये अतिशय जिज्ञासा, सत्य की खोज में आत्मबलिदान और इसी प्रकार स्वार्जित आत्मविश्वास का आनन्द और अट्टहास—ये और अनेक सद्गुण उनमें थे, जिनके वशीभूत होकर कविता उनके हृदय से अनायास फूट पड़ती थी, और दार्शनिक के पीछे सच्चे कवि के दर्शन हमें यत्र-तत्र सर्वत्र मिल जाते हैं।"

इसी भाँति एण्ड्र्ज महोदय ने और भी लिखा है—

" मेरा सारा हृदय स्वामी राम के प्रति खिंचने लगता है, जब मैं त्याग और बलिदान पर उनके विचारों को पढ़ता हूँ, जिन्हें उन्होंने अनादि जीवन का नियम माना है, अथवा जब मैं नैसर्गिक सौन्दर्य के प्रति उनकी उत्कट लालसा और सजीव अनुराग का दर्शन करता हूँ, तब मुझे ऐसी अनुभूति होती है कि मेरे हृदय में वही सत्प्रेरणा जाग्रत होती है, जो उपनिषदों की कविता पढ़ने से अथवा हिन्दू धर्म के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता के कुछ विचारों का अनुशीलन करते समय होती है। स्वामी राम के उपदेशों में स्थल-स्थल पर एक ही ध्वनि निकलती है कि केवल अन्त करण के निर्विकल्प मौन में ही हम ब्रह्माण्ड के उस दिव्य शान्त और सामंजस्यपूर्ण संगीत का सुख समझ सकते हैं।"

जिस प्रकार वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, शैली, कीट्स आदि पाश्चात्य कवियों पर अज्ञात रूप से पौर्वात्य जगत् की भावनाओं का प्रभाव पड़ा। ठीक उसी भाँति भारत के प्रतिनिधि कवियों—स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ एवं श्रीमती सरोजिनी नायडू आदि कविगण भी पाश्चात्य प्रभाव से अछूते नहीं रहे। बात यह है कि उन्होंने पाश्चात्य साहित्य का विशद अध्ययन किया था और उसकी उदात्त भावनाओं को आत्मसात् कर लिया था।

इस बात का एण्ड्र्ज महोदय ने कुशल समीक्षक की भाँति विश्लेषण किया है—

"पूर्व की ओर से स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ—इन दोनों ने अपने उन सिद्धान्तों द्वारा, जिन्हें उन्होंने व्यावहारिक वेदान्त का नाम दिया था, पश्चिम से मिलने की चेष्टा की है। उन्होंने अद्वैत वेदान्त की आधुनिक ढंग से व्याख्या करके ईसाई धर्म की सेवा और परोपकार भाव-जनित सामाजिक और राष्ट्रीय प्रयोगों के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। किन्तु ध्यान देने की बात केवल इतनी है कि इस सम्मिलन की एक सीमा है, क्योंकि उनकी इस नूतन हिन्दू-उद्भावना के अन्तर्गत पूर्व का सामाजिक और राष्ट्रीय

विकास फिर भी दो हजार वर्षों से ईसाई धर्म की शिक्षा-दीक्षा के अन्तर्गत पलने वाले यूरोप के विकास से स्वरूप और गति, दोनो में कुछ भिन्न ही रहेगा।

"पूर्व और पश्चिम की इस सम्मिलन-योजना को आगे बढ़ाने को स्वामी रामतीर्थ में कुछ अद्भुत एवं अपूर्व क्षमता थी। उनमें भारतीय विचारधारा को पश्चिम के हृदय में पैठाने की योग्यता थी।"

स्वामी राम की कविताओं के सम्बन्ध में एण्ड्रूज महोदय ने अपनी धारणा इस प्रकार अभिव्यक्त की है—

"उनके भीतर का उल्लास ही वह चीज है, जो उनकी कविताओं में यत्र-तत्र सवत्र लहराता दिखायी देता है। इतना ही नहीं, उसके द्वारा हमारे हृदयो में भी उसी अट्टहास की एक सूक्ष्म प्रतिध्वनि जाग उठती है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि उनकी कविताओं की बाह्य रूपरेखा चाहे कहीं-कहीं कुछ ऊबड़-खाबड और विचित्र सी भले दिखायी पड़े, इसमें सन्देह नही कि सहृदय पाठक शब्दों के इस अपर्याप्त और अपूर्ण प्रवाह में भी उनकी अन्तरात्मा को सहज ही देख सकते हैं।"

स्वामी राम का गद्य और पद्य दोनों ही काव्य है। वास्तव में उनका समस्त जीवन काव्य की अनुपम माधुरी से ओतप्रोत था। उनका जीवन प्रेम की अपूर्व मिठास, पूर्ण शान्ति, ब्रह्मानन्द की अनोखी मस्ती से परिपूर्ण था। उनके जीवन का प्रत्येक पहलू काव्य का अजस्र स्रोत था। समय समय पर उनका गद्यात्मक रूप भी दिखलायी पड़ता है। किन्तु उससे उनके काव्य की आत्मा को किसी प्रकार की ठेस नहीं पहुँचती। उनमें भाव प्रवणता है, साथ ही नैतिकता का बोझ नहीं है, व आध्यात्मिकता की सुगन्धि से सुवासित तो अवश्य है, किन्तु कल्पनाओं की बहुलता से दूर है। उनकी कवितायें हृदय से निकली हैं और हृदय का स्पर्श तुरन्त कर लेती है, यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है।

स्वामी राम ने लगभग १५० कवितायें उर्दू में लिखी हैं और लगभग १०० अंग्रेजी में। भारत में वे उर्दू में कविता करते थे लेकिन अमेरिका में कदाचित अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों को अपनी भावनाओं को समझाने के लिये उन्होंने अंग्रेजी में कवितायें लिखीं। अमेरिका से लौटने पर उन्होंने फिर उर्दू में कवितायें लिखनी प्रारम्भ कीं, जिनमें उन्होंने 'वाल्ट ह्विटमैन' की मुक्त छन्द शैली का अनुसरण किया। उनके काव्य की वास्तविक आत्मा, तो उनके पत्रों में अभिव्यक्त होती हैं, जिनका इस पुस्तक में अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है।

विषय की दृष्टि से मोटे तौर पर उनकी कवितायें तीन शीर्षकों के अन्तगत विभाजित की जा सकती हैं—

१ प्रकृति-सम्बन्धी कवितायें।
२ मानव-सम्बन्धी कवितायें।
३ आत्मा (परमात्मा अथवा ब्रह्म) सम्बन्धी कवितायें।

किन्तु इन तथाकथित विभाजनों के अन्तगत एक बात स्पष्ट रूप से परिलक्षित है कि स्वामी राम इन विभाजनों के अन्तगत भी बलात् अवसर ढूंढ कर उनका सम्बन्ध आत्मा से जोड देते हैं, क्योंकि जैसे समुद्र के जहाज का पक्षी जहाज को छोडकर इधर-उधर उड तो अवश्य लेता है, पर अन्त में उसी जहाज पर आकर सुखपूर्वक बैठ जाने में उसे विश्रान्ति मिलती है। प्रकृति सम्बन्धी अथवा मानव-सम्बन्धी कविताओं को लिखते समय स्वामी राम की दृष्टि सदैव आत्मा पर ही रही है। वे प्रकृति अथवा मानव का चित्रण करते समय, आत्मा से उसका सम्बन्ध स्थापित करके उसे आत्ममय बना देते हैं। अब प्रत्येक के स्पष्टीकरण की चेष्टा की जायेगी।

प्रकृति-सम्बन्धी कविताओं में स्वामी राम ने मधु ऋतु, ऊषा, पर्वतों, मैदानों, सतरंगे इन्द्रधनुष आदि का संक्षिप्त दृश्य चित्रित तो अवश्य किया है, पर वे उन सभी दृश्यों का अधिष्ठान अपने हृदय मन्दिर—आत्मा को ही मानते हैं—

रंगीन बनी मधु ऋतु के ये लघु शिशु सुन्दर
कर रहे मधुर कण्ठों से गाकर अभिनन्दन
ऊषा फैलाकर रंग गुलाबी मनभावन
पर्वत-सर, मैदानों को सजा रही शोभन।
करुणा का यह प्रकाश परिवेश अनन्त सघन,
कर रहा अमृत शीतल धारा का मदुवर्षण।
सतरंगा इन्द्रधनुष नभ का से आकर्षण,
रंग रहा क्षितिज विस्तार बिखर, मुसकान किरण।

स्वामी राम ने प्रकृति के इन उल्लासमय दृश्यों का बडा ही हृदयग्राही चित्रण किया है। किन्तु प्रकृति रानी ये विविध खेल स्वामी राम के हृदय-मन्दिर के अन्तर्गत कर रही है। इन क्रीडाओं का अधिष्ठान उनकी आत्मा ही है। इसका संकेत उन्होंने कविता की प्रथम पंक्ति में ही कर दिया है—

"मेरा यह हृदय देव मन्दिर—इसके भीतर—"

स्वामी राम ने 'चांदनी' नामक कविता में चांदनी को लज्जित युवती मान

कर उसका अत्यन्त आकर्षक चित्र खींचा है। उन्होंने चाँदनी की शंका, भय, लज्जा, एवं उसकी आंगिक चेष्टाओं को साकार झाँकी-सी प्रस्तुत कर दी है। किन्तु अन्त में आत्मा में ही उसका पर्यवसान कर दिया है। वास्तव में प्रकृति, पुरुष आत्मा की चिर सहचरी है। प्रकृति पुरुष से वियुक्त होकर उद्विग्न और अशान्त रहती है। इसी से वह पुरुष से मिलने के लिये सतत् चेष्टाशील रहती है। वह कविता इस प्रकार है—

चाँदनी

ऊँची चोटी से पर्वत का,
देखती, खोज मेरी करती,
मेरे एकान्त कक्ष का पता लगाती तुम!
लज्जित युवती सी चकित-नयन
सब ओर देखती शंकित मन,
आगे बढ़ती, भय से पीली हो जाती तुम!
यद्यपि तुम शरमीली शीतल,
फिर भी मन में साहस, बल,
छिप छिप आती लज्जा से किये कपोल अरुण!
खिड़की दरवाजे से घुसकर,
तुम परी, फर्श पर मृदु पग धर,
धीरे से आ जाती, करता मैं जहाँ शयन!
फिर चुप चुप झुक मेरे मुख पर,
लेती भौंहों का चुम्बन कर,
जिससे जागूँ करती फिर नयनों का चुम्बन!
तब ज्योति परस, स्वरमय चितवन
धनहीन, सुरभिमय साँस पवन
सब मिल ये कर लेते, फिर मेरी नींद हरण!
सुन्दरि, फिर मेरे बिस्तर पर,
तुम साथ लेट जाती आकर,
कुछ देर के लिए साथ साथ हम सो जाते!
जाती तुम मुझसे लिपट ललक,
मैं पीता सब मदिरा छक-छक,
फिर एक दूसरे में हम दोनों खो जाते!

स्वामी राम ने अपनी 'मानव सम्बन्धी' कविताओं में तत्कालीन मानव-सभ्यता की बहिर्मुखता का जीवन्त चित्रण किया है। उन्होंने तथाकथित सभ्य समाज की फैशनप्रियता, अनुकरणप्रियता, कातरता, क्षुद्रता, आलस्य, निबलता, कपट, आदि रजोगुणी एवं तमोगुणी वृत्तियों की ओर संकेत किया है। वे मानव-समाज को चेतावनी भी देते हैं कि इनसे किसी तात्विक लाभ की प्राप्ति नहीं हो सकती। साथ ही बीच में यह भी याद दिलाते हैं कि 'आत्म स्वरूप' से विमुख होने पर बहिर्मुखता के इन बाह्याडम्बरों में सुख, संतोष एवं शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

उन्होंने 'सभ्यता के प्रति' नामक कविता में, तथाकथित सभ्य पुरुषों की दशा का इस भांति चित्रण किया है—

तुम नीच गुलामों की सी लम्पटता में रत,
तुम फैशन के हो दास, धूत तुम बाइज्जत !
अनुकरण कर रहे तुम कपि से पर श्रम रीति,
तुम तो निर्मित करते कृत्रिम आचार नीति।
'होगा तो इससे लाभ'? प्रश्न यह पग-पग पर,
'जाने क्या लोग कहेंगे?' तुमको प्रति पल डर।
तुम कितने कातर, क्षुद्र, वेत्रवत् निबल तन,
हर एक मोड पर जीवन के तुम पीत वदन !

इसी प्रकार 'तथाकथित सभ्यों से' नामक कविता में—मानव दुर्बलताओं का चित्रण करके, मानव को उद्बोधित किया है कि वह अपनी इन क्षुद्र दुर्बलताओं का परित्याग करके आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो, तभी उसे वास्तविक आनन्द की प्राप्ति हो सकेगी—

ओ सभ्यो! आलस के प्रति इतना आकर्षण!
तुम हो निर्बलता और कपट के सम्मिश्रण!
तुम सूक्ष्म दृष्टि भावुक, होते झट तप्त अरुण,
जैसे हो शोथयुक्त कोई भारी-सा व्रण!
× × ×
कैसी घबरायी भीड! मूढ लाखों जन गण!
औरों के मति अनुसार तुम्हारा है जीवन।
निज आत्मा ही सम्राट्, उसे क्यों ठुकराते?
बहुमूल्य वस्तु से क्या सच तुम गौरव पाते?
× × ×

तुम घड़ी-पेण्डुलम सदृश झूलते इधर-उधर,
विस्तार किया करते लघु बातों को नश्वर।

× × ×

छद्म ही बना आच्छादन, लज्जा, अवगुण्ठन,
यश और नाम की चिन्ता सता रही प्रतिक्षण।
अस्वास्थ्य तुम्हारा स्वास्थ्य बुरा ही तुम्हें भला,
अनुचित धन-सचय तुमको है नित जला रहा।

× × ×

जागो, जागो, तुम बन जाओ जगकर चेतन,
अब दूर करो तन्द्रा, फेंको निज अवगुण्ठन
हो तुम्हीं विश्व के स्वामी, जन जन के ईश्वर,
फिर क्यों यह नतन प्रेतों के सम्मुख झुककर।

× × ×

मुझ में न रहा अब भौतिक वैभव हित आदर,
सब भेदभाव से शून्य बना मेरा अन्तर।
रह गयी न ईर्ष्या, भय, चिन्ता मेरे भीतर,
अब मैं हूँ प्रिय का स्नेहपात्र सबसे बढकर।

इस प्रकार स्वामी राम 'प्रकृति' और 'मानव' के उत्कृष्टतम कवि माने जा सकते ह। किन्तु उनकी मनोवृत्ति 'प्रकृति और 'मानव' की सीमाओ का अतिक्रमण कर तुरन्त आत्मस्वरूप में स्थित हो जाती है। वहाँ स्थित होने पर वे द्रष्टा, साक्षी रूप में प्रतीत होने लगते है। पाठकों को यह प्रतीत होने लगता है कि वे 'प्रकृति' एव 'मनुष्यो की सीमा से परे परब्रह्म की स्थिति में निमग्न ह, परमहस है, उन्हे प्रकृति और मानव से कुछ भी लेना-देना नही है।

स्वामी राम मनसा वाचा, कमणा आत्मस्थ पुरुष थे। वे आत्माराम, 'आत्म क्रीडो' एव आत्मरत' परमहस थे। उनकी समस्त क्रियायें, व्यवहार-व्यापार आत्मा' के निमित्त थे। अत उनकी अधिकाश कवितायें 'आत्म परक' हैं। स्वामी राम के अनुसार, आत्मा, परमात्मा एव ब्रह्म एक ही ह। उनके अनुसार आत्मा में ही समस्त रहस्य निहित हैं। उसमें समस्त दूरियाँ और निकटतायें समाविष्ट हैं। वह असीम है, उसमें कोई भी सीमा नही ह, वह असग है एव सभी सम्बन्धो से परे है। वही समस्त प्राणियो का जीवन है। उसमें अणिमादिक समस्त वैभव स्थित है। 'तथाकथित सम्यों से नामक कविता में उस आत्मा का निरूपण इस भाँति किया गया है—

सारे रहस्य-गोपन मेरे हित आज प्रकट,
मेरे हित दोनों एक दूर हो या कि निकट।
मैं पहुँच गया हूँ अब असीम की सीमा पर,
निस्संग हुआ, मैं उठ सम्बन्धों से ऊपर।
मैं हूँ जीवन, मैं अप्राविक वैभव महान्,
ओ त्राहि माम्! ओ त्राहि माम!!

आत्म-स्वरूप में स्थित हो जाने पर, प्रकृति के समस्त बाह्यरूप अपनी ही सत्ता प्रतीत होने लगते ह। सारी वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी अपने ही अवयव जान पडते हैं—"तथाकथित सभ्यो से" नामक कविता के अन्तिम पद से यह बात भलीभाँति सिद्ध हो जाती है—

ओ पथ्वी! सातों सागर ओ,
तुम मेरे पुत्र-पुत्रियाँ हो!
ओ सभी वनस्पति! पशु पक्षी!
टूटे सब सीमा-बन्धन लो!
गाओ अजस्र स्वर से गाओ!
ओ त्राहि माम! ओ त्राहि माम्!!

स्वामी राम के अनुसार आत्मा ही महाशक्ति, अमर प्रेम, सीमा-रहित, सर्वात्मा सर्वाधार, ऊपर-नीचे, सभी ओर वही ह—

मैं महाशक्ति अब अमर प्रेम,
मुझमें असीम में क्या अन्तर?
मिल सर्वात्मा से हुआ एक,
मुझमें विलीन अब स्वर्गिक स्वर!
हो ऊँच, नीच, समकक्ष, सभी से शान्ति भरी ममता अथोर!
ऊपर नीचे में सभी ओर!

कहने का अभिप्राय यह है कि स्वामी राम की कविताओ में आत्मा का राग सबसे अधिक प्रबल और सशक्त हैं।

अब हम स्वामी राम की कविताओ में रहस्यवादी—भावना भर सक्षिप्त विचार प्रकट कर इस प्रसग को समाप्त करेंगे।

साहित्य-मनीषियो ने 'रहस्यवाद' की विभिन्न परिभाषायें दी है। उन परिभाषाओ का शाब्दिक क्रम चाहे जिस प्रकार का हो, किन्तु उनकी आन्तरिक बात प्राय एक सी हैं—

'ज्ञान के क्षेत्र में जिसे अद्वैतवाद कहते है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद कहलाता है।" —रामचन्द्र शुक्ल

"रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सबध जोडना चाहती है और यह सबध यहाँ तक बढ जाता है कि दोनो में कुछ अन्तर नही रह जाता आत्मा उस दिव्य शक्ति से इस प्रकार मिल जाती है कि आत्मा में परमात्मा के गुणो का प्रदशन होने लगता है।" —डा० रामकुमार वर्मा।

"रहस्यवाद शब्द काव्य की एक धारा विशेष का सूचित करता है। वह प्रधानत उसमें लक्षित होने वाली उस अभिव्यक्ति की ओर सकेत करता है, जो विश्वात्मक सत्ता की प्रत्यक्ष गभीर एव तीव्र अनुभूति के साथ सबध रखती है। उस अनुभूति का वास्तविक आधार अन्तहृ दय हुआ करता है, जो वैयक्तिक चेतना का मूल स्थान है और इसमें 'अहम्' एव 'इदम्' की भावना का क्रमश लोप हो जाता है।' —परशुराम चतुर्वेदी।

रहस्यवाद उस भावप्रधान मनोदशा की शाब्दिक अभिव्यक्ति को कहते है, जो व्यक्ति और विश्व के मूल में स्थित चरमसत्ता से अव्यक्त या व्यक्त रूप से रागात्मक सबध स्थापित करने की इच्छा से प्राप्त होती है।" —गुलाबराय

काव्य में आत्मा की सकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है। वास्तव में भारतीय दशन और साहित्य, दोनों का समन्वय इसमें हुआ था और वह साहित्यिक इस दार्शनिक रहस्यवाद से अनुप्राणित हुआ था। रहस्यवाद सच्चा भी हो सकता है और मिथ्या भी।" —'प्रसाद'

ब्रह्म की अद्वैत भावना की जो प्रत्यक्षानुभूति साधना, अभ्यास एव भावना के बल पर काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त होती है, वही रहस्यवाद है।

बॉगन की यह धारणा और निष्कष सवथा समीचीन प्रतीत होता है कि "विश्व को रहस्यवाद की सबसे पहली झाँकी भारत ने दी।' यद्यपि वेदों में रहस्यवादी भावना यत्र-तत्र दिखायी पडती है, किन्तु इस परम्परा का स्पष्ट प्रारम्भ उपनिषदो से माना जाता है।

भारतीय साहित्य में रहस्यवाद की तीन धारायें दिखायी पडती है—

१ औपनिषदिक रहस्यवाद
२ मध्यकालीन रहस्यवाद
३ आधुनिक रहस्यवाद।

उपर्युक्त तीनों धाराओं के रहस्यवाद में किंचित् अन्तर अवश्य दिखायी पडेगा। "उपनिषदो का रहस्यवाद उन मनुष्यों का रहस्यवाद था, जो आश्रमों में

रहते थे। किन्तु मध्यकालीन रहस्यवाद, वह रहस्यवाद था, जिसने अपने को मानवता के उत्थान में व्यावहारिक रूप से लगाया[1]।"

मध्यकालीन रहस्यवाद समस्त भक्ति काल के साहित्य में पाया जाता है। सन्त-साहित्य (कबीर आदि) एव सूफी साहित्य में तो यह अत्यन्त स्पष्ट और विशद रूप में पाया जाता है। सूर, तुलसी एव मीरा आदि में भी कही-कही इसका रूप देखा जा सकता है।

आधुनिक रहस्यवाद पर अनेक प्रभाव दिखलायी पडते है। किन्तु भारतीय भावना उसके आन्तरिक प्राणों में पिराई हुई सवत्र मिलेगी।

स्वामी राम सच्चे रहस्यवादी कवि थे। रहस्यवादी कवि के लिये जितने विशिष्ट गुण अपेक्षित होते हैं, वे सब स्वामी राम में शत प्रतिशत पाये जाते हैं। वे पूण अद्वैतवादी वेदान्ती थे, किन्तु साथ ही पूर्ण विरही भक्त का रूप भी उनके व्यक्तित्व में उत्कृष्ट रूप में पाया जाता है। वे उपनिषत्कालीन ऋषियो की भाँति एकान्त जीवन व्यतीत करते थे, किन्तु मध्यकालीन रहस्यवादी कवियो की समाज-सुधार भावना की प्रवृत्ति भी उनमें बहुत अधिक पायी जाती थी। कहने का अभिप्राय यह कि स्वामी रामतीथ में औपनिषदिक रहस्यवाद, मध्यकालीन रहस्य-वाद और आधुनिक रहस्यवाद तीनो उत्कृष्ट रूप में पाये जाते हैं। स्वामी राम की रहस्यवादी कविताओं में उपनिषदो का गम्भीर ज्ञान एव अद्वैत के प्रति अपूर्व निष्ठा दिखायी देती है। मध्यकालीन भक्तिकाल के सन्त कवियो के अद्वैत ज्ञान का फक्कडपन एव समाज सुधार की भावना भी अपूव रूप में परिलक्षित होती है। साथ ही सूफी कवियों की आ तरिक पीर से उनकी कुछ कवितायें युक्त है। उनकी कविता आधुनिक रहस्यवाद के प्राय अधिकाश गुणो से सुशोभित हैं। स्वामी राम के रहस्यवाद की अन्तिम विशेषता यह है कि उनके काव्य में भावात्मक एव साधनात्मक दोनों पक्षो का अपूव सामजस्य भी पाया जाता है। अब प्रत्येक के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

औपनिषदिक रहस्यवाद इस प्रकार के रहस्यवाद में समस्त प्रकृति के ऊपर आत्म-तत्त्व में ही सारी वस्तुयें स्थित है, उससे पृथक कोई भी वस्तु नही हैं। वह सर्वाधिष्ठाता है, उसका अतिक्रमण कोई भी नही कर सकता। स्वामी राम अपनी 'सर्वान्विति' नामक कविता में विद्युत, प्रकाश, मन के ज्योतिमय विचारो को सबोधित कर इस प्रकार कहते हैं—

ओ विद्युत्! ओ प्रकाश गतिमय!
मन के विचार! ओ ज्योतिमय!

---

१ 'मिस्टिसिज्म इन दी महाराष्ट्र'

आओ, तुम गति में मेरे हो अब प्रतियोगी।
पूरी गति से तुम बढ़ो बढ़ो
चाहे तुम जितना तेज उड़ो,
पर व्यर्थ तुम्हारी होड़ विजय मेरी ही होगी॥

स्वामी राम के उपर्युक्त पद से ईशावास्योपनिषद् के इस मंत्र की अकस्मात् स्मृति आ जाती है—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवत् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥ (मंत्र ४)

इस मंत्र का अभिप्राय है, "वह सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् आत्म-तत्त्व—ब्रह्म अचल और एक है तथापि मन से भी अधिक तीव्र वेगयुक्त है। जहाँ तक मन की गति है वह आत्मतत्त्व उससे भी कहीं आगे पहले से ही विद्यमान है। मन तो वहाँ तक पहुँच ही नहीं पाता। वह सब का आदि और ज्ञान-स्वरूप है अथवा सब का आदि होने के कारण वह सबको पहले से ही जानता है। जितने भी तीव्र वेगयुक्त बुद्धि मन इन्द्रियाँ अथवा वायु आदि देवता हैं, अपनी शक्तिभर ब्रह्मतत्त्व (आत्मतत्त्व) के अनुसन्धान में सदैव दौड़ लगाते रहते हैं, परन्तु आत्म-तत्त्व नित्य अचल रहते हुये भी, उन सब का अतिक्रमण करके, पहले से ही आगे निकला हुआ है। उन सब की पहुँच वहाँ तक हो ही नहीं सकती। असीम आत्मतत्त्व की सीमा का पता ससीम मन बुद्धि, वायु आदि किस प्रकार लगा सकते हैं? बल्कि वायु आदि देवताओं में जो शक्ति है जिसके द्वारा वे जलवर्षण, प्रकाशन, प्राणि प्राणधारण आदि कर्म करने में समर्थ होते हैं, वह सब इस अचिन्त्यशक्ति आत्मतत्त्व—ब्रह्मतत्त्व की शक्ति का अंशमात्र ही है। उसका सहयोग लिये बिना, वे सब कुछ भी नहीं कर सकते।"

स्वामी राम अपनी वास्तविक आत्मा में स्थिर होकर भौतिक तत्त्वों को आदेश देते हुये प्रतीत होते हैं—

भौतिक तत्त्वो! ओ तूफानो!
ओ वज्र, दिग्गजो, बलवालो!
आलिंगन हित फैलाता मैं अपनी बाँहें
तुम अश्व जुते मेरे रथ में
ले चलो दूर अति तुम पथ में
आगे पीछे सब ओर जहाँ तक हों राहें।

—('सर्वाधिपति' नामक कविता से)

स्वामी राम ने अरण्यों के एकान्त में उपनिषदा का गम्भीर अध्ययन किया था। एक-एक मत्र के चिन्तन मनन में न मालूम कितनी रातें और दिन व्यतीत किये थे। इसका परिणाम यह हुआ था कि उन्होंने उन मत्रों का आत्मसात् कर लिया था। उनके श्वास प्रश्वास में उन मत्रों की सुरभि निकलती थी। उनकी शिराओ में उन मत्रो की महत ध्वनि भकृत होती थी। और जब वे कुछ बोलते थे, तो उनकी वाणी में उपनिषदो की ही वाणी सुनायी पडती थी। इस लिये यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि स्वामी राम के काव्य में सर्वाधिक प्रभाव उपनिषदो का है। इसी से उनकी कविताओ में औपनिषदिक रहस्यवाद सबसे अधिक पाया जाता है। यथा—

प्रत्येक वस्तु में मैं अपनी साँसें पाता,
रवि, शशि, पृथ्वी, सब में मैं ही चक्कर खाता।
मैं पवन बीच बहता, बढ़ता पौधे बन कर,
सरि में बहता, फेंका जाता बन वस्तु निकर।

—('अतीन्द्रियता' नामक कविता से)

यदि हम कठोपनिषद् की निम्नलिखित श्रुति को देखें, तो दोनो के भाव में असाधारण साम्य दिखलायी पडेगा—

भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूय।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चम ॥

—कठोपनिषद्, अध्याय २, वल्ली ३, मत्र ३।

अर्थात "सब पर शासन करने वाले और सबको नियत्रण में रखकर नियमानुसार चलाने वाले इस आत्मतत्त्व—ब्रह्मतत्त्व के भय से ही अग्नि तपता है, इसी के भय से सूय तप रहा है इसी के भय स इन्द्र, वायु, और पाँचवें मृत्यु देवता—ये सब दौड दौड कर जल आदि बरसाना, प्राणियो को जीवन शक्ति प्रदान करना, जीवो के शरीरा का अन्त करना आदि अपना अपना काम सावधानी पूवक कर रहे हैं। ये समस्त काय सब शक्तिमान, सर्वेश्वर, सबके शासक एव नियन्ता आत्मतत्त्व—ब्रह्मतत्त्व के अमोघ शासन से ही हो रहे है।'

स्वामी राम इस ब्रह्मतत्त्व में स्थित होकर अपनी उपस्थिति का यत्र-तत्र-सर्वत्र भान कर रहे है।

ईशावास्योपनिषद् का एक मत्र इस प्रकार है—

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वान्तिके।
तदन्तरस्य सवस्य तदु सवस्यास्य बाह्यत ॥

—ईशावास्योपनिषद्, मत्र ५

अर्थात्, वह आत्मतत्त्व—ब्रह्मतत्त्व चलता भी है और नही भी चलता, एक ही काल में परस्पर विरोधी भाव गुण तथा क्रिया जिसमें रह सकती है, वही तो आत्मतत्त्व—ब्रह्मतत्त्व है। यह उसकी अभिनय शक्ति की महिमा है। इसके अतिरिक्त वह आत्मतत्त्व सदा सर्वत्र परिपूर्ण है, इसलिये दूर से दूर भी वही है और समीप से समीप भी वही है, क्योंकि ऐसा कोई स्थान नही जहाँ वह आत्मतत्त्व विराजमान न हो। सबका अन्तर्यामी होने के कारण वह अत्यन्त समीप है पर जो अज्ञानी लोग उसे इस रूप में नही पहचानते उनके लिये वह बहुत दूर है। वस्तुत वही आत्मतत्त्व—ब्रह्मतत्त्व समस्त जगत का आधार है और परम कारण भी वही है, इसलिये बाहर भीतर सभी जगह वही परिपूर्ण है।"

स्वामी राम इन्ही भावो से ओतप्रोत अपनी प्रत्यक्षानुभूति इस भाँति अभिव्यक्त करते है—

> मैं स्वय उपस्थित, अनुपस्थित, मैं दूर पास।
> मैं भूत भविष्यत् स्वय, कुसुम तारक सहास ॥
> —('अतीप्रियता' नामक कविता से)

इस प्रकार के मिलते-जुलते भावो के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते है।

मध्यकालीन—रहस्यवाद

उपनिषदो के रहस्यवाद में माधुर्य भाव के लिये कोई स्थान नही था। हाँ, उपमानो में कुछ सकेत अवश्य मिल जाते है। किन्तु मध्यकालीन रहस्यवाद में माधुर्य भाव का पर्याप्त मात्रा में अपनाया गया है। भावात्मक रहस्यवाद की परम्परा में माधुर्य भाव का आरोपण अनूठा योग माना जा सकता है। मध्यकालीन रहस्यवाद के साधनात्मक रूप में कही-कही माधुर्य भाव की उपेक्षा भी दिखलायी पड़ती है। माधुर्य भाव प्रकृति के सभी रूपों में प्रियतम का रग भर कर उसमें नवीन आकर्षण उत्पन्न कर देता है। आराधक—आराध्य का पृथकत्व थोड़े ही काल के लिये दिखायी पड़ता है। बाद में आराधक अपने आराध्यदेव के प्रेम में इतना अधिक तन्मय हो जाता है कि उसका 'अपनापन' प्रियतम में ही समाविष्ट हो जाता है, परिणाम यह हो जाता है कि व दोनो एक हो जाते हैं और सहज भाव से ही अद्वैत की प्रतिष्ठा हो जाती है।

कहना न होगा कि स्वामी राम कृष्ण के उत्कट प्रेमी थे। उन्होने कृष्ण के वियोग में कितनी रातें रो रो कर, आँसू बहाकर काटी थी। पूर्ण रूप से अद्वैत भाव में निमग्न हो जाने पर भी उनकी यह प्रेम भावना सदा-सदा उमड पड़ती

थी। इस प्रेम भावना के उमड़ने पर भी उनकी अद्वैत निष्ठा अक्षुण्ण बनी रहती थी। यह तो अनुभूति के प्रकाशन का माध्यम मात्र था। जब वे अपने प्रियतम की छवि अंकित करने की चेष्टा करते हैं, तो मध्यकालीन रहस्यवादियों—कबीर एवं जायसी—की माधुर्य भावना की झाँकी हमारे सामने प्रस्तुत हो जाती है। स्वामी राम की 'प्रियतम की छवि' नामक कविता में मध्यकालीन रहस्यवाद की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। पहले तो स्वामी राम अपने प्रियतम की छवि का अंकन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं किन्तु कविता के अन्तिम पद में प्रकृति के सभी सुन्दर पदार्थों में अपने प्रियतम की छवि का दर्शन कर कृतकृत्य हो जाते हैं। यहाँ इस बात को स्पष्ट कर देना समीचीन प्रतीत होता है कि स्वामी राम का 'प्रियतम और उनकी आत्मा एक ही हैं। व्यवहार की भाषा में दोनों का पृथक्-पृथक् स्वरूप प्रतीत हो सकता है, पर परमार्थ अथवा अध्यात्म की भाषा में 'प्रियतम' और 'आत्मतत्त्व' एक ही हैं। स्वामी राम की कविता इस प्रकार है—

प्रियतम की छवि

(१)

निज प्रियतम की छवि को बाँधू किस उपमा-बन्धन में ?
क्या उसका उपमेय कभी भी समा सकेगा मन में ?
कौन कैमरा ग्रहण कर सकेगा उस छवि का दर्शन ?
चित्रकार की तूली क्या कर सकती उसका अंकन ?
रंगों से आकृति में उसका होगा क्या आलेखन ?
भौतिकता का यन्त्र कैमरा गल कर गया तरल बन—
इतनी थी तीव्रता अलौकिक उस प्रकाश-वर्षण में,
निज प्रियतम की छवि को बाँधू किस उपमा-बन्धन में ?

(२)

निज मन को केन्द्रित कर, करना चाहा प्रिय का चित्रण,
नयनों को साधा कि करूँ मैं बिम्ब ग्रहण, छवि-अंकन !
पर मेरा यह हृदय कैमरा बिम्ब-ग्रहण का साधन—
ये सब भौतिक यन्त्र बह चले गल कर बस दो क्षण में !
इतनी थी तीव्रतम ज्योति की धारा प्रिय-दर्शन में
निज प्रियतम की छवि को बाँधू किस उपमा बन्धन में ?
क्यों न उसे फिर निरुपमेय मैं मानूँ अपने मन में ?

(३)

जग कहता है, वह रवि ही है उसका चित्र मनोहर !
जग कहता है, मानव भी तो हैं उसकी छाया भर !
जग कहता है, वह चमका करता है तारागण में !
जग कहता है, वही सदा मुसकाता सुरभि-सुमन में !
सुनता हूँ, बुलबुल का गायन ही है उसका मधु स्वर,
सुनता हूँ है पवन गगन में उसकी साँस निरन्तर।
सुनता, घन से झरना उसके ही नयनों का पानी,
सुनता, जाड़ों की रातें ही उसकी नींद सुहानी !
सुनता, कलकल निर्झर है उसका ही गतिमय यावन !
इन्द्रधनुष के झूले पर वह झूल रहा मन भावन !

स्वामी राम की उपर्युक्त कविता के अन्तिम चरण के अध्ययन के अनन्तर जायसी की कुछ चौपाइयाँ स्वत याद आ जाती है—

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ मानिक मोती॥
जहँ-तहँ बिहँसि सुभावहि हँसी।
तहँ-तहँ छिटकि जोति परगसी॥

अथवा—

सूरज बूडि उठा होइ राता।
औ मजीठ टेसू बन राता॥
भा बसन्त राती बनसपती।
औ राते सब जोगी जती॥

इसी प्रकार कबीर की कुछ पंक्तियाँ भी इससे अद्भुत साम्य रखती हैं—

"अविगत अकल अनूपम देख्या, कहता कह्या न जाई।
सैन करै मन ही मन रहसै, गूँगै जानि मिठाई।"

आधुनिक रहस्यवाद

आधुनिक भारतीय भाषाओं में रहस्यवादी धारा बराबर बहती जा रही है। यह अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना के लिये प्रशस्त है। भारतीय भाषाओं का यह अद्वैत रहस्यवाद अपने स्वाभाविक विकास का सूचक है। 'प्रसाद' जी ने हिन्दी के आधुनिक रहस्यवाद की स्थिति का इस प्रकार मूल्यांकन किया

है, "उसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता, तथा प्राकृतिक सौन्दय के द्वारा 'अहम्' का 'इदम्' से सबध करने का सुन्दर प्रयत्न है। हाँ, विरह भी युग की वेदना के अनुकूल मिलन का साधन बन कर इसमें सम्मिलित है। वत्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सपत्ति है, इसमें सन्देह नही।"

किन्तु कतिपय आलोचको की दृष्टि में आधुनिक रहस्यवाद में भाव-पक्ष की अपेक्षा बुद्धितत्त्व की प्रधानता है। दूसरी बात यह भी है कि इस युग के रहस्य-वाद की आस्तिकता के सम्बन्ध में भी कतिपय मनीषी सशय करते है। कवियो का व्यक्तिगत जीवन इस सशय का मूल कारण माना जा सकता ह। किन्तु स्वामी राम इन दानो विवादो से ऊपर थे। वे जन्मजात भावुक थे और उनकी भावुकता जीवन पयन्त बनी रही। वे बौद्धिक वस्तुओ को भी अपने भाव के अनुराग रँग से रजित कर देते थे। स्वामी राम आस्तिकता के तो साक्षात् विग्रह थे। उनका भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्तर सभी कुछ शुद्ध आस्तिकता से परिवेष्टित था। उनमें नास्तिकता की कल्पना करनी उतनी ही असंगत है, जितनी कि मध्याह्न के प्रचण्ड भास्कर में अन्धकार की कल्पना। इसी भावप्रवणता, अलौकिक प्रेम एव अपूव आस्तिकता के कारण स्वामी राम को आधुनिक रहस्य-वादी कवियों का सम्राट माना जा सकता है। अब हम उनकी कविताओ के कतिपय उदाहरण देकर इस प्रसग को समाप्त करते है।

ओ! फैला कितना सौन्दय चमत्कार!
हर एक पहाडी पर, घाटी में, उस पार!
आश्चर्यजनक मेरा है मृदुल बिछौना,
यह लाल, हरा, नीला पीले रँग का प्रसार!

('असीमता' नामक कविता से)

कोमल गुलाब, ये चाँदी के से ओस बिन्दु सुन्दर सुन्दर,
यह मधु-सौरभ, यह प्रात-पवन, अति सुखदायक यह धूप सुघर।
पक्षीगन का यह कल-कूजन, कितना प्रिय यह उनका गायन,
वे वस्तु सकल जिनके कारण आप्यायित होते श्रवण नयन।
वे सभी वहाँ से आते, जो तेरा स्वर्गिक सुखपूण धाम,
तू है विशुद्ध निष्कलुष परम, तू निर्विकार है 'ओम्' नाम!
सो जा ओ, मेरे शिशु सो जा॥

—('लोरी' नामक कविता से)

कोकिल की तीखी कूक जो कि नभ में होती प्रतिध्वनित प्रखर,
वह है, तेरी ही किलकारी, तीखी सीटी की ध्वनि मनहर!

ये गौरैये, यह पवन और नभ में जगमग करते तारे,
ये सभी खिलौने और खेल की गाड़ी हैं तेरी प्यारे!
यह दुनिया तो है बस, तेरी ही हँसी-खुशी का सपना भर,
यह तो है, तेरे भीतर ही, भ्रम है यह जग जो बाहर!
सो जा, ओ मेरे शिशु सो जा।

—('लोरी' नामक कविता से)

इस प्रकार स्वामी राम की कविताओं में औपनिषदिक, मध्यकालीन एवं आधुनिक रहस्यवाद की सुन्दरतम अभिव्यक्ति हुई है।

चतुर्दश अध्याय

स्वामी राम का धर्म एव दर्शन

स्वामी राम कुलीन ब्राह्मण (गोसाईं) वश में उत्पन्न हुये थे। भक्ति-परम्परा उस वश की विशेषता थी। बाल्यावस्था से लेकर जब तक उन्होंने 'अह् ब्रह्मास्मि' की प्रत्यक्षानुभूति तपोवन में नही कर ली थी, तब तक उनके व्यावहारिक जीवन में भक्ति की ही प्रबलता थी। यद्यपि स्वामी राम के प्रारम्भिक गुरु भक्त धन्नाराम अद्वैतनिष्ठ ब्रह्मज्ञानी थे और अद्वैत विषय प्रतिपादक 'योगवासिष्ठ' ग्रथ धन्नाराम का परम प्रिय ग्रथ था। भक्त धन्नाराम की प्रेरणा से स्वामी राम उस ग्रथ का अध्ययन समय मिलने पर किया करते थे। परन्तु वश-परम्परा की भक्ति-भावना उनके आचार विचार, व्यवहार, चिन्तन एव भाव परम्परा में समाहित थी। श्रीमद्भगवद्गीता के स्वाध्याय एव निरतर अभ्यास से उनकी भक्ति निखर कर और अधिक प्रगाढ और देदीप्यमान हो उठी थी। परिणाम यह हुआ कि 'अपरा' भक्ति ने 'परा' भक्ति का रूप धारण करना प्रारभ कर दिया। उत्तरोत्तर वह परम 'विरहासक्ति' अनन्य भक्ति में परिणत हो गयी। इसमें सन्देह नही कि स्वामी राम का द्वारकापीठ के शकराचाय एव स्वामी विवेकानन्द से सम्पर्क स्थापित हो चुका था और अद्वैत वेदान्त की महिमा को वे भली भाँति समझ चुके थे, किन्तु बिना अनन्य भक्ति में प्रतिष्ठित हुये, वे वेदान्त के अद्वैतमार्ग का किस प्रकार अनुगमन कर सकते थे? बात यह है कि अध्यात्म-पथ का अनुसरण क्रमानुसार होता है। स्वामी राम की आस्था और निष्ठा जहा पर होती थी, वे वहाँ दृढ विश्वास से आरूढ हो जाते थे और अपने कठोर अभ्यास तथा साधना के बल पर उसकी चरम सीमा पर पहुँच जाते थे। उस स्थिति पर पहुँचने पर, उनके विशुद्ध अन्त करण में परमात्मा की ओर से जो प्रकाश प्राप्त होता था, उसे वह ईश्वरीय आदेश मान कर दृढ़तापूर्वक मनसा, वाचा कर्मणा पालन करने के लिए कटिबद्ध हो जाते थे। फिर वे उस मार्ग पर हिमालय की भाँति अडिग और अचल हो जाते थे और त्रैलोक्य की बडी से बडी शक्ति भी उन्हें उनके मार्ग से विचलित नही कर सकती थी। स्वामी राम के चरित्र की सबसे बडी विशेषता थी उनकी निश्चयात्मक बुद्धि।

भक्ति-भावना की अतिशयता के कारण वे कृष्णमय हो गये। काले-काले

बादलो, कृष्ण सर्प आदि में उन्हें अपने आराध्यदेव भगवान् कृष्ण के दर्शन होने लगे। जब उनके मन में त्याग-भावना की प्रबलता जाग्रत हुई, तो उन्होने जगत् की समस्त सासारिक विभूतियो पर लात मार दी और स्त्री-पुत्र, पिता, सगे सम्बन्धियो का तृण के समान त्याग कर दिया। फिर भूल कर भी उनकी ओर उन्होने दृष्टिपात तक नही किया। अपने इसी अभ्यास-बल से जब तपोवन में उन्होने आत्म साक्षात्कार किया, तब उनके जीवन का दृष्टिकोण एकदम परिवर्तित हो गया। उन्हें सृष्टि की समस्त वस्तुयें आत्मस्वरूप भासित होने लगी। आत्मा से पृथक् कोई अन्य वस्तु उनकी दृष्टि में रह ही न गयी। बृहदारण्यकोपनिषद् की यह श्रुति उनके जीवन-दर्शन में चरितार्थ हो गयी—

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतर जिघ्रति तदितर इतर पश्यति तदितर इतर शृणोति तदितर इतरमभिवदति तदितर इतर मनुते तदितर इतर विजानाति यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन क जिघ्रेत्तत्केन क पश्येत्तत्केन क शृणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन क मन्वीत तत्केन क विजानीयात। येनेद सर्व विजानाति त केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति।

—बृहदारण्यकोपनिषद्, अध्याय २, ब्राह्मण ४, श्रुति १४

अर्थात्, "जहाँ (अविद्यावस्था में) द्वैत-सा होता है, वहाँ अन्य अन्य का सूँघता है, अन्य अन्य को देखता है, अन्य अन्य को सुनता है, अन्य अन्य का अभिवादन करता है, अन्य अन्य का मनन करता है तथा अन्य अन्य को जानता है। किन्तु जहाँ इसके लिये सब कुछ आत्मा ही हो गया है वहाँ किसके द्वारा किसे सूँघे, किसके द्वारा किसे देखे, किसके द्वारा किसे सुने, किसके द्वारा किसका अभिवादन करे, किसके द्वारा किसका मनन करे और किसके द्वारा किसे जाने? जिसके द्वारा इस सब को जानता है, उसे किसके द्वारा जाने? हे मैत्रेयि, विज्ञाता को किसके द्वारा जाने?"

स्वामी राम ब्रह्म की इसी भूमिका में आरूढ हो गये थे। उनकी दृष्टि में द्वैत नामक कोई वस्तु नही रह गयी थी। यत्र-तत्र-सर्वत्र उन्हें आत्मा का ही दर्शन होता था। जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति तीनो अवस्थाओ में उन्हें तुरीयावस्था की ही अनुभूति होती थी। भूत, भविष्य, वर्तमान तीनो कालों एव इन तीनो कालों से पर उन्हें ब्रह्म—आत्मस्वरूप ही दिखायी पडता था। उनकी दृष्टि में निम्नलिखित श्रुति की पूर्ण धारणा हो चुकी थी—

यश्चिद्रूपं मात्मैवैतत्। सज्ञानमाज्ञान विज्ञान प्रज्ञान मेधा दृष्टिघृतिर्मतिम

नीषा जूति स्मृति सकल्प क्रतुरसु कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ।

—ऐतरेयोपनिषद्, तृतीय अध्याय, खण्ड १, मन्त्र २

अर्थात् "जो यह हृदय अर्थात अन्तःकरण है, यही पहले बताया हुआ मन है। इस मन की जो यह सम्यक् प्रकार से जानने की शक्ति देखने में आती है—अर्थात जो दूसरा पर आज्ञा द्वारा शासन करने की शक्ति पदार्थो का पृथक् पृथक् विवेचन करके जानने की शक्ति, देखे सुने हुये पदार्थों का तत्काल समझ लेने की शक्ति, अनुभव को धारण करने की शक्ति, धैर्य अर्थात् विचलित न होने की शक्ति, वेग अर्थात क्षण भर में कही से कही चले जाने की शक्ति, स्मरण शक्ति, सकल्प-शक्ति, मनोरथशक्ति, प्राण-शक्ति, कामना शक्ति और स्त्री सहवास आदि की अभिलाषा—इस प्रकार जो ये शक्तियाँ है, वे सब की सब उस स्वच्छ ज्ञानस्वरूप ब्रह्म—आत्मा के ही नाम हैं, अर्थात उसकी सत्ता का बोध कराने वाले लक्षण है, इन सब को देखकर इन सब के निर्माता, सचालक और रक्षक की सवव्यापिनी सत्ता का ज्ञान होता है। और वह सत्ता आत्मा के अतिरिक्त और कोई इतर वस्तु नही है।"

साथ ही उन्होंने यह भी प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया था कि समस्त सृष्टि, समस्त देवता, पच महाभूत, छोटे-बडे बीज रूप समस्त प्राणी, चार प्रकार के जीव, स्थावर—जगम सभी कुछ ब्रह्म ही है। ब्रह्म के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु नही है—

एप ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे दवा इमानि च पञ्चमहाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतीषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वदजानि चाद्भिजानि चाश्वा गाव पुरुषा हस्तिनो यत्किंचेद प्राणि जङ्गम च यच्च स्थावर सव तत्प्रज्ञानेत्रम्। प्रज्ञाने प्रतिष्ठित प्रज्ञानेत्रो लोक प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञान ब्रह्म ॥

—ऐतरेयोपनिषद्, तृतीय अध्याय, प्रथम खण्ड, मन्त्र ३

अर्थात्, "सब को उत्पन्न करके सब प्रकार की शक्ति प्रदान प्रदान करने वाला, उनकी रक्षा करने वाला स्वच्छ ज्ञान स्वरूप ब्रह्म—सर्वात्मा ही उपास्यदव है। वही आत्मा ब्रह्मा है, वही इन्द्र ह। वही सब की उत्पत्ति और पालन करने वाला समस्त प्रजाओ का स्वामी प्रजापति है। वही समस्त देवता, पाँचो महाभूत—जो पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज के रूप में प्रकट हैं—तथा ये छोटे-छोटे मिले हुये-से बीज रूप में स्थित समस्त प्राणी, तथा उनसे भिन्न दूसरे भी—

अर्थात् अंडे से उत्पन्न होने वाले, जेर से उत्पन्न होने वाले पसीने से अर्थात शरीर के मैल से उत्पन्न होने वाले और जमीन फाडकर उत्पन्न होने वाले तथा घोडे, गाय, हाथी मनुष्य—ये सब मिलकर जो कुछ यह जगत् है, जो भी कोई पंखेवाले तथा चलने फिरने वाले और नही चलने वाले जीवो के समुदाय हैं—ये सब के सब प्राणी प्रज्ञानस्वरूप ब्रह्म—सर्वात्मा में ही स्थित हैं। यह समस्त ब्रह्माण्ड प्रज्ञान स्वरूप ब्रह्म की शक्ति से ही ज्ञान शक्ति युक्त है। इसकी स्थिति का आधार प्रज्ञान स्वरूप आत्मा ही है।"

स्वामी राम इसी स्थिति में पूणतया निमग्न थे। उनका यही धर्म था, यही दशन था। इसी उच्चावस्था से उन्होने समस्त 'प्रेयस' और 'श्रेयस्' वस्तुओं की व्याख्या, मीमासा और विश्लेषण किया। स्वामी राम के समस्त व्याख्यानों एव कविताओ की कुजी 'आत्मा' ही है।

स्वामी राम ने प्रस्थानत्रयी—ब्रह्मसूत्र अथवा वेदान्तसूत्र, उपनिषदा एव श्रीमदभगवद्गीता का मननपूवक स्वाध्याय किया था। प्रस्थानत्रयी ही हमारे यहाँ की दर्शन परम्परा का आधार स्तम्भ है। इसके अतिरिक्त 'योगवासिष्ठ, अष्टावक्र गीता एव अवधूत गीता ऐसे अद्वैत ग्रन्थो के प्रति भी उनकी असाधारण निष्ठा थी। इन ग्र्न्थो के निरन्तर स्वाध्याय से उनका वेदान्त अत्यधिक परिपक्व एव परिपुष्ट हो गया था। उन्होने इमसन, काट, गेटे, थोरो, हक्सले, टिंडल, मिल, डार्विन एव स्पेंसर आदि पाश्चात्य दार्शनिकों का गभीरतापूवक अध्ययन किया था। स्वामी राम ने उनके सारतत्त्वा को ग्रहण कर आत्मसात कर लिया था और अपने काम की वस्तुओ को ग्रहण कर अवसर विशेष पर उसका सदुपयोग करते थे। इसके अतिरिक्त उन्होने फारसी के उन सूफी कवियों का भी अध्ययन किया था, जिनकी विचारधारा वेदान्त से बहुत मिलती-जुलती है। ऐसे कवियों में हाफिज मस्तान, मौलाना रूमी और शम्स तबरेज के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

स्वामी राम के स्वाध्याय में अद्भुत सारग्राहिणो प्रतिभा थी। वे किसी भी वस्तु का अध्ययन करते समय 'सार-सार' का ग्रहण कर लेते थे और 'थोथा' उडा देते थे। उनके अध्ययन को इसो विशेषता को हम मधुकर की 'मधुकरी' वृत्ति से तुलना कर सकते है। जिस प्रकार मधुकर नाना प्रकार के पुष्पा पर बठकर उसका रस ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार स्वामी राम ने अनेक दाशनिकों के अध्ययन से वेदान्त के अद्भुत रस—परम रस का ग्रहण कर लिया था। उन्होंने उस वेदान्त के रग में रँग कर अनुपम रूप प्रदान कर दिया। यहाँ, इस बात को स्पष्ट कर देना परम आवश्यक प्रतीत होता है कि स्वामी राम दशन के विविध अध्ययन

के उपरान्त भी अपनी आत्मनिष्ठा, स्वानुभूति, वेदान्त, 'अह ब्रह्मास्मि' की वृत्ति से तनिक भी विचलित नही हुये, वल्कि उसके कारण उनकी आत्मस्थ वृत्ति में और भी अधिक प्रगाढता आ गयी। बल्कि यह कहना अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि उन्होंने समस्त पाश्चात्य एव पौर्वात्य अध्ययन पर वेदान्त का अपूर्व मुलम्मा चढा दिया। वे किसी बाह्य अध्ययन से प्रभावित नही हुये, बल्कि उस अध्ययन पर अपने वेदान्त-अध्ययन एव चिन्तन का अप्रतिम पुट चढा दिया। अत हमारी यह निश्चित धारणा है कि स्वामी राम का धर्म एव दर्शन उनका अपना है और विशुद्ध भारतीय है। वह भारतीय ऋषियो की प्राचीन चिन्तन प्रणाली पर आधारित है। उनके वेदान्त के ऊपर सर्वाधिक प्रभाव आदि शकराचार्य का है। हाँ, यह बात दूसरी है कि उसकी अभिव्यक्ति की प्रणाली निजी है, स्वतत्र है, मौलिक है और वह उनकी प्रत्यक्षानुभूति पर बहुत कुछ आश्रित है। यही स्वामी राम के धर्म और दर्शन की मौलिकता है।

स्वामी राम ने अमेरिका में जो व्याख्यान दिये, धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि से उनका सर्वाधिक महत्त्व है, यदि यह कहा जाय कि स्वामी राम की कीर्ति और प्रसिद्धि बहुत कुछ अमेरिका के व्याख्यानो पर ही अवलम्बित है, तो किसी प्रकार की अतिशयोक्ति न होगी। इन व्याख्यानो द्वारा स्वामी राम ने अपने हृद्गत भावो एव विचारो को ऐसे विदेशी मनुष्यो को हृदयगम कराना चाहा, जिन्हें भारतीय धर्म एव दर्शन की बहुत कम जानकारी थी। अत स्वामी जी को अनेक तर्कों, युक्तियो का सहारा लेना पडा। इन तर्कों और युक्तियों में सबसे बढकर थी उनकी प्रत्यक्षानुभूति एव मानव मात्र के लिये उनका विश्वव्यापी प्रेम। अपने इस प्रेम के कारण स्वामी राम ने अनेक नास्तिको के हृदय में भी अपना स्थान जमा लिया। उन्हें जिस सबसे बडी उपाधि से विभूषित किया गया, वह थी 'जीवित ईसा-मसीह'। अत अमेरिका के भाषणों में स्वामी राम का समस्त धर्म और दर्शन निहित है। एक अमेरिकन ने स्वामी राम के व्याख्यानों का सक्षिप्त वर्गीकरण निम्नलिखित शीर्षकों में किया है—

(१) तुम क्या हो ?
(२) आनन्द की कथा और घर।
(३) पाप का निदान, कारण और उपाय।
(४) प्रकाश या अनुभव।
(५) आत्मविकास।
(६) ज्योतिषा ज्योति।
(७) दृष्टि-सृष्टिवाद और वास्तु स्वातन्त्र्यवाद का समन्वय।

(८) प्रेम एव भक्ति द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार ।

(९) व्यावहारिक वेदान्त ।

(१०) भारत ।

स्वय स्वामी राम ने अमेरिका में दिये हुये अपने व्याख्यानो एव उपदेशा का सार इस प्रकार निर्धारित किया है—

(१) मनुष्य ब्रह्म है ।

(२) ससार उसकी सहकारिता करने को वाध्य है, जो सम्पूण ससार से अपनी एकता अनुभव करता है ।

(३) शरीर को उद्योग में और मन को प्रेम तथा शान्ति में रखने का अथ है, यही, अर्थात् इसी जीवन में पाप और दु ख से मुक्ति ।

(४) सबसे एकता के प्रत्यक्ष अनुभव से हमें निश्चल निश्चिन्तता का जीवन प्राप्त होता है ।

(५) सम्पूर्ण ससार के धमग्रन्थों को हमें उसी भाव से ग्रहण करना चाहिये, जिस भाव से हम रसायनशास्त्र का अध्ययन करते हैं और अपने अनुभव को अन्तिम प्रमाण भी मानते है ।

भारत में धर्म और दर्शन एक दूसरे के पूरक रहे है, दोनों का अन्योन्याश्रित सबध रहा है । वास्तव में 'धम वडा व्यापक शब्द है । महाभारत में धम की व्याख्या एक श्लोक में इस प्रकार की गयी है—

> धारणाद् धममित्याहु धर्मो धारयते प्रजाः ।
> यत्स्याद्धारणसयुक्त स धर्म इति निश्चय ।।
>
> —महाभारत, कर्ण० , ६९, ५९

अर्थात् "क्योंकि यह सबको धारण करता है इससे यह धम कहलाता है । वास्तव में (व्यापक दृष्टि से) धम सभी प्राणियो को धारण करता है । अत धम निश्चय धर्म वही है, जिसके द्वारा सभी प्राणी धारण किये जाते हैं ।'

अत प्रत्येक प्राणी के धम पृथक-पृथक है । इस दृष्टि से मानव धम सर्वोपरि है । परमात्मा की सृष्टि में मनुष्य सबसे अधिक चेतनाशील प्राणी है । इसलिये उसका धम भी अन्य जीवो से विलक्षण है । जिन आचरणा व्यवहारों एवं क्रिया कलापो से मनुष्य का सासारिक अभ्युदय (प्रेयस्) और पारमार्थिक श्रेयस् (मुक्ति) की प्राप्ति हो, वही धम है । धम का वास्तविक आचरण और उसकी प्रत्यक्षानुभूति दशन है । हमारे यहाँ के ऋषियो ने धर्म की प्रत्यक्षानुभूति की थी । रसायनशास्त्र की भाँति उसका, उन्होने अपने जीवन में प्रत्यक्ष प्रयोग किया तब उसे अनुभव-

जन्य प्रमाण माना। उस अनुभव जन्य प्रमाण की एक विशेषता यह भी थी कि वह शास्त्र-प्रमाण की कसौटी पर खरा भी उतरा था। स्वामी राम ने जिसे धर्म समझा, उसका शत प्रतिशत रसायन शास्त्र की भाँति अपने जीवन के विविध क्षेत्र में प्रयोग किया, उसकी प्रत्यक्षानुभूति की, शास्त्र प्रमाण को कसौटी पर उसे कस कर सुस्थिर किया, तब कही, जनसमूह में उसका डिंडिम घोष किया। अतएव स्वामी राम के धम एव दशन में अटूट और अखण्ड सम्बन्ध है।

स्वामी राम ने धम के लक्ष्य के सम्बन्ध में अपने विचार इस भाँति अभिव्यक्त किये हैं—

"हिन्दुओ के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्म है, बहुमूल्य रत्न है, समस्त धन है, परमानन्द है और समस्त सुखो का स्रोत है। प्रत्येक व्यक्ति स्वय ब्रह्म और सब कुछ है। प्रश्न होता है, यदि ऐसा है, तो लोग कष्ट क्यो पाते ह ? वे इसलिये कष्ट नही पाते है कि उनके पास उपाय अथवा इलाज नही है और न इसलिये कि उनके भीतर अनन्त आनन्द का भाण्डार नही है और न यही कारण ह कि उनके अन्दर अमूल्य रत्न नही है, प्रत्युत प्रत्यक्ष कारण यह है कि वे उस गाठ का खोलना नही जानते, जिसके भीतर वह अमूल्य रत्न रखा है, उस पेटी को वे खोलना नही जानते, जिसके भीतर यह रत्न युक्तिपूर्वक रखा गया है। दूसरे शब्दो में लोग अपनी आत्माओ में प्रवेश करना और अपनी ही आत्मा का साक्षात्कार करने का उपाय नही जानते। सभी धम अपना पर्दाफाश और अपने आपको प्रकाशित करने के लिये प्रयत्न मात्र हैं। हमारे भीतर अमूल्य रत्न ह, उस पर हमने अपने ही हाथो से, अपने ही उद्योगो से पर्दा डाल रखा है और अपने आपको 'दुखी, दीन, अभागा मान बैठे ह,' जैसा कि इमसन ने कहा है—'प्रत्येक मनुष्य वास्तव में ईश्वर है, पर वह मूर्खों के समान अभिनय कर रहा है।

"जो पर्दा हमारे नेत्रो पर पडा हुआ है, केवल उसे हटाने और उच्छेदन करने के विभिन्न प्रयासा का नाम ही सम्प्रदाय (मत) है। कुछ मत इस पर्दे को बहुत महीन कर देने में अपेक्षाकृत अधिक सफल हुये है। सभी मतो में शुद्ध-वृत्ति अथवा सच्ची भावना वाले लोग होते ह और जहाँ कही शुद्ध-वृत्ति एव सच्ची भावना आती है, वहा उतने समय के लिये पर्दा चाहे मोटा हो या महीन, परे हट जाता है और आत्मतत्त्व की एक झलक दिखायी पड जाती है। इसका दृष्टान्त इस उदाहरण से दिया जायेगा। यह एक पर्दा या घूँघट है, (इस समय स्वामी जी ने एक रूमाल तह करके अपनी आँखों के सामने रख लिया।) यह आँखों के सामने है। हम पर्दे को हटा कर देख सकते है, किन्तु पर्दा फिर आँखों के सामने आ जाता है। दूसरी स्थिति में पर्दा महीन कर लिया जाता है, (इस समय रूमाल की

कुछ तहें खोल ली गयीं) और ऐसी स्थिति में भी, अर्थात् जब बहुत बारीक हो, वह अलग खिसकाया जा सकता है, किन्तु वह फिर आँखों के सामने आ जाता है, सदैव के लिये वह आँखों से दूर नहीं हो जाता। लो, हम इसे और भी महीन कर लेंगे। इस दशा में भी वह थोड़ी ही देर के लिये हटाया जा सकता है, पर वह फिर आँखों के सामने आ जाता है। हाँ, पर्दा अत्यन्त महीन कर देने पर भी, वह चाहे हटाया न भी जाय, तो भी हमारी दृष्टि को नहीं रोक पाता। हम उसमें से देख सकते हैं, साथ पहले की तरह अब भी हम उसे समय-समय पर हटा भी सकते हैं, जब पर्दा बिलकुल महीन कर दिया जाता है, तब व्यवहार-दृष्टि से वह पर्दा नहीं रह जाता। उसके होते हुये भी हम परमानन्द का भोग कर सकते हैं। उस दशा में हम ईश्वर (ब्रह्म) के समीप (स्वर्ग) हो जाते हैं। नहीं-नहीं हम स्वयं परमात्मा हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में इस संसार की कोई वस्तु हमारे सुख में विघ्नकारी अथवा विनाशक नहीं हो सकती, कोई भी वस्तु हमारा मार्ग अवरुद्ध नहीं कर सकती। अज्ञान (माया) के पर्दे को अत्यन्त से अत्यन्त महीन कर देने वाले और व्यावहारिक जीवन में भी ज्ञानी को आनन्द-दृष्टि का सुख भोगने की क्षमता देने वाले वेदान्त में दूसरे मतों से यही विशेषता है।

"सभी धार्मिक मतों के अनुयायी समय-समय पर परमात्मा (ब्रह्म) से युक्त हो सकते हैं और उतनी देर के लिये अपने नेत्रों के सामने से पर्दा, वह चाहे महीन हो या मोटा, हटा सकते हैं, जितनी देर तक वे परब्रह्म से युक्त रहते हैं। एक वेदान्ती भी यही कर सकता है, वह ध्यानमग्न अवस्था में अपने आपको ला सकता है, किन्तु साधारण अवस्था में भी वह उस दिव्य दृष्टि का सुख भोगता है, जिस दिव्य दृष्टि का सुख मोटे पर्देवाले मतों को नहीं मिल पाता।

"इस संसार के सभी मत, जिनमें भारत के मत-मतान्तर भी सम्मिलित हैं तीन मुख्य भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। संस्कृत में इन्हें हम 'तस्यैवाहम्', 'तवैवाहम्' एवं 'त्वमेवाहम' कहते हैं। 'तस्यैवाहम्' का अर्थ है—'मैं उसका हूँ।' इस प्रकार के मतों में पर्दे की मोटाई सबसे अधिक होती है। धार्मिक मतों की दूसरी अवस्था है, 'तवैवाहम्' जिसका अर्थ है—'मैं तेरा हूँ।' मतों या सिद्धान्तों की पहली और दूसरी अवस्था का पारस्परिक भेद आपके ध्यान में आ जाना चाहिये। धर्म मार्ग में पहली प्रकार की प्रवृत्ति का भक्त अथवा उपासक, ईश्वर को अपने से दूर अलक्ष्य समझता है और वह परमेश्वर की चर्चा अन्य पुरुष में करता है—'मैं उसका हूँ', मानो ईश्वर अनुपस्थित है। यह धर्म साधना का श्रीगणेश है। यह भाव धर्म के प्रत्येक बालक के लिये माता के दूध के समान है।

एक बार इस दूध को बिना पिये मनुष्य धर्म के मार्ग पर आगे बढने में असमर्थ रहता है। 'मैं उसका हूँ।'—मेरा सर्वस्व प्रभु का है—यदि मनुष्य इसे पूरी तरह से अनुभव कर लें, तो क्या यह भाव कम मधुर है ? वह सवेरे जल्दी जागता है और यह समझता है कि 'मेरा मालिक मुझे जगाता है !' अपने दफ्तर के कामो पर जाता है और उन कामो को अपने प्रिय, मधुर प्रभु, दयालु परमात्मा के आदेश द्वारा प्राप्त समझता है। वह सारे संसार को ईश्वर का रूप समझता है। वह अपने घर, अपने संबंधियों, अपने मित्रों को ईश्वर समझता है अथवा ईश्वर की कृपा से अपने का मिले हुये खयाल करता है। अरे ! क्या इसी भाव से दुनिया सच्चे स्वर्ग के रूप में परिणत नही हो सकती ? क्या संसार स्वर्ग में नही बदल सकता ? मनुष्य को सच्चा होना चाहिये, उसे उत्सुकता स और दिलोजान से यह समझना तथा अनुभव करना चाहिये कि मेरे पास की प्रत्येक वस्तु मेरे प्रभु की, मेरे ईश्वर की है और यह देह भी उसी का है यदि यह विचार भी पूरी तरह से अनुभव कर लिया जाय, तो मनुष्य को अपूर्व सुख, अकथनीय हर्ष और परम आनन्द मिल सकता है। यह उत्कृष्ट विचार है। अनुभव किये जाने पर और अमल में लाये जाने पर यह विचार भी यथेष्ट हो सकता है, मधुर हो सकता है, परन्तु यह मत भी सिद्धान्त की दृष्टि से आरम्भ मात्र है।

'तवैवाहम्', अर्थात् 'मैं तेरा हूँ' मुझे प्रत्येक क्षण तेरी आवश्यकता है, मै तेरा हूँ, मैं तेरा हूँ।' भक्ति अथवा धार्मिक स्थिति की तुलना पहली स्थिति से कीजिये। पहली कल्पना मधुर थी, किन्तु यह मधुरतर है। पहली दशा बडी प्यारी और रुचिर थी, किन्तु यह और भी अधिक प्यारी और भी अधिक रुचिर है। जरा दोनो के भेद पर ध्यान दीजिये। दृष्टान्त की दृष्टि से अब पर्दा पहले से पतला हो गया है। आप जानते हैं कि 'मैं तेरा हूँ' इस भाव में ईश्वर की चर्चा अन्य पुरुष मे नही की गयी है। वह अब अनुपस्थित, पर्दे का ओट में नही माना गया है, किन्तु हमारे आमने-सामने आ गया है। अब वह हमारे निकट है और हमें प्यारा है, वह हमारे बहुत समीप है। अब वह पहले से हमारे अधिक निकट आ जाता है, हमारी उससे अधिक घनिष्ठता हो जाती है। सिद्धान्त की दृष्टि से यह विचार उच्चतर है। किन्तु प्राय ऐसा होता है कि लोग इस मत में विश्वास तो जमा लेते है और ईश्वर को अपने अति सुपरिचित, अति समीपस्थ की भाँति संबोधन करते है, पर वे सच्ची उत्कट वृत्ति और सजीव विश्वास से रहित रहते है।

"धार्मिक उन्नति की पहली दशा में भी यदि जीता-जागता विश्वास मूर्तिमान हो जाय, तो पर्दा बहुत मोटा होते भी कुछ समय के लिये हट जाता है। जब

कोई मनुष्य अपने सच्चे हृदय से, अपने रक्त की प्रत्येक बूद से, इस विचार को प्रत्यक्ष करने लगता है कि वह ईश्वर का है, अर्थात्, 'उसका सवस्व उस परमात्मा का है', उसके शरीर के प्रत्येक रोम से मानो यही विचार बहने लगता है, तब सत्य, उत्कण्ठा, उत्साह और उमग ये सब क्षण भर के लिये उसकी आँखों के सामने से पर्दा खिसका देते है और वह ईश्वर में निमग्न हो जाता है, उस समय वही परमेश्वर हो जाता है। कभी कभी 'मैं तेरा हूँ' इस ऊँचे सिद्धान्त में श्रद्धा रखने वाले मनुष्य में भी उक्त सच्चे जीते जागते विश्वास का अभाव होता है और वह ईश्वर की समक्षता के मिठास का पूरा पूरा मजा नही उठा पाता। परन्तु धार्मिक मत की दूसरी अवस्था में भी इस जीते जागते विश्वास और उत्कट इच्छा का योग किया जा सकता है।

मत का तीसरा प्रकार 'त्वमेवाहम्' कहलाता है, जिसका अर्थ है, 'मैं तू ही हूँ।' आप देखते ह कि यह सिद्धान्त हमें ईश्वर के कितने निकट ले आता है। पहले रूप में मैं उसका हूँ' ईश्वर परे अथवा दूर है। दूसरे रूप में 'म तेरा हूँ' ईश्वर से हमारा आमना सामना होता है, वह हमारा अधिक समीपवर्ती होता है। किन्तु धार्मिक उन्नति की अन्तिम अवस्था में हम दोनो एक हो जाते है। प्रेमी प्रेम में लीन हो जाते है। यही वेदान्त का अनुभव है। पतिंगा प्रकाश की ओर तब तक बढता जाता है, जब तक अपनी देह भस्म करके वह स्वय प्रकाश स्वरूप नहीं हो जाता। उपनिषद् (वेदान्त) शब्द के शब्दार्थ है, प्रकाशो के प्रकाश के इतने निकट (उप) पहुचना कि विलग और विभाग करने वाला चेतना रूपी पतिंगा अत्यन्त निश्चयपूवक (नि) नष्ट (षद्) हो जाय। ईश्वर का सच्चा प्रेमी ईश्वर में मिल जाता है और अनजाने, अनायास, बिना इच्छा किये हुये ही बोल उठता है—'मैं वह हूँ', 'मैं वह हूँ', 'म वह हूँ', 'मै तू हूँ', 'तू और मैं एक हूँ', 'म ईश्वर हूँ', 'मैं ईश्वर हूँ', 'तुभमें और मुभमें कोई अन्तर नही है'। धार्मिक उत्कर्ष की यह अन्तिम अवस्था है। यह उच्चतम भक्ति है। यही वेदान्त कहलाता है, जिसका अर्थ है—ज्ञान की इतिश्री। समस्त ज्ञान की समाप्ति इसी में होती ह, यहीं हमें अन्तिम ध्येय की प्राप्ति होती है। इस मत में भी, जिसमें कि पर्दा इतना महीन है कि पर्दे मे रहते हुये भी सारी असलियत हम देख सकते है। कुछ ऐसे लोग हैं जिनमें उत्कट इच्छा, शुद्धि, एकाग्रता की प्राप्ति की कमी होती है और वे अपरोक्ष साक्षात्कार वा आनन्द लूटने के लिये पर्दे को खिसका नही सकते। जो भीतर-बाहर सच्चे हैं, वे बुद्धि से इस निश्चय पर पहुँच जाने के बाद, निदिध्यासन द्वारा इस दर्जे तक इस निश्चय का अनुभव करने लग जाते है कि वे पर्दा हटा देते ह और दिव्य आनन्द, स्वर्गीय अमृतत्व को भोगते हैं—वे स्वय ब्रह्मरूप हो जाते

है। वे इसी जीवन में मुक्त हो जाते हैं और जीवन्मुक्त कहलाते हैं।

"मत को विशुद्ध या पर्दे का महीन करने की क्रिया मुख्यत बुद्धि के द्वारा होती है और पर्दा मनन एव निदिध्यासन द्वारा उठता है। मत अथवा सिद्धान्त के तीन रूपों का वर्णन किया जा चुका।"

स्वामी राम के विचारानुसार ससार में व्याप्त समस्त धर्मों को तीन शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

१ मैं उसका हूँ।
२ मै तेरा हूँ।
३ मै वही हूँ।

जहाँ तक रूपो का सम्बन्ध है पहले रूप की अपेक्षा दूसरा रूप अधिक उत्कृष्ट है और तीसरा तथा अतिम रूप उत्कृष्टतम एव सर्वोत्तम है। इन तीनो रूपो में से किसी में भी हम सच्ची धार्मिक भावना भर सकते हैं।

अत में स्वामी राम धम के सम्बन्ध में अपना निष्कष इस प्रकार अभिव्यक्त करते है—

"हिन्दुओं के अनुसार, सिद्धान्त की पहली अवस्था को सच्ची धार्मिक वृत्ति से पालन करने वाले इसी जीवन में अथवा दूसरे जन्म में सिद्धान्त की सर्वोच्च अवस्था का प्राप्त होगे। पहले वे मत की दूसरी अवस्था को प्राप्त होगे और फिर सच्ची धार्मिक वत्ति की सगति करते हुये इसी जन्म या दूसरे आने वाले जन्मो में धीरे-धीरे उत्तरोत्तर उच्चतम धार्मिक मत—'मै वही हूँ', 'मै तू ही हूँ'—पर आरूढ होगे। जब यह अवस्था प्राप्त हो जाती है, तब फिर जन्म नही लेना पडता। मनुष्य स्वतन्त्र है, स्वतन्त्र है, स्वतन्त्र है। मनुष्य ईश्वर ह, ब्रह्म है। वह उच्च शिखर पर पहुँच कर कहता है—'अह ब्रह्मास्मि'।"

स्वामी राम धर्म को रूढि जन्य नही मानते थे। उन्होने अपने मथुरा के व्याख्यान में इसे भली भाँति स्पष्ट कर दिया है—"ऐसी स्थिति में हमें धर्म और कर्मकाण्ड का भेद समझना होगा और उसमें से रूढिजन्य प्रथायें पृथक करनी होगी। तब हम देखेंगे कि धर्म वास्तव में एक मौलिक विधान है, जिसके अनुसार मन और बुद्धि बाह्य जगत स पीछे लौटकर उस अज्ञात अचिन्त्य मूल स्रोत में लय हो जाता ह।"

धर्म के सबध में स्वामी राम के विचार अत्यन्त उदात्त, स्वतन्त्र और मौलिक है। वह सभी धर्मों की अन्तरात्मा एक मानते हैं। मथुरा के 'धम' नामक व्याख्यान में उन्होने अपने विचार इस भाँति व्यक्त किये—"धर्म अनेक नही, एक है, वही हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाईयत की जान है। यदि ध्यानपूवक देखा जाय

तो इस धर्म का अर्थ है, उस अज्ञात का, मन वाणी से अगोचर का साक्षात्कार, जहाँ न जाति-पाँति रहती है और न रंग रूप, जहाँ न मत मतान्तर रहते हैं, न सिद्धान्त और उप सिद्धान्त, न मन-वाणी, न देशकाल और न कार्यकारण, न इहलोक रहता है और न कोई अन्य काल्पनिक परलोक, जहाँ ये सारी बातें और उनके अन्तर्गत जो कुछ सम्भव हो सकता है, वह सब स्पष्ट हो जाता है, सब कुछ लीन हो जाता है जहाँ शब्द की पहुँच नहीं हो सकती, उसका साक्षात्कार ही धर्म है। क्या इसमें कोई रहस्य है ? नहीं बिलकुल नहीं।"

स्वामी राम प्रत्यक्षानुभूति को वास्तविक धर्म समझते हैं। उनका धर्म 'नकद धर्म' है, उधार नहीं। उनकी घोषणा है, यथार्थ साक्षात्कार की अवस्था में 'मैं' और 'तू' का प्रपंच, द्रष्टा और दृश्य का भेद काफूर हो जाता है। उपर्युक्त आदर्श को प्राप्त कराने वाले किसी भी वैधानिक प्रयास को राम धार्मिक समझता है।

स्वामी राम की दृष्टि में ब्रह्म की प्रत्यक्षानुभूति ही सच्चा धर्म है। उनकी धारणा है कि "जिसकी ऐसी अद्वैत दृष्टि हो जाती है, वह स्वयं ही ब्रह्म है, जो मन और बुद्धि से नहीं जाना जा सकता जो मनुष्य इस ब्रह्म का दर्शन मात्र कर लेता है, वह भय और चिन्ता से मुक्त हो जाता है। जिसे ब्रह्म-साक्षात्कार हो जाता है, अथवा जिसे धर्म की प्राप्ति होती है, उसका चरित्र ऐसा निर्मल हो जाना चाहिए, जो किसी प्रकार हिलाया न जा सके।"

स्वामी राम धर्म को मनुष्य मात्र के लिए अनिवार्य मानते हैं।

अब हमें संक्षेप में स्वामी राम के दर्शन पर विचार करना है। यद्यपि स्वामी राम ने 'दर्शन शास्त्र' के किसी विशिष्ट शास्त्रीय ग्रंथ की रचना नहीं की तथापि उनके प्रत्येक व्याख्यान में दर्शन की सूक्ष्म बातें मिल जाती हैं। उन्हीं के आधार पर हम उनके दार्शनिक तत्त्वों के विवेचन का प्रयास करेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि स्वामी राम अद्वैतनिष्ठ ब्रह्मज्ञानी पुरुष थे। अतः वे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में आदि शंकराचार्य के अद्वैतवाद को मानते थे। उपनिषद उनके सर्वप्रिय ग्रन्थ थे। उनके जीवन-चरित में यह संकेत किया गया है कि स्वामी राम उपनिषदों का गुटका अपने बगल में दबाये घनघोर जंगलों में निर्भय भाव से विचरण किया करते थे। उपनिषदों के स्वाध्याय, मनन, चिन्तन, निदिध्यासन में दिन रात एक कर देते थे। निश्चय ही स्वामी राम के दर्शन पर औपनिषदिक विचार-धारा का अत्यधिक प्रभाव है।

ब्रह्म अथवा आत्मा

स्वामी राम 'ब्रह्म' को ही परम सत्य, अनन्त, अनादि, समस्त सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण मानते थे। उन्होंने अपने व्याख्यानों, कविताओं,

लेखों, प्रश्नोत्तरों में स्थान स्थान उस ब्रह्म-तत्त्व का प्रतिपादन किया। प्रत्येक धर्म में 'परमात्मा' को सर्वोच्च तत्त्व माना गया है। परमात्मा को ही सृष्टि का निर्माता, पालक और संहारक माना गया है। स्वामी राम ने अपनी साधना के प्रारम्भिक काल में उस 'ब्रह्म' को 'कृष्ण' के रूप में माना। किन्तु जब वे अपनी साधना की चरमसीमा पर पहुँचे, तो उनका 'कृष्णतत्त्व,' 'ब्रह्मतत्त्व' में विलीन हो गया। उस 'ब्रह्म' को उन्होंने स्थान-स्थान पर 'आत्मा' के नाम से संबोधित किया है। यह 'आत्मा' उपनिषदों में बहुचर्चित है। यह ब्रह्म का पर्यायवाची शब्द है। उपनिषदों में स्थान स्थान पर 'आत्मा ब्रह्मरूप में वर्णित है।

यथा—

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्या'

—(कठोपनिषद् १/२/२३ तथा मुण्डकोपनिषद् ३, २, ३)

'सोऽयमात्मा चतुष्पात'—माण्डूक्योपनिषद्, मंत्र २

'आत्मैवेदमग्र आसीत'—बृहदारण्यकोपनिषद्, अध्याय १, ब्राह्मण ४, मंत्र १७

'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्'—ऐतरयोपनिषद्, प्रथम खण्ड, मंत्र १,

इसी प्रकार उपनिषदों में अनेक स्थलों पर 'आत्मा' को ब्रह्म ही माना गया है। कहना न होगा कि स्वामी राम ने 'आत्मा' का प्रयोग ठीक इसी अर्थ में किया है।

उन्होंने अपने 'आनन्द' नामक व्याख्यान में 'आत्मा' की व्याख्या ठीक उपनिषद् की शैली में की है, "सत्य तो यह है कि पुत्र के मुख को उद्भासित करने वाली ज्योति अपने भीतर के सरोवर से—आत्मा से निकलती थी। आनन्द का वास्तविक उद्गम-स्थान अपनी आत्मा है।"

"अब हम आनन्द के घर आनन्द के मूल स्थान के कुछ निकट पहुँच गये हैं। पुत्र इसलिये प्यारा नहीं है कि वह पुत्र है, पुत्र आत्मा के लिये प्यारा है। स्त्री, स्त्री के लिये प्यारी नहीं है, पति, पति के लिये प्यारा नहीं है बल्कि स्त्री आत्मा के लिये प्यारी है, पति आत्मा के लिये प्यारा है। यथार्थ बात यही है। लोग कहते हैं कि वे किसी वस्तु को उसी के लिये प्यार करते हैं। किन्तु ऐसा नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। सम्पत्ति, सम्पत्ति के लिये प्यारी नहीं है, सम्पत्ति प्यारी है आत्मा के लिये। जब स्त्री से, जो एक समय प्यारी थी, काम नहीं चलता, तब उसे पति तलाक दे देता है। इसी प्रकार पति से जो एक समय प्यारा था,

जब काम नहीं चलता, तब स्त्री उसे त्याग देती है। जब दौलत से काम नहीं चलता, तब वह छोड़ दी जाती है।"

कहना न होगा कि स्वामी राम ने इस उदाहरण को बृहदारण्यकोपनिषद् से ग्रहण किया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में वह इस प्रकार है—

स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति। न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति। न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति। न वा अरे पशूनां कामाय पशवः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पशवः प्रिया भवन्ति। न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति। न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति। न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति।

—बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय ४, ब्राह्मण ५, मंत्र ६

अर्थात्, 'उन्होंने (याज्ञवल्क्य ने) कहा—अरी मैत्रेयि, यह निश्चय है कि पति के प्रयोजन के लिये पति प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लिये पति प्रिय होता है। स्त्री के प्रयोजन के लिये स्त्री प्रिया नहीं होती, अपने ही प्रयोजन के लिये स्त्री प्रिया होती है। पुत्रों के प्रयोजन के लिये पुत्र प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रयोजन के लिये पुत्र प्रिय होते हैं। धन के निमित्त धन प्रिय नहीं होता, बल्कि अपने निमित्त धन प्रिय होता है। पशुओं के निमित्त पशु प्रिय नहीं होते, बल्कि अपने निमित्त पशु प्रिय होते हैं। ब्राह्मण के लिये ब्राह्मण प्यारा नहीं होता, बल्कि अपने लिये ब्राह्मण प्यारा होता है। क्षत्रिय के प्रयोजन के लिये क्षत्रिय प्रिय नहीं होता, बल्कि अपने निमित्त क्षत्रिय प्रिय होता है। इसी प्रकार लोकों के निमित्त लोक प्रिय नहीं होते बल्कि अपने ही निमित्त लोक प्रिय होते हैं।'

स्वामी राम आत्मा को परम सुख अथवा परमानन्द का मूल स्रोत मानते हैं। वे कहते हैं सम्पूर्ण स्वर्ग आपके भीतर है। समस्त आनन्द का मूलस्थान आप में है। ऐसी स्थिति में कहीं अन्यत्र आनन्द को ढूँढ़ना बिल्कुल असंगत है।

उन्होंने आत्मा के संबंध में अपनी प्रत्यक्षानुभूति इस भाँति अभिव्यक्त की है: 'स्वर्ग निस्संदेह, आनन्दधाम सब कुछ आपके भीतर ही है फिर भी लोग बाहर-बाहर वस्तुओं में, पदार्थों में आनन्द ढूँढ़ा करते हैं, उस वस्तु की खोज बाहर-बाहर इन्द्रियों के विषयों में करते रहते हैं। यह कैसा आश्चर्य है!'

इस प्रकार आत्मा ही परमानन्द का अधिष्ठान है। आत्मा अमर और अजन्मा है। स्वामी राम कहते है, "मैं मर नही सकता। मृत्यु चाहे सदा मेरे ताने बाने में ऊपर-नीचे भटकती रहे।"

"मैं अजन्मा हूँ, तथापि मेरे श्वास के जन्म उतने ही है, जितनी निद्रा रहित समुद्र पर लहरें।"

स्वामी राम आत्मा को सर्वाधिक प्रिय की अपेक्षा सर्वशक्तिमान् मानते है। वे अपने 'वास्तविक आत्मा' नामक व्याख्यान में आत्मा की सवशक्तिमत्ता का इस प्रकार प्रतिपादन करते है—

"सचमुच तुम वही शक्ति हो, जो मन और बुद्धि से परे है। यदि ऐसा है, तो तुम वही शक्ति हो, जो सम्पूण विश्व की शक्ति पर शासन कर रही है। वही आत्मदेव तुम हो, वही ईश्वर तुम हो, वही अज्ञेय, वही तेज, शक्ति तत्त्व, जो जो चाहो कह लो, वही दिव्य शक्ति, वही सर्वरूप, जो सवत्र विद्यमान है, वही तुम हो।"

स्वामी राम शकराचाय जी के समान ही आत्मा को नित्य, निर्विकार और एकरस मानते है—

"मनुष्य में असली आत्मा है, जो अमर है। वहाँ वास्तविक आत्मा है, जो नित्य, निर्विकार, आज, कल और सदा एकरस है। मनुष्य में कोई ऐसा वस्तु है, जो मृत्यु को नही जानती, किसी प्रकार के परिवतन को नही जानती। मृत्यु में व्यावहारिक अविश्वास का कारण मनुष्य में इस वास्तविक आत्मा को उपस्थिति है, जो अपने अस्तित्व की मृत्यु में लोगो के व्यावहारिक अविश्वास द्वारा सिद्ध करता है।"

स्वामी राम उपनिषदा के समान आत्मा एव ब्रह्म को अभिन्न मानते है। 'सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म' आत्मा का सहज स्वरूप है। स्वामी राम के अनुसार 'अस्ति', 'भाति' एव 'प्रेय' दूसरे शब्दा में 'सत', 'चित' एव 'आनन्द' है। अपने व्याख्याना में स्थल-स्थल पर इनका प्रतिपादन किया ह।

इसी 'आत्मा' को स्वामी राम ने कही-कही 'ब्रह्म' की सज्ञा दी है। कही-कही उसका प्रतोक 'ॐ' को माना है और कही वे उस 'राम' भी सबोधित करते ह। "'राम' का अभिप्राय मर्यादा पुरुषोत्तम की रामचन्द्र स नही ह, बल्कि स्वामी राम का आशय अपने में स्थित परम चैतन्य, सवशक्तिमयी सत्ता की ओर लक्षित है। वह मात्र उनके शरीर भर को नही चलाती, बल्कि सृष्टि के कण-कण को वही सचालित कर रही है। वह त्रिभुवनव्यापिनी है, त्रिकाल में स्थित है, त्रिकाल स परे है, वह सावभौम है, एक है। उसमें द्वैत की गुजाइश नही। उसी शक्ति से

सृष्टि के समस्त विधान सचालित एव नियमित है। वृहदारण्यकोपनिषद् में इसे भलीभांति स्पष्ट किया गया है—

एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्ता अहोरात्राण्यर्धमासा ऋतव सवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राचोऽन्या नद्य स्यन्दते श्वेतेभ्य पर्वतेभ्य प्रतीच्योऽन्या या या च दिशमन्वेतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददता मनुष्या प्रशसन्ति यजमान देवा दर्वी पितरोऽन्वायत्ता ।

—(अध्याय ३, ब्राह्मण ८, मत्र ९)

अर्थात् 'हे गार्गि ! इस अक्षर के प्रशासन में सूर्य और चन्द्रमा विशेष रूप से धारण किये हुये स्थित रहते हैं। हे गार्गि ! इस अक्षर के ही प्रशासन में मनुष्य दाता की प्रशसा करते है तथा देवगण और पितृगण पूर्व-वाहिनी एव अन्य नदियाँ श्वेत पवतो से बहती ह तथा अन्य पश्चिम वाहिनी नदिया जिस जिस दिशा को बहने लगती है, उसी का अनुसरण करती रहती हैं। हे गार्गि ! इस अक्षर के ही प्रशासन में मनुष्य दाता की प्रशसा करते हैं तथा देवगण और पितृगण दर्वीहोम का अनुवत्तन करते ह।"

इस प्रकार स्वामी राम 'आत्मा' को ही सवशासक, सवनियन्ता, सर्वाधार, सर्वान्तर्यामिन्, सवशक्तिमान् मानते हैं। यही आत्मा परमेश्वर, परब्रह्म और ॐकार स्वरूप है।

सृष्टिवाद

सृष्टि के सबध में स्वामी राम के विचार विशुद्ध वेदान्तियो के समान ह। उन्होंने दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तु-सत्तावाद का समन्वय' नामक व्याख्यान में इस सबध में अपने विचार इस भाति व्यक्त किये हैं—

"वेदान्त भी ससार को अपना सकल्प, अपनी सृष्टि मानता है। परन्तु ससार को अपना सकल्प, अपनी सृष्टि मानते हुये भी आप वेदान्त को कल्पनावाद नही कह सकते। राम के मुख से यह बात बहुत ही विलक्षण-सी जान पडती है। यूरोप और अमेरिका के लोग समझते हैं कि वेदान्त एक प्रकार का कल्पनावाद है। और यूरोपियनों की लिखी हुयी जितनी पुस्तकें राम की दृष्टि में आयी हैं, प्राय उन सब में वेदान्त को कल्पनावाद कहा गया है। किन्तु राम आपसे कहता है कि इन लोगों ने वेदान्त को समझा नही है। वेदान्त वैसा कल्पनावाद नही है, जैसे बर्कले या अफलातून का कल्पनावाद है। वेदान्त इससे कहीं ऊँचा ह, कहीं श्रेष्ठ है।

"कल्पनावादी संसार को इस क्षुद्रद्रष्टा, तनिक-सी बुद्धि या छोटे-से मन पर प्राश्रित रहते हैं। किन्तु वेदान्त जब यह कहता है कि संसार मेरा विचार या संकल्प है, तो उसका यह अर्थ नहीं होता कि संसार इस क्षुद्रद्रष्टा, नन्ही-सी बुद्धि, छोटे-से मन का संकल्प है। यह तो एक परिवर्तनशील वस्तु है, यह तो स्वयं एक रची हुई वस्तु है। यहीं पर बकले ने यह भूल की है कि स्वप्न स्वप्न-द्रष्टा की रचना होती है। उसने भूल यह की कि स्वप्न-जगत् के द्रष्टा को जाग्रतावस्था के द्रष्टा से एक कर दिया। आप जानते हैं कि स्वप्नावस्था का द्रष्टा जाग्रतावस्था के द्रष्टा से भिन्न होता है। स्वप्नलोक का द्रष्टा तो उसी तरह का एक पदार्थ है, जिस प्रकार कि स्वप्नलोक की अन्य वस्तुयें। जब आप जागते हैं, तब जाग्रतावस्था का द्रष्टा भी उसी श्रेणी का है जैसी कि जाग्रतावस्था की वस्तु। बकले ने जाग्रतावस्था के द्रष्टा और स्वप्नावस्था के द्रष्टा का एक समझा। संसार जाग्रतावस्था के द्रष्टा या स्वप्नावस्था के द्रष्टा की रचना नहीं है। संसार मेरे वास्तविक स्वरूप, वास्तविक ईश्वर, ब्रह्म, शुद्ध आत्मा की रचना है।"

स्वामी राम ने पश्चिमी कल्पनावादियों के सीमित कल्पनावाद का खण्डन किया है। उनका कथन है कि मन अथवा बुद्धि सीमित है, अतः सीमित वस्तु की कल्पना भी सीमित होगी, वह असीम नहीं हो सकेगी। अपना वास्तविक स्वरूप—सच्ची अन्तरात्मा मन और बुद्धि से परे है। मन और बुद्धि तो आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। वे तो जड़ हैं, आत्मा के सान्निध्य से उनमें चेतनता आती है। अतएव मन और बुद्धि की बड़ी से बड़ी कल्पना भी सीमाबद्ध ही होगी। स्वामी राम कल्पनावादियों से इस प्रकार कहते हैं—

"तुम्हारा इतना कहना ठीक है कि द्रष्टा की क्रिया के बिना इस संसार के नाम और रूप प्रकट नहीं हो सकते, पदार्थों के लक्षण, गुण और धर्म हमारी बुद्धि या मन अथवा द्रष्टा की क्रियाशीलता पर निर्भर हैं। यहाँ तक तुम ठीक हो। किन्तु तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं कि तुम्हारे इस छोटे-से द्रष्टा, तुम्हारे इस छोटे-से मन से बाहर कुछ और नहीं है।"

स्वामी जी सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण परब्रह्म को मानते हैं। उनका कथन है कि निर्गुण ब्रह्म—शुद्ध आत्मा के जान लेने पर सृष्टि का रहस्य अपने आप समझ में आ जाता है—

"जिन गुणों से दुनिया बनायी गयी है, उनके बाबत क्या सोचते हो? इन्द्रिय-गोचर जगत् गुणों का पुंज है और सभी गुण उस परम तत्त्व पर निर्भर रहते हैं। यह एक बहुत ही सूक्ष्म बात है, जो आप अभी नहीं समझ सकेंगे, किन्तु उसका सुनना अच्छा है। वे सारे गुण उस परम तत्त्व पर निर्भर करते हैं। उसी

धुरी पर चक्कर लगाते हैं। अत इन गुणो के धम व अनुसार परम तत्त्वों में भी एक गुण हुआ अर्थात् उनमें भी वह इन गुणो के अवलम्ब, पोषक या आधार होने का गुण है। वह परम तत्त्व सब गुणा को आश्रय देता है। यदि यह सच है, तो वह परम तत्त्व निर्गुण नही रहा, क्योंकि उस परम तत्त्व में इन सब गुणों को आश्रय देने का कम से कम एक गुण तो है ही। तो फिर हम कैसे कह सकते हैं कि वह परम तत्त्व निर्गुण है ? अनुभव से अब यह बात हम निजी ढग से कहते हैं। जिस तरह आप अपने निजी अनुभव के प्रमाण पर इस दुनिया को ठोस या वास्तविक मानते हैं, ठीक उसी तरह हम अपने निजी उच्चतर अनुभव के आधार पर कहते है कि जब उस परम तत्त्व का साक्षात् हो जाता है, तब ये सारे गुण, देश और काल गायब हो जाते हैं, क्योंकि उस परम तत्त्व के दृष्टिबिन्दु से इन गुणों का अस्तित्व कभी नही हुआ था। वे तो गुणा के दृष्टिबिन्दु मे ही उस अधिष्ठान स्वरूप परम तत्त्व पर निभर करते हैं। यह एक बहुत बड़ी समस्या हैं, जिसे हल करना होगा। यह माया की गुत्थी कहलाती है। वास्तव में वह परम तत्त्व निर्गुण है, सब गुणो से परे है। किन्तु ये गुण अपने स्थितिबिन्दु से उस परम तत्त्व पर निर्भर करते है। यह एक प्रमुख समस्या है, जिसके सुलझने पर ससार की अन्य गुत्थियाँ अपने आप सुलझ जाती हैं।"

स्वामी राम इसका समाधान प्रत्यक्षानुभूति में मानते ह। वास्तव में ये सम स्यायें वाद विवाद, तर्क वितर्क, शास्त्रार्थ स हल होने की नही हैं। इसका वास्त विक समाधान तो अनुभूति में है। इसीलिये स्वामी जी ने प्रत्यक्षानुभूति पर बहुत अधिक बल दिया है। उनका कथन है—

"इस विषय की दार्शनिक व्याख्या सुनने में अति मीठी लगती है। किन्तु जब एक बार इसका अनुभव किया जाता है, तब ता यह माधुर्य तथा आनन्द और भी अधिक घना हो जाता है। यह सचमुच अनुभव करने योग्य है। यदि आप इस विचार को जीवन में उतार लो—कि तुम वही एक अनन्त, 'त' हो, जो इस विश्व के सभी पदार्थों के पीछे आधार रूप से विद्यमान है, तुम्ही वह परम तत्त्व हो—तो तुम देह से परे हो जाते हो और मन से परे हो जाते हो। यह शरीर द्रष्टा नही है। यह तो केवल एक पदाथ मात्र है, जो एक ओर की लहर से दूसरी ओर की लहर के साथ प्रकट होता है। आप केवल देह रूपी फेन नही हैं। आप तो परम तत्त्व हैं, जिसमें यह सम्पूर्ण ससार विश्व का सम्पूण व्यापार, लहरें या भवर मात्र ह। इसे अनुभव करो और परम स्वतन्त्र हो जाओ। क्या यह आश्चर्यों का आश्चय नही ह कि आप जो वास्तविक सत्य, वास्तविक परम स्वरूप हो, इसका अनुभव नही करते ? ओ, मुक्त हो जाओ। कैसा शुभ सवाद है, कैसा

मगलमय संदेश है कि आप ही वह परम तत्व हो और आप ही असली 'त' हो। इसे अनुभव करो और स्वतत्र हो जाओ।"

स्वामी राम के अनुसार सृष्टि द्रष्टा और दृश्य दोनो पर आश्रित है। वास्तव में इन दोनो का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। एक के अभाव में भी सृष्टि की कल्पना करनी समव नही है। इसीलिये, स्वामी जी सृष्टि के प्रत्यक्षीकरण के लिये 'सकल्पवाद' और 'वस्तुसत्तावाद' दोनों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। उनका कथन है:—

'हम आत्मनिष्ठ को द्रष्टा और पदार्थनिष्ठ को दृश्य कहेगे। हम सवत्र देखते आये हैं कि इन दोनों का अन्योन्याश्रित सबध है। ये दोनो जब सम्पक में आते है, तो नाम रूपात्मक जगत् की सृष्टि करते हैं जो हमें दृष्टिगोचर होती है। उन दानों में से कोई अकेला गोचर जगत की उत्पत्ति नही करता। इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि गोचर जगत् की व्याख्या के लिये 'सकल्पवाद' और 'वस्तु-सत्तावाद' दोना को एकत्र होना पडता है, क्याकि समवत इसे कोई भी अकेला सम्पन्न नही कर सकता।"

अन्त में सृष्टि के सबध में स्वामी राम का अन्तिम निष्कप यह है कि सृष्टि आत्मा से भिन्न पदाथ नही है, वह उसी का अग मात्र है। वास्तव में सृष्टि तो शब्दो का खिलवाड मात्र ह—

वेदान्त कहता है कि यह सब शब्दो का खेल मात्र है। शब्दो पर झगडने स क्या लाभ ? वास्तव में एक ही आत्मा है जो हम हैं, उसके अतिरिक्त और कुछ नही है। और चूकि आत्मा से इतर कुछ नही है, इसलिये तुम युक्तिपूवक नही कह सक्ते कि तुम एक अश हो। इससे यह अनिवाय निष्कप निकलता है कि तुम पूण आत्मा, सम्पूण आत्मा हो। सत्य के खण्ड नही होते। और इमी क्षण तुम वह सत्य हो।'

माया

स्वामी राम का कथन ह कि जिन विद्वानो एव दाशनिका ने वेदान्त का अध्ययन किया है, उनकी राय में यह वेदान्त दशन का सबसे निवलतम पहलू है। वे सभी एकमत स कहते है कि यदि इस माया का युक्तिसगत स्पष्टीकरण हो सके तो वेदान्त की और सब बातें मान्य होनी ही चाहिये। वेदान्त को प्रत्येक बात अत्यन्त स्वाभाविक, स्पष्ट, स्वच्छ, हितकर और उपयोगी है। वेदान्त के अध्येताओ के मार्ग में यह 'माया' एक बडा अटकाव , एक बडा भारी रोडा है।

धुरी पर चक्कर लगाते हैं। अत इन गुणो के धम के अनुसार परम तत्त्वों में भी एक गुण हुआ अर्थात् उनमें भी वह इन गुणो के अवलम्ब, पोषक या आधार होने का गुण है। वह परम तत्त्व सब गुणो को आश्रय देता है। यदि यह सच है, तो वह परम तत्त्व निर्गुण नही रहा, क्योकि उस परम तत्त्व में इन सब गुणों को आश्रय देने का कम से कम एक गुण तो है ही। तो फिर हम कैसे कह सकते हैं कि वह परम तत्त्व निर्गुण है? अनुभव से अब यह बात हम निजी ढग से कहते हैं। जिस तरह आप अपने निजी अनुभव के प्रमाण पर इस दुनिया को ठास या वास्तविक मानते है, ठीक उसी तरह हम अपने निजी उच्चतर अनुभव के आधार पर कहते हैं कि जब उस परम तत्त्व का साक्षात हो जाता ह, तब ये सारे गुण, देश और काल गायब हो जाते हैं, क्योंकि उस परम तत्त्व के दष्टिविन्दु से इन गुणों का अस्तित्त्व कभी नही हुआ था। वे तो गुणो के दृष्टिविन्दु से ही उस अधिष्ठान स्वरूप परम तत्त्व पर निर्भर करते है। यह एक बहुत बडी समस्या है, जिसे हल करना होगा। यह माया की गुत्थी कहलाती हैं। वास्तव में वह परम तत्त्व निर्गुण है, सब गुणों से परे है। किन्तु ये गुण अपने स्थितिविन्दु से उस परम तत्त्व पर निर्भर करते हैं। यह एक प्रमुख समस्या है, जिसके सुलझने पर ससार की अन्य गुत्थियाँ अपने आप सुलझ जाती हैं।"

स्वामी राम इसका समाधान प्रत्यक्षानुभूति में मानते ह। वास्तव में ये सम स्यायें वाद विवाद, तर्क-वितर्क, शास्त्राथ स हल होने की नही हैं। इसका वास्त विक समाधान तो अनुभूति में हैं। इसीलिये स्वामी जी ने प्रत्यक्षानुभूति पर बहुत अधिक बल दिया हैं। उनका कथन है—

"इस विषय की दाशनिक व्याख्या सुनने में अति मीठी लगती है। किन्तु जब एक बार इसका अनुभव किया जाता हैं, तब ता यह माधुय तथा आनन्द और भी अधिक घना हो जाता हैं। यह सचमुच अनुभव करने योग्य हैं। यदि आप इस विचार को जीवन में उतार लो—कि तुम वही एक अनन्त, 'त' हो, जो इस विश्व के सभी पदार्थों के पीछे आधार रूप मे विद्यमान हैं, तुम्ही वह परम तत्व हो—तो तुम देह से परे हो जाते हो और मन से परे हो जाते हो। यह शरीर द्रष्टा नही है। यह ता केवल एक पदाथ मात्र है, जो एक ओर की लहर स दूसरी ओर की लहर के साथ प्रकट होता है। आप केवल देह रूपी फेन नही हैं। आप तो परम तत्त्व है, जिसमें यह सम्पूण ससार विश्व का सम्पूण व्यापार, लहरें या भँवर मात्र है। इसे अनुभव करो और परम स्वतन्त्र हो जाओ। क्या यह आश्चर्यों का आश्चर्य नही ह कि आप जो वास्तविक सत्य, वास्तविक परम स्वरूप हो इसका अनुभव नही करते? ओ, मुक्त हो जाओ! कैसा शुभ सवाद ह, कैसा

मंगलमय संदेश है कि आप ही वह परम तत्त्व हो और आप ही असली 'त' हो। इसे अनुभव करो और स्वतत्र हो जाओ।"

स्वामी राम के अनुसार सृष्टि द्रष्टा और दृश्य दोनो पर आश्रित है। वास्तव में इन दोनो का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। एक के अभाव में भी सृष्टि की कल्पना करनी सभव नही है। इसीलिये, स्वामी जी सृष्टि के प्रत्यक्षीकरण के लिये 'सकल्पवाद' और 'वस्तुसत्तावाद' दोनों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। उनका कथन है—

'हम आत्मनिष्ठ को द्रष्टा और पदार्थनिष्ठ को दृश्य कहेंगे। हम सवत्र देखते आये हैं कि इन दोनों का अन्योन्याश्रित सबध ह। ये दोनो जब सम्पर्क में आते हैं, तो नाम रूपात्मक जगत् की सृष्टि करते ह जो हमें दृष्टिगोचर होती है। उन दोनों में से कोई अकेला गोचर जगत की उत्पत्ति नही करता। इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि गोचर-जगत् की व्याख्या के लिये 'सकल्पवाद' और 'वस्तु-सत्तावाद' दोनो को एकत्र होना पडता है, क्याकि सभवत इसे कोई भी अकेला सम्पन्न नही कर सकता।"

अन्त में सृष्टि के सबध में स्वामी राम का अन्तिम निष्कष यह है कि सृष्टि आत्मा से भिन्न पदाथ नही है, वह उसी का अग मात्र है। वास्तव में सृष्टि तो शब्दों का खिलवाड मात्र ह—

वेदान्त कहता है कि यह सब शब्दो का खेल मात्र है। शब्दो पर झगडने से क्या लाभ? वास्तव में एक ही आत्मा है जो हम है, उसके अतिरिक्त और कुछ नही है। और चूँकि आत्मा से इतर कुछ नही ह, इसलिये तुम युक्तिपूवक नही कह सकते कि तुम एक अश हो। इससे यह अनिवार्य निष्कष निकलता है कि तुम पूण आत्मा, सम्पूण आत्मा हो। सत्य के खण्ड नही होते। और इसी क्षण तुम वह सत्य हो।'

माया

स्वामी राम का कथन ह कि जिन विद्वानों एव दाशनिको ने वेदान्त का अध्ययन किया है, उनकी राय में यह वेदान्त दशन का सबसे निर्बलतम पहलू है। वे सभी एकमत से कहते हैं कि यदि इस माया का युक्तिसगत स्पष्टीकरण हो सके तो वेदान्त की और सब बातें मान्य होनी ही चाहिये। वेदान्त की प्रत्येक बात अत्यन्त स्वाभाविक, स्पष्ट, स्वच्छ, हितकर और उपयोगी है। वेदान्त के अध्येताओ के मार्ग में यह माया' एक बडा अटकाव, एक बडा भारी रोडा है।

सबसे पहले स्वामी जी माया के अस्तित्व के सबध में स्वय अनेक प्रश्न उठाते है उदाहरणार्थ —

"वेदान्त की भाषा में इस प्रकार कहा जा सकता है, 'विश्व में यह अविद्या (माया) क्यो ? आप जानते है कि वेदान्त की शिक्षा में यह विश्व 'मिथ्या', केवल देखने मात्र में माना गया है अविद्या नित्य नही है। ये सब दृश्य सत्य अथवा नित्य नही है। यह अविद्या जो इस दृश्य जगत का मूल कारण है, अथवा यह माया, जो इस सम्पूर्ण विश्व में 'मै और तुम' रूपी भेद, अनन्यय और पार्थक्य की जड है, यह अविद्या, यह माया शुद्ध स्वरूप आत्मा को क्यो वशीभूत कर लेती है ? यह माया अथवा अविद्या परमेश्वर से भी अधिक शक्तिशालिनी क्यो हो जाती है ? यही मुख्य प्रश्न है।"

स्वामी राम उपर्युक्त प्रश्नो को उठाकर फिर इनका समाधान इस प्रकार करते है, "वेदान्त का कथन है कि नही भाई तुम्हें ऐसा प्रश्न करने का कोई अधिकार नही है। इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। वेदान्त स्पष्ट घोषणा करता है कि इस प्रश्न का कोई उत्तर नही है। वह कहता है कि प्रयोगात्मक अनुभव से, प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा सिद्ध करके हम तुम्हें दिखा सकते है कि यह ससार, जो तुम देखते हो, वास्तव परमेश्वर—ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नही है। प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा निर्विवाद रूप से हम तुम्हें दिखा सकते है कि सत्य की साधना में जब तुम यथेष्ट ऊँचे चढ जाते हो, तो यह दुनिया तुम्हारे लिए लोप हो जाती है।'

स्वामी राम की दृष्टि में 'माया का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ ?'—"यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका कोई उत्तर नही। देश, काल, वस्तु अथवा कार्य-कारण का इधर या उधर कही कोई अन्त नही होता। शोपेनहर ने उसे सिद्ध किया है। हर्बर्ट स्पेंसर ने इसे सिद्ध किया है। प्रत्येक विचारवान तुम्हें यही बतायेगा कि ऐसे प्रश्नो का कोई अन्त नही होता। स्वप्न में भी उस श्रेणी विशेष के देश का जिसे तुम स्वप्न में बोध करते हो, कोई अन्त नही होता, चाहे अपने से पहले, चाहे अपने से पश्चात्। स्वप्न में भी उस श्रेणी विशेष के देश को जिसे तुम स्वप्न में, बोध करते हो, कोई सीमा नही होती। स्वप्न में भी उस विशेष श्रेणी की कार्य कारण-परम्परा का भी कोई अन्त नही होता, जिसे तुम स्वप्न में देखते हो।"

स्वप्न सिद्धान्त के आधार पर स्वामी राम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि "जाग्रतावस्था में भी ठीक ऐसा ही है। वे लोग जो प्रत्यक्ष प्रमाण से इस प्रश्न का उत्तर देने का यत्न करते है, राह में भटक जाते है और एक चक्र में तर्क करते

करते अपने को हैरान, परेशान करते हैं। तात्पर्य यह कि प्रश्न के प्रत्यक्ष प्रमाणों पर आधारित उत्तर असम्भव है। स्वप्नदर्शी द्रष्टा जब जागता है, तब सारी समस्या स्वत हल हो जाती है। जागने पर स्वप्नदर्शी द्रष्टा कहता है—'अरे, यह तो स्वप्न था, उसमें कही भी कोई सचाई नही थी। इसी भाँति सत्य के साक्षात्कार में जागने पर, मुक्ति की वह पूर्ण अवस्था प्राप्त होने पर, वेदान्त जिसके द्वार सबके लिए खोलता है तुम देख सकोगे कि वह दुनिया तमाशा थी, केवल क्रीडा-वस्तु थी, भ्रम मात्र थी और कुछ न थी।"

माया के सबध में इस प्रकार के और भी अनेक प्रश्न किये जा सकते है। वेदान्तियो ने स्वप्न सिद्धान्त के आधार पर ऐसे अनेक प्रश्नो के उत्तर देने का प्रयास किया है। स्वामी राम ने उसी शैली को अपनाकर इसके सबध में उत्पन्न हुई शकाओ का निराकरण करने की चेष्टा की है। वे स्वय शका उपस्थित करके निराकरण इस भाँति करते हैं—

"माया का यही प्रश्न इस तरह भी किया जाता है—'यदि मनुष्य परमेश्वर ब्रह्म है, तो अपने असली स्वभाव को क्यो भूल जाता है?' वेदान्त का उत्तर है—तुममे जो असली परमेश्वर है, वह अपने वास्तविक स्वरूप का कभी नही भूलता। तुममें जो वास्तविक परमेश्वर है, यदि वह अपने सच्चे स्वभाव का भूल गया होता, तो निरन्तर इस विश्व का शासन और नियन्त्रण कैसे करता? फिर भूला ही कौन है? कोई नही, कोई नही भूला है। ठीक स्वप्न की-सी अवस्था है। स्वप्न में, जब तुम विभिन्न प्रकार के पदार्थ देखते हो, वास्तव में तुम वह नही होते, जो उन पदार्थों को देखता है। वह स्वप्न का द्रष्टा है, जिसकी सृष्टि स्वप्न की अन्य वस्तुओ के साथ होती है। वह उन सब पदार्थों का दर्शन करता है, उन सब दृश्यो का देखता है तथा उन कन्दराओ, पहाडो और नदियों में रहता है। असली स्वरूप, आत्मा, सच्चा परमेश्वर कदापि कुछ नही भूला है। यह मिथ्याहकार का ख्याल स्वय माया की रचना है, या उसी प्रकार का भ्रम है जैसे अन्य पदार्थ। शुद्ध स्वरूप कुछ भी नही भूला है। जब तुम कहते हो, परमेश्वर आदमी के जामें में क्षुद्र अहकारी आत्मा होकर, अपने को भूल क्यों गया? तब वेदान्त कहता है—'तुम्हारे इस प्रश्न में वही भूल है, जिसे तर्कशास्त्री एक ही चक्र में तर्क करने की भूल कहते है। अच्छा, यह प्रश्न तुम किससे कर रहे हो? यह प्रश्न तुम स्वप्नदर्शी द्रष्टा से कर रहे हो या जाग्रत द्रष्टा से? स्वप्नदर्शी द्रष्टा से तुम्हें यह प्रश्न नही करना चाहिये क्योंकि वह कुछ नही भूला है। वह तो स्वयं भी वैसी ही रची हुई वस्तु है, जैसी कि दूसरे पदार्थ, जिनको वह देखता है। और जाग्रतावस्था के असली द्रष्टा से तुम प्रश्न कर नही सकते। प्रश्न कौन करेगा?

तुम जानते हो कि स्वप्न में प्रश्न करने वाले को स्वयं स्वप्न में होना चाहिये और जब स्वप्नदर्शी द्रष्टा हो जाता है, तब कौन, किससे प्रश्न करेगा ? प्रश्न करने और उत्तर देने का द्वैत-चक्र केवल तभी तक संभव है, जब तक माया का स्वप्न चलता है। तुम केवल स्वप्नदर्शी द्रष्टा से प्रश्न कर सकते हो और स्वप्न दर्शी द्रष्टा उसके लिये उत्तरदायी नहीं है। स्वप्नदर्शी द्रष्टा को हटा दो और फिर सम्पूर्ण दृश्य-संसार, सम्पूर्ण स्वप्न ही लोप हो जायेगा। प्रश्न करने के लिये ही कोई कहीं न रह जायेगा तब कौन किससे प्रश्न करेगा ?"

स्वामी राम ने 'माया' सम्बन्धी इस गूढ़ प्रश्न को एक दूसरी शैली से समझाने की चेष्टा की है। उनका कथन है—

"राम अब माया की समस्या को तुम्हें हिन्दुओं की उस पद्धति से समझावेगा जिस प्रकार उन्होंने उसे अपने प्राचीन धर्मग्रन्थों में दर्शाया और समझाया है। वे उसे व्यवहारतः, प्रयोगात्मक ढंग से समझाते हैं। व माया को 'अनिवचनीय' कहते हैं। उसका परिमित अर्थ 'भ्रान्ति मात्र' है। परन्तु व्याख्या रूप से माया उसे कहते हैं, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, जो न सत्य कही जा सकती है और न असत्य कही जा सकती है तथा जो सत्य और असत्य का मिश्रण भी नहीं है। यह सम्पूर्ण संसार 'माया' या 'भ्रान्ति' है। यह भ्रान्ति दो प्रकार की होती है। एक को हम 'बाह्य' और दूसरी को 'आन्तरिक' भ्रान्ति कह सकते हैं। शीशे में प्रतिबिम्बित चित्र 'बाह्य' भ्रान्ति का उदाहरण है और 'रस्सी में सर्प की भावना' 'आन्तरिक' भ्रान्ति का दृष्टान्त है।"

स्वामी राम ने माया का विश्लेषण करते हुये इस प्रकार कहा है, "वेदान्त के अनुसार, यह सम्पूर्ण विश्व वास्तव में केवल एक अखण्ड अनिवचनीय (सत्ता) के सिवा और कुछ भी नहीं है, जिसे हम सत्य भी नहीं कह सकते, क्योंकि यह वाणी से परे है, देश काल-वस्तु से परे है सबसे परे है। वास्तविक सत्ता की इस रस्सी में, इस अन्तःस्थित आधार में, तत्त्व में, अथवा चाहे जो नाम तुम इसे दो, उसमें नाम, रूप और भेदभावों का प्रादुर्भाव होता है। तुम इस प्रादुर्भाव का जीवनशक्ति क्रियाशीलता, स्फुरण आदि कोई भी नाम दे सकते हो। ये सब नाम-रूपादिक सर्प के तुल्य हैं। इससे आगे हम देखते हैं कि इस 'आन्तरिक' भ्रान्ति के पूर्ण होने पर 'बाह्य' भ्रान्ति का प्रादुर्भाव होता है। इस 'बाह्य' भ्रान्ति के कारण हम इन नामों और रूपों, इन व्यक्तियों और प्राणियों में स्वयं एक वास्तविकता का विद्यमान होना मानने लगते हैं, मानों वे सब नाम-रूपादि स्वतः स्थित हों, अपनी स्थिति के लिये परमुखापेक्षी न हों, वरन् स्वयं अपने बल पर ही स्थिर और जीवित हों। यही दूसरी या 'बाह्य' भ्रान्ति का आविर्भाव है।"

स्वामी राम का कथन है कि समस्त भ्रान्तियों का अधिष्ठान परमेश्वर—ब्रह्म अथवा आत्मा है। उसका साक्षात्कार कर लेने पर समस्त भ्रान्तियाँ—सारी माया स्वतः अन्तर्हित हो जाती हैं, उसका नामोनिशान तक नहीं रहता। स्वामी जी इस प्रकार कहते हैं—

'इन सब नाम रूपों में और इन समस्त प्रतिभाओं में, इन भेदों और प्रभेदों में स्वयं परमेश्वर समाया हुआ है। किन्तु इसके साथ ही यह भी ध्यान रखिये कि ये सब विभिन्न नाम और रूप और प्रतिभायें मिथ्या हैं, जैसे रस्सी में साँप मिथ्या होता है। इस भ्रान्ति से आगे बढ़ो और तुम उस अवस्था को प्राप्त होगे, जो इन सबसे परे है, जो सम्पूर्ण कल्पना से परे है और सम्पूर्ण शब्दों से परे है। वह बाह्य और आन्तरिक दोनों भ्रान्तियों से परे है। बस, इस प्रकार तुम देख सकते हो कि वेदान्त सब धर्मों की पूर्ति करता है। वह संसार के किसी धर्म का खण्डन नहीं करता।"

अन्त में स्वामी राम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आन्तरिक भ्रान्ति के कारण माया की प्रतीति होती है। ब्रह्मज्ञान, अथवा आत्मज्ञान से इस भ्रान्ति की निवृत्ति होती है। उस समय माया का समस्त विस्तार समाप्त हो जाता है और सब कुछ आत्मस्वरूप ही दृष्टिगोचर होने लगता है—

'इस तरह अच्छे और बुरे के भेद का कारण भी माया, नाम और रूप है, और कुछ नहीं। ये नाम और रूप सत्य नहीं हैं, क्योंकि अनित्य हैं। वे मिथ्या इसलिये हैं कि वे एक समय तो दिखलायी पड़ते हैं और दूसरे समय नहीं दिखायी पड़ते। यह समस्त दृश्य जगत् नाम और रूप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, नाम-रूप के विभेदों, परिवर्त्तनों और संयोगों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अब इन विभिन्न परिवर्त्तनों तथा संयोगों का कारण क्या है? इनका कारण है आन्तरिक भ्रान्ति से उत्पन्न इन नाम रूपों में एक ही ब्रह्म अपने को प्रकट कर रहा है। संसार के नामों और रूपों में, जो माया मात्र हैं, परमेश्वर स्वयं आविर्भूत होता है। इनका कारण है भीतरी भ्रान्ति। इससे ऊपर उठो और तुम सब कुछ हो वास्तव में देखता वही है, जो सब में एक जैसा देखता है। उसी मनुष्य की आँखें खुली हुयी हैं, जो सब में एक, एक समान, एक परमेश्वर को देखता है।"

मनुष्य

सभी दार्शनिकों की भाँति स्वामी राम ईश्वर की सृष्टि में मनुष्य, एवं उसकी शक्तियों में महान् विश्वास करते हैं। वे मनुष्य को अनन्त शक्तियों का केन्द्र बिन्दु मानते हैं। अपने 'आत्मविकास' नामक व्याख्यान में उन्होंने मनुष्य में स्थित अपार शक्तियों की ओर इस प्रकार संकेत किया है—

"जगत् चार मुख्य वर्गों या कोटियों में विभक्त है—खनिज, उद्भिज, पशु और मनुष्य। इस विभाग में हम यह देखते हैं कि मनुष्य पशुओं की अपेक्षा अधिक उद्योग शक्ति अधिक गति और उच्च कोटि का व्यापार प्रकट करते हैं। पशु केवल चल फिर सकते हैं, दौड़ सकते हैं या पहाड़ों पर चढ़ सकते हैं। किन्तु मनुष्य इन सब कामों के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ करता है। वह और भी अनेक बातें करता है। वह उच्चतर कोटि की उद्योग शक्ति अथवा गति प्रकट करता है। दूरबीनों के द्वारा वह नक्षत्रों तक पहुँच सकता है। पशु ऐसा नहीं कर सकते। मनुष्य पशुओं पर शासन कर सकता है। वह वाष्प और विद्युत के द्वारा देश और काल का उच्छेद करता है। उसे इतनी शक्ति प्राप्त है, जिसका कि पशुओं में पता तक नहीं। वह संसार के किसी भी भाग में तुरन्त सन्देश भेज सकता है। वह हवा में उड़ सकता है। संसार में यह है मनुष्य की गति, मनुष्य के उद्योग एवं शक्ति का प्रादुर्भाव।"

स्वामी राम ने आत्मविकास की दृष्टि से मनुष्यों की चार कोटियाँ निर्धारित की हैं और उनका यह विभाजन सर्वथा मौलिक, स्वतन्त्र और अनुभूतिमय है। वह विभाजन इस प्रकार है—

१ खनिज मनुष्य—इनका जीवन खनिज पदार्थों का-सा जीवन है। ये ऐसे मनुष्य हैं, जिनके सब काम-काज एक छोटे से बिन्दु या अनात्मा अर्थात साढ़े तीन हाथ लम्बे शरीर के छोटे से वृत्त में केन्द्रीभूत हैं। वे अधम कोटि के स्वार्थी होते हैं। ये वे लोग हैं जिनके सारे कार्य इन्द्रिय-तृप्ति के निमित्त हुआ करते हैं। इनके सभी प्रयत्नों का उद्देश्य केवल अधोगति करने वाले सुखों की तलाश है। इन्हें स्त्री-बच्चों के भूखों मरने की चिन्ता नहीं होती। उनकी कर्मशीलता या गति निर्जीव गति है। मनुष्य में यही खनिज जीवन है।

२ उद्भिज मनुष्य—ये, वे लोग हैं, जो अपनी स्त्री और बच्चों के पारिवारिक वृत्त के इर्द गिर्द घूमते हैं। स्वार्थी खनिज मनुष्यों की अपेक्षा इनका दर्जा बहुत ऊँचा है, क्योंकि ये केवल अपने ही शरीर का हित नहीं साधते, बल्कि अपनी स्त्री और बच्चों के पक्ष का भी ध्यान रखते हैं। खनिज मनुष्यों की अपेक्षा उद्भिज मनुष्यों की आत्मा का विकास अधिक हुआ होता है। इनमें शुद्धता भी खनिज मनुष्यों की अपेक्षा अधिक होती है।

३ पशु-मनुष्य—ऐसे मनुष्यों का केन्द्र खनिज और उद्भिज मनुष्यों की अपेक्षा बड़ा है। इन्होंने अपनी अभेदता ऐसी वस्तु से कर ली है, जो इस तुच्छ शरीर अथवा कौटुम्बिक वृत्तों से ऊँची या विशाल है। ये लोग अपने वर्ग या सम्प्रदाय अथवा राज्य से अपनी अभेदता कर लेते हैं। ये लोग साम्प्रदायिक हैं

और किसी जाति या बिरादरी मे अपनी अभेदता कर लेते हैं। इनकी उपयोगिता अनेक कुटुम्बों और व्यक्तियों तक फैलती है। जिन लोगों के प्रति इनका झुकाव है, उनके प्रति ऐसे मनुष्य बहुत उपयोगी सिद्ध होते है। परन्तु ऐसे मनुष्य भी सीमित वृत्त में बँधे ह। उन्हें इस सीमा से आगे बढना ही चाहिये।

४ वास्तविक-मनुष्य—यह वह मनुष्य है, जो सम्पूर्ण राष्ट्र या जाति से अपनी अभेदता स्थापित कर लेता है। आप उसे 'देशभक्त' कह सकते हैं। उसका वृत्त बहुत ही बडा है। जात पाँत, वर्ण, नाम और सज्ञा का ध्यान छोड़कर वह अपने देश के समस्त निवासियो का पक्ष पुष्ट करना ही अपना कर्त्तव्य समझता है। वह अति धन्य है, अथवा हार्दिक स्वागत के योग्य है, वह बडा ही भला है। वह मनुष्य तो है, पर इससे अधिक नही।

स्वामी राम अन्त में 'देव मनुष्य' की कल्पना करते है। ऐसे मनुष्य परिधियो से परे हो चुके होते हैं। यह एक ऐसा वृत्त है, जिसका केन्द्र सर्वत्र है और परिधि कही नही। यह देव वृत्त अथवा ईश्वर वृत्त है। ये मुक्त पुरुष हैं, अर्थात् सारे कष्ट, भय, शारीरिक कामनाओं और स्वार्थपरता से मुक्त है। ये स्वाधीन मनुष्य हैं। विश्व इस मनुष्य की आत्मा है। विशाल जगत्, छोटे से छोटा प्राणी, खनिज-वनस्पति इत्यादि—इन सबकी आत्मा इस प्रकार के मनुष्यों की आत्मा हो जाती है।

कहना न होगा कि स्वामी राम के जीवन का एकमात्र उद्देश्य समस्त प्रयास मनुष्य को 'देव मनुष्य' अथवा 'ईश्वर मनुष्य' बनाना था। उन्होंने जो कुछ कहा, जो कुछ लिखा, उसका मात्र यही उद्देश्य था कि मनुष्य अपने परिच्छिन्न दायरे से निकल कर अपने असीम, अनन्त, अनादि, अचिन्त्य, सर्वशक्तिमान्, सर्वशासक, सर्वनियन्ता आत्मस्वरूप का जानने के लिये प्रयत्नशील हो जाय। इसी निमित्त उन्होने प्राय अपने सभी व्याख्याना, लेखों में अवसर ढढ कर मनुष्य को उसकी वास्तविक अन्तरात्मा की अनन्त शक्ति में श्रद्धा, विश्वास और निष्ठा जाग्रत करने की चेष्टा की है। हमारी राय में उनका कोई भी व्याख्यान अथवा लेख ऐसा नही है, जिसके आदि, मध्य अथवा अन्त में आत्मा की अमरता, नित्यता, सार्वभौमिकता, अनन्तता और परमानन्द का वर्णन न किया गया हो। स्वामी राम जो कुछ भी कहते, लिखते अथवा वार्तालाप करते थे, सब कुछ आत्मस्थ होकर ही करते थे। उन्होंने अपने जीवन का यही उद्देश्य बना लिया था—"मनुष्य के भीतर प्रसुप्त अन्तरात्मा को जाग्रत करना, उसे उद्बोधित करना एव आत्म स्वरूप में स्थित करना।"

स्थल-स्थल पर स्वामी राम की वाणी इसी अखण्ड सत्य का प्रतिपादन करती

हक नहीं कि उनका नाश हो गया। उन्हें भी जीवित रहना होगा, वे अवश्य जीवित रहेंगी। वे चाहे अपना स्थान बदल दें, वे चाहे अपनी दशा बदल दें, परन्तु उनका जीना जरूरी है, उनका नाश कदापि नहीं हो सकता।"

स्वामी राम वेदान्त की सिंह-गर्जना करते हुये कहते हैं कि एक ही वातावरण में, एक ही परिस्थिति में पले हुये मनुष्यों की वृत्तियों, इच्छाओं, आकांक्षाओं में जो इतना अन्तर दिखायी पड़ता है, वह मनुष्य के पूर्वकृत कर्मों का परिणाम है। अतः मनुष्य कर्म करने में स्वाधीन है। वह शुभ एवं अशुभ कर्मों में सर्वथा स्वतन्त्र है। वह शुभ कर्मों के सम्पादन द्वारा नये भाग्य का निर्माण कर सकता है। वे कर्म सिद्धान्त का इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं—

"हिन्दू इसे कर्म का विधान कहते हैं। इसे मान लेने से आप उस विकट कठिनाई से छूट जाते हैं और मृत्यु तथा जन्म का सम्पूर्ण व्यापार बिल्कुल स्वाभाविक हो जाता है—ठीक प्रकृति के नियमों के अनुसार, विश्व के सामंजस्य-पूर्ण, सर्वसम्मत नियमों के अनुसार चलने लगता है।"

स्वामी राम का कथन है कि मनुष्य की इच्छायें ही उसके कार्यों में रूपान्तरित हो जाती हैं। इच्छायें ही प्रेरक शक्तियाँ हैं। किन्तु जो अनेक इच्छायें पूरी नहीं होतीं, उनकी क्या गति होती है? वे अपनी सहज ओजमयी भाषा में इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देते हैं—"वेदान्त कहता है 'ऐ मनुष्य, तू ईश्वर द्वारा हँसे जाने के लिये नहीं बनाया गया है। तुम्हारी भी अपूर्ण और अतृप्त इच्छायें अवश्यमेव फलवती होंगी, यदि इस लोक में नहीं, तो दूसरे लोक में।' "

स्वामी राम मनुष्य की अनन्त ज्ञान शक्ति में दृढ़ निष्ठा और विश्वास रखते हैं। वे मनुष्यों को इसका आभास कराते हैं और साथ ही चेतावनी भी दे देते हैं कि वे अपनी अनन्त शक्ति का निम्न और हेय बातों में नष्ट न करें। वे इस प्रकार कहते हैं—

"वेदान्त कहता है, तुम्हारे सारे जन्म और पूर्व जीवन तुम्हारी चेतना की आन्तरिक भील में, तुम्हारे ज्ञान की आन्तरिक भील में विद्यमान रहते हैं। वे वहीं रहते हैं। इस समय वे निम्नतम तह पर अवस्थित हैं। वे ऊपरी तल पर नहीं हैं। यदि तुम अपने पिछले जन्मों को याद करना चाहते हो, तो यह कोई कठिन बात नहीं है। अपने मानसरोवर का निम्नतम तह तक खूब खँगाल डालो और आप जो चीज चाहें, उसे ऊपरी तल पर ला सकते हैं। यदि आप चाहें तो आप अपने पिछले जन्मों को भी याद कर सकते हैं। किन्तु एक बात है, ऐसा प्रयोग लाभदायक नहीं होता, क्योंकि एक दूसरे नियम—विकासवाद के

हुई प्रतीत होती हैं। वे आत्मा की अमरता की इस प्रकार प्रतिष्ठा करते हैं—

"देह अवश्य मिट्टी में मिल जाती है। किन्तु देह का नाश कहाँ हुआ? उसका केवल रूपान्तर हो गया। देह के स्थूल तत्त्व बदले हुये रूप में, एक दूसरे रूप में वर्तमान है, वे नष्ट नहीं हुये हैं। तुम्हारे मित्र देखेंगे कि वही शरीर फिर कब्र पर सुन्दर गुलाब के रूप में प्रकट होगा तथा किसी दिन फिर फला और वृक्षों के रूप में उसका आविर्भाव होगा। उसका नाश तो नहीं हुआ है।"

"अच्छा फिर हमें सन्देह किस बात में है? क्या आत्मा, सत्य वास्तविक परमेश्वर का नाश हो गया है? नहीं, नहीं। वह कदापि नष्ट नहीं हो सकता। असली व्यक्ति मनुष्य की आत्मा का कदापि नाश नहीं हो सकता वह कभी नष्ट नहीं की जा सकती। तो फिर हम संदिग्ध, शंकाकुल, किस सम्बन्ध में हैं? यह सूक्ष्म शरीर हो सकता है, जिसे दूसरे शब्दों में आप मानसिक वासनायें मानसिक भावनायें, मनोविकार, मनोभिलाषायें, चित्त की लालसायें, अन्तःकरण की आकांक्षायें और संकल्प कह सकते हैं। इन्ही सबसे 'सूक्ष्म शरीर' का निर्माण होता है। इस सूक्ष्म शरीर का क्या होता है? मनुष्य तो भूमि में गाड़ा गया, क्या उसके साथ ये वस्तुयें भी गड़ गयी? नहीं, नहीं। ये तोपी नहीं जा सकती। तो फिर इनका क्या होता है? सारा प्रश्न इस सूक्ष्म शरीर का है, जो तुम्हारी मानसिक क्रियाशक्ति, आन्तरिक क्रियाशीलता, भीतरी विकारों, भावनाओं और कामनाओं से निर्मित होता है। इस क्रियाशक्ति, इन मनोविकारों, भीतरी इच्छाओं के समुच्चय, इनके संयोग या समूह का परिणाम क्या होता है? यह कहना कि यह आध्यात्मिक जगत में—यहाँ मेरा अभिप्राय उस जगत से है, जिसे आप यांत्रिक नियमों से सिद्ध नहीं कर सकते—चला जाता है। तुम्हारे विचार से भले ही बिलकुल ठीक हो, किन्तु विज्ञान इसी स्थूल जगत की दृष्टि से प्रमाण चाहता है कि इस शक्ति का क्या होता है? विज्ञान ने निर्विवाद रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि संसार में किसी वस्तु का नाश, सर्वथा नाश नहीं होता। यह एक अटल, सार्वभौम नियम है। यह शक्ति के आग्रह का नियम है, यह द्रव्य के अविनाशित्व का नियम है। यह शक्ति के संरक्षत्व का नियम है। यह आपको बताता है कि कोई भी वस्तु समूल नष्ट नहीं हो सकती। अच्छा यदि शरीर का नाश नहीं होता, केवल उसकी दशा बदल जाती है और यदि हृदयस्थ परमेश्वरत्व—ब्रह्मत्व का भी नाश नहीं होता, प्रत्युत वह नित्य, स्थायी, निर्विकार रहता है, तो फिर इन मनोभिलाषाओं, मानसिक क्रियाशक्ति, आन्तरिक जीवन का ही नाश क्यों हो जाना चाहिये? उनका नाश क्यों हो? शक्ति के संरक्षकत्व का अनिवार्य नियम हमें बताता है कि उसका नाश कभी नहीं हो सकता। अतः तुम्हें यह कहने का कोई

हक नही कि उनका नाश हो गया। उन्हें भी जीवित रहना होगा, वे अवश्य जीवित रहेंगी। वे चाहे अपना स्थान बदल दें, वे चाहे अपनी दशा बदल द परन्तु उनका जीना जरूरी है, उनका नाश कदापि नही हो सकता।"

स्वामी राम वेदान्त की सिंह-गर्जना करते हुये कहते है कि एक ही वातावरण में, एक ही परिस्थिति में पले हुये मनुष्यो की वृत्तियों, इच्छाओ, आकाक्षाओ में जो इतना अतर दिखायी पडता ह, वह मनुष्य के पूर्वकृत कर्मो का परिणाम हैं। अत मनुष्य कम करने में स्वाधीन है। वह शुभ एव अशुभ कर्मो के सवथा स्वतत्र है। वह शुभ कर्मों के सम्पादन द्वारा नये भाग्य का निर्माण कर सकता है। वे कम सिद्धान्त का इस प्रकार प्रतिपादन करते ह—

"हिन्दू इसे कम का विधान कहते ह। इसे मान लेने से आप उस विकट कठिनाई से छूट जाते है और मृत्यु तथा जन्म का सम्पूण व्यापार बिलकुल स्वाभाविक हो जाता ह—ठीक प्रकृति के नियमा के अनुसार विश्व के सामजस्य-पूण, सवसम्मत नियमो के अनुसार चलन लगता है।'

स्वामी राम का कथन है कि मनुष्य को इच्छायें ही उसके कार्यों में रूपान्तरित हो जाती है। इच्छायें ही प्रेरक शक्तियां है। किन्तु जो अनेक इच्छायें पूरी नही होती, उनकी क्या गति हाती है ? व अपनी सहज ओजमयी भाषा में इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दत ह—'वेदान्त कहता है, 'ऐ मनुष्य, तू ईश्वर द्वारा हँसे जाने के लिये नही बनाया गया है। तुम्हारी भी अपूण और अतृप्त इच्छायें अवश्यमेव फलवती होंगी, यदि इस लोक में नही, ता दूसरे लोक में।' "

स्वामी राम मनुष्य की अनन्त ज्ञान शक्ति में दृढ निष्ठा और विश्वास रखते है। वे मनुष्यो को इसका आभास कराते है और साथ ही चेतावनी भी द देते है कि वे अपनी अनन्त शक्ति का निम्न और हेय बातो में नष्ट न करें। वे इस प्रकार कहते ह—

"वेदान्त कहता है, तुम्हारे सारे जन्म और पूर्व जीवन तुम्हारी चेतना की आन्तरिक भील में, तुम्हारे ज्ञान की आन्तरिक भील में विद्यमान रहते ह। वे वहाँ रहते है। इस समय वे निम्नतम तह पर अवस्थित है। व ऊपरी तल पर नही ह। यदि तुम अपने पिछले जन्मो की याद करना चाहते हो, ता यह कोई कठिन बात नही है। अपने ज्ञान सरोवर का निम्नतम तह तक [illegible] खँगाल डालो और आप जो चीज चाहे, उसे ऊपरी तल पर ला [illegible] आप चाहें तो आप अपने पिछले जन्मो को भी याद कर सकते ह [illegible]
है, ऐसा प्रयोग लाभदायक नही हाता, क्योकि एक दूसरे [illegible]

अनुसार तुम्हें आगे बढना है, तुम्हें अग्रसर होते रहना है। इसलिये जो गया, सो गया। तुम्हारा उससे कोई सरोकार नही। तुम्हें तो आगे बढना है।"

मनुष्य अपनी ही इच्छाओ के द्वारा नित्य सुख दुख भोगता रहता है। अत उसे बहुत समझ-बूझ कर इच्छायें करनी चाहिये। उसे ऐसी इच्छायें कदापि नही करनी चाहिये, जो दुख और बन्धन का कारण बनें। मनुष्य में विवेक की प्रधानता होती है। अत इच्छाओ के चयन में उसे अपने विवेक का पूर्ण प्रयोग करना चाहिये। विवेकयुक्त इच्छायें कभी दुख का हेतु नही बनती। इस सबध में स्वामी राम सासारिक मनुष्यों को चेतावनी देते हैं—

"इस दुनिया के लोग जब किसी वस्तु की इच्छा करते है, तब वे यह नही देखते कि उसका परिणाम क्या होगा। वे यह नही देखते कि इसके द्वारा वे कहाँ पहुँचेंगे। और बाद में जब वे अपनी इच्छाओं का फल भोगते है, तब वे रोना-धोना, चीखना चिल्लाना और अपने भाग्य को कोसना शुरू कर देते है। वे ग्रहों को दोष देते है, कभी रोते और कभी दांत पीसते और ओठ काटते है। इसलिये जब तुम कोई इच्छा करो, तब तुम भली भाँति विचार कर लो कि उस इच्छा का परिणाम क्या होगा। तुम स्वय ही अपने ऊपर दुख और कष्ट बुलाते हो और दूसरा कोई उसके लिये उत्तरदायी नही है।"

स्वामी राम का कथन है कि सदिच्छाओं की विजय होनी अवश्यम्भावी है, क्योंकि उनमें अपार शक्ति होती है और यह शक्ति सत्य से प्राप्त होती है। वे मनुष्य की सदिच्छाओ पर अत्यधिक बल देते है। उनकी राय है—

"इस सग्राम में उन इच्छाओं की विजय होती है, जो सब से अधिक शक्तिशालिनी होती है। इनमें यह शक्ति कहाँ से आती है? शक्ति सत्य से और केवल सत्य से प्रादुर्भूत होती है। केवल उन्ही इच्छाओ की जीत होती है, जिनमें सत्य, सदाचार, न्यायपरायणता, पुण्यशीलता अथवा शुद्धता की मात्रा अधिक होती है। तुम्हें सगीन की नोक पर खाँडे की धार पर उन्नति और सुधार करना पडेगा। तुम सदा विषय भोग में लिप्त होकर सड नही सकते। सदा स्वार्थपूर्ण तृष्णा और लोभ में तृप्त नही रह सकते। तुम्हें उठना होगा, धीरे धीरे, किन्तु निश्चयपूर्वक। तुम्हारे सामने आनन्द का पथ खुला हुआ है। यहाँ कर्म का विधान प्रत्येक व्यक्ति के लिये, सब के लिये आनन्द लिये खडा है।

स्वामी राम ने मानवीय इच्छाओ का दो रूपों में विभाजन किया है—पहली प्रकार की इच्छायें ईश्वरीय स्वभाव की होती है और दूसरे प्रकार की इच्छाओं में माया के स्वभाव की प्रबलता होती है। ईश्वरीय स्वभाव वाली इच्छाओं की पूर्ति शीघ्रातिशीघ्र होती है, क्योंकि उनमें सात्विकता की प्रधानता होती है।

माया के स्वभाव वाली इच्छाओं की पूर्ति में विलंब होता है, कारण यह कि उनमें तमोगुण और रजस् की प्रधानता और सत्वगुण की न्यूनता होती है। इसका विवेचन स्वामी राम इस प्रकार करते हैं—

"इच्छाओं की पूर्ति क्यों आवश्यक है? वेदान्त कहता है कि तुम्हारी असली प्रकृति, तुम्हारी असली आत्मा अजर अमर है। राम अविनाशी परमेश्वर है। अत तुम्हारी इच्छायें, तुम्हारा तन और मन सत्य के महासमुद्र में, नित्यता के महासागर में लहरो और तरगो जैसा होने के कारण, उसी तत्त्व के स्वभावानुकूल बन जाता है, जिससे वे बनते हैं। सत्य, नारायण, परमात्मा अथवा आत्मा दुनिया को अपनी श्वास के रूप में बनाता है। ससार मेरी साँस है। पलक मारते ही मैं सृष्टि की रचना करता हूँ। पलक मारते ही दुनिया की सृष्टि हो जाती है (मैं तुम्हारी आत्मा हूँ।) हमारी इच्छाओ में परमात्मा का और उसके साथ मैं कुछ अहकार का भाव मिला-जुला रहता है। इच्छाओ का वह पहलू जो आन्तरिक परमेश्वरत्व या अमरत्व पर निर्भर है इच्छाओ की पूर्ति के लिये प्रेरित करता है और इच्छाओं के वे अश, जो माया पर अवलम्बित है, उनकी पूर्ति में विलम्ब लगाते हैं। तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति में जो देर होती है, उसका कारण तुम्हारी इच्छाओ का माया-तत्त्व है और तुम्हारी इच्छाओ की पूर्ति की असदिग्धता, निश्चय का हेतु तुम्हारी इच्छाओ को आन्तरिक दैवी प्रकृति है। आप यहाँ पूछ सकते हैं कि हमारी इच्छायें दैवी अथवा ईश्वरीय किस प्रकार होती हैं? इच्छा—मात्र प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नही ह और प्रेम ईश्वर के सिवा और कुछ नही हैं। क्या प्रेम ईश्वर नही है? इच्छायें उसी प्रकार की होती हैं जैसी कि आकर्षण शक्ति। आकर्षण शक्ति क्या है? एक ओर पृथ्वी चन्द्रमा को आकर्षित कर रही है। दूसरी ओर सूय पृथ्वी को अपनी ओर खीच रहा है। सभी ग्रह एक दूसरे को अपनी ओर खीच रहे हैं। सावभौमिक प्रेम यही प्रीति अथवा साम्य का नियम है। इसलिये तुम्हारी इच्छाओ का ईश्वरीय स्वभाव उनको पूर्ति का आग्रह करता है। किन्तु जब तुम स्वार्थपूण, सकीर्ण अथवा व्यक्तिगत हो जाते हो, तब उनका स्वार्थीपन उन्हें माया के स्वभाव का बना देता है और इस कारण उनकी पूर्ति में देर लगती है।"

अन्त में स्वामी राम अपने स्वभावानुसार मनुष्य में ब्रह्म भावना को आरोपित कर उसके समस्त पाप-ताप, दु ख दैन्य, दीनता-कृपणता, जन्म-मरण, हर्ष विषाद, राग विराग समस्त द्वन्द्वो को समाप्त कर देते है। ब्रह्म अथवा आत्मा का साक्षात्कार हो जाने पर मनुष्य समस्त इच्छाओं का स्वामी हो जाता है। उसके अन्त करण के किसी भी अश में इच्छा का नामोनिशान तक नही रह जाता है। वह समस्त

जगत, समस्त ब्रह्माण्डा का अधीश्वर हो जाता है ? वह द्वन्द्वातीत, त्रिगुणातीत, मायापति, माया से रहित, निर्भय, निरंजन, निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता परमात्मा हो जाता है। अब वह समस्त इच्छाओं का स्वामी हो जाता है, तो वह कौन-सी इच्छा, किस प्रकार करे। वह सर्वाधार सर्वाधिष्ठान हो जाता है। जिस प्रकार अनन्त समुद्र में असंख्य तरंगें एक साथ उत्पन्न होती हैं, कुछ देर स्थित रहती है और फिर उसी में लीन हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञ पुरुष जगत् की समस्त इच्छाओं का अधिष्ठान हो जाता है, जगत् की सारी इच्छाएं उसके आनन्द सागर में उठती हैं, स्थित रहती हैं और फिर उसी में विलीन हो जाती हैं। स्वामी राम मनुष्य को उसकी अन्तरात्मा के सच्चे स्वरूप का बोध करा कराकर, उसे सर्वथा मुक्त बना देना चाहते हैं। उनका कथन है—

"एक बार अनुभव करो कि तुम स्वयं अपने भाग्यविधाता हो, फिर देखो तुम कितने सुखी हो जाते हो। जब तुम ॐ जपते हो और जब तुम यह भान करते हो कि अपने भाग्य के तुम आप ही स्वामी हो, तब रोने झींकने, दुखी होने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। तुमने अपनी अवस्था ऐसी बनायी है। अपनी 'प्रभुता' की उपलब्धि करो। अपने आप को परिस्थिति का गुलाम मत समझो। इस सत्य को पहचानो, इस सत्य का अनुभव करो कि तुम अपने भाग्य के आप विधाता हो। तुम चाहे जिस दशा में हो, वातावरण कुछ भी हो, देह चाहे कारागार में डाल दी जाय अथवा तेज धारा में बहा दी जाय या किसी के पैरों तले कुचली जाय, याद रखो—'मैं ईश्वर हूँ। वह सारी अवस्थाओं का स्वामी हूँ। मैं देह नहीं हूँ, मैं वह हूँ, भाग्य का विधाता।' तुम्हारे मित्र स्वयं तुम्हारे द्वारा प्रकट होते हैं। जिन्हें तुम मित्र कहते हो, उन्हें तुम्हारी इच्छा तुम्हारे निकट ले आती है। जिन्हें तुम शत्रु कहते हो, उन्हें भी तुम्हारी ही इच्छा तुम्हारे सामने खड़ा कर देती है। ऐ शत्रुओ, मैंने तुम्हारा निर्माण किया है, ऐ मित्रो, तुम भी मेरी ही कृति हो। इस सत्य की प्रत्यक्षानुभूति करो और इसे हृदयंगम करो और फिर देखो कि तुम कितने सुखी हो जाते हो।"

मृत्यु

मृत्यु की विभीषिका से प्रायः अधिकांश लोग आतंकित रहते हैं। इसके सम्बन्ध में विभिन्न लोगों की विभिन्न कल्पनायें हैं। पुण्यात्माओं अथवा शुद्धात्माओं की मृत्यु-सम्बन्धी कल्पना ऊँची और सुखद कल्पना है। उनकी कल्पना इस प्रकार की हुआ करती है कि इष्ट-देव के पार्षद उसकी आत्मा को लेने आते हैं और उसे बड़े आराम और आदर-सत्कार से ले जाकर, उसे इष्टदेव के लोक में पहुँचा

देते हैं। पापियों या दुरात्माओं की कल्पना एक अजीब प्रकार की होती है— 'यम के दूत अत्यन्त भयकर देश से आकर उसे अत्यन्त निर्दयतापूर्वक, अनेक प्रकार की ताडना और यत्रणा देते हुये ले जाते है और नाना प्रकार के नरकों में उसे उसके पापों का फल भोगने के लिये डाल देते है।' इस प्रकार कुछ अन्य लोगों की कल्पनायें इस प्रकार की है कि इस शरीर की प्राणशक्ति का समाप्त हो जाना ही मृत्यु है।

स्वामी राम ने मृत्यु सम्बन्धी प्रश्न का अत्यन्त मौलिक ढग से समाधान किया है। वे पूर्ण अद्वैतनिष्ठ वेदान्ती थे। अत उनके प्रत्येक प्रश्न के समाधान में वेदान्त की अपूर्व मस्ती और फक्कडपन विद्यमान है। किन्तु उन्होंने बातें इतनी सुन्दर ढग से निरूपित की हैं कि हमारी मृत्यु सम्बन्धी विभीषिका का त्रास, आतक समाप्त हो जाता है। उनके विचारों को मननपूर्वक अध्ययन करने से हमारे हृदय से मरण-सम्बन्धी भय सदैव के लिये दूर हो सकता है। स्वामी राम का अभ्यास और प्रत्यक्षानुभूति इस दृष्टि से अत्यन्त सक्रामक है। स्वामी के विचार हमें निरन्तर आत्मबल से आपूरित करते रहते हैं। उनके विचारों के अध्ययन मात्र से हम में अपार शक्ति, पौरुष, आशा और साहस का सचार होता है। मृत्यु के सम्बन्ध में स्वामी राम के क्रान्तिकारी विचार इस प्रकार हैं—

"वेदान्त के अनुसार मर जाने के बाद मनुष्य सदा मुर्दा ही नही बना रहता, यह आवश्यक नही है। मृत्यु के बाद जीवन है और जीवन के बाद मृत्यु। वास्तव में मृत्यु एक नाम मात्र है। मृत्यु का अर्थ है केवल रूपान्तरित हो जाना, इससे अधिक कुछ नही। उसे बडा सा 'हौवा' अथवा 'जूजू' मानना भयकर भूल है। उसमें भीषणता अथवा भयकरता कुछ भी नही है। वह तो दशा का एक परिवर्तन मात्र है।"

'इस ससार का जीवन एक दीर्घ, चिरकाल तक चलने वाली जाग्रत अवस्था है। जीवन के बाद यह नाम मात्र की मृत्यु वेदान्त के मत से उतनी ही लम्बी एव सुदीर्घ निद्रा है। वेदान्त के अनुसार मृत्यु एक सुदीर्घ निद्रा मात्र है। जिस तरह दिन के चौबीस घटों में लगभग तीन या चार घटे की निद्रा का उपभोग करने के बाद, तुम फिर जाग उठते हो, उसी तरह मृत्यु का विश्राम भोगने के बाद, तुम्हें फिर इस ससार में जन्म लेना पडता है, तुम फिर अवतीर्ण होते या जन्म ग्रहण करते हो। पुनर्जन्म या फिर देह धारण करना ठीक ऐसा ही है, जैसे झपकी लेने बाद हम फिर जाग उठते है।"

स्वामी राम के विचारानुसार मृत्यु के पश्चात् मनुष्य को तुरन्त जन्म नही

धारण करना पडता। उसे जीवन और मृत्यु की एक मध्यवर्ती स्थिति से भी गुजरना पडता है। उनका इस सम्बन्ध में इस प्रकार कथन ह—

"वेदान्त के अनुसार, मर जाने के पश्चात मनुष्य तुरन्त उसी क्षण पुनजन्म नही लेता। जब बीज पेड से गिरता है, तब उससे तुरन्त नया पेड नही उग आता। उसके उगने में कुछ देर लगती है। जब मनुष्य एक घर छोडता है तब वह तुरन्त दूसरे घर में प्रवेश नही करता, उसमें उसे कुछ समय लगता है। इसी तरह मरने के बाद मनुष्य तुरन्त दूसरी देह नही धारण करता। उसे एक मध्यवर्ती स्थिति से गुजरना पडता है, जिसे हम मृत्यु की दशा या दीर्घ निद्रा की दशा कहते है।"

स्वामी राम जीवन और मृत्यु की इस मध्यवर्ती स्थिति की तुलना निद्रा में देखे हुये स्वप्न से करते है। जिस प्रकार मनुष्य दिन में जो कार्य करता है, निद्रा के स्वप्न जगत में उन्ही कार्यों की पुनरावृत्ति करता है, उसी प्रकार इस मध्यवर्ती स्थिति में मनुष्य अपने जीवन में किये गये शुभ अथवा अशुभ कार्यों के अनुसार स्वप्नलोक में अपने पुण्यो अथवा पापो की पुनरावृत्ति देखता है। स्वामी राम कहते है—

"मृत्यु और अगले जन्म के बीच का काल, दीर्घ निद्रा का समय किस प्रकार व्यतीत होगा? वेदान्त कहता है—'वह तुम्हारे स्वर्गों और नरकों में बीतेगा। ये बैकुण्ठ, ये स्वर्ग और नरक क्या ह? ये मृत्यु और भविष्यकालीन जन्म के बीच में पडने वाले स्वप्नलोक है।"

स्वामी राम का दृढ विचार है कि मनुष्य अपने दृढ विश्वासो और भावो के अनुसार इस मध्यवर्ती स्थिति में स्वर्ग या नरक का भोग निश्चित रूप से करेगा यह ध्रुव सिद्धान्त है, अटल नियम है, इसका कोई उल्लघन नही कर सकता—

"वेदान्त कहता ह कि प्रकृति में ऐसा कोई नियम और शक्ति नहीं है, जो उसे उस प्रकार का बैकुण्ठ का उपभोग करने से रोक सके, जिसका स्वप्न वह अपने जीवन-पर्यन्त देखता रहा है। अवश्य उसको वैसा ही स्वर्ग देखने को मिलेगा। अपने धर्माचार्य के कथनानुसार वह अपने को वैसे ही स्वर्ग में अवश्य पावेगा। अन्यथा नही हो सकता।"

स्वामी राम का कथन है कि प्रत्येक धर्मानुयायी अपने धर्म, विश्वास और क्रिया के अनुसार उन स्वर्गों अथवा नरकों का अवश्य उपभोग करेगा, जिसमें उसकी धारणा दृढ रूप से आबद्ध है। हालाकि, ये सब कल्पना मात्र ह। वेदान्त के अनुसार मनुष्य अपनी ही कल्पनाओं की सृष्टि करता है और वह उसी में रमता, खपता है। उनका कथन है—

"यही बात सब धर्मों के संबंध में है। यदि आप अपने धर्म सिद्धान्तों एवं लक्ष्य के प्रति सच्चे हैं, तो मृत्यु के बाद आपको इसी प्रकार के स्वर्ग की प्राप्ति होगी, जिसकी आप आशा करते हैं। वास्तव में मृत्यु के बाद स्वर्ग और नरक आप पर ही निर्भर है। मृत्यु के अनन्तर आप ही स्वर्ग अथवा नरक का निर्माण करते हैं। वास्तव में स्वर्ग अथवा नरक आपके स्वप्न मात्र हैं जो उस समय आपको सत्य जान पड़ते हैं, इससे अधिक उनका कुछ मूल्य नहीं। आप यह तो मानते ही हैं कि स्वप्न देखते समय स्वप्न के दृश्य हमें सत्य प्रतीत होते हैं। अतएव मृत्यु के बाद ये नरक और स्वर्ग भी आपको सच्चे प्रतीत होंगे। किन्तु वास्तव में यथार्थत स्वप्नों से अधिक ये कुछ भी नहीं हैं।"

"वेदान्त कहता है कि मरण-पश्चात आप अपने को स्वप्नवत स्वर्ग में अनन्त काल से पायेंगे, स्वप्नदर्शी अधिष्ठान दृष्टिबिन्दु से आप अपने को स्वर्ग या नरक में अनन्त काल से रहते पायेंगे, किन्तु जाग्रत अवस्था के अधिष्ठान के दृष्टि बिन्दु से नहीं।"

स्वामी राम आत्मज्ञ, तत्त्वज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ अथवा मुक्त पुरुष का आवागमन नहीं मानते। उनकी दृष्टि में मुक्त पुरुष जीवन, मरण, मध्यवर्ती स्थिति, जाग्रति, स्वप्न, सुषुप्ति सबका द्रष्टा, साक्षी हो जाता है। उसके जन्म मरण—आवागमन का चक्र सदैव के लिये समाप्त हो जाता है—

"अच्छा उन लोगों का क्या होता है कि जो मुक्त पुरुष अथवा मुक्तात्मा कहलाते हैं? उनका आवागमन होता है, या नहीं? वेदान्त कहता है कि मृत्यु के बाद प्रत्येक व्यक्ति को स्वर्ग और नरक के पड़ावों में होकर नहीं गुजरना पड़ता है। और न मृत्यु के बाद सबका पुनर्जन्म ही होता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये यह आवश्यक नहीं होता। जिन्हें मुक्त आत्मा कहा जाता है, वे हैं कौन? वे स्वतंत्र हैं। नरकों और स्वर्गों में कैद नहीं होते हैं। स्वर्ग या नरक सभी उनमें हैं। सारे लोक उनमें हैं।"

स्वप्न के दृष्टान्त से स्वामी राम इसे और भी स्पष्ट करते हैं। स्वप्न में द्रष्टा और दृश्य दो होते हैं। 'मैं' पन का अभिमान करने वाला द्रष्टा है और 'मैं' के अतिरिक्त नदियाँ, पहाड़, जंगल, पशु-पक्षी, जो इतर वस्तुयें हैं वह दृश्य है। इस प्रकार मनुष्य स्वप्न जगत् में दृश्य और द्रष्टा दोनों स्वयं है। ठीक यही दशा जाग्रत अवस्था की भी होती है। जाग्रत अवस्था स्वप्नवत् है। वह एक ठोस और घनीकृत स्वप्न है—

"वेदान्त कहता है कि तुम्हारी इस सुदृढ़ प्रतीत होने वाली दुनिया में द्रष्टा और दृश्य पदार्थ तुम्हारी सच्ची आत्मा की सृष्टि है। इससे अधिक कुछ नहीं।

वह तुम्हारी सच्ची आत्मा ही है, जो एक ओर नगर, कसबे, नदियाँ तथा पहाड़ बन जाती है और दूसरी ओर इस दुनिया में एक भूला-भटका, निराश्रय बटोही। जाग्रत अवस्था में भी जो दृश्य पदार्थ के रूप में प्रकट होता है, जो वही दृश्य पदार्थ है और वही द्रष्टा है।"

स्वामी राम इस विवेचन के अनन्तर मृत्यु के संबंध में अपनी धारणा इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं "द्रष्टा भाव का दब-सा जाना मृत्यु है।"

जो व्यक्ति द्रष्टा और दृश्य को पृथक-पृथक् देखता है, वह बराबर आवागमन के चक्कर में पड़ता रहेगा। मृत्यु उसे निरन्तर अपना ग्रास बनाती रहेगी। स्वामी राम कहते हैं—

"इस प्रकार जन्म और मृत्यु का यह सिलसिला तब तक जारी रहता है, जब तक द्रष्टा और दृश्य दोनों एक साथ ही न दब जायें। लुप्त न हो जायें। जब तक दुनिया आपको अपने से भिन्न मालूम पड़ती है, तब तक आप इस संसार में कैदी हैं। आप सदा आवागमन—जन्म और मृत्यु के चक्र में बँधे रहेंगे। तुम्हारे इर्द-गिर्द यह पहिया सदैव विद्यमान रहेगा और वह तुम्हें कुचलता ही रहेगा। तुम्हें कभी ऊपर और कभी नीचे ले जायेगा। तुम्हें कभी विश्राम या शान्ति न मिल सकेगी।"

ठीक इन्हीं भावों के समान कठोपनिषद् में भी यही बात मिलती है—

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।

मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥

—कठोपनिषद्, अध्याय २, वल्ली १, मन्त्र १०

अर्थात, "जो सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वरूप, सबका कारण परब्रह्म—परमात्मा—अन्तरात्मा इस पृथ्वीलोक में है, वही वहाँ परलोक में अर्थात् देव-गन्धर्वादि विभिन्न अनन्त लोकों में भी है, तथा जो परब्रह्म वहाँ है, वही यहाँ भी है। एक ही ब्रह्म अथवा अन्तरात्मा अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। जो उसको विविध नामों और रूपों में प्रकाशित होते हुये देख कर उसमें मोहवश 'नानात्व' की कल्पना करता है, उसे बार-बार मृत्यु के अधीन होना पड़ता है। उसके जन्म-मरण का चक्कर निरन्तर रहता है।"

अन्त में स्वामी राम जन्म मृत्यु—आवागमन रूपी महान् रोग की रामबाण-औषधि ब्रह्म का अहर्निश चिन्तन बताते हैं। उनकी घोषणा है कि आत्मस्वरूप के सतत चिन्तन से ब्रह्माकार वृत्ति अखण्ड तैल धारावत् हो जाती है। इस वृत्ति से जन्म-मरण का चक्र सदैव के लिये समाप्त हो जाता है और मनुष्य सांसारिक वृत्तियों से उठ कर ब्रह्मरूप हो जाता है—

"ससार मेरा शरीर है, सम्पूर्ण विश्व मेरा शरीर है, जो ऐसा अनुभव करता है, वह आवागमन के बन्धन से मुक्त है। वह कहा जा सकता है, कहा से आ सकता है ? कोई ऐसा स्थान नही, जा उससे परिपूर्ण न हो, वह तो अनन्त है। वह जायेगा कहाँ ? आयेगा कहा से ? सारा विश्व-ब्रह्माण्ड उसी में है। वह प्रभुओ का प्रभु है। आवागमन के बन्धन से सर्वथा मुक्त।'

"वेदान्त का कथन है—'अविद्या के इस कुत्ते से अपना पिण्ड छुडाओ, अपने को सर्वशक्तिमान् परमेश्वर बनाओ अपने को ब्रह्म बनाओ, ब्रह्मरूप से अनुभव करो और तुम एकदम मुक्त हो।'"

पाप और उनके निदान

ससार के प्रत्येक धर्म ने बुराइयो और पापो की समस्या पर विचार किया है। प्रत्येक धर्म ने अपने अपने ढग से इन समस्याओ से निवृत्ति पाने की चेष्टा की है। पापो एव बुराइयो का अपने अपने स्थान पर महत्त्व है। ससार में यदि पाप और बुराइयाँ न हो, तो पुण्य और अच्छाइयो का महत्त्व किस प्रकार स्थापित किया जा सके ? यदि स्वार्थी और इन्द्रिय-लोलुप न हो, तो त्यागी और इन्द्रिय-सयमी का महत्त्व ही क्या रहेगा ?

स्वामी राम ने पापो का मूल कारण अविद्या को माना है। उनकी दृष्टि में—

"इन सब पापो का मूल अविद्या है, जिसके कारण आप वास्तविक आत्मा को स्थूल शरीर तथा चित्त के साथ एक कर देते हैं।" स्वामी राम तो वास्तविक आत्मा का स्वरूप निष्पाप, निष्कलक, शुद्ध और पवित्र मानते हैं। परिच्छिन्न आत्मा ही में पाप की क्रियायें देखने को आती हैं। स्वामी जी ने इन पापो और उनके निदानों का समाधान अपनी चिरपरिचित वेदान्तिक शैली में बडी ही मौलिकता से किया है। उनके विचारानुसार परिच्छिन्न—अविद्याग्रस्त आत्मा अपना अनन्त विस्तार देखना चाहती है, किन्तु उस विस्तार के लिये वह जिन उपायो का अवलम्ब लेती है, वे गलत है, भ्रामक है। इन्ही गलत उपायों को उन्होने 'पाप' की सज्ञा दी है। उन्होने उनके निदानों को उन्ही के मध्य ढूढने की चेष्टा की है। यदि एक बार अन्त करण से उन पापों की मूल प्रवृत्ति एव उनके स्वरूप को मनुष्य समझ लें, तो उन्ही के बीच उनके शमन की अचूक विधि भी उसे सहज ही प्राप्त हो जायेगी। इस प्रकार पापों एव उनके निदानो के सम्बन्ध में स्वामी राम का सर्वथा मौलिक दृष्टिकोण है। उन्होंने कतिपय पापा एव उनके निदानो की इस प्रकार मीमासा की है—

१ खुशामद—इसे घोर पाप तो नही समझा जाता, परन्तु है यह सार्वभौमिक।

यह क्या बात है कि तुच्छ से तुच्छ कीडे से लेकर ईश्वर तक को खुशामद पसन्द है? क्या बात है कि प्रत्येक प्राणी खुशामद का गुलाम है? वह स्तुति, लल्लो चप्पो और 'हाँ जी, हाँ जी' चाहता है। प्रत्येक चाहता है कि वह बहुत कुछ समझ जाये, आखिर ऐसा क्यो?

कुत्ते भी जब तुम उन्हें पुचकारते और थपथपाते हो, तो बहुत प्रसन्न होते है। उन्हें भी खुशामद पसन्द है। घोडों को चाटुकारिता प्रिय है। घोडे का मालिक आकर जब उसे प्यार से पुचकारता तथा थपथपाता है, तो वह अपने कान खडे करके उत्साह से भर उठता है।

भारत के कुछ राजा शिकार में कुत्तो के स्थानों पर चीतों से काम लेते हैं। शिकार को तीन ही छलागा में पकडना चीते का स्वभाव है। यदि उसने अपना शिकार (तीन छलागो में) पकड लिया, तो बहुत अच्छा, नही तो चीता हताश होकर बैठ जाता है। ऐसे अवसरों पर राजा महाराजा आकर चीते को थपथपाते और पुचकारते है और तब फिर उसमें शक्ति भर जाती है। हम देखते है कि चीतो को भी खुशामद प्रिय है। ऐसे आदमी को लीजिये, जो किसी काम का नही, अर्थात व्यथ ह। उसके पास जाइये और उसकी हा में हाँ मिलाकर उसका दिल बढाइये, उसकी खुशामद कीजिये। ओ ! उसका चेहरा प्रसन्नता से चमचमा उठता है। आपको, तुरन्त ही उसके गालो पर लालिमा दिखायी देगी।

जिस देश में लोग देवताओ की पूजा करते है, वहा हम देखते है कि वे (देवगण) भी चाटुकारिता से प्रसन्न होते है। और तो और कुछ एकेश्वरवादियों की प्रार्थनाओ का भी क्या अर्थ है? उनकी स्तुतियाँ एव उनके आवाहन मत्र क्या है? उनकी परीक्षा कीजिये। नि स्वाथ भाव से तथा पक्षपात-बुद्धि को त्याग कर उनकी परीक्षा कीजिये और आपको ज्ञात होगा कि खुशामद के अतिरिक्त वे कुछ नही है। अत, क्या बात है कि चाटुकारिता सावभौमिक है? प्रत्येक प्राणी खुशामद को पसन्द करता है। परन्तु साथ ही एक भी मनुष्य उस तरह की खुशामद का पात्र नही होता, जो उसे खुश करती है। एक भी मनुष्य उन अनावश्यक प्रशसाओं के योग्य नही है, जो उसके प्रशसक उसकी किया करते हैं। वेदान्त यह कहकर उसकी व्याख्या करता है कि प्रत्येक व्यक्ति में, अर्थात प्रत्येक मनुष्य में वास्तविक स्वरूप अर्थात सत्य आत्मा है, जो वस्तुत श्रेष्ठों में सवश्रेष्ठ और उच्चों में सर्वोच्च है। सचमुच तुम में कोई ऐसी वस्तु है, जो सबसे उच्च है और जो अपने अस्तित्व का बोध कराती है। खुशामदी व्यक्ति जब हमारी

प्रशंसा और स्तुतियाँ करने लगता है, तब हम फूल उठते हैं और गदगद हो जाते हैं। क्या ? इसका कारण यह नहीं है कि ये कथन सच्चे हैं। परन्तु वेदान्त का कथन है कि इनके वास्तविक कारण हमारी सच्ची अन्तरात्मा में है। सभी घटनाओं की पीछे कोई वस्तु, कोई प्रबल शक्ति अथवा कोई ऐसी ठोस वस्तु, अक्षय, सवश्रेष्ठ और सर्वोच्च है, जैसी आपकी वास्तविक अन्तरात्मा है और वह सब तरह की खुशामद एवं प्रशंसाओं के योग्य है। और कोई खुशामद, कोई भी स्तुति अथवा कोई भी उत्कर्ष ऐसा नहीं है, जो वास्तविक आत्मा के अनुरूप न हो सके। किन्तु इससे कोई यह परिणाम न निकाले कि राम खुशामद को नीति-संगत बतला रहा है। नहीं, वास्तविक आत्मा की खुशामद, प्रशंसा और गौरव-गान होना ही चाहिये, न कि शरीर का। परिच्छिन्न आत्मा को इसका अधिकारी न समझना चाहिये।

"जो पदार्थ सीजर (राजा) के है, वे सीजर को दे दो और जो ईश्वर की वस्तुयें है, उन्हें ईश्वर को दो।"

—बाइबिल

खुशामद में पाप इसलिए है कि सीजर की चीजें ईश्वर को और ईश्वर के पदार्थ सीजर को देने की भूल की जाती है। हमारी खुशामद के दास होने की पापात्मकता इसी उलट-पुलट दशा के कारण है। इसी में पापीपना है। नहीं, गाड़ी घोड़े के आगे रखी जाती है। यदि आप अपने स्वरूप का अनुभव कर सर्व-श्रेष्ठता और सर्वोच्चता से अपनी एकता का बोध करें और उसे अपनी आत्मा समझें शरीर से एवं चित्त से ऊपर उठे, तो वास्तव में आप श्रेष्ठों में सवश्रेष्ठ है, उच्चो में सर्वोच्च है, आप ही अपने आदर्श हैं। नहीं, नहीं, अपने ईश्वर आप ही हैं। इसका अनुभव कीजिये और आप स्वतंत्र हैं। किन्तु आत्मा, अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप का गौरव शरीर को देने में और शरीर के लिये उत्कर्ष तथा खुशामद चाहने में भूल की जाती है। यह क्या बात है कि इस संसार में प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक पशु भी दर्प एवं खुशामद से दूषित है ? बात यह है कि अहंकार और अभिमान सर्वव्यापी है।

एक सज्जन ने आकर राम से कहा, 'देखिये, देखिये हमारा धर्म सवश्रेष्ठ है, क्योंकि उसके उपासकों की, उसे मानने वाले लोगों की संख्या सबसे बड़ी है। मानव-जाति का अधिकांश भाग हमारे धर्म का है, इसलिये अवश्य ही यह सब धर्मों से अच्छा है।' राम ने कहा, 'भइया, समझ-बूझ कर बात कहो। तुम शैतान में विश्वास करते हो।' उसने पूछा, 'क्यों ?' राम ने उत्तर दिया, 'तो कृपया बतलाइये शैतान के धर्म के अनुयायी अधिक है या आपके धर्म

के ? *यदि बहु-संख्या पर ही सत्य का निर्णय होना है, तो शैतान को सब पर* श्रेष्ठता प्राप्त है।'

२ अहंकार—हम कहते हैं कि अभिमान या अहंकार ने—आप इसे शैतान का एक पहलू कह सकते हैं—इस संसार के प्रत्येक प्राणी पर दृढ़ अधिकार जमा लिया है। यह बात क्या है? साथ ही हम यह भी जानते हैं कि शरीर किसी प्रकार के गर्व के योग्य नहीं है। शरीर को अभिमान करने का अथवा श्रेष्ठता का भाव दिखाने का कोई अधिकार नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि शरीर किसी के अहंकार या अभिमान की पात्रता या योग्यता, नहीं रखता परन्तु प्रत्येक में यह विद्यमान है। ऐसा क्यों? यह सार्वभौमिक तथ्य कहाँ से *आया ? यह सार्वभौम विरोधाभास अर्थात सार्वभौम विरोध कहाँ से प्रकट हुआ ?* यह अवश्य तुम्हारे भीतर से आया होगा। कारण ढूढने दूर नहीं जाना है। तुम्हारे भीतर श्रेष्ठों में जो श्रेष्ठ है, वह आपकी सच्ची अन्तरात्मा—वास्तविक आत्मा है। तुम्हें उसे जानना और अनुभव करना पड़ेगा। और जब तुम अपने सच्चे स्वरूप अर्थात वास्तविक आत्मा को जान लोगे और अनुभव कर लोगे, तब इस तुच्छ शरीर के लिये प्रशंसा पाने को तुम कभी न झुकोगे। तब फिर इस क्षुद्र शरीर के लिये अहंकार या गर्व प्राप्त करने को तुम कभी न झुकोगे। यदि तुम अपनी सच्ची आत्मा का अनुभव कर लो, यदि तुम स्वयं अपने हृदय का उद्धार कर लो, तो तुम्हीं अपने उद्धारक हो जाते हो। यदि तुम अपने अन्तर्गत ईश्वर का अनुभव कर लो, तो इस तुच्छ शरीर के लिये प्रशंसायें सुनना, अपने शरीर की स्तुतियां सुनना तुम्हें अपने आपको तुच्छ और नीचे गिराने वाला कार्य प्रतीत होगा। तब तुम शारीरिक अभिमान अथवा स्वार्थमूलक अहंकार से ऊपर उठ जाओगे। शारीरिक अभिमान या स्वार्थमूलक अहंकार से ऊपर उठने का यही उपाय है।

भीतर की सच्ची आत्मा, सच्चा स्वरूप, श्रेष्ठों में श्रेष्ठ, उच्चों में उच्च, देवों में परम देवता होता हुआ अपने स्वभाव को कैसे त्याग सकता है? यह आत्मा अपने को पतित कैसे बना सकती है? अपने को दीन, *भाग्यहीन, कीडा मकोडा,* तुच्छ कैसे मान सकती है? इतनी गहरी अज्ञानता में वह अपने को कैसे गिरा सकती है? आत्मा अपनी सहज प्रकृति नहीं त्याग सकती। अहंकार या अभिमान के सार्वभौमिक होने का यही कारण है। किन्तु इस व्याख्या से अहंकार या अभिमान नीति संगत नहीं सिद्ध होता। शरीर के निमित्त अभिमान अथवा अहंकार करना अशोभनीय है।

हम जानते हैं कि पृथ्वी चलती है और पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य स्थिर है। तब

जानते है कि सूर्य नही चलता और पृथ्वी चक्कर लगाती है। किन्तु हम एक भूल करते हं अर्थात भ्रम में पड जाते हैं। पृथ्वी की गति हम सूय को प्रदान करते है और सूय की स्थिरता और अचलता पृथ्वी को। इसी तरह की भूल वे लोग करते हैं, जो अभिमान के भूखे है, जो अहकार के अधीन हैं। यहाँ भी उसी तरह की भूल होती है। यहाँ आत्मा अर्थात वास्तविक सूय प्रकाशो का प्रकाश है, जो अचल है, जो वास्तव में सम्पूण गौरव का मूल है, और वहाँ शरीर पृथ्वी के समान है, जो प्रत्येक क्षण परिवत्तनशील है। शरीर किसी तरह की प्रशसा का पात्र नही है, न ही वह किसी प्रकार के गौरव के योग्य है। किन्तु आत्मा का गौरव शरीर को प्रदान करने में और शरीर को निरथकता और निस्सारता आत्मा को अर्थात वास्तविक स्वरूप को प्रदान करने में हम भूल करते है। यह भूल अर्थात अविद्या का यह रूप इस शरीर के लिये उत्कप चाहने का कारण है। अच्छा, यदि यह अज्ञान शैतान कहा जा सके, यदि शैतान का अनुवाद अज्ञान किया जा सके, तो हम कह सकते है कि इस रीति से शैतान आकर चीजो को अस्त-व्यस्त कर देता है, आत्मा का गौरव शरीर को और शरीर की असारता आत्मा को प्रदान कर देता है। इस अविद्या को दूर करा और तुम अभिमान अथवा अहकार को नष्ट कर दोगे।

३ लोभ—यह क्या बात है कि लोभ, उत्कप या लालच सावभौम है? पशुओ में लोलुपता है, मनुष्या में है, नारियो में है और प्रत्येक में है। यह क्या बात है कि लोलुपता, लालच अथवा उत्कष सार्वभौम है? प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसे सभी भाँति की वस्तुयें प्राप्त हो जायें। प्रत्येक व्यक्ति अपने शरीर के इद-गिद पदार्थों का सग्रह करना चाहता हैं, पर लोलुपता की तृप्ति कभी नही होती। जितना ही अधिक तुम प्राप्त करते हो, उतनी अधिक लोभ की लौ भडकती है, उतनी ही अधिक वह लौ पुष्टि पाती हैं। तुम सम्राट बन जाते हो, फिर भी लोभ विद्यमान रहता है, वह सम्राट् तुल्य महान् है। तुम गरीब आदमी हो और तुम्हारा लोभ भी गरीब है। यह सार्वभौमिक क्यों है? गिरजो में, देवालया में और मस्जिदो में सवत्र उपदेशक बडे-बडे उपदेश देते हैं और कहते है, 'भाइयो लोभ छोडो, लोभ छोडो, लोभ छोडो।' लोभ का गला घोटने में वे अपनी पूरी शक्ति लगा देते है, वे उसे हटाना और निर्मूल कर देना चाहते हैं। परन्तु उनके सम्पूण निवारण-मूलक उपदेश व्यर्थ जाते हैं और वह बना ही रहता है। यह क्यों? वह रोका नही जा सकता, उसका गला नही घोटा जा सकता, वह मौजूद रहता है। इस समस्या को सुलझाओ। लोभ के रोग को विनष्ट करने की इच्छा के पूव, हमें उसका कारण जान लेना चाहिये। 'शैतान तुम्हारे हृदय में लोभ को

रखता है'—यह कथन अवैज्ञानिक एव अतात्त्विक है। यह कथन तर्कशास्त्र के सब नियमो के विरुद्ध है। इससे काम नही चलेगा। यदि तुम तथ्य की कोई वैज्ञानिक व्याख्या नही कर सकते, तो यह पौराणिक व्याख्या क्यों? यह सार्वभौम क्यो है? वेदान्त यह कहकर समझाता है कि मनुष्य में सत्यता, अर्थात सत्य स्वरूप आत्मा है, जो अपने आप का स्वयं प्रतिपादन करता है। वह कुचला नही जा सकता। कहा जाता है कि कोई भी शक्ति नष्ट नही की जा सकती, कोई भी बल नष्ट-भ्रष्ट नही किया जा सकता। शक्ति के उत्कर्ष, पदार्थ की अनश्वरता और शक्ति के दृढ आग्रह के नियम को हम सुनते है। ये सब बातें हमें सुनने को मिलती है और यहाँ वेदान्त कहता है—'ऐ उपदेशको, ऐ पुजारियो, ऐ ईसाइयो, हिन्दुओ और मुसलमानो। तुम इस शक्ति को, इस बल को, जो लोभ के रूप में प्रकट होता है, कुचल नही सकते।' तुम इसका दमन नही कर सकते। अनादि काल से सब प्रकार के धर्म, लोभ कृपणता और लालच के विरुद्ध उपदेश देते चले आ रहे हैं, किन्तु तुम्हारे वेद, बाइबिल और कुरान ससार को कुछ भी नही सुधार सके। लोभ विद्यमान रहता है। शक्ति नष्ट नही की जा सकती। परन्तु तुम उसका सदुपयोग कर सकते हो। यद्यपि वास्तव में तुम विशुद्धो में विशुद्ध अर्थात विशुद्ध परमात्मा हो, तथापि भूल से आत्मा का गौरव शरीर पर और शरीर की तुच्छता आत्मा पर आरोपित करने के अज्ञान के कारण अर्थात इस भूल के कारण तुम लोभ के शिकार बन जाते हो। इस भूल को निर्मूल कर दो और बस तुम अमर परमात्मा हो। अपने में निहित सच्चे स्वरूप का उद्धार करो, सच्चे स्वरूप में दृढता से जमो और अपने को देवो का परम देव, अखिल विश्व का स्वामी तथा प्रभुओ का प्रभु अनुभव करो। फिर इन बाहरी वस्तुओ का ढूँढ कर इस शरीर के इर्द गिर्द जमा करना तुम्हारे लिये असम्भव हो जायेगा।

४ मोह—अब हम मोह या शोक के विषय पर आते हैं। मोह का कारण क्या है? इसका अर्थ यह है कि इससे ग्रसित मनुष्य अपने आसपास की वस्तुओं में परिवर्त्तन नही चाहता। किसी अपने प्रिय की मृत्यु से मनुष्य चिन्ता और शोक से परिपूर्ण हो जाता है। उसके शोक और चिन्ता से क्या लक्षित होता है? उससे क्या सिद्ध होता है? जब हम बुद्धि से जानते हैं कि इस ससार में प्रत्येक वस्तु परिवर्त्तनशील है, बहाव की दशा में है, तो क्यों हम ज्यों की त्यों दशा बनी रहने की आशा कर सकते हैं? और फिर भी हम इच्छा यही करते हैं कि कोई परिवर्त्तन न हो। यह क्यों? वेदान्त कहता है—'ऐ मनुष्य, तुममें कोई ऐसी वस्तु है, जो वास्तव में निर्विकार है, जो कल और आज सदा एक सी है। परन्तु भूल (अज्ञान) से सच्चे स्वरूप अथवा आत्मा की नित्यता शरीर की अवस्थाओं को

प्रदान की जाती है।' यही इसका कारण है। अज्ञान को दूर करो और सासारिक अनुरागो से तुम ऊपर उठ जाओगे।

५ आलस्य—आलस्य या प्रमाद का कारण क्या है ? वेदान्त के अनुसार प्रमाद या आलस्य की सर्वव्यापकता या सार्वभौमिकता का कारण यह है कि प्रत्येक और समस्त प्राणियो के अन्तगत सच्ची आत्मा पूर्ण विश्रब्ध तथा शान्त है। अनन्त होने के कारण सच्ची आत्मा चल नही सकती, क्योंकि अनन्त चलायमान नही होता। केवल परिच्छिन्न अथवा सान्त में ही गति हो सकती है। यहा एक वृत्त है और वहा दूसरा वृत्त है। जहा यह है, वहा वह नही है और जहा वह है, वहा यह नहीं है। यदि ये एक दूसरे के अस्तित्व को सीमाबद्ध करते है, तो दोना सान्त अथवा परिच्छिन्न है। यदि हम एक वृत्त को अनन्त बनाना चाहते हैं, तो वह समग्र स्थान को घेर लेगा। छोटे वत्त के लिय स्थान न रह जायेगा। जब तक वह छोटा वृत्त उस बडे वृत्त को परिमित किये हुये था, तब तक आप उसे अनन्त नही कह सकते थे। पहले को असीम बनाने के लिये एक अकेला होना पडेगा, उसमे बाहर कुछ न होना चाहिये। और जब उसस बाहर कोई भी दूसरी वस्तु नही है, तो फिर ऐसी कोई वस्तु नही रह गयी, जो अनन्तता से परिपूर्ण नही है। इस तरह स्थान के अभाव के कारण अनतता चल नही सकती। अनन्त में कोई परिवतन नही हो सकता। अन्तरात्मा अर्थात् सच्चा स्वरूप अनन्त है। वह सम्पूणत शान्त या सम्पूण विश्रब्ध है। उसम कोई गति नही है। ऐसी स्थिति में होते हुये अनन्त स्वरूप अर्थात् अनन्त स्वरूप आत्मा की शान्ति शरीर पर आरोपित की जाती है, जिससे उसमें आलस्य और प्रमाद पाया जाता है। आलस्य और प्रमाद के विश्वव्यापी होने का यही कारण है।

६ प्रतिद्वन्द्विता—यह क्या बात है कि इस ससार में कोई भी अपना रकीब (प्रतियोगी अथवा प्रतिद्वन्द्वी) नही चाहता ? प्रत्येक सवश्रेष्ठ शासक बनना चाहता है। हर एक मनुष्य यही भान करना चाहता है कि उसके समान विश्व में कोई अन्य व्यक्ति नही है। इसकी विश्वव्यापकता का कारण क्या है ? इस तथ्य अर्थात् इस कठिन एव उग्र सच्चाई को समझाइये, इसे अवश्य समझाइये। वेदान्त कहता है कि इसका मूल कारण यह है कि मनुष्य में सत्य आत्मा है, जो 'एकमेवाद्वितीयम्' है, जो प्रतियोगी अथवा प्रतिद्वन्द्वी रहित है, बेजोड है। मूल अथवा अज्ञानवश आत्मा का गौरव और एकत्व शरीर पर आरोपित किया जाता है।

७ कामुकता—कामुकता इसके अतिरिक्त और कुछ नही है कि इन्द्रिया के द्वारा सुन्दरता का उपभोग किया जाय। यह भी सावभौम है और इसे भी दूसरे

ही पापो के समान समझना चाहिये। हम पूर्ण सौन्दर्य हैं। आज भी हमारी अपरिवर्तनीय आत्मा पूर्ण सुन्दर है और वह सदैव वैसी ही रहेगी। और तब हमें इसका निश्चित ज्ञान हो जायेगा कि जो वस्तु हम अपने शरीर के लिये प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे है, वह या तो परमात्मा से सबधित है या वह स्वय परमात्मा है।

८ क्रोध—क्या कारण है कि क्रोध या विद्रोह सार्वभौम है? हम किसी प्रकार सीमित होने पर इसलिए सतोष नही करते कि हमारे अन्तर्गत परमात्मा का ज्ञान उपस्थित है, जो आज भी स्वतन्त्र है और सदैव स्वतन्त्र रहेगा। हम छोटे बच्चो में विद्रोह की भावना देखते हैं और उसे छूट मिलनी ही चाहिये। हम यही विद्रोह प्राणियो में पाते है और उसे होना भी चाहिये। यही कारण है कि स्वतन्त्रता के लिये राष्ट्रो और देशों में रक्तपात होता है। इसका कारण यही है कि आत्मा का ज्ञान नही होता है। परमात्मा स्वतन्त्र है, इसके अतिरिक्त वह हो ही क्या सकता है? उसका कभी न जन्म होता है, न मरण। सदैव ज्यो का त्यो—एकरस—बना रहता है। इसे अवश्य स्वतन्त्र होना चाहिये। यदि इसमें सत्य होता कि तुम सीमित हो, तो फिर तुम कभी स्वतन्त्र न होते। क्योकि जितना ही इस सत्य का ज्ञान बढता है तुम और सीमित होते जाते हो। परन्तु सत्य यह है कि हम आन्तरिक स्वतन्त्रता रखते हैं और इसी सत्य का अनुभव हमारे सामने इस स्वतन्त्रता का चित्र वास्तविक रूप में प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार स्वामी राम ने प्रत्येक पाप के मूल कारण और उनके निदान की वहाँ तक व्याख्या की है। उन्होने अपनी मीमासा में यह भली भाँति सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के प्रत्येक पाप में उसका ईश्वरत्व विद्यमान रहता है। उसकी अनुभूति से समस्त ससार स्वर्ग रूप में परिवर्तित हो जाता है। ससार की प्रत्येक वस्तु ब्रह्ममय प्रतीत होने लगती है। ऐसी स्थिति में दृष्टि और सृष्टि दोनो ब्रह्ममयी हो जाती है।

वे आत्मानुभूति को ही समस्त दुखो, पापा-तापो का अचूक निदान मानते है। उनका कथन है—

"अपने अन्तर्गत सच्ची आत्मा की अनुभूति करो। ईसामसीह की भाँति अनुभव करो कि 'पिता और पुत्र एक है।' 'प्रारम्भ में शब्द था, शब्द ईश्वर के साथ था।'—इसे अनुभव करो, ठीक ठीक अनुभव करो। 'स्वर्गों का स्वर्ग तुम्हारे भीतर है'—यह अनुभूति प्राप्त करो। फिर जहाँ कही तुम जाओगे, गँदले से गँदला जल तुम्हारे लिये चमचमाते मद्य में खिल उठेगा। प्रत्येक कारागार

तुम्हारे लिये स्वर्गों के स्वर्ग में बदल जायेगा। तुम्हारे लिये कोई भी कष्ट या कठिनाई न होगी, तुम सब के स्वामी हो जाओगे।"

स्वामी राम ने धम और दशन की प्रत्येक वस्तु का आत्म दष्टि से ही मूल्याङ्कन किया है। उनकी दृष्टि में मनुष्य, सृष्टिक्रम, माया, पाप-ताप सब कुछ आत्ममय हैं। आत्मा ही अनेक नामो, रूपों, वर्णों में विकसित हो रही है। उसकी प्रत्यक्षानुभूति परम मुक्ति, आत्मतृप्ति का कारण है। 'आत्मानुभूति' मनुष्य मात्र का जन्म-सिद्ध अधिकार है।

—०—

पचदश अध्याय

स्वामी राम की आध्यात्मिक साधना-प्रणाली

इस पुस्तक के प्राय सभी अध्याया में स्वामी राम की आध्यात्मिक साधना-प्रणाली से सम्बन्धित अनेक बातें मिलेंगी। इस अध्याय में प्रयास यह होगा कि उनकी आध्यात्मिक साधना का शृ खला वद्ध अध्ययन और मूल्याङ्कन किया जाय। स्वामी राम ने अपने जीवन के तैतीस वष हिन्दू धर्म के आदर्शानुसार चारो आश्रमो में व्यतीत किये—ब्रह्मचय, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। वे इतनी अल्पायु में ही छलाग मार मार कर एक आश्रम से दूसरे आश्रम को लाँघते गये और अन्त में अन्तिम आश्रम—सन्यास में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित होकर उन्होने अपनी देहलीला समाप्त की। स्वामी जी के जीवन में आध्यात्मिक साधना का प्राय प्रत्येक पहलू अत्यन्त प्रखर रूप में दिखलायी पडता है। यदि हम उनके साधन के सबध में यह कहें तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी—"स्वामी रामतीथ के जीवन में भारतीय साधना प्रणाली के कमयोग, राजयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग अत्यन्त प्रखर रूप में देदीप्यमान हुये है। उनकी साधना प्रणाली सवतोमुखी थी। आध्यामिक साधक उनकी साधना के किसी भी पक्ष का अनुसरण कर कृतकृत्य हो सकता है।'

स्वामी राम की साधना-प्रणाली प्राचीनता से युक्त होते हुये भी, नवीन दष्टिकोणा से परिपूण थी। वे सन्यास धम के कट्टर अनुयायी होते हुये भी, आधुनिक युग के सुधारा के प्रति अत्यन्त जागरूक थे। अब हम सक्षेप में उनकी साधन-परम्परा का पृथक-पृथक् विवेचन करेंगे—

कर्मयोग

श्रीमद्भगवद्गीता में कम की उत्पत्ति इस प्रकार मानी गयी है—

कर्म ब्रह्मोद्भव विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात् सर्वगत ब्रह्म नित्य यज्ञे प्रतिष्ठित॥

अध्याय ३, श्लोक १५

अर्थात "उस कर्म को तू वेद से उत्पन्न हुआ जान और वद अविनाशी

परमात्मा से उत्पन्न हुआ है। इससे सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित है।"

इसी प्रसंग में कर्म करने की अनिवार्यता पर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्त किये हैं—

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ३, श्लोक १६

अर्थात् "हे पार्थ ! जो पुरुष इस लोक में इस प्रकार चलाये हुये सृष्टिचक्र के अनुसार नहीं बर्तता है अर्थात् शास्त्रानुसार कर्मों को नहीं करता है, वह इन्द्रियों के सुख को भोगने वाला पापायु पुरुष व्यर्थ ही जीता है।"

बिना कर्म किये शरीर यात्रा भी नहीं चल सकती। इसीलिये लोक-संग्रह के निमित्त वशिष्ठ, व्यास, जनक, श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण आदि ने कर्म का विधिवत् सम्पादन किया है।

कहना न होगा कि स्वामी राम का जीवन अत्यन्त कर्मठ था। उन्होंने अपने जीवन के चारों आश्रमों में कर्म का विधिवत् सम्पादन किया। उनके सामने जिस आश्रम के जो-जो कर्म उपस्थित हुये, उन्होंने उन कर्मों को अत्यन्त कुशलतापूर्वक पूरा किया। विद्यार्थी-जीवन में उन्होंने अपने स्वास्थ्य की बाजी लगाकर अठारह-अठारह घंटे तक अध्ययन किया। प्राध्यापक की हैसियत से उन्होंने अपने प्रत्येक छात्र की प्रत्येक शंका का अत्यन्त क्षमतापूर्वक समाधान किया। विभिन्न संस्थाओं में उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित किये जाने पर उन्होंने उस उत्तरदायित्व का अत्यन्त कुशलता पूर्वक निर्वाह किया। सनातन धर्म-सभा के सहायक मंत्री के पद की हैसियत से द्वारकापीठ के शंकराचार्य एवं स्वामी विवेकानन्द के आतिथ्य सत्कार का सारा भार उन्होंने कुशलता से निबाहा। इसके अतिरिक्त वे अपने प्राध्यापन-काल में जहां-तहां धर्म-प्रचार के हेतु व्याख्यान देने जाया करते थे, इस गम्भीर कार्य की उनको जन्म-जात प्रवृत्ति थी। उन्होंने सारे व्याख्यानों की विधिवत् पूर्व तयारी की थी। उनके व्याख्यानों से श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो जाते थे। यह उनके कर्मयोग का अपूर्व उदाहरण है। संन्यास ग्रहण करने पर भी उनकी कर्मनिष्ठा पूर्ववत् बनी रही। उन्होंने संसार के कल्याण के निमित्त जापान, अमेरिका और मिस्र का परिभ्रमण किया तथा अपने व्याख्यानों से वहाँ की जनता का ध्यान आकर्षित कर लिया। इससे भारत का प्रसुप्त गौरव जाग पड़ा। भारत की आध्यात्मिक साधना के प्रति अमेरिका-वासियों की निष्ठा जाग्रत हुई। देश का

सम्मान बहुत ऊँचा हुआ । उन्होंने अमेरिका वासियों से भारत की ओर से जो अपील की थी, उसमें भारत की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति का जीता-जागता चित्रण किया था । इसका परिणाम यह हुआ कि भारत वापस लौटने पर वे उन्हें ब्रिटिश सरकार की क्रूर दृष्टि का शिकार होना पड़ा । उनकी गति विधि पर ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर-विभाग की पैनी दृष्टि रहती थी । अमेरिका से लौटने पर उन्होंने भारतवासियों को कर्मनिष्ठा की ओर आकृष्ट किया । भारत के नवयुवकों का आह्वान किया और देश की वर्तमान अवस्था को सुधारने के लिये उन्हें अनुप्रेरित एवं प्रोत्साहित किया । स्वामी जी अपने इन कार्यों के निमित्त ब्रिटिश सरकार की आंखों में किरकिरी बन गये । पर उनके मन में अपने इन कार्यों के प्रति किसी प्रकार की आशंका अथवा भय नहीं उत्पन्न हुआ । वे अपने सिद्धान्तों पर हिमालय की भाँति अडिग बने रहे ।

गृहस्थ जीवन में वे अपने कर्तव्यों का विधिवत् पालन करते थे । अपनी आय में से जो कुछ भी सम्भव था अपने गुरु पिता, विमाता एवं स्त्री-बच्चों के भरण पोषण पर खर्च करते थे । इसके अतिरिक्त आये दिन वे निर्धन छात्रों की भी सहायता किया करते थे । कभी-कभी अपनी इस उदार वृत्ति से उन्होंने धोखा भी खाया, किन्तु इसके लिए न उन्हें कभी पश्चात्ताप हुआ और न ग्लानि ही हुई ।

वानप्रस्थ आश्रम में वे बहुत ही अल्प समय तक रहे । पर उस आश्रम के कठोर कर्मों का भी उन्होंने विधिवत् सम्पादन किया । हिन्दू धर्म के शास्त्रानुसार वानप्रस्थियों का नियम सन्यासियों के नियम से भी कठोर होता है । स्वामी जी ने उन नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करके वानप्रस्थियों के सम्मुख नवीन आदर्श रखा । उन्होंने अपनी सहधर्मिणी को भी अपने आचारों विचारों में रँग दिया । उन्हें परम तपस्विनी के रूप में परिणत कर दिया । यह उनके असाधारण कर्मयोग का अप्रतिम चमत्कार था ।

सन्यास-जीवन के अन्तिम वर्षों में भी कर्मनिष्ठा के प्रति उनका अपूर्व आग्रह ज्यों का त्यों बना रहा । स्वयं आत्मतुष्ट, आत्माराम होते हुये भी जगत के कल्याण के निमित्त उन्होंने चारों वेदों का नियमपूर्वक अध्ययन किया । यद्यपि इस दुरूह कार्य के लिये उनके कुछ अनन्य प्रेमियों ने उन्हें मना भी किया, पर वेदों के अध्ययन की निष्ठा में उन्होंने रंचमात्र भी शिथिलता अथवा कमी नहीं आने दी । उनका यह कार्य भी उनके कर्मयोग का अपूर्व दृष्टान्त है । वास्तव में स्वामी राम ऐसे ब्रह्मनिष्ठ, अद्वैत परायण, और आनन्दी पुरुष को इस प्रकार के अध्ययन की कोई भी आवश्यकता नहीं थी । पर लोक-संग्रह की भावना से उन्होंने यह महत्त्वपूर्ण कार्य किया । यदि स्वामी जी ने कुछ वर्षों तक और शरीर धारण किया होता

तो वदो के सम्बन्ध में उनका भाष्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता, इसमें तनिक भी सन्देह नही है।

स्वामी राम ने जापान के टोकियो नगर में "सफलता का रहस्य" नामक विषय पर जो व्याख्यान दिया, उसकी गणना ससार के उत्तमोत्तम व्याख्यानो में की जा सकती है। उसमें स्वानुभूति का इतने मौलिक और आकपक ढग से प्रतिपादन किया गया है, कि पाठका का मन बलात मोहित हो जाता है। उस *व्याख्यान का उल्लेख "स्वामी राम जापान में" शीर्षक अध्याय में किया गया है।* स्वामी राम के कर्मयोग की सच्ची अनुभूतिमयी झाकी उस महत्त्वपूण व्याख्यान में दष्टिगोचर होती है। काम, आत्मत्याग, आत्म विस्मृति, सार्वभौमिक प्रेम, प्रसन्नता, निर्भीकता एव आत्म निर्भरता के सयोग से छोटा से छोटा काय भी अत्यन्त आकपक हो जाता है। ऐसे विशुद्ध कर्मयोग की ओर सभी की दृष्टि स्वत आकर्षित हो जाती है। इस प्रकार के कर्मों में ससार को दहला देने और चकाचौंध कर देने की अपूव शक्ति आ जाती है। ऐसे कर्म भगवद्-उपासना के जीवन्त स्वरूप होते है। कहना न होगा कि स्वामी राम के छोटे से कर्म भी ऐसी ही भावनाओ से ओतप्रोत होते थे। यही कारण है कि उनके कर्मों के प्रति हमारा असीम अनुराग हो जाता है। उन्हें हम ममत्व और प्यार की भावना से देखते है। उनसे हम अपना व्यक्तिगत सम्बन्ध जोड लेते हैं। महान् पुरुषो के कमयोग में यही विशेषता होती है कि उनकी कम साधना को सभी सात्विक लोग अपनी व्यक्तिगत साधना समझने लगते है।

स्वामी राम के अनेक व्याख्यानो में उनकी कमनिष्ठा की अप्रतिम अनुभूति दृष्टिगोचर होती है। यदि स्वामी राम ने कमयोग की अनुपम साधना न की होती तो उनके व्याख्यानों में इतनी कमनिष्ठा न दिखलायी पडती। सच्ची वात तो यह है कि स्वामी राम की कथनी, करनी और रहनी में अपूव सामजस्य था। *वे जो कुछ उत्तम समझते थे, उसी का चिन्तन करते थे, उसी को अपने जीवन में* व्यवहृत करते और लोगा को उद्बोधित करने के लिये वही बात अपने जबान पर लाते थे। उनके अनेक व्याख्याना—उदाहरणाथ 'यज्ञ का भावाथ', 'घर को आनन्दमय कैसे बना सकते है?' एव 'गृहस्थाश्रम और आत्मानुभव'—आदि में—उनके कर्मयोग का वास्तविक रूप भलीभाँति समझा जा सकता है। कतिपय उदाहरणों से यह बात भलीभाँति सिद्ध की जायेगी। स्वामी राम ने "यज्ञ के भावाथ" नामक व्याख्यान में राष्ट्रीय कर्म-साधना की कुण्डलिनी जाग्रत करने का प्रयास किया है। उन्होंने इस व्याख्यान में जो संकेत किये हैं, उनसे राष्ट्रीय कर्म-

साधना में अपूर्व एकता स्थापित हो सकती है। इस सम्बन्ध में उनके सुझाव इस प्रकार हैं—

'राष्ट्रीय उत्सवों में ऐसा सुधार करना चाहिये, जिससे सभी श्रेणी के लोगों को एक साथ एकत्र होने का अवसर मिले, जिससे वे आध्यात्मिक अथवा मानसिक समानशीलता के अनुसार अपने सहधर्मी ढूढकर उनसे एकता प्राप्त कर सकें और इस रीति से प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपने पारस्परिक सबंधो की दूरी स्थापित कर सकें। राष्ट्रीय हेमन्तोत्सव दक्षिण भारत के सुखदायक प्रदेशों में, राष्ट्रीय ग्रीष्मोत्सव उत्तरी पर्वतो के प्राकृतिक दृश्यों में, वसन्तोत्सव बग देश में और शरद् ऋतु का सम्मेलन पश्चिमी भारत में होना चाहिये। ये उत्सव किसी नाम विशेष और सम्प्रदाय विशेष की सीमा के ऊपर सर्वथा राष्ट्रीय होने चाहिये, जो सभी श्रेणियों के प्रतिनिधियों द्वारा सचालित हो। वहाँ पर कला-कौशल की प्रदर्शनी, हर प्रकार की दूकानें, पदार्थ सग्रहालय, पुस्तकालय, प्रयोगशालायें, क्रीडा भवन व्याख्यानों के लिये मैदान, सामाजिक सभायें, परिषदें, काग्रेस और अन्त में किन्तु महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय नाट्यशालायें हों, जिनमें भिन्न भिन्न प्रान्तों के अनेकानेक धर्म और पथ के लोग एकत्र हो। इस प्रकार जीवन के गम्भीर और विनोदपूर्ण दोनो अगों की पूर्ति की सामग्री जुटायी जाय।"

"राष्ट्रीय एकता की वृद्धि में एक दूसरा साधन है राष्ट्रीय साहित्य का उत्पादन, उसकी उन्नति और उसकी परिष्कृति और यह कार्य देश की वर्तमान जीवित देशी भाषाओं में एकता उत्पन्न करने ही हो सकता है।

'इसी उद्देश्य से भिन्न भिन्न स्थानों पर 'ॐ मन्दिर' भी स्थापित किये जा सकते हैं। वहा सभी धर्मों एव सम्प्रदायों के लोग स्वतन्त्रता से आ जा सकें, पढें, ध्यान करें, शान्ति से प्रार्थना करें और एक दूसरे को सहानुभूति, दया और प्रेम की दृष्टि से देखें, परन्तु आपस में बातचीत के बिना ही।"

"वहाँ देश के युवक इकट्ठे होकर खुले मैदान में व्यायाम करें और राम की रीति से प्रत्येक शारीरिक गति को एक आध्यात्मिक भावनासूचक चिह्न में बदल दें, जिससे वह क्रिया ईश्वर-निमित्त और ईश्वर को स्वीकार्य यज्ञ में आहुति रूप हो जाय।

"स्नान करते समय हमें उपयोगी और हृदय को पवित्र करने वाले गीत गाना चाहिये। पर वे ऐसी भाषा में न हों, जिसे हम समझ ही न सकें।

"ऋतु के अनुसार तरुण-मडली नदियों के किनारे, हरी घास पर, अथवा वृक्षों की छाया में, आकाश मण्डल के नीचे एक साथ बैठकर भोजन करें। और प्रत्येक ग्रास भीतर और बाहर से अर्थात् मन और वचन से 'ॐ ॐ' का उच्चारण

करती रहे। राष्ट्रीय गीत ज्वालामय शब्दो एव सजीव विचारों से भरे हुये सामूहिक गान एकता उत्पन्न करने में जादू का काम करते हैं।"

'घर आनन्दमय कैसे बना सकते हैं ?' नामक व्याख्यान में स्वामी राम ने 'कर्मयोग' के उन पहलुओ पर विचार किया है, जिनका उन्होंने अपने जीवन में स्वय दृढतापूर्वक आचरण किया था।

त्याग के पहलू पर वे इस प्रकार प्रकाश डालते हैं—

"ऐ ईसाइयो, ऐ हिन्दुओ, ऐ मुसलमानो, यदि आप सचमुच यह चाहते हैं कि ससार के सभी दुःख निर्मूल हो जायें, यदि आप चाहते हैं कि मानव जाति की व्यथा दूर हो जाय, तो आपको इस पर ध्यान देना चाहिये, वैवाहिक सबधो को सद्भावों पर स्थापित करना चाहिये। प्रत्येक महिला एव भद्र पुरुष को अपने हृदय में यह बात उतार लेनी चाहिये कि अपने पति अथवा अपनी स्त्री के लिये ईसामसीह बनना उसका परम पुनीत कर्त्तव्य है, ईसा बनने को हम बाध्य हैं। यह हमारा अनिवार्य कर्त्तव्य है। यह किस प्रकार है सभव ? यदि स्त्री अपने पति को दास न बनाना चाहे और पति भी स्त्री को अपने अधीन न करना चाहे, तो यह सभव हो सकता है। पहले सबको मुक्त करो, तो अपने आप स्वाधीन हो जाओगे। यही दैवी विधान है।"

इसी व्याख्यान में स्वामी जी ने गृहस्थों को अनासक्त, निर्विकार एव साक्षी भाव से परिवार में रहने की शिक्षा दी है। अनासक्त भाव से कर्मों को करता हुआ भी व्यक्ति कर्मों से लिप्त नहीं होता। वे कहते हैं—

"वेदान्त चाहता है कि आप अपने घरों में, अपने परिवारो में ईश्वर की भाँति रहें। अपने मकानों में साक्षी की भाति निर्विकार ईश्वर की तरह अनासक्त रहें, किसी प्रकार उलझे हुये न रहें। अपने मन को सदैव स्थिर रखें, सदा अनासक्त रहें। अपने चित्त और हृदय को सदा भीतर के परमेश्वर पर जमाये रखें और सारे घरेलू मामलों को उसी तरह देखें, जिस तरह चित्र का देखते हैं। आप जानते हैं कि जब आप इसे साक्षी की भाति देखते हैं, तब यह सुख का कारण बन जाता है, जब आप इसमें उलझ कर आसक्त होते हैं, तब यह मुसीबत का सामान बन जाता है।"

स्वामी राम ने अपने जीवनपर्यन्त निरहकार भाव से सभी कर्मों का सम्पादन किया और लोगो को भी वही विधि बतलायी—

"इस तरह से हम देखते हैं कि काम केवल तभी होता है, जब हम तुच्छ स्वार्थी अहकार से छुटकारा पा जाते हैं। जिस क्षण आपके स्वार्थी अहकार ने रंग जमाया, उसी क्षण काम बिगड जाता है। सर्वोत्तम कर्म वही कर्म होता है,

जो अकर्तृत्व भाव से किया जाता है। त्याग का अर्थ है इस छोटे व्यक्तिगत, स्वार्थी अहंकार से छुटकारा पाना, जीव भाव की मिथ्या कल्पना को दूर करना। सूर्य चमकता है, किन्तु सूर्य में यह भाव नहीं है कि मैं काम कर रहा हूँ, क्योंकि सूर्य अहंभाव से शून्य है। इसलिये वह इतना मनोहर और चित्ताकर्षक है। नदियाँ बहती हैं। उनके बहने में कोई तुच्छ व्यक्तिगत अहंभाव नहीं है, किन्तु काम हो रहा है। दीपक जलता है, किन्तु व्यक्तिगत अहंभाव—'मैं महान् हूँ, मैं जल रहा हूँ, मैं प्रकाश कर रहा हूँ।'—प्रकाश का कारण नहीं हो सकता। फूल खिलते हैं और चारों ओर मधुर सुगन्धि फैलाते हैं, किन्तु उनमें इस भाव का लेश भी नहीं है कि वे बड़े मधुर और बड़े सुन्दर हैं।"

स्वामी राम ने अपने व्याख्यान 'गृहस्थाश्रम और आत्मानुभव' में भी कर्म-योग के सम्बन्ध में इसी प्रकार की प्रत्यक्षानुभूतियों द्वारा सामान्य व्यक्तियों की विशुद्ध कर्मयोग में निष्ठा स्थापित करने की चेष्टा की है—

"इस तरह परमात्मा के साथ अभेदता और एकता अनुभव करने के पूर्व आप अपनी स्त्री और पुत्रों के साथ एकता अनुभव करो। जिस मनुष्य ने अपनी अर्द्धाङ्गिनी और पुत्र-कलत्र के साथ एकता अनुभव नहीं की, वह सबके साथ अपनी एकता का अनुभव कैसे कर सकता है?"

'कल्पना करो कि यहाँ एक पत्नी है, जो सदा ऐसे दिव्य विचार करती है कि 'मेरा पति परमेश्वर है।' उसके ये विचार पति को आत्म साक्षात्कार कराने में अत्यन्त सहायक बनते हैं। इसी प्रकार जब पति परमात्मा के साथ अपनी एकता अनुभव कर लेता है, तो पत्नी को सहायता मिलती है। अहा! कैसा आध्यात्मिक विवाह है! अहा! कैसा उत्तम मिलन है! दोनों परस्पर सहायता करते और सहायता पाते हैं। ऐसे आध्यात्मिक मिलाप पर आधारित विवाह और प्रीति जगत में अत्यन्त सुखमय होती हैं।"

स्वामी राम ने अपने समस्त जीवन में कर्मयोग की अनवरत साधना की थी। उससे उन्होंने अपार आध्यात्मिक शक्ति अर्जित की थी। किन्तु यह कर्मयोग स्वामी जी का साधन मात्र था, साध्य या सिद्धि नहीं। इसी प्रसंग में स्वामी जी के कर्मयोग की कतिपय विशेषताओं पर दृष्टिपात कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

स्वामी राम के जीवन-वृत्त पर सूक्ष्मता से विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंने दो प्रकार के कर्म किये—सकाम कर्म और निष्काम कर्म। जब तक उन्हें आत्म साक्षात्कार नहीं हुआ, तब तक के उनके कर्मों में सकाम भावना पायी जाती है, किन्तु जीवन में पूर्ण ब्रह्मज्ञान प्राप्त होने पर

उनके समस्त कर्मों में निष्काम भावना स्वत आ गयी। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के पूर्व उन्होंने जो-जो कर्म किये, उनमें फल प्राप्ति की आकाक्षा उनके मन में निश्चित रूप से विद्यमान थी। उदाहरणाथ उन्होंने अपने छात्र-जीवन में अत्यधिक श्रम किया, अठारह-अठारह घटे तक प्रतिदिन अध्ययन किया, क्योकि वे चाहते थे कि परिणाम अच्छा निकले, ताकि वे सासारिक दृष्टि से ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित हो। यही सकाम भावना है। किन्तु स्वामी जी की इस सकाम भावना की विशेषता यह थी कि वे इन कर्मों को ईश्वरार्पण बुद्धि से करते थे। पूव जन्मो के सस्कारानुसार ईश्वरार्पण बुद्धि उनके स्वभाव का अग बन गया था। इसीलिये वे मनोनुकूल फल प्राप्ति न होने पर भी, किंचित् समय के लिये विचलित होकर भी, फिर भगवान् की शरण में आ जाते थे, जिससे वे विषम परिस्थितियो में भी अपना मानसिक सन्तुलन नही खोते थे। ईश्वरापण बुद्धि एव अनन्य भक्तिभावना के कारण उनके सकाम कर्मों में भी उत्तरोत्तर शुद्धता आती गयी और उनकी व्यक्तिगत भावना का नाश होता गया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका अन्त करण दिन-प्रतिदिन निमल होता गया। अन्त करण निमल होने पर वे भगवद्-उपासना के वास्तविक अधिकारी हो गये। उनके अन्त करण में कृष्ण भक्ति की अपूव बाढ आ गयी। श्रीकृष्ण के अतिशय प्रेम, भक्ति एव अनुरक्ति से उनका विशुद्ध चित्त ओत प्रोत हो गया। श्रीकृष्ण का वियोग उनके लिये असह्य हो गया। श्रीकृष्ण से मिलने के लिये वे उसी प्रकार छटपटाने लगे, जैसे मछली जल से निकाल देने पर छटपटाती है। श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति ने उनके सकाम कर्मों के बीज को सदैव के लिये दग्ध कर दिया। उनका चित्त श्रीकृष्णमय हो गया। इस प्रकार वे सकाम कर्मों की चाहारदीवारी को आनन-फानन में लाँघ कर उच्च भाव-भूमि मे प्रतिष्ठित हो गये। इसीलिये उन्होंने अल्पकाल के साधन द्वारा तपोवन में आत्म साक्षात्कार कर लिया। ब्रह्म की प्रत्यक्षानुभूति के अनन्तर उनके जीवन का समस्त दृष्टिकोण बदल गया। स्वामी राम ससीम से असीम हो गये। उनकी कमयोग साधना में भी ससीम भावना विलुप्त हो गयी। उसमें असीमता आ गयी। इस प्रकार ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के अनन्तर, स्वामी जी के समस्त कम निष्काम कमयोग के अन्तगत स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं।

स्वामी राम के निष्काम कर्मयोग की कुछ बारीकियों की इस स्थल पर मीमासा की जा रही है। ब्रह्मानुभूति के अनन्तर स्वामी राम जीव-भाव के पिंजडे से निकल कर पूण जीव-मुक्त हो गये। हिन्दू-दर्शन के अनुसार आत्मज्ञानी—ब्रह्मज्ञानी की दो स्थितियाँ होती हैं—एक तो शुकदेव एव सनकादिक कोटि के होते हैं। उनकी दृष्टि में कम का कोई भी मूल्य नहीं रह जाता। वे 'आत्माराम'

एव 'आत्मतृप्त' होकर निरन्तर ब्रह्मभाव में निमग्न रहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में ऐसे आत्मतृप्त ब्रह्मज्ञानियो की स्थिति का संकेत किया गया है और यह भी बताया गया है कि कर्म-सम्पादन के उत्तरदायित्व से वे परे हो जाते हैं—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानव
आत्मन्येव च सतुष्टस्तस्य काय न विद्यते ॥

—अध्याय ३, श्लोक १७

अर्थात, "जो मनुष्य आत्मा में ही प्रीतिवाला और आत्मा में तृप्त तथा आत्मा में ही सन्तुष्ट हो, उसके लिये कोई कत्तव्य नही है।"

दूसरी श्रेणी में ऐसे ब्रह्मज्ञानी अथवा आत्मज्ञानी रखे जाते हैं, जिन्हें पूर्ण साक्षात्कार के अनन्तर प्रारब्धानुसार कम करना होता है। ऐसे महापुरुषों के कम लोक सग्रह एव ससार कल्याण के निमित्त होते है। वशिष्ठ, व्यास, जनक आदि की गणना इस कोटि के लोकसग्रही ब्रह्मज्ञानियो में की जाती है। श्रीमदभगवद-गीता में इस कोटि के ब्रह्मज्ञानिया के सम्वन्ध में बताया गया है—

कर्मणैव हि ससिद्धिमास्थिता जनकादय
लोकसग्रहमेवापि सपश्य कर्तुमर्हसि ॥

—अध्याय ३, श्लोक २०

अर्थात, "इस प्रकार जनकादि ब्रह्मज्ञानी जन भी आसक्तिरहित कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुये है, इसलिये तथा लोक सग्रह को देखता हुआ भी तू कम करने के ही योग्य है।"

स्वामी राम की गणना दूसरी कोटि के—लोक सग्रही ब्रह्मज्ञानियो से की जा सकती है। इसलिये उनकी कम सम्पादन विधि की अपनी निजी मौलिकता है। ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के अनन्तर स्वामी राम का जीव भाव सर्वथा नष्ट हो गया था। उनके समस्त कम व्यष्टिभाव की सीमा से नितान्त परे हो गये थे। उनके कार्यो में समष्टि भाव व्याप्त हो गया था। अतएव स्वामी राम के समस्त क्रिया-कलाप समष्टि-भाव से ओत प्रोत है। उन्होने ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के पश्चात जितने भी काय किये, वे सब के सब लोक-सग्रह भाव से अनुप्राणित है।

ब्रह्मज्ञान के अनन्तर स्वामी राम के प्रत्येक कर्म में आत्म समपण की अपूर्व भावना पायी जाती है। ऐसे कर्म बन्धन के कारण नही होते। श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन को इसी भावना से कम करने के लिये अनुप्रेरित किया है—

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्यात्म चेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वर ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ३, श्लोक ३०

अर्थात, "इसलिये हे अर्जुन, तू ध्याननिष्ठ चित्त से सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें समर्पण करके, आशारहित और ममतारहित होकर, सताप रहित हुआ युद्ध कर।"

स्वामी राम के समस्त कर्म ब्रह्मज्ञान की प्रचण्ड अग्नि से दग्ध हो चुके थे। इसलिये वे उनके ऊपर कोई भी प्रभाव नही डाल सकते थे। हा, उन कर्मों से जगत् का कल्याण अवश्यमेव हुआ। उनके ब्रह्मज्ञान युक्त कर्मों से सोये हुये भारत का परम कल्याण हुआ। भारत के नवयुवको में आशा एव नवीन उमग का सचार हुआ। स्वामी राम के लिये उन कर्मों के सम्पादन का कोई भी मूल्य नही था, क्योकि उनकी दृष्टि पूर्णतया ब्रह्ममयी हो चुकी थी। ब्रह्मज्ञान की प्रचण्ड ज्ञानाग्नि से उनसे समस्त कर्म पूर्णतया भस्मीभूत हो चुके थे—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥

—श्रीमदभगवद्गीता, अध्याय ४, श्लोक ३७

अर्थात्, "हे अर्जुन, जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन को भस्मीभूत कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्मीभूत कर देती है।"

स्वामी राम ने लोक-सग्रह निमित्त जितने भी कर्म किये, ब्रह्म स्वरूप—आत्मस्वरूप में स्थित हो कर किये, इससे उनकी स्थिति 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' बनी रही। वे सम्पूर्ण कर्मों को करते हुये भी जगत के प्रपचों से उसी प्रकार लिप्त नही हुये, जैसे कमल का पत्ता जल में रहते हुये भी उससे अस्पृष्ट रहता है—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ५ श्लोक १०

अर्थात, "हे अर्जुन, देहाभिमानियो द्वारा यह साधन (साख्य योग) होना कठिन है और निष्काम कर्मयोग का अनुष्ठान सुगम है, क्योकि जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्याग कर, कर्म करता है, वह पुरुष जल से कमल के पत्ते के समान पाप से लिप्त नही होता।"

वास्तव में स्वामी राम इस क्षणभगुर, नाशवान् एव अनित्य ससार के सर्वथा से एकदम परे हो गये थे। जिस प्रकार स्वप्न से जगे हुये पुरुष का स्वप्न के ससार से कोई भी सबध नही रहता, उसी प्रकार अज्ञान निद्रा से जगे हुये स्वामी राम का माया के कार्यरूप अनित्य ससार से कोई भी सबध नही रह गया था। यद्यपि लोकदृष्टि में स्वामी राम द्वारा प्रारब्धानुसार अनेक शुभ कर्मों का अनुष्ठान हुआ और उन कर्मों द्वारा ससार को बहुत बडा लाभ भी हुआ, किन्तु वे उन कर्मों से

सर्वथा असंपृक्त रहे। स्वामी राम ने न तो गुणों के कार्यरूप प्रकाश, प्रवृत्ति एवं निद्रा आदि के प्राप्त होने पर उनसे द्वेष किया और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा ही की। उनकी अवस्था त्रिगुणातीत हो गयी थी। इसलिये उनके कर्मों में अनासक्ति की भावना पूरी तरह से पायी जाती है। सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी प्रकार के कर्मयोग के अनुष्ठान पर अत्यधिक बल दिया है। कहना न होगा कि स्वामी राम ने गीता में प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग वर्तमान युग की परिस्थितियों के अनुरूप अत्यन्त व्यावहारिक रूप प्रदान किया।

राजयोग

योगविद्या के आचार्यों का कथन है कि धर्म पूर्वकालीन अनुभवों पर केवल स्थापित ही नहीं है वरन् इन अनुभवों से स्वयं सम्पन्न हुये बिना कोई भी धार्मिक नहीं हो सकता। जिस विद्या के द्वारा ये अनुभव प्राप्त होते हैं, उसका नाम है 'योग'। बाह्य जगत् के व्यापारों के पर्यवेक्षण के लिये हजारों प्रकार के यन्त्रों का निर्माण हो चुका है, पर अन्तर्जगत के व्यापारों को समझने में सबसे बड़ा सहायक मन ही है। मन की शक्तियाँ इधर-उधर बिखरी हुई प्रकाश की किरणों के समान हैं। जब उन्हें केन्द्रीभूत किया जाता है, तब वे सब कुछ आलोकित कर देती हैं। मन को अन्तर्मुखी करना, उसकी बहिर्मुखी गति को रोकना, उसकी समस्त शक्तियों को केन्द्रीभूत कर, उस मन के ही ऊपर उनका प्रयोग करना, ताकि वह अपना स्वभाव ठीक ठीक समझ सके, अपने आपको विश्लेषण करके देख सके—एक अत्यन्त कठिन कार्य है। पर इस विषय में वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार अग्रसर होने के लिये योग ही एकमात्र उपाय है।

इस ज्ञान की प्राप्ति के लिये एकमात्र उपाय है—एकाग्रता। मन की शक्तियों को एकाग्र करने से इस संसार के समस्त ज्ञान उपलब्ध हुये हैं। यदि प्रकृति के द्वार को ठीक-ठीक आघात करने की क्रिया से हम भली-भाँति विज्ञ हो जायें, तो वह अपना रहस्य खोल देती है। उस आघात की शक्ति और तीव्रता एकाग्रता से ही आती है। मानव मन तथा शक्ति अचिन्त्य एवं असीम है। वह जितना एकाग्र हो जाता है, उतनी ही उसकी शक्ति एक लक्ष्य पर केन्द्रित होती जाती है। यही मन का रहस्य है। इस गुह्यतम रहस्य को कोई विरला ही साधक जान पाता है। अतएव राजयोगी को मन की समस्त बहिर्मुखी शक्तियों को अन्तर्मुखी करके, मन ही पर उसका प्रयोग करना होता है। जैसे सूर्य की तीक्ष्ण और ज्योतिर्मयी किरणों के सम्मुख अन्धकारमय स्थान भी अपने गुह्य तथ्य उद्घाटित कर देते हैं, उसी

तरह एकाग्र मन के ज्योतिर्मय प्रकाश में प्रकृति के सारे रहस्य स्वत उद्घाटित हो जाते हैं।

राजयोग की शिक्षा अत्यन्त उदार एव सहिष्णु हैं। यह किसी सम्प्रदाय अथवा धर्म विशेष पर आधारित नही है। चाहे कोई यहूदी हो, मुसलमान हो, ईसाई हो अथवा हिन्दू—इससे कुछ भी बनने बिगडने का नही। श्रद्धालु मनुष्य हो, बस राजयोगी बनने के लिये, इतना ही पर्याप्त है। राजयोग 'प्रत्यक्षानुभूति' की शिक्षा देता है। राजयोग की यही मुख्य शिक्षा है—"जब तक कोई बात स्वयं प्रत्यक्ष न कर सको, तब तक उस पर विश्वास न करो।" राजयोग की साधना में दीर्घकाल, सयम, नियम, दृढ़ सकल्प, सतत अभ्यास एव असीम धैर्य की आवश्यकता है। इसके अभ्यास का कुछ अश तो शरीर के सयम से सबधित है, परन्तु अधिकाश भाग मन के सयम और नियन्त्रण से सबधित है।

"राजयोगी के मतानुसार *यह सम्पूर्ण बहिर्जगत अन्तर्जगत या सूक्ष्म जगत* का स्थूल विकास मात्र है। सभी स्थलों में सूक्ष्म को कारण और स्थूल को काय समझना होगा। इस नियम से अन्तर्जगत कारण और बहिर्जगत कार्य है। इस हिसाब से, स्थूल जगत् की परिदृश्यमान शक्तियाँ आभ्यन्तरिक सूक्ष्मतर शक्तियो का स्थूल भाग मात्र हैं। जिन्होंने इन आभ्यन्तरिक शक्तियो का आविष्कार करके उन्हें इच्छानुसार चलाना सीख लिया है, वे सम्पूण प्रकृति को वश में कर सकते हैं।"

राजयोग आठ अगो में विभक्त है। पहला है यम—अर्थात अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी का अभाव), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। दूसरा है नियम—अर्थात् शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान (ईश्वर में आत्म समर्पण) तीसरा है आसन—अर्थात बैठने की समुचित प्रणाली। चौथा है प्राणायाम—*अर्थात् प्राण का सयम। पाँचवाँ है प्रत्याहार—अर्थात् मन की विषयाभिमुखी गति* को फेरकर उसे अन्तर्मुखी करना। छठा है धारणा—अर्थात् किसी स्थल पर मन का धारण। सातवाँ है ध्यान। और आठवाँ है समाधि–अर्थात् अतिचेतन अवस्था।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर हमें ज्ञात होता है कि यम और नियम चरित्र निर्माण के साधन हैं। इन्ही की नींव पर समस्त राजयोग का भवन निर्मित हो सकता है। इसको नींव बनाये बिना किसी तरह की योग-साधना सिद्ध न होगी। यम और नियम के दृढप्रतिष्ठ हो जाने पर योगी अपनी साधना का फल अनुभव करना प्रारम्भ कर देते हैं। यम और नियम के अभाव में यह निश्चय है कि योगी की साधना का कोई फल नही प्राप्त हो सकता।

यम और नियम के बाद आसन आता है। जब तक बहुत उच्च अवस्था को

प्राप्ति नही हो जाती, तब तक रोज नियमानुसार कुछ शारीरिक और मानसिक क्रियायें करनी पडती है। अतएव जिससे दीर्घ काल तक एक भाव से बैठा जा सके, ऐसे एक आसन का अभ्यास आवश्यक है। जिन्हें जिस आसन से सुभीता मालूम होता हो, उन्हें उसी आसन पर बैठना चाहिए। एक व्यक्ति के लिये एक प्रकार से बैठकर सोचना सहज हो सकता है, परन्तु दूसरे के लिए सभव है, वह बहुत कठिन जान पड़े। आसन के सम्बन्ध में यह बात परमावश्यक है कि मेरुदण्ड सहज भाव से रहे। वक्ष, ग्रीवा और मस्तक सीधे और समुन्नत रहें जिससे देह का सारा भार पसलियों पर पड़े। राजयोग का यह भाग हठयोग से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। राजयोग और हठयोग में प्रमुख अन्तर यह है कि हठयोग केवल स्थूल शरीर को लेकर व्यस्त रहता है। इसका उद्देश्य केवल स्थूल देह को सबल बनाना है। शरीर की ऐसी कोई पेशी नही, जिसे हठयोगी अपने वश में न ला सके। हृदय या उसकी इच्छा से बन्द किया या चलाया जा सकता है। शरीर के सारे अवयवों को वह अपने इच्छानुसार चला सकता है। मनुष्य किस प्रकार दीर्घजीवी हो, यही हठयोग का एकमात्र उद्देश्य है। किन्तु राजयोगी का लक्ष्य आध्यात्मिक उन्नति है। इसीलिये वह काया-साधन को विशेष महत्त्व नही देता।

आसन सिद्ध होने पर प्राणायाम की क्रिया प्रारम्भ होती है। प्राणो का यथोचित सयम प्राणायाम है। इसकी अनेक विधियाँ और प्रणालियाँ है। आदि शकराचार्य नाडी-शोधन इसकी प्रथम विधि मानते है। उन्होंने श्वेताश्वरोपनिषद के भाष्य में नाडी-शोधन प्रणाली का इस भाँति उल्लेख किया है—

"प्राणायाम के द्वारा जिस मन का मैल धुल गया है, वही मन ब्रह्म में स्थिर होता है। इसलिये शास्त्रों में प्राणायाम के विषय का उल्लेख है। पहले नाडी-शुद्धि करनी पडती है, तभी प्राणायाम करने की शक्ति आती है। अँगूठे से दाहिना नथुना दबाकर बाँये नथुने से यथाशक्ति वायु अन्दर खीचो, फिर बीच में तनिक देर भी विश्राम किये बिना बायाँ नथुना बन्द करके दाहिने नथुने से वायु निकालो फिर दाहिने नथुने से वायु ग्रहण करके वायु को निकालो। दिन भर में चार बार, अर्थात उषा, मध्याह्न, सायकाल और निशीथ इन चार समय पूर्वोक्त क्रिया का तीन बार या पाँच बार अभ्यास करने पर, एक पक्ष या महीने भर में नाडी शुद्धि हो जाती है। उसके बाद प्राणायाम पर अधिकार होगा।[1]"

नाडी-शोधन के पश्चात वास्तविक प्राणायाम की क्रिया प्रारम्भ होती है। कई प्रकार के प्राणायाम होते हैं। किन्तु उनमें सबसे प्रसिद्ध पूरक, कुम्भक और

---

१ श्वेताश्वरोपनिषद् शाकर भाष्य, ॥ २ ॥ ८ ॥

रेचक क्रिया वाला प्राणायाम ही है। एक नथुने को दबाकर दूसरे नथुने से वायु खींचना पूरक है, दोनों नासिक-छिद्रों को दबाकर वायु को यथाशक्ति रोकना कुंभक है, जिस नथुन से वायु भरी गयी है, कुंभक के पश्चात उसे अँगुलियों से दबाकर दूसरे नथुने से वायु धीरे-धीरे निकालना रेचक है। इसकी पुनरावृत्ति करनी पड़ती है। सूक्ष्म अनुभूति सम्पन्न होने के लिये हमें पहले स्थूल से प्रारंभ करना पड़ेगा। देखना होगा कि सारे शरीर-यन्त्र को चलाता कौन है, और उसे अपने वश में लाना होगा। वह प्राण है, इसमें कोई सन्देह नहीं। श्वास प्रश्वास ही उस प्राण-शक्ति की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। इसी से हम देह के भीतर की सूक्ष्म शक्तियों के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे और समझ सकेंगे कि स्नायविक शक्ति-प्रवाह किस तरह शरीर में सर्वत्र भ्रमण कर रहे हैं। और जब हम मन में उनका अनुभव कर सकेंगे तब उन्हें और उनके साथ देह को अधिकार में लाने के लिए हम प्रारम्भ करेंगे। मन भी इन सब स्नायविक शक्ति प्रवाहों द्वारा संचालित हो रहा है। इसलिए उन पर विजय पाने से मन और शरीर, दोनों ही हमारे अधीन हो जाते हैं, हमारे दास बन जाते हैं। प्राण ही परम शक्ति है और इसे ही प्राप्त करना हमारा उद्देश्य है।

योग सम्बन्धी साधना में प्राणायाम का अत्यधिक महत्व है स्वामी विवेकानन्द के अनुसार "जिन्होंने प्राण को पकड़ा है उन्होंने संसार में जितनी शारीरिक या मानसिक शक्तियाँ हैं, सबको पकड़ लिया है। जिन्होंने प्राण को जीता है, उन्होंने अपने ही मन को नहीं, वरन् सबके मन को भी जीत लिया है। जिन्होंने प्राण को जीत लिया है, उन्होंने अपनी देह और दूसरी जितनी देह हैं, सबका अपने अधीन कर लिया है, क्योंकि प्राण ही सारी शक्तियों की सामान्यीकृत अभिव्यक्ति है।"[1]

स्वामी विवेकानन्द जी ने प्राणायाम की महती शक्ति का इसी प्रसंग में इस प्रकार वर्णन किया है, "जो प्राण संसार में सर्वत्र व्याप्त है, उसका जो अंश इस शरीर और मन में कार्यशील है, वही अंश हमारे सबसे अधिक निकट है। यह जो क्षुद्र तरंग है—जो हमारी शारीरिक और मानसिक शक्तियों के रूप में परिचित है, वह अनन्त प्राण-समुद्र में हमारे सबसे निकटतम तरंग है। यदि हम उस क्षुद्र तरंग पर विजय प्राप्त कर लें, तभी हम समस्त प्राण-समुद्र को जीतने की आशा कर सकते हैं। जो योगी इस विषय में कृतकार्य होते हैं, वे सिद्धि पा लेते हैं, तब कोई भी शक्ति उन पर प्रभुत्व नहीं जमा सकती। वे एक प्रकार से सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ हो जाते हैं।"[2]

१ विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ६०।
२ विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ६०-६१।

प्रत्याहार का अर्थ है—'एक ओर आहरण करना, अर्थात खींचना'। राजयोगी मन की बहिर्गति को रोककर उसे अन्तर्मुखी करता है। जो इच्छामात्र से अपने मन को केन्द्रों में संलग्न करने अथवा उन्हें हटा लेने में सफल हो गया हो, उसी का प्रत्याहार सिद्ध हुआ है। जो व्यक्ति मन की अधोगामिनी गति को ऊर्ध्वगामिनी बना लेता है वही मुक्तिपद का वास्तविक अधिकारी होता है, अन्यथा वह इन्द्रियाराम है मशीन मात्र है। इस प्रकार मन का संयम करना और उसे विभिन्न इन्द्रियों और उनके विषयों के साथ संयुक्त न होने देना ही प्रत्याहार है। इसमें दीर्घकाल के अभ्यास एवं असीम धैर्य की आवश्यकता पड़ती है।

प्रत्याहार की साधना के अनन्तर, धारणा का अभ्यास अपेक्षित है। धारणा का अर्थ है—मन को देह के भीतर या उसके बाहर किसी स्थान विशेष में धारण या स्थापन करना। अतः इसका वास्तविक अर्थ है कि मन को शरीर के अन्य सब स्थानों से पृथक करके किसी एक विशेष अंश के अनुभव में बलपूर्वक लगाये रखना। इस क्रिया के लिये नियमित अभ्यास आवश्यक है। इसमें स्वाध्याय परमावश्यक होता है। स्वाध्याय से हमारा लक्ष्य अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। अनुभूतिमय आप्त ग्रन्थों का मननपूर्वक अध्ययन करना और तदनुसार अपना आचरण बनाना वास्तविक स्वाध्याय है। मन को एकाग्र करने पर एक सामान्य सी पिन का गिरना भी वज्र के गिरने के समान प्रतीत होता है। इससे इन्द्रियाँ अत्यन्त सूक्ष्म होते जाते हैं और उसके परिणामस्वरूप अनुभूति में भी उत्तरोत्तर प्रगाढ़ता आती जाती है। सच्चा योगी एक शुद्ध विचार को लेता है, उसका अहर्निश चिन्तन करता है और उसकी पूर्ति के लिए अपने समस्त जीवन के क्रियाकलापों को केन्द्रीभूत कर देता है। राजयोगी इस प्रकार के धैर्य एवं उत्साह से सदैव युक्त रहता है—'मैं चुल्लू में समुद्र पी जाऊँगा। मेरी इच्छामात्र से पर्वत चूर-चूर हो जायेंगे।'

प्रत्याहार एवं धारणा की पूर्णता के अनन्तर ध्यान की सोपान प्राप्त होता है। लक्ष्य-वस्तु में चित्त एवं मन को केन्द्रीभूत कर देना ध्यान है। ध्यान की परिपक्वावस्था का नाम समाधि है। यह 'ज्ञानातीत' अवस्था है। मन-बुद्धि की इस अवस्था में गम नहीं है। इसी को 'द्वन्द्वातीत' अथवा 'त्रिगुणातीत' अवस्था कहा जाता है। कहीं-कहीं इसे 'तुरीयावस्था' की संज्ञा दी गयी है। हिन्दी में मध्यकालीन सन्त कवियों ने इसे 'चतुर्थ पद', 'सहज पद' अथवा 'निर्वाण पद' भी कहा है। इस अवस्था की अनुभूति करने के पश्चात् मनुष्य की समस्त शंकायें समाप्त हो जाती हैं। उसे चारों ओर अपना ही स्वरूप दिखलायी पड़ता है। यही परम पद है और मनुष्य-जीवन का परम पुरुषार्थ है। इसी की प्राप्ति के लिये हम

मनुष्य-योनि के अन्तर्गत आये हैं। अन्य प्राणी इन्द्रियों में सुख पाते हैं, मनुष्य बुद्धि में और देव-मानव आध्यात्मिक आनन्द में। जो इस स्थिति को प्राप्त हो चुके हैं उनके पास यह जगत् सचमुच अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रतीयमान होता है। जो वासना रहित हैं, सभी विषयों से निर्लिप्त हैं, बाह्य प्रकृति एवं अन्तप्रकृति के समस्त पदार्थ उनके अपने हो जाते हैं। वह जगत के समस्त पदार्थों में आनन्द लेने लगता है। सारा दृश्यमान जगत् उसे अपने से पृथक और भिन्न नहीं प्रतीत होता। उसकी बुद्धि 'सम' हो जाती है। उसकी दृष्टि में द्वैत रहता ही नहीं। उसकी दृष्टि आत्ममयी अथवा ब्रह्ममयी हो जाती है।

यह तो संक्षेप में राजयोग की चर्चा हुई। अब हमें यह देखना है कि स्वामी राम ने कहाँ तक राजयोग की साधना की थी और उन्हें उस लक्ष्य में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई थी। हम पहले यह बता चुके हैं कि यम और नियम राजयोग के प्रारम्भिक सोपान हैं। यम के पाँच अंग हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इसी प्रकार नियम के भी पाँच अंग हैं—शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। यदि स्वामी राम के जीवन पर हम विचार करें, तो हमें यह भलीभाँति ज्ञात हो जायेगा कि स्वामी राम अपनी बाल्यावस्था से ही राजयोगी थे। यम और नियम के ऊपर के कहे गये दस गुण स्वामी राम का सहज स्वरूप था। बिना उन गुणों के वे रह ही नहीं सकते थे। 'अहिंसा', 'सत्य' एवं 'अस्तेय' ये तीन गुण तो जिस गोस्वामी वंश में उन्होंने जन्म ग्रहण किया था, उसके सहज आभूषण थे। इन तीनों गुणों के लिये तो गोस्वामी-वंश भारत विख्यात था। इस प्रकार इन्हें तो स्वामी राम ने अपने पूर्वजों से विरासत रूप में प्राप्त किया था। यद्यपि स्वामी राम का बालविवाह कर दिया गया था, तथापि इससे वे असन्तुष्ट थे और यदा-कदा अपना रोष अपने पिता पर अभिव्यक्त भी करते थे। स्वामी राम को यद्यपि नैष्ठिक ब्रह्मचारी की संज्ञा तो नहीं दी जा सकती, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि नियमित ब्रह्मचारी अवश्य थे। वे साधना मार्ग में ब्रह्मचारी का अत्यधिक महत्त्व समझते थे। और वैवाहिक जीवन में यथाशक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। अपने वानप्रस्थ जीवन में तो उन्होंने ब्रह्मचर्य-पालन पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। यदि उनकी वृत्ति ब्रह्मचर्य-पालन की ओर न होती, तो वे गृहस्थी, पत्नी का परित्याग ही क्यों करते? गृहस्थ धर्म का पालन करते हुये भी स्वामी राम ब्रह्मचर्य के प्रति अत्यन्त निष्ठावान् थे। ऐसे गृहस्थ-योगियों का हिन्दू धर्म में संन्यासियों से कम प्रतिष्ठा नहीं मानी गयी है। जनक, व्यास, वशिष्ठ एवं गुरु नानक का नाम अत्यन्त श्रद्धा से स्मरण किया जाता है। स्वामी राम जब तक गृहस्थाश्रम में रहे, तब तक उसी दृष्टि से रहे।

अत इसमें रचमात्र सन्देह नही कि वे गृहस्थाश्रम के बीच भी ब्रह्मचर्य-व्रत का शास्त्रानुसार पालन करते थे। स्वामी राम जन्मजात 'अपरिग्रही' थे। उन्होंने जीवन भर किसी सासारिक वस्तु का परिग्रह नही किया। विद्यार्थी जीवन में जब उन्हें ऊँची छात्रवृत्ति मिलती थी, तो उसमें से केवल कुछ भाग ही अपने ऊपर खर्च करते, शेष अपने गुरु भक्त धन्नाराम एव अपने पिता को समर्पित कर देते थे। प्राध्यापक होने पर भी उनकी अपरिग्रह वृत्ति अक्षुण्ण बनी रही। पर्याप्त रुपये पाने पर भी व अपनी आवश्यक्ताओ पर बहुत कम और समझ-बूझ कर व्यय करते थे। अपनी आवश्यकताओ की कटौती करके वे निर्धन और असहाय छात्रो की सहायता करते थे।

नियम के पाँच अगो के स्वामी राम साकार विग्रह थे। हमारी तो ऐसी धारणा है कि उन नियमो को केन्द्रीभूत करने के लिये स्वामी राम इस ससार में अवतीर्ण हुए थे। 'शौच उनका सहज स्वभाव था। वे बाह्य और आन्तरिक दोनो दष्टियो से परम पवित्र रहते थे। शरीर नितान्त शुद्ध रखते थे। यह तो गोस्वामियो का वश परपरागत गुण है। आभ्यन्तरिक दष्टि से देखें तो स्वामी राम की भाति किसी अन्य साधक का मिलना दुलभ है। वे मनसा, वाचा, कमणा तीनो प्रकार अत्यन्त पवित्र रहा करते थे। सन्तोष के तो स्वामी जी मूर्तिमान स्वरूप थे। भगवान ने उन्ह उनके प्रारब्धानुसार जिस भी स्थिति में रखा, उससे वे पूर्ण तप्त एव सन्तुष्ट थे। उनके जीवनवत्त को पढते समय, हम पग-पग पर उनके इस विशिष्ट गुण का परिचय पाते ह। स्वामी राम का समस्त जीवन 'तपोमय' था। उनके जीवन के श्वास प्रश्वास में तपस्यायें स्वामी राम के वर्त्तमान जीवन में एकाकार हो गयी थी। स्वामी राम का स्मरण होते ही तपस्या का समग्र रूप हमारे अन्त करण में विराजमान हो जाता है। बाल्यावस्था से स्वामी राम स्वाध्याय-परायण थे। रुग्णावस्था में भी वे कुछ न कुछ स्वाध्याय करते रहते थे। आत्म-साक्षात्कार हो जाने पर, जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त करने के पश्चात् भी उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वेदो का विशद अध्ययन किया। स्वामी राम की यह स्वाध्याय-वृत्ति राजयोगियो को चिरकाल तक प्रेरणा देती रहेगी। ईश्वर प्राणिधान (भगवान में आत्म समपण) की प्रवृत्ति स्वामी राम के तन, मन, प्राण में भरी थी। उनके पत्रों से यह बात भलीभाँति जानी जा सकती है।

स्वामी राम का विभिन्न आसनो के प्रति सहज अनुराग और निष्ठा थी। पद्मासन उनका अत्यन्त प्रिय आसन था। गगा जी में उनके शरीर का विसजन होने के पश्चात् जब उनका शव पाया गया, तो वह पद्मासन की मुद्रा में स्थित

था। यह बड़े आश्चर्य की बात लगती है कि उनका स्वाभाविक शरीर किस प्रकार पद्मासन की स्थिति में हो गया। इससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि जब स्वामी राम को यह दृढ निश्चय हो गया कि अब शरीर के जाने का समय आ गया है, तब उन्होंने झटपट अपना प्रिय आसन पद्मासन लगा लिया। आसन लगाकर प्राण विसर्जन करना, पद्मासन के प्रति आन्तरिक निष्ठा का परिणाम है। इसमें सन्देह नही कि यह आसन कठिन है, किन्तु ध्यान धारणा के लिये सिद्धासन और पद्मासन सर्वश्रेष्ठ आसन माने जाते है।

प्राणायाम के स्वामी राम नियमित अभ्यासी थे। उन्होंने अपने व्याख्यानो एव सामान्य वार्ताओं में प्राणायाम के प्रति अगाध निष्ठा व्यक्त की है। उन्होंने अपने एक व्याख्यान—"आत्मानुभव की सहायता न० १—प्राणायाम" में प्राणायाम की महत्ता एव उसकी प्रक्रियाओं पर प्रकाश डाला है। उसमें प्राणायाम के प्रति उनकी प्रत्यक्षानुभूति भलीभांति परिलक्षित होती है। बिना प्रत्यक्षानुभूति के स्वामी राम अपनी जबान पर कोई भी बात नही लाते थे। प्राणायाम सबधी उनके विचार नीचे दिये जा रहे है, इससे प्राणायाम के अभ्यासियो को भी पर्याप्त लाभ होगा—

"राम केवल यह कहता है कि प्राण के नियत्रण की यह विधि सीखो और इसे अमल में लाओ। आपको अपना अभ्यास ही बता देगा कि यह अत्यन्त उपयोगी है। जब कभी तुम चकराओ, जब कभी तुम्हें विषाद जान पड़े, जब कभी खिन्न हो जब कभी तुम्हें उदासी जान पड़े, जब कभी तुम्हारा मन मलीन हो, निरुत्साही, तब प्राणायाम करो, जिसे राम तुम्हारे सामने उपस्थित करने लगा है और तुम देखोगे कि तुम्हें तुरन्त शान्ति मिल जाती है। प्राण के नियमन की इस विधि का लाभ आपको तुरन्त ही जान पड़ेगा। पुन जब कभी किसी विषय पर आप लिखना शुरू कीजिये जब कभी आप किसी विषय पर विचार करना प्रारम्भ करें और आपको जान पड़े कि आप अपने विचारो का काबू में नही ला सकते, तब आप यह प्राणायाम कीजिये और इसके करने से आपको तुरन्त जो शक्तिया प्राप्त होगी उनसे आपको स्वय आश्चर्य होगा। प्राणायाम के ये लाभ हैं— इससे आपके बहुत से शारीरिक रोग दूर हो जायेंगे। प्राणायाम से आप पेट के दर्द से, सिर के दर्द से, दिल के दर्द से अच्छे हो सकते हैं। अब हम देखेंगे कि प्राणायाम क्या है ?

"प्राणायाम करने के लिये आपको अत्यन्त सुखकर, सरल स्थिति में बैठना चाहिये। एक पाँव दूसरे पर चढ़ाकर बैठना बड़ा ही सुखकर आसन है। किन्तु,

ए पश्चिमी भाइयो यह आसन आपके लिये अत्यन्त कष्टदायी प्रतीत होगा। इसलिये आप आरामकुर्सी पर बैठ सकते हैं। अपनी दृष्टि सीधी रखिये, रीढ़ की हड्डी कड़ी रखिये, सिर ऊपर, सीना बहिर्गत और नेत्र सामने रखिये। दाहिने हाथ का अँगूठा दाहिने नथुने पर रखिये और बायें नथुने से धीरे धीरे भीतर साँस खींचिये। तब तक धीरे धीरे भीतर साँस खींचते रहिये, जब तक आपको आराम मिले। जब तक आराम से साँस खींच सकें, तब तक साँस भीतर खींचते रहें। साँस भीतर खींचते समय चित्त को शून्य न होने दीजिये। साँस को भीतर खींचते समय चित्त की एकाग्रता से इस विचार पर जमाइये कि सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्व परमेश्वर भीतर खींचा जा रहा है। मानो आप परमात्मा, नारायण, सम्पूर्ण संसार सम्पूर्ण विश्व को पी रहे हैं। अस्तु, जब आपको समझ पड़े कि आपने अपनी पूर्ण शक्ति भर वायु भीतर भर ली है, तब अँगुली से उसी बायें नथुने को बन्द कीजिये, जिससे आप भीतर साँस भर रहे थे, और आप जब दोनों नथुने बन्द कर लें, तब मुख से साँस बाहर न निकलने पावे। भीतर खींची हुई साँस (वायु) अपने अन्दर फेफड़ों में, पेट में, पेड़ू में स्थिति रहने दो। समस्त छिद्र वायु से भरे हों। उस वायु से भरे हों, जो आपने भीतर खींची है। जब साँस से खींची हुई वायु आपके भीतर रहे, तब मन को शून्य न रहने दीजिये। मन इस विचार में, इस सत्य में केन्द्रित रहे कि 'मैं परमात्मा हूँ, मैं सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हूँ, जो विश्व की प्रत्येक वस्तु में, प्रत्येक अणु-परमाणु में व्याप्त है, परिपूर्ण है।' बस, यही समझो। इस विचार की उपलब्धि में अपनी सारी शक्तियों का प्रयोग कीजिये, अपनी परमेश्वरता की अनुभूति में अपनी सारी शक्ति केन्द्रीभूत कर दें। ज्यों-ज्यों सांस आपकी देह में भरती जाय, त्यों-त्यों अनुभव कीजिये और समझिये कि 'मैं सत्य हूँ, मैं वह दैवी शक्ति हूँ जो सम्पूर्ण विश्व में परिपूर्ण है।' बस, यही समझिये। आवश्यकता है कि आप अपने मन को इस पर एकाग्र करें। जब आप को प्रतीत होने लगे कि अब आप साँस एक क्षण भी अधिक नहीं रोक सकते, तब बायां नथुना बन्द रखकर दाहिना नथुना खोल दीजिये और दाहिने नथुने से धीरे-धीरे क्रमशः साँस बाहर निकालिये। तब भी मन को सुस्त न होने दीजिये, वह निरन्तर काम में लगा रहे। मन को अनुभव करने दीजिये कि ज्यों-ज्यों साँस बाहर निकल रही है, त्यों-त्यों पेट की सारी मलिनता दूर हो रही है, सारी गंदगी सारी दुष्टता, दुर्गन्धता, सम्पूर्ण अविद्या बाहर निकल रही है, दूर की जा रही है, त्यागी जा रही है। अब सारी दुर्बलता काफूर हो गयी, न कोई दुर्बलता है, न अविद्या है, न भय है, न चिन्ता, न व्यथा, न परेशानी और न क्लेश। सबका अन्त हो गया, सब विदा हो गये, आपको छोड़ गये। जब आप

साँस बाहर निकाल दें—आराम से जितनी साँस बाहर निकाल सक्ते हो, उतनी जब आप निकाल चुकें, तब तक आप साँस बाहर निकालते रहें, जब तक आप आराम से बाहर निकाल सकते हैं। और जब आपको समझ पडे कि अब और सास बाहर नही निकाली जा सकती, तब दोनो नथुना को खुले रखते हुये यत्न कीजिये कि तनिक भी वायु भीतर न जाने पावे। हाथ नाक से हटा लें और कुछ देर तक वायु को भीतर न जाने दो, जितनी देर तक आपसे ऐसा हो सके, उतनी देर तक। जब आपके प्रयत्न से वायु नथुनो के द्वारा फेफडो में न जाने पाती हो, तब भी मन को फिर काम में लगाइये और उसे यह भान करने दीजिये, अपने पूरे बल और शक्ति से उसे यह अनुभव करने दीजिये कि वह परमेश्वरत्व से परिपूर्ण है। सम्पूर्ण समय (काल) और स्थान (देश) मेरा अपना विचार है, मेरी सत्य आत्मा, निज स्वरूप, समय, स्थान और कारणत्व (देश, काल और वस्तु) से परे है। अनुभव कीजिये कि यह परमेश्वरत्व देश-काल-वस्तु से परे है इस ससार की किसी भी वस्तु से परिमित नही है। वह कल्पनातीत है, विचारातीत है। वह इन सबसे परे है, प्रत्येक वस्तु से परे है, अपरिमित है, प्रत्येक वस्तु इसी में स्थित है, प्रत्येक वस्तु इससे आच्छादित है। 'आत्मा अथवा आत्म-स्वरूप (निज स्वरूप) सीमाबद्ध नही हो सक्ता। यही अनुभव कीजिये।

"इस प्रकार आप ध्यान दें कि इस प्राणायाम में, जितना कुछ अब तक आप के सामने रखा गया है चार प्रक्रियायें है—दोनो मानसिक और शारीरिक। पहली प्रक्रिया भीतर सास खीचने की थी। भीतर साँस खीचने का अश शारीरिक क्रिया थी। और यह विचार या विचार-विधि अथवा अनुभव करना और समझना कि मैं परमेश्वर रूप हूँ, मैं परमेश्वर हूँ तथा उस परमेश्वरत्व का अनुभव करने में मन को लगाना, उसमें शक्ति को प्रयत्नशील करना यह विचार तत्सबधी मानसिक प्रक्रिया थी। फिर जब तब आपने सास अपने फेफडो मे भीतर रोक रखी, तब तक दो क्रियायें होती रही, एक तो साँस को फेफडों में रखने की शारीरिक क्रिया और अपने आप को सम्पूर्ण विश्व समझने की मानसिक प्रक्रिया। तीसरी प्रक्रिया में आपने दाहिने नथुने से सास बाहर निकाली और सारी दुबलता दूर कर दी, अपने को परमेश्वरत्व में स्थापित रखने, आसीन रखने, जमे रहने की, कभी कोई दुबलता पास न फटकने देनी की, या कोई आसुरी-प्रलोभन अपने निकट न आने देने की दृढ प्रतिज्ञा की और तदन्तर चौथी प्रक्रिया साँस को बाहर रखने की थी। इस प्रकार प्राणायाम का पूर्वार्द्ध अब तक की इस चौथी प्रक्रिया से हो गया। आधा प्राणायाम समाप्त हो गया। यह चौथी क्रिया कर चुकने के बाद, आप कुछ विश्राम ले सकते हैं। तब सास को यथेच्छ अपने नथुनो में भरने दीजिये। उसी तरह जल्दी-जल्दी

साँस भीतर ले जाइये और बाहर निकालिये, जैसा कि दूर तक चलने के बाद होता है। साँस का यह स्वाभाविक भीतर जाना और बाहर निकलना, जो बहुत शीघ्रता से होता रहता है, स्वत प्राणायाम है। यह प्राकृतिक प्राणायाम है। इस प्रकार का विश्राम लेने के बाद कुछ, देर तक अपने फेफड़ा को भीतर साँस लेने और बाहर निकाल देने के पश्चात् पुन प्राणायाम कीजिये। अब प्रारम्भ करे, बायें से नही, बल्कि दाहिने नथुने से। मानसिक क्रिया पूर्ववत् होनी चाहिये। केवल नथुने में परिवर्तन हो गया। इस प्रकार सब मिलाकर इसमें आठ क्रियायें है। पहली चार क्रियाओ में आधा प्राणायाम होता ह और दूसरी चार से प्राणायाम का उत्तरार्द्ध भाग पूरा होता है। इन सब क्रियाओ को यथासाध्य बढाइये और दीर्घकालीन कीजिये। इसमें एकताल गति है। जिस तरह लटकन (पेंडुलम) दोनो ओर समान गति स झूलता है, उसी तरह इस प्राणायाम के अभ्यास में आपको अपनी साँस को लटकन जैसा बनाना होता है। तालबद्ध चाल से चलाना होता है। तब आप अपने ही अनुभव से देखेंगे कि आपका कितने बल की प्राप्ति हो रही है। आपके अधिकाश रोग आपका छाड देते है। यक्ष्मा, पेट के विकार, रक्त-सबधी बीमारियाँ और प्राय प्रत्येक राग आपको छोड दगा, यदि आप प्राणायाम का ठीक-ठाक अभ्यास करेंगे।"

स्वामी राम प्राणायाम-साधना में पूर्ण दक्ष प्रतीत होते है। इसी से उन्होंने नवीन प्राणायाम-साधका को आगाह भी किया है। यदि उन्हें इस सबध में प्रत्यक्षानुभूति न होती, तो वे इतनी सूक्ष्मता से उनकी त्रुटिया का पकड कर उन्हें अनुभव पूर्ण चेतावनी नही दे सकते थे—

'राम यह भी देखता है कि जब लोग प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ करते हैं, तब उनमें से अधिकाश बीमार पड जाते है। कारण यह है कि वे स्वाभाविक प्रणाली को नही ग्रहण कर पाते। वे इतने सेकण्डो तक सास भीतर खीचते और बाहर निकालते है कि जिससे निश्चित ही बीमार पड जायेंगे। श्वासक्रिया की प्रत्येक प्रणाली में आप स्वाभाविक बनिये। प्रत्येक क्रिया को बढाने का प्रयत्न कीजिये। भरसक यत्न कीजिये, किन्तु अपने को थका न डालिये। अधिक काम न कीजिये। यदि केवल पहली दो क्रियायें (अर्थात सास भीतर खीचना और उसे फेफडे में रखना) करने के बाद आपको थकावट प्रतीत हो, तो रुक जाइये। रुक जाइये, क्योकि आप किसी से बँधे नहा ह। दूसरे दिन अधिक विचारपूर्वक काम कीजिये और पहली या दूसरी क्रिया करते समय अपनी शक्ति बचा रखिये, ताकि शेष क्रियाओ को भी आप विधिवत सम्पन्न कर सकें। इसमें विवेक से काम लीजिये।"

"प्राणायाम के सबध में एक बात और कही जानी चाहिये। जब आप सॉंस भीतर खीचना या बाहर निकालना प्रारम्भ करें, तब अपने पेड़ू को (इस शब्द के व्यवहार के लिये राम को क्षमा कीजिये) शरीर के अधोभाग को भीतर की ओर खिचा रखिये। इससे आपका बडा हित होगा। पुन जब आप सॉंस भीतर खीचें अथवा बाहर निकालें, तब सॉंस को अपने सम्पूर्ण उदर में दौडने और भरने दीजिये। ऐसा न हो कि सॉंस केवल हृदय तक जाय और हृदय से नीचे न जाने पाये। सॉंस को नीचे और गहरा उतरने दीजिये। अपने शरीर का प्रत्येक भीतरी रिक्त स्थान, अपने शरीर का समस्त ऊपरी आधा भाग वायु से परिपूर्ण हो जाने दीजिये। अस्तु, प्राणायाम के सबध में इतना यथेष्ट है।"

स्वामी राम राजयोगियो के भी राजयोगी थे, इसमें कोई सन्देह नही। उन्होने राजयोगियों के एक सहज मन्त्र—सोऽह को अपना इष्ट मन्त्र बना लिया था। सोऽह का जप 'अजपा जप' कहलाता है। इस मन्त्र की विधि श्वास-प्रश्वास की सहज क्रिया पर अवलम्बित है। 'सोऽह' का अर्थ है—'वही (परब्रह्म) मैं हूँ'। इसका मुख्य सिद्धान्त है ब्रह्म और जीव की अभिन्नता एव एकता। 'सोऽह' ब्रह्मचिन्तन का दृढ आधार और उच्च सोपान है। वेदो एव उपनिषदो में 'सोऽह' के सिद्धान्त का भली भाँति सकेत किया गया है। उदाहरणार्थ—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित मुखम्
योसावादित्ये पुरुषः सोसावहम् ॥

शुक्ल यजुर्वेद, ४० । १७

अर्थात् "सत्य स्वरूप परब्रह्म प्रकाशमय सूर्यमण्डल की चमचमाती हुई ज्योतिमयी यवनिका से आवृत है। जो प्रकाश स्वरूप में परम कल्याणमय तेज प्रतिष्ठित है वह मैं ही हूँ।"

बृहदारण्यकोपनिषद् के पाँचवें अध्याय के पन्द्रहवें ब्राह्मण की प्रथम श्रुति का कुछ अश एव ईशावास्योपनिषद् के सोलहवें मन्त्र बिलकुल समान हैं। उसमें 'सोऽह' की बडी उदात्त भावना पायी जाती है—

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह। तेजो यत्ते रूप कल्याणतम तत्ते पश्यामि। योऽसावसौ पुरुष सोऽहमस्मि॥

अर्थात्, "हे सब का पोषण करने वाले, हे आकाश में एकाकी गमन करने वाले, हे सब पर शासन करने वाले, हे सब को रश्मि प्रदान करने वाले, हे प्रजापति के पुत्र, अपनी किरणों को हटा ले और तेज को समेट ले। तेरा जो अत्यन्त कल्याणमय रूप है, उसे मैं देखता हूँ। यह जो आदित्यमण्डल पुरुष है, वही मैं अमृतस्वरूप हूँ।"

'सोऽहं' का यह भावना मध्यकालीन हिन्दी के सन्त कवियों में अत्यधिक उपलब्ध होती है। कबीरदास, सुन्दरदास, पलटू साहब, गुलाल साहब, गरीबदास, दयाबाई, बुल्लेशाह, मलूकदास आदि के काव्य में 'सोऽहं' की अनुभूति समान रूप से प्राप्त होती है।

सन्त कवि भीखा 'सोऽहं' को आत्मदर्शन का बहुमूल्य साधन मानते हैं—

जोग जुगुति अभ्यास करि, सोहं सबद समाय।
भीखा गुरु परताप ते, निज आतम दरसाय।।

—भीखा (स० वा० स० भाग १, पृष्ठ २१०)

दयाबाई के अनुसार 'सोऽहं' वह अजपा जप है जिसके अभ्यास के द्वारा साधक की गति अगम हो जाती है, जहाँ किसी की गति नहीं है, वहाँ की दुर्लभ-गति 'सोऽहं' का उपासक प्राप्त कर लेता है—

अजपा सोहं जाप है परम गम्य निज सार

—दयाबाई (स० वा० स० भाग १, पृष्ठ १६६)

कबीरदास ने 'सोऽहं' को ब्रह्म तक पहुँचने की डोरी माना है—

लगी सोहंगम की डोरि

सन्त कवि मलूकदास ने बारम्बार इस साधना पर बल दिया है कि 'सोऽहं' की साधना से जीव ब्रह्ममय हो जाता है और संसार के त्रय-तापों से उसकी मुक्ति हो जाती है—

सन्तो सोहं साधन कीजै।
सोहं साधन ते ताप मिटत है, जीव ब्रह्म होइ जाये।

गरीबदास ने 'सोऽहं' को ही साक्षात् ब्रह्म की संज्ञा दी है—

तुमही सोहं सुरत हो, तुम ही मन अरु पौन।
इसमें दूसर कौन है, आवें जाय सो कौन।

सन्त कवि सुन्दरदास ने भी 'सोऽहं' जप की अत्यधिक महत्ता बतायी है। श्वास प्रश्वास पर उसकी आवृत्ति की ओर संकेत किया है और उसे सर्वश्रेष्ठ जप माना है—

सोहं सोहं सोहं हंसो। सोहं सोहं सोहं अंसो।
स्वासो स्वास सोहं आप। सोहं सोहं आपै आप।।

(सु० ग्र०, भाग १, पृष्ठ ४७,)

मन सो न माला कोऊ, सोहं सो न जाप और,
आतम सो देव नाहिं, देह सों न देहरा।।

—(स० वा० स० २, पृष्ठ १२५)

तात्पर्य यह कि 'सोऽहं' साधना की सन्त कवियों ने ब्रह्म-साक्षात्कार का सर्वोत्कृष्ट साधन माना है। श्वास प्रश्वास के द्वारा 'सोऽहं' का जप राजयोगी को सर्वोच्च साधना मानी जाती है। इस जप से श्वास प्रश्वास की गति के निरीक्षण में अत्यधिक सहायता मिलती है। इस जप में सहज प्राणायाम प्रत्येक क्षण होता रहता है। इसमें शारीरिक श्रम भी नही करना पडता। वृत्ति मात्र लगानी पडती है। इसके अभ्यास से बहिर्मुखी वृत्तियाँ सहज ही में अन्तर्मुखी हो जाती हैं। साधक में साक्षी भाव अपने आप आ जाता है। निरन्तर अभ्यास से 'सोऽहं' साधक के ऊपर बलात सवारी किये रहता है। अभ्यास की दृढता से सोते समय भी यह मत्र स्वत होता रहता है। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण 'सोऽहं' जप राजयोगियों का अत्यन्त प्रिय मत्र है।

स्वामी राम की 'सोऽहं' के प्रति अगाध निष्ठा थी। उन्होने इसके सबध में अपनी अनुभूतियाँ स्थल-स्थल पर प्रकट की है—

यह एक बडा ही उपयोगी मत्र है, जिससे प्रत्येक को परिचित होना चाहिये। वह है 'सोऽहं'। अग्रेजी भाषा में 'सो' का अथ है 'ऐसा', किन्तु सस्कृत भाषा में 'सो' का अथ होता है 'वह'। 'वह' का अथ सदा परमेश्वर या परमात्मा होता है। इस तरह 'सो का अथ परमेश्वर है। भारत में स्त्री अपने पति का नाम कभी नही लेती। उसके लिये ससार में केवल एक पुरुष है और वह एक पुरुष उसका पति है। वहाँ स्त्री अपने पति को सदैव 'वह' कहा करती है, मानो समस्त ससार में उसके लिये पति के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति है ही नही। फलत, उसके लिये 'वह' सदा परमेश्वर है, वही परमेश्वर सदा उसके विचारो में है। इसी तरह वेदान्ती के लिये 'सो' शब्द का अर्थ सदैव परमेश्वर अथवा परमात्मा होता है। मेरा स्वरूप केवल एक सत्यमात्र है, यह विचार निरन्तर चित्त में रहना चाहिये।"

इस सो' की व्याख्या के अनन्तर स्वामी राम ने 'सोऽहं' जप की विधि की अनुभव पूण व्याख्या की है—

"'सोऽहं' श्वास से निकलने वाली स्वाभाविक ध्वनि है। बस, इस शब्द की पूण महिमा निरन्तर प्रत्येक क्षण हमारे मन में रहनी चाहिये। सास की गति का निरीक्षण करते रहिये और इस सोऽहं मत्र के द्वारा उसे सुरीली बनाइये। यह एक शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक व्यायाम है। साँस लेने में दो क्रियायें समाविष्ट रहती ह—साँस का भीतर जाना और बाहर आना, अर्थात् साँस निकालना। साँस भीतर लेते समय 'सो' शब्द बनता है (अर्थात् साँस भीतर लेते समय 'सो' शब्द की सहज ध्वनि होती है) और साँस बाहर निकालते समय 'हम्'

शब्द प्रतिध्वनित होता है। कभी-कभी अभ्यासी साधक को 'ओ३म्' की अपेक्षा 'सोऽहं' जप का उच्चारण बहुत स्वाभाविक प्रतीत होता है। यह दोनों का आलिंगन करता है। जब धीमे इसकी ध्वनि सुन रहे हो, तब इस पर विचार करो। भीतर ही भीतर और चित्त से इस पर मनन करो, किन्तु इस बीच में स्वाभाविक रीति से निरन्तर श्वास प्रश्वास की क्रिया चलती रहे। यह सच्ची आत्म-सूचना है, जो साधक को इन्द्रियों के आकर्षण और सम्मोहन से हटाकर परमेश्वरत्व में लौटा ले जाती है। 'सोऽहं,' अर्थात 'वही हूँ मै।' विश्व में प्रत्येक क्षण तालबद्ध गति हो रही है। संस्कृत में 'सा' शब्द का अर्थ सूर्य भी होता है। सूर्य हूँ मैं। मैं प्रकाश का देने वाला हूँ, मैं लेता कुछ नही, पर देता सब कुछ हूँ। मै दाता हूँ, लेनेवाला नही हूँ।"

स्वामी राम ने प्राणायाम की अत्यन्त गुह्य साधना की थी। उन्हें उसकी प्रत्यक्षानुभूति थी। अत वे उसकी अड़चनों और कठिनाइयों का भी भलीभाँति समझते थे। इसीलिये उन्होंने प्राणायाम के सम्बन्ध में प्रारम्भिक साधकों को उसकी दुरूहताओ से आगाह भी किया है।

अब 'प्रत्याहार' की बात आती है। प्रत्याहार का अभिप्राय होता है, 'मन की विषयोन्मुखी प्रवृत्ति को लौटाकर उसे अन्तर्मुखी करना'। इस साधना से स्वामी राम का समस्त जीवन ओतप्रोत है। हम उनके जीवन की सामान्य से सामान्य घटना मे उनकी 'प्रत्याहार-प्रवृत्ति' का दृष्टान्त पाते है। उन्होंने अपने मन को बाह्य विषयो से मोडकर इतना अन्तर्मुख बना लिया था कि वे अहर्निश अन्तर्जगत में ही रमण किया करते थे। यही उनकी स्वाभाविक वृत्ति हो गयी थी। वे इस अन्तर्मुखी वृत्ति से रचमात्र भी बहिर्मुख नही होते थे।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार का दृढतापूर्वक आचरण करने से स्वामी राम की धारणा शक्ति में असाधारण विकास हो गया था। वे अपनी धारणा शक्ति के असाधारण धनी थे। अपने विद्यार्थी जीवन में वे जिस वस्तु की धारणा करना चाहते थे, उस पर उनका अलौकिक अधिकार हो जाता था। कालान्तर में उनकी यह धारणा शक्ति जब अध्यात्म की ओर उन्मुख हुई, तब उन्होने इसी के बल पर अध्यात्म विद्या अथवा आत्म-विद्या की गूढतम समस्याओ को अल्पकाल में बडी आसानी से सुलझा लिया। अपनी प्रबल धारणा शक्ति के बल पर ही उन्होने निर्भय स्थिति प्राप्त की।

स्वामी राम 'ध्यान' और 'समाधि' के साकार विग्रह थे। उनका दृढ 'ध्यान' सहज 'समाधि' में परिणत हो गया था। वे निरन्तर आत्म सुख, ब्रह्म भावना में डूबे रहते थे। इसके परिणामस्वरूप वे निरन्तर आत्म-समाधि में निमग्न रहते

थे। उनकी इस विचित्र स्थिति को देखकर अमेरिका के कुछ मनोवैज्ञानिका ने भविष्यवाणी की थी कि "स्वामी राम अन्तजगत् में इतने अधिक निमग्न रहते हैं, कि उन्हें बहिर्जगत का ध्यान ही नही रहता। ऐसी दशा में उनका शरीर अधिक दिनो तक ससार में नही रह सकता।"

हा, एक बात और, स्वामी राम राजयोग की साधनाओ के फलस्वरूप स्वाभाविक रीति से 'अनाहत' शब्द का श्रवण करने लगे थे। इसका उल्लेख उन्होने अपने एकाध पत्र में भी किया है। अनाहत शब्द का बिना किसी प्रकार के प्रयास के स्वत सुनना राजयोग की महान् उपलब्धि मानी जाती है। योग-शास्त्र में स्थान-स्थान पर इस 'अनाहत' शब्द की महिमा का मुक्त कण्ठ से वणन किया गया है। हिन्दी के सन्त कवियों से इसका अनुभूति युक्त वणन किया है।

राजयोग की इन साधनाओ के फलस्वरूप स्वामी राम में कुछ सिद्धियाँ निश्चित रूप में आ गयी थी, जिनका उल्लेख उनके जीवन के प्रसग में कई स्थानो पर किया जा चुका है। इस प्रकार स्वामी राम पक्के राजयोगी थे।

भक्तियोग

भक्तिमार्ग अथवा साधन भारत में बहुत प्राचीन समय से प्रचलित है और इसी को उपासना या भक्ति कहते ह। शाण्डिल्य सूत्र में भक्ति का लक्षण इस प्रकार निरूपित है—"सा (भक्ति) परानुरक्तिरीश्वरे", अर्थात, "ईश्वर के प्रति 'पर' अथवा निरतिशय जो प्रेम है, उसे भक्ति कहते है।" भागवत पुराण में उस भगवद्विषयक प्रेम को निर्हेतुक, निष्काम और निरन्तर माना गया है—"अहेतुक्य व्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे" (भागवत पुराण ३, २९, १२)। जब भक्ति इस हेतु से की जाती है कि "हे ईश्वर ! मुझे कुछ दे", तब वैदिक यज्ञ यागादिक कर्मो के समान उसमें भी कुछ न कुछ व्यापार का स्वरूप समाविष्ट हो जाता है। ऐसी भक्ति 'राजस' कहलाती है और उससे चित्त की शुद्धि तुरन्त नही होती, कालान्तर में होती है। जब तक चित्त की पूरी पूरी शुद्धि नही होती, तब तक परमात्मा की प्राप्ति सभव नही है। अध्यात्म शास्त्र प्रतिपादित पूण निष्कामता का तथ्य इस प्रकार भक्ति माग में भी बना रहता है। इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भक्तो की चार श्रेणियाँ बताकर, उनमें निस्पृह ज्ञानी भक्त को सवश्रेष्ठ भक्त माना है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जना सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥१६॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥

—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ७, श्लोक १६ १७

अर्थात, 'हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! उत्तम कर्म वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात निष्कामी ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझ को भजते हैं। उनमें भी नित्य मुझ में एकीभाव से स्थित हुआ अनन्य प्रेम भक्ति-वाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है क्योंकि मेरे को तत्त्व से जाननेवाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी भी मुझे अति प्रिय है।''

मनुष्य के मन की स्वाभाविक रचना ऐसी है कि सगुण वस्तुओं में से भी जो वस्तु अव्यक्त होती है, अर्थात् जिसका कोई विशेष रूप रंग आदि नहीं और इसीलिये जो नेत्रादि इन्द्रियों को अगोचर है उस पर प्रेम रखना या हमेशा उसका चिन्तन कर मन को उसी में स्थिर करके वृत्ति को तदाकार करना मनुष्य के लिये बहुत कठिन और दुःसाध्य भी है। क्योंकि मन स्वभाव से ही चंचल है, इसलिये जब तक मन के सामने आधार के लिये कोई इन्द्रियगोचर स्थिर वस्तु न हो, तब तक यह मन बारबार भूल जाया करता है कि स्थिर कहाँ होना है। चित्त का यह मानसिक काम बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुषों को भी दुष्कर प्रतीत होता है, तो फिर साधारण पुरुषों के लिये कहना ही क्या ?

श्रीमद्भगवद्गीता में इसीलिये भगवान् श्रीकृष्ण ने निर्गुणोपासना को अत्यधिक दुरूह बताया है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषां अव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥

श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १२, श्लोक ५

अर्थात, 'अव्यक्त में चित्त (मन) की एकाग्रता करनेवाले को बहुत कष्ट होते हैं, क्योंकि इस अव्यक्त गति को पाना देहेन्द्रियधारी मनुष्य के लिये स्वभावतः कष्टदायक है।''

जो परमेश्वर अचिन्त्य, सर्वसाक्षी, सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान् जगदात्मा होकर भी हमारे समान हमसे बोलेगा हम पर प्रेम करेगा, हमको सन्मार्ग दिखायेगा और हमें सद्गति देगा, जिसे हम लोग अपना कह सकेंगे, जिसे हमारे सुख-दुखों के साथ सहानुभूति हो सकेगी, जो हमारे अपराधों को क्षमा करेगा, जिसके साथ हम लोगों का यह प्रत्यक्ष सम्बन्ध उत्पन्न हो कि, "हे परमेश्वर ! मैं तेरा हूँ और तू मेरा है जो पिता के समान मेरी रक्षा करेगा और माता के

समान प्यार करेगा, अथवा जो "गतिभर्ता प्रभु साक्षी निवास शरण सुहृत्" (गीता, अध्याय ९, श्लोक १७ और १८)—अर्थात जिसके विषय में मैं यह कह सकूँगा कि "तू मेरी गति है, तू मेरा विश्रामस्थल है, तू मेरा अन्तिम आधार है।" ऐसा कहकर बच्चो की भाँति प्रेमपूर्वक तथा लाड से जिसके स्वरूप का आकलन मै कर सकूँगा, वही परमात्मा विषयक सच्ची निष्ठा और अनन्य भक्ति है। सत्य-सकल्प, समस्त ऐश्वर्य-सम्पन्न, दयासागर, भक्तवत्सल, परमपवित्र, परम उदार, परम कारुणिक, परम पूज्य, सर्वसुन्दर, सकल गुणनिधान, अथवा सक्षेप में कहें, तो ऐसे लाडले, सगुण, प्रेमगम्य और व्यक्त यानी प्रत्यक्ष रूपधारी सुलभ परमेश्वर ही के स्वरूप का सहारा मनुष्य भक्ति के लिये स्वभावत किया करता है।

भागवतपुराण (७, ५, २३) के अनुसार इस भक्ति के नौ प्रकार बताये गये हैं—

श्रवण कीर्तन विष्णोः स्मरण पादसेवनं
अर्चनं वन्दन दास्य सख्य आत्मनिवेदनम् ॥

नारद के भक्तिसूत्र में इसी भक्ति के ग्यारह भेद किये गये है (ना० सू० ८२)। भक्ति चाहे जिस प्रकार की हो, इतना तो निश्चय है कि परमात्मा में निरतिशय और निर्हेतुक प्रेम करना ही पडेगा। भक्त को अपने इष्टदेव परमात्मा में अपनी तादात्म्य भावना करनी ही पडेगी। इसमें सन्देह नही कि अध्यात्म विचार से या अव्यक्तोपासना से परमेश्वर का जो ज्ञान होता है वही भक्ति से भी हो सकता है—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः
ततो मा तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

गीता, अध्याय १८, श्लोक ५५

अर्थात्, "उस पराभक्ति के द्वारा, मेरे को तत्त्व से भलीभाँति जानता है कि म जो और जिस प्रभाव वाला हूँ तथा उस भक्ति से मेरे को तत्त्व से जानकर, तत्काल ही मेरे में प्रवेश हो जाता है, अर्थात अनन्य भाव से मेरे को प्राप्त हो जाता है, फिर उसकी दृष्टि में मुझ वासुदेव के सिवाय और कुछ भी नही रहता।"

यह तो हुआ भक्ति के सम्बन्ध में कुछ सामान्य विवेचन, अब हमें स्वामी राम की भक्ति-साधना के सम्बन्ध में कुछ बातें करनी है। इसमें सन्देह नही कि स्वामी राम की आध्यात्मिक साधना भक्ति से ही प्रारम्भ हुई और वह भी सकामोपासना से। जब स्वामी राम को विद्यार्थी-जीवन में छात्रवृत्ति नही प्राप्त हुई, तो वे उद्विग्न

हुये। किन्तु उस उद्विग्नता में भी उन्होंने परमात्मा में अपनी आस्था अक्षुण्ण रखी। इसी प्रकार जब वे बी० ए० की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुये, तब भी वे अत्यधिक चिन्तित और दुखी हुये, किन्तु उन्होंने तुरन्त ही अपनी मन स्थिति सँभाल ली। श्रीकृष्ण के प्रति उनकी अपार निष्ठा और आत्म-समर्पण भाव-प्रबल हो गया। और वे अहर्निश 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'' का सस्वर पाठ करने लगे एव श्रीकृष्ण की भक्ति में डूब गये। उन्होंने मनसा, वाचा, कर्मणा अपने को श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी सारी अड़चनें, सारी कठिनाइयाँ स्वत हल होती गयी। इससे उनकी प्रीति में और भी प्रगाढ़ता और अनन्यता आती गयी। इन घटनाओं से स्वामी राम का परमात्मा में विश्वास उत्तरोत्तर दृढ होता गया। अन्त में उन्होंने यह प्रत्यक्षानुभूति की कि परमात्मा की भक्ति निरतिशय और निर्हेतुक होनी चाहिये। वे शीघ्र ही आर्त और अर्थार्थी भक्त की श्रेणी से उत्तीर्ण हो गये और जिज्ञासु भक्त की श्रेणी में आ पहुँचे। आर्त भक्त अपने कष्ट निवारण के लिये परमात्मा को सर्वशक्तिमान् समझ कर उससे प्रार्थना करता है। गज ने ग्राह से उद्धार के निमित्त एव द्रौपदी ने दु शासन से त्राण पाने के लिये, इसी प्रकार की प्रार्थना की थी। बी० ए० परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने पर, स्वामी ने अपने कष्ट-निवारणार्थ, जो भक्ति की थी, वह इसी कोटि के अन्तर्गत आती है। अर्थार्थी भक्त वह है, जो किसी प्रकार के सांसारिक ऐश्वर्य, धन-सम्पत्ति प्राप्ति के हेतु परमात्मा की भक्ति करता है। ध्रुव की प्रारम्भिक भक्ति इसी कोटि के अन्तर्गत आती है। स्वामी राम ने छात्रवृत्ति प्राप्ति के निमित्त अपने गुरु—भक्त धन्नाराम से जो प्रार्थना की, उस भक्ति में इसी श्रेणी की भक्ति-भावना पायी जाती है। अर्थार्थी और आर्त्त भक्त की दृष्टि से जब स्वामी ने परमात्मा की कृपालुता, शक्ति, अनुग्रह, की प्रत्यक्षानुभूति कर ली, तो उसे विशेष भाव से जानने के लिये जिज्ञासु हुये। अत वे अब जिज्ञासु श्रेणी के भक्त हो गये। 'जिज्ञासु' का अभिप्राय है, 'जानने की स्पृहा वाला', अर्थात् जिस साधन के अन्तर्गत परमात्मा के स्वरूप, शक्ति ऐश्वर्य, अनन्तता, अखण्डता, पूर्णता आदि के जानने की उत्कट अभिलाषा हो, वह 'जिज्ञासु' है। पूर्वजन्म के संस्कारों एव अभ्यास के फलस्वरूप स्वामी राम को सांसारिक विषयों के प्रति ग्लानि एव विरक्ति हो गयी, अत वे परमात्मा की अनन्त महिमा जानने के लिये जिज्ञासु हुये। वैराग्य के कारण उनका अन्त करण परम निर्मल एव विशुद्ध हो गया। अत निर्हेतुक भक्ति का अपार सागर उनके भीतर हिलोरें मारने लगा। वे श्रीकृष्ण भगवान् के अनन्य प्रेम में दीवाने हो गये। वे श्रीकृष्ण के विरह में उन्मत्त हो गये। काले बादलों में, कृष्ण सर्प में स्वामी राम को अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की ही छवि दिखलायी पड़ने

लगी। वे विरह में छटपटाने लगे। किसी कवि ने ऐसे विरही भक्तों की विरहावस्था का इस प्रकार चित्रण किया है—

नयनों में आना ये जी छिप जाना कैसा?
फिर के न आना सुभाना जी तरसाना कैसा?
ऐ, रे मनमोहन प्यारे! मेरे नयनों के तारे!
बेगी, तू, आरे, मरती हूँ तेरे मारे,
दरस दिखा जा मोको, बंसी के बजाने वाले!

इसी विरहावस्था के दीवानेपन को वे काले साँप को कृष्ण समझ कर पकड़ने के लिये दौड़ने लगे। कभी कभी उसको पाने के लिये रात-रात भर जगते रहते, दर्शन न पाने पर इतना रोते कि अश्रुधारा से उनका बिस्तर भीग जाता।

स्वामी राम की इस विरहानुभूति में गोपियों का, चैतन्य देव का, रामकृष्ण परमहंस का भगवद् विषयक प्रेम मूर्तिमान हो गया। कहना न होगा कि स्वामी राम के इस अनन्य प्रेम के कारण, इन्हें अपने इष्टदेव—श्रीकृष्ण का दर्शन हो गया। इसका संकेत उन्होंने अपने अनन्य शिष्य नारायण स्वामी से किया है। परिणाम यह हुआ कि स्वामी राम विरहावस्था को पार करके, मिलन की अवस्था में आ गये। पर यह मिलन स्थायी नहीं हो पाता। प्रयास करने पर स्वामी राम को अपने अन्तःकरण में अपने इष्टदेव का दर्शन होने लगा। फारसी के एक शायर की यह उक्ति, उनकी इस अवस्था पर चरितार्थ होती है—

दिल के आईने में है तसवीरे यार।
जब जरा गरदन झुकायी देख ली॥

स्वामी राम ने उपर्युक्त शेर का अनेक बार उद्धरण दिया है।

भक्ति के प्राङ्गण में भक्त का प्रवेश उत्तरोत्तर धीरे धीरे होता है। यदि अत्यन्त विरह, मिलन विरह इन स्थितियों से भक्त न गुजरे तो भक्ति का पूरा-पूरा मजा नहीं आता। शास्त्रों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि इष्टदेव के विरह की तड़पन में भक्त के समस्त पूर्व पाप ताप दग्ध हो जाते हैं और उसके मिलन के आह्लाद अथवा सुख में उसके पूर्वजन्मों के समस्त पुण्य भी भस्मीभूत हो जाते हैं। इस प्रकार भगवान् के भक्त अपने पापों एवं पुण्यों को दग्ध करके एकमात्र भगवान के ही हो जाते हैं। जिस प्रकार गर्भिणी स्त्री, का सारा कार्यभार और कष्ट, बच्चे को जन्म देने पर समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार परमात्मा की प्राप्ति के अनन्तर भक्त के समस्त कार्यभार स्वतः स्वाभाविक रीति से दूर हो जाते हैं। जैसे गर्भिणी स्त्री सन्तान को जन्म देने के अनन्तर, उसी सन्तान को लेकर पड़ी रहती है, उसी

प्रकार भक्त भी भगवान् की प्राप्ति के अनन्तर उसी को लेकर निरन्तर आनन्द-विभोर रहता है।

तपोवन में इष्टदेव के दर्शन के अनन्तर स्वामी राम के दृष्टिकोण में अद्भुत परिवर्तन हो गया। उनकी दृष्टि सर्वत्र इष्टदेव के दर्शन में तन्मय हो गयी। इन्हें सर्वत्र इष्टदेव दिखलायी पड़ने लगा। उनकी विरह-तड़पन सदैव के लिये समाप्त हो गयी। वे इस स्थिति में पहुँच गये—

नजर आती है मुझको हर तरफ दिलदार की सूरत,
कोई जा है नहीं खाली, बिना उस यार की सूरत।

आत्म-समर्पण भावना भक्ति का सर्वस्व है। स्वामी राम ने आत्म समर्पण भाव को आध्यात्मिक प्रगति का आवश्यक अंग माना है। वे कहते हैं—

'लाख यत्न करके देख लो जब तक तुम्हारा सारथी धुंधली आँखों वाला, काना-सा है, तब तक कीचड़ में डूबोगे रेत में धँसोगे गड्ढों में गिरोगे, चोटें खाओगे और चिल्लाओगे। बाबा! सांसारिक बुद्धि को सारथी बनाना दुःख ही दुःख पाना है। अब बात सुनो, फतह (विजय) इसी में है कि अपनी मनरूपी बागडोरी दे दो दे दो उस कृष्ण के हाथ, बस फिर कोई खतरा नहीं, वह इस संसार रूपी कुरुक्षेत्र से जय को साथ लेकर ही निकलेगा। रथ हाँकने में वो वह प्रसिद्ध उस्ताद है। आवश्यकता है हरि को रथ घोड़े और बागें सौंप कर पास बिठाने की, अर्थात् उपासना की—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १८, श्लोक ६६

अर्थात्, "सभी धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों के आश्रय का त्याग कर, केवल एक मुझ सच्चिदानन्द घन वासुदेव परमात्मा की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो जा, मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।"

स्वामी राम ने भगवद् भक्ति अथवा उपासना में आत्मसमर्पण पर बहुत अधिक बल दिया है—

"उपासना की जान समर्पण और आत्मदान है। यदि यह नहीं, तो उपासना निष्फल और प्राण रहित है। भाई, सच पूछो तो हर कोई लेने का यार है। जब तक तुम अपनी खुदी और अहंकार को परमेश्वर के हवाले न करोगे, तब तक तुम्हारे पास बैठना तो दूर, वह तुमसे कोसों भागता फिरेगा, जैसे कृष्ण भगवान् कालयवन से दूर-दूर भागे थे।

स्वामी राम ने भगवान् के सच्चे भक्त की तुलना उस नन्हें शिशु से की है, जो अपने को माता की गोदी में समर्पित कर निद्वन्द्व और निश्चिन्त रहता है। भक्त भी जब अपने को परमात्मा के हवाले कर देता है, तब वह भी परम निश्चिन्त हो जाता है—

"बच्चे ने जब अपना नन्हा सा तन और भोला-भाला मन माता की गोद में डाल दिया, तो सारे जहान (ससार) में उसके लिये कौन-सा आराम शेष रहा और कौन-सी चिन्ता बाकी रही। आँधी हो, वर्षा हो, भूकम्प हो, कुछ हो, उसका बाल-बाँका नही होगा, कैसा निभय है, क्या मीठी नीद सोता ह और सलोनी जाग्रति उठता है।"

स्वामी राम अपनी स्वानुभूति अभिव्यक्त करते हैं कि भगवद् भक्ति अथवा उपासना से अत्यधिक आन्तरिक शक्ति प्राप्त होती है। हमारा इष्टदेव अनन्त ज्ञान एव अनन्त शक्ति का अक्षय भाण्डार है। उसके सान्निध्य में हम अपार शक्ति और ज्ञान अर्जित कर लेते हैं—

"सुषुप्ति द्वारा अज्ञातत परम तत्त्व में लीन होने पर इस कदर शक्ति-बल आ जाता है, तो उपासना ध्यान आदि द्वारा ज्ञातत परम तत्त्व में लीन होने पर, शक्ति, बल और आनन्द क्यो न बढेंगे ? जब देखो कि चिन्ता, क्रोध, काम आदि तमोगुण घेरने लगे है, तो चुपके से उठकर जल के पास चले जाओ, आचमन करो, हाथ-मुंह धोओ या स्नान ही कर लो, अवश्य शान्ति आ जायेगी। हरिध्यानरूपी क्षीरसागर में डुबकी लगाओ, क्रोध के धुयें और भाप को ज्ञानाग्नि में बदल दो।"

स्वामी राम की दृष्टि में सच्ची भक्ति कृपण नही कर सकता, उदारमना से ही सच्ची भक्ति होनी सभव है—

"भक्ति (उपासना) चित्त की उस दर्जे की उदारता का नाम है, जिसमें अपने आप तक को उछाल कर हरिनाम पर वार कर फेंक दिया जाय। तग दिल वाला उपासना के आनन्द को कभी नही पा सकता। जिसका दिल बादशाह नही, वह क्या जाने भक्ति रस को। और बादशाह वह है, जिसका अपने दिल के भीतर से एक लँगोटी (कौपीन) के साथ भी दावा न हो।"

"लोग कहते है कि भजन में मन नही ठहरता, एकाग्रता नहीं होती। एकाग्रता भला हो कैसे ? कृपणता के कारण बन्दर की तरह मुट्ठी से पदार्थों को छोडते नही और मुट्ठी में लिया चाहते है राम को। आखिर ऐसा अनजान (भोला) तो वह भी नही कि अपने आप ही हत्थे चढ जाय—

जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहि काम।

राम तो उससे मिलता हूँ, जो हनुमान जी की तरह हीरों, जवाहरो को फोड कर फेंक द, 'यदि उनमें राम नही है तो इस इनाम को कहाँ धरूँ ? क्या करूँ।"

"भजन करते समय निर्लज्ज चित्त में मकान के खानपान के अपने मान, अपनी जान के ध्यान आ जाते हैं। मन को इतनी समझ नहीं कि ये चीजें चिन्तन योग्य नही, चिन्तन योग्य तो एक राम ही है।"

स्वामी राम ने भक्ति प्राप्ति में याचना को सबसे बडा रोडा माना है। बात यह है कि जब तक सासारिक भोगो के प्रति स्पहा और आसक्ति बनी हुई है, तब तक परा भक्ति अथवा रागात्मिका भक्ति की प्राप्ति दुलभ है। किन्तु परमात्मा से ज्ञान-प्राप्ति तत्त्व-दशन की याचना करना याचना नही है। यह तो भक्ति के सीधे माग प हो जाना है—इस सम्बन्ध में स्वामी राम के विचार इस प्रकार है—

माँगना दो प्रकार ह, एक तो तुच्छ मैं (अहता) को मुख्य रखकर अपनी वृद्धि और भोग कामना के लिये प्राथना करना, और दूसरा ज्ञान-प्राप्ति, तत्त्व दशन, हरिसेवा को परम प्रयोजन ठानकर आत्मोन्नति माँगना। प्रथम प्रकार की प्राथना तो मानो ईश्वर को तुच्छ नामरूप (जीव) का अनुचर बनाना है। अपनी सवा के निमित्त ईश्वर को बुलाना है, उलटी गगा बहाना है। द्वितीय प्रकार की प्राथना सीधी बाट पर जाना है।"

स्वामी राम की दृढ धारणा ह कि अज्ञानपूण सकल्प अधमयुक्त, स्वार्थमय एव सकीण हैं। इनके परिणाम अहितकर होते ह, ये ससार में बाधने वाले होते ह। इनस परमात्मा की सच्ची भक्ति नही प्राप्त हो सकती। बिना सच्ची भक्ति प्राप्ति के शान्ति सन्तोष, तप्ति और आनन्द की उपलब्धि मृगमरीचिका के समान है। अत सच्ची भक्ति प्राप्ति के निमित्त इन सकीण कामनाओ का परित्याग अनिवाय है। सात्त्विक एव कल्याणयुक्त विचारो से आत्मोन्नति और जगत कल्याण, दोनो ही साथ साथ पूरे होते हैं। स्वामी राम ने इस सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्ति किये है—

आत्मा में चित्त के लीन होते समय जो भी सकल्प होगा, सत्य तो अवश्य ही हो जायेगा। परन्तु यदि वह सकल्प अज्ञान, अधम और स्वाथमय है, तो काँटेदार, विषभरे अकुर की नाइ लगकर दारुण परिणाम का हेतु होगा। अहता, ममता और भोग-वासना सम्बन्धी ईश्वर से प्रार्थना करना मैले ताँबे के बर्तन में पवित्र दूध भरना है। दु ख पाकर जब सीखना ही, तो पहले ही अपवित्र वासना को क्यों नही त्याग दते। अशुभ भावना में औरो का भी बुरा होता है और अपनी भी खराबी। शुभ भावना, पवित्र भाव, ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति में न केवल अपना ही कल्याण होगा, वरन् परोपकार भी। मन में सत्वगुण शान्ति, आनन्द और

शुद्धि हो, तो हमारे काम स्वय ईश्वर के काम होते है, उनके पूरा होने में देर लग ही नही सकती।"

परा भक्ति अथवा रागात्मिका भक्ति के लिये त्याग परमावश्यक गुण है। बिना त्याग के रागात्मिका भक्ति की प्राप्ति दुर्लभ है—

"पर भाई! सच बात तो यह है कि माँगना सच्ची उपासना का कोई अग नही है। हा, देना (उदारता) ता उपासना रूप है। जब अपने मतलब के लिये मैं तुम्हारी सेवा करूँ, तो इसमें तुम्हारी भक्ति काहे की? वह तो दूकानदारी है, या ठगबाजी। मँगते भिखारी को कोई पाव तक छूने नही देता। परमेश्वर तो बादशाह है। भिखमगे कगाल बनकर उसके पास जाग्रोगे, तो दूर से ही 'दुर दुर' कहे जाग्रोगे। बादशाह से मिलने चले हो? परे फेंको, मैले कुचैले, फटे पुराने इच्छारूपी चीथडे। 'खानो के खान मिहमान'। जब तक तुम बादशाह न बनोगे बादशाह के पास नही बैठ सकते। इच्छा, कामना की गन्ध तक उडा दा, जम कर बैठो त्याग के तख्त पर, धारण करो वैराग्य के मोती, पहन लो ज्ञान का मुकुट और वह तुम्हारे पास से कभी हिल जाय, तो मुझे बाँध लेना।"

स्वामी राम राम भक्ति के आधार पर ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति सम्भव मानते है। वास्तव में 'परा' भक्ति, 'प्रेमा' भक्ति, 'अनन्य' भक्ति अथवा 'परम' भक्ति और ब्रह्मज्ञान में कोई अन्तर नही है। परा भक्ति ही ब्रह्मज्ञान का रूप धारण कर लेती है। भक्ति का आश्रय ग्रहण करके साधक इष्टदेव के साथ बिलकुल एक हो जाता है। उसकी सारी व्यष्टि भावना इष्टदेव के साथ मिलकर एकदम इष्टदेव रूप ही हो जाती है। सारी त्रिपुटी—ध्याता, ध्येय, एव ध्यान, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान अथवा आराधक, आराधना और आराध्यदेव, अथवा भक्त, भक्ति और भगवान् एक हो जाते है। स्वामी राम ने आत्मानुभूति अथवा इष्टदेव प्राप्ति के के तीन सापान बताये हैं। पहला सोपान है 'तस्यैवाह' अर्थात् 'मैं उसी का हूँ।' दूसरा सापान है 'तवैवाह', अर्थात् 'मैं तो तेरा ही हूँ', तीसरा और अन्तिम सापान है 'त्वमेवाह अर्थात् 'मैं तो तू ही हूँ।' अन्त में यह तीसरा भाव भी मिट जाता है, तो इस प्रकार के शब्द भी नही कहे जाते। यह स्थिति कुछ इस प्रकार की है, जिसे किसी अनुभवी ब्रह्मज्ञ पुरुष ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

जहँ आदि, न मध्य, न अन्त बन्यो। जहँ सेवक साहब नाहिं गन्यो॥
जहँ कोट विरचि सदा सम हैं। सुख रूप चिदातम सो हम हैं॥१॥
जेहि में मन बुद्धि न व्यापत है। नहिं इन्द्रिन तें कछु जापत है॥
नहिं है जड़ता न कछू कम है। सुख रूप चिदातम सो हम हैं॥२॥

जहँ ज्ञान, विराग, न योग जप। जहँ तीरथ ना घर शुद्ध मग॥
श्रुति शास्त्रन को न जहाँ गम हैं। सुखरूप चिदातम सो हम हैं॥३॥

इस सम्बन्ध में स्वामी राम की अनुभूति इस प्रकार है—"उपासना (भक्ति) साधन है, ज्ञान सिद्धावस्था। उपासना में यत्न के साथ अन्दर, बाहर ब्रह्म देखा जाता है। ज्ञान वह है, जहाँ यत्नरहित स्वाभाविक अन्दर तो, रोम रोम से 'अह ब्रह्मास्मि' का ढोल अन्य सब वृत्तियों को दबा दे और बाहर हरत्रसरेणु 'तत्वमसि' का दर्पण दिखाता हुआ भेद भावना का भगा दे।"

वास्तव में परा भक्ति की पूर्णावस्था 'ब्रह्मज्ञान' है। इष्टदेव की 'यत्र-तत्र-सर्वत्र' प्रतीति एवं अनुभूति ही ब्रह्मज्ञान है। परा भक्ति एवं ब्रह्मज्ञान में कोई अन्तर नहीं है। *श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से* इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ७, श्लोक १९

अर्थात्, 'जो बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी सब कुछ वासुदेव ही है, अर्थात् वासुदेव के सिवाय अन्य कुछ नहीं है, इस प्रकार मेरे को भजता है वह महात्मा अति दुर्लभ है।"

कहना न होगा कि स्वामी राम ने आर्त, अर्थार्थी और जिज्ञासु भक्त की श्रेणियों का अतिक्रमण करके शीघ्र ही ज्ञानी भक्त की कोटि प्राप्त कर ली। इस स्थिति में पहुँच कर उनका अपने इष्टदेव से तादात्म्य हो गया। उन्होंने अपने को, अपनी व्यष्टिभावना को पूर्णतया अपने इष्टदेव में समाहित कर दी। फलत स्वामी राम में और उनके इष्टदेव में रचमात्र अन्तर न रह गया। उनकी यह स्थिति हो गयी—

तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तू॥

परा भक्ति की प्रत्यक्षानुभूति स्वामी राम की वाणी में इस प्रकार अभिव्यक्ति हुई है—

"हे प्रभु! अब तो मुझसे दो-दो बातें नहीं निभ सकती। खाने-पीने, कपड़े, कुटिया का भी ख्याल रखूँ और दुलारे का भी मुख देखूँ। चूल्हे में पड़े पहनना, खाना, जीना, मरना। क्या इनसे मेरा निर्वाह होता है? मेरी तो मधुकरी हो तो तुम, कमली हो तो तुम, कुटी हो तो तुम, औषधि हो तो तुम, शरीर हो तो तुम, आत्मा हो तो तुम। शरीरादि को रखना चाहते हो, तो पड़े रहने दो।"

इस प्रकार स्वामी राम भक्ति का आश्रय ग्रहण कर ब्रह्मज्ञान की उच्च भूमिका में आरूढ हो गये। प्रत्यक्षानुभूति एव आत्मसाक्षात्कार के अनन्तर भी स्वामी राम की भक्ति ज्यो की त्यो बनी रही। वह अहभावना, ममता, सकीर्ण भावना से विमुक्त होकर एव त्याग, प्रेम, लोक-कल्याण भाव से समन्वित होकर निमल, पवित्र, शीतल गगा के समान प्रवाहित होने लगी। स्वामी राम की इस भक्ति-गगा में कितने साधक अवगाहन कर पवित्र हुये है और भविष्य में कितने होगे, इसका अनुमान भी लगाना कठिन है।

ज्ञानयोग

'जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है'—इस प्रकार की ब्रह्मात्मैक्य अनुभूति का ज्ञान, ब्रह्मज्ञान अथवा आत्मज्ञान कह सकते है। ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त यह भेद भाव नही रह जाता कि ज्ञाता, अर्थात द्रष्टा भिन्न वस्तु है, ज्ञेय अर्थात् देखने की वस्तु पृथक है एव ज्ञान कोई अलग चीज है। ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान को 'त्रिपुटी' की सज्ञा दी गयी है। ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के अनन्तर त्रिपुटी का सवथा लय हो जाता है जब तक ज्ञाता, ज्ञेय एव ज्ञान के बीच रचमात्र भी पृथकत्व रहेगा, तब तक यही समझना चाहिये कि पूर्ण ज्ञान की प्राप्त नही हुई। दूसरे शब्दो में 'अद्वैत-दशन' ही ज्ञान है। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिये जिन प्रक्रियाओ का आश्रय लिया जाता है, उसी को ज्ञानयोग कहा जाता है। इन्ही साधनो के निरन्तर अभ्यास से अविधा अथवा अज्ञान की निवृत्ति होती है। अविधा का परदा हटने पर आत्मज्ञान का प्रचण्ड भास्कर प्रत्यक्ष दिखलायी पडने लगता है।

विचारसागर इत्यादि वेदान्त ग्रन्थो में ब्रह्मज्ञान प्राप्ति अथवा आत्मसाक्षात्कार के लिये आठ अन्तरग साधन माने गये है—१ विवेक, २ वैराग्य, ३ षट् सम्पत्ति (शम, दम, श्रद्धा, समाधान उपरति एव तितिक्षा), ४ मुमुक्षुत्व, ५ श्रवण, ६ मनन, ७ निदिध्यासन, ८ तत्पद और त्व पद के अथ का शोधन।

कहना न होगा कि स्वामी राम ने अपना समस्त जीवन आत्मसाक्षात्कार के लिये समर्पित कर दिया था। उन्होने अपने जीवन में जो भी कम किये, जो भी आन्तरिक साधनायें की, उन सब का एकमात्र लक्ष्य था ब्रह्म की, अपने वास्तविक आत्मस्वरूप की प्रत्यक्षानुभूति। उनकी भक्ति भावना परा कोटि की थी। इस भक्ति का आश्रय ग्रहण करके, वे अपने इष्टदेव मे एकाकार हो गये। उस ऐक्य में उन्होंने आत्मा और परमात्मा के बीच एकता स्थापित कर ब्रह्मज्ञान की चरमावस्था पर पहुँच गये। स्वामी राम के अधिकाश व्याख्यानों, लेखो और वार्ताओ में ब्रह्मज्ञान की मस्ती पग-पग पर छलकती-सी है।

इस प्रसग में ब्रह्मज्ञान के उपर्युक्त आठ अन्तरग साधनों की कसौटी पर हम उनकी साधन-प्रणाली की मीमासा करने की चेष्टा करेंगे। अन्तरग साधना में विवेक का स्थान प्रथम है। विवेक का अभिप्राय वह ज्ञान है, जिससे सत् असत् वस्तुयें परखी जायें। परमात्मा सत्य स्वरूप है, वह अविनाशी है, तीनों कालों में रहने वाला है अत वह सत् है। सांसारिक विषय-सुख अथवा भौतिक पदार्थ क्षणभगुर और नश्वर हैं, वे परिवर्तनशील हैं, अतएव वे असत माने गये हैं। स्वामी राम बाल्यावस्था से कथा-श्रवण एवं सत्सग के अत्यत प्रेमी थे। कथा एव सत्सग द्वारा उन्हें बाल्यावस्था से ही सत् असत का ज्ञान हो गया था। उनमें इस विवेक की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी। भक्त धन्नाराम उनके प्रारम्भिक गुरु थे। वे अभ्यासी व्यक्ति थे। उनकी सत् प्रेरणा से स्वामी राम अपने बाल्यकाल से ही विवेक में स्थित हो गये थे। भीषण से भीषण एव विषम से विषम परिस्थितियों में वे अपने विवेक से तिलमात्र विचलित नहीं होते थे। स्वामी राम अपने बचपन से ही स्वाध्याय के प्रेमी थे। वे भक्त धन्नाराम की प्रेरणा से योगवासिष्ठ का स्वाध्याय किया करते थे। इस ग्रथ में विवेक पर बहुत अधिक बल दिया गया है। इसके स्वाध्याय से उनका विवेक उत्तरोत्तर बढता गया और यह उनके आध्यात्मिक जीवन निर्माण का महान् साधन हो गया। स्वामी राम आत्मसाक्षात्कार कर लेने के बाद विवेक पर और अधिक बल देने लगे थे। उनकी दृष्टि में सत-असत का स्वरूप एकदम स्पष्ट था। उनके व्याख्यानों, पत्रों, सामान्य वार्त्ता आदि में 'विवेक' अत्यन्त प्रखर रूप दिखलायी पडता है। उदाहरणार्थ—

"जो बाह्य रूपों, आकारों की नींव पर विश्राम करता और घटनाओं तथा अहकारों के भरोसे रहता है, ऐसा मूढमति रेत पर घर बनाता है और स्वय उसके साथ डूबता है। पर वह व्यक्ति उस अचल शिला, पर्वत पर अपना स्थान बनाता है, जिसके हृदय की तह में जमा पडा है—'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' और दैवी विधान एक जीती-जागती शक्ति है।"

दूसरा साधन है 'वैराग्य'। ब्रह्मलोक तक के भोगों को त्यागने की वृत्ति का रहना वैराग्य है। जब तक विषय सुखों, भोगों में मनुष्य की वृत्ति लगी रहती है, तब तक वह ज्ञानमार्ग का अधिकारी नहीं है। ससार के भोगों में अनास्था, ग्लानि का होना वैराग्य है। हम स्वामी राम के जीवन-वृत्ति में देख चुके हैं, कि व वैराग्य के साकार विग्रह थे। उनका वैराग्य सर्वोच्च कोटि का था। उन्होंने सासारिक सुखों, भोगों, मान-मर्यादा, धन-सम्पत्ति, बाल बच्चों, स्त्री, पिता, कुटुम्बियों-सम्बन्धियों का तृण के समान त्याग कर दिया और फिर उस त्याग का भूल कर स्मरण भी

नही किया। अत वैराग्य स्वामी राम का सहज स्वभाव हो गया। स्वामी राम का समस्त ब्रह्मज्ञान वैराग्य की दृढ नीव पर अवलंबित है, इसीलिये वह इतना प्रखर और अनुभूतिमय है। उन्होने अपने समस्त व्याख्यानो में वैराग्य को अत्यधिक महत्त्व दिया है। उनकी यह निश्चित और दृढ धारणा थी कि बिना दृढ वैराग्य के ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति आकाश-कुसुम की कल्पना मात्र है। स्वामी राम का वैराग्य अपनी विशिष्टता लिये हुये है। उन्होंने जिस वैराग्य का प्रतिपादन किया है, उसमें ईश्वरत्त्व का पुट देकर उसे रसमय, आनन्दमय बना दिया है। अत स्वामी राम द्वारा प्रतिपादित वैराग्य नीरस अथवा शुष्क नही है। इस सबध में उनके विचार अत्यन्त मौलिक है—

"त्याग अथवा वैराग्य का अर्थ है, प्रत्येक वस्तु को पवित्र बनाना वेदान्त आपको पति, पत्नी तथा अन्य सबधियो को त्यागन को कहता है। वेदान्त कहता है कि पत्नी से पत्नी का नाता तोड दो, उससे पत्नी भाव छोड दो, किन्तु उसमें अपनी शुद्ध आत्मा और परमात्मा-स्वरूप देखो। शत्रुओ को शत्रु रूप से त्याग दो, उनमें ईश्वर देखो, मित्रों को मित्र रूप से त्याग दो और उनमें ईश्वरत्त्व या ब्रह्मत्त्व का अनुभव करो।"

"स्वार्थपूर्ण व्यक्तित्त्व के सभी बधनो का त्याग करो। प्रत्येक प्राणी और पदार्थ में ईश्वरत्त्व का अनुभव करो। सबमें विभु का दर्शन करो।"

स्वामी राम की ज्ञानयोग-साधना में वेदान्त द्वारा प्रतिपादित षट सम्पत्ति का भी विशिष्ट स्थान है। षट-सम्पत्ति का तात्पर्य छ साधनाओ से है—शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति और तितिक्षा। ये छ साधन स्वामी राम के सहज गुण, उनके विद्यार्थी-जीवन से ही बने हुये थे। शम का अभिप्राय है मन को चचल वृत्तियो का नियत्रण करना। स्वामी राम अपने मन को कभी चचल नही होने देते थे। उन्होने अपने वार्तालाप में अपने छात्र-जीवन की एक घटना का इस प्रकार उल्लेख किया है—

"राम का मन एक बार बिगड गया। लाहौर में वह अपने कोठे पर चढा था। वहाँ से उसने किसी स्त्री को नग्न देखा, जिससे उसका मन बिगडा। मगर मन की इस अवस्था को देखकर, वह तत्काल छाती कूटने और रोने लगा। और उस दिन से इस बात का पक्का इरादा कर लिया कि या तो हम मरेंगे या मन को मारेंगे। राम बचपन से ही बडा हठी था। जिस बात को करने का हठ करता था, उसे करके ही छोडता था।"

इन्द्रियो का 'दमन' दम कहलाता है। स्वामी राम अपने छात्र-जीवन से असाधारण इन्द्रिय निग्रही थे। उदाहरणार्थ नेत्रेन्द्रिय पर सयम प्राप्त करने के

निमित्त छात्र जीवन में बाहर चलते समय अपनी आँखों को पृथ्वी की ओर नीची किये रखते थे। इसी प्रकार कानो से कभी अश्लील बातें नहीं सुनते थे। जिह्वा से न किसी की बुराई करते थे और न कभी अश्लील बात करते थे। और साथ ही स्वाद के लिए ऐसी कोई वस्तु नही खाते थे, जो अस्वास्थ्यकर हो। वाणी पर उनका साधारण सयम था। वे मितभाषी थे। कभी निरथक वार्ता न करते थे और न सुनते थे। उनके जीवनवृत्त से यह बात आप जान चुके है कि उन्होंने नारायण स्वामी एव पूर्णसिंह पर यह नियन्त्रण लगा दिया था कि किसी व्यक्ति की आलोचना प्रत्यालोचना न करें, इससे अपना ही मन खराब होता है। इस प्रकार उनकी दम प्रवृत्ति बडी उच्च कोटि की थी।

श्रद्धा तो उन्होने अपनी वश-परम्परा स ही सीखी थी। इस बात का उल्लेख उनके जीवन वृत्त में बार बार किया जा चुका है कि वे अपनी शैशवास्था से ही किस प्रकार कथा आदि के प्रति श्रद्धालु थे। अपने शिक्षागुरु मौलवी साहब को श्रद्धावश ही एकमात्र दुधारू गाय अपने पिता से दिलवा चुके थे। विद्यार्थी-जीवन में उन्होने अपनी समस्त श्रद्धा अपने आध्यात्मिक गुरु भक्त धन्नाराम में केन्द्रीभूत कर दी थी। स्वामी राम भक्त धन्नाराम को ईश्वर का साक्षात अवतार मानते थे। इस प्रसग से सबधित अनेक घटनायें उनके जीवनवृत्त में आ चुकी है। यही श्रद्धा विकासोन्मुखी होकर श्रीकृष्ण में केन्द्रीभूत हुई और अन्त में अपनी आत्मा में केन्द्रीभूत हो गयी। अतएव स्वामी राम की ज्ञानयोग-साधना में श्रद्धा का बहुत बडा हाथ है।

समाधान का अभिप्राय है, मन अथवा चित्त का सम्यक रूप से अवस्थित होना। स्वामी राम की यह सहज प्रवृत्ति थी। वे दृढनिश्चयी थे। इसी दृढ निश्चय के बल पर वे अपने मन एव चित्त को जहाँ भी अवस्थित करना चाहते थे, स्वाभाविक रीति से कर लेते थे। इसमें सन्देह नही कि इसके लिये उन्हें महान् अभ्यास करना पडा था। इसी अभ्यास के बल पर उन्होंने अपने मन को भली भाँति, सम्यक रूप से समाहित कर लिया था। समाधान के बल पर उन्हें स्वरूपानुसन्धान में अत्यधिक सहायता मिली थी।

उपरति का आशय है "त्याग किये हुये भोगों के प्रति फिर कभी आसक्ति या भोग भावना की वृत्ति का न होना।' सयागवश यदि भोगों की कभी याद भी आ जाय तो वे उसी प्रकार ग्लानियुक्त प्रतीत हो जैसे वमन (कै) की हुई खाद्य सामग्री को देखकर मन में वितृष्णा की भावना जाग पडती है। कहना न होगा कि स्वामी राम ने ससार की जिन वस्तुओ का त्याग किया, फिर भूल कर भी उनकी ओर नहीं देखा। इसका कारण यह था कि उनका त्याग विवेकपूर्ण त्याग

था। उनका त्याग न तमोगुणी था, न रजोगुणी, बल्कि वह विशुद्ध सात्विक था। उनके अंग अंग में उनके विशुद्ध निर्मल अन्त करण की पवित्रता भरी थी। स्वामी राम की अत्यन्त उपराम मनोवृत्ति थी। इसी उपरति वृत्ति से वे जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त करने में सफलीभूत हुए।

तितिक्षा का मतलब है 'शारीरिक और मानसिक द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त करना।' अर्थात् शरीर सबधी शीतोष्ण द्वन्द्वो को आगमापायी—क्षणभगुर और अनित्य समझकर उनमें समबुद्धि रखकर, इनसे परे होना। गीता में तितिक्षा के सम्बन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से इस प्रकार संकेत किया है—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुखदु खदाः।
आगमापायिनोऽनित्या स्तास्तितिक्षस्व भारत॥

—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय २, श्लोक १४

अर्थात्, "हे कुन्तीपुत्र। सर्दी गर्मी और सुख-दु ख का देनेवाले इन्द्रिय और विषयो के सयोग से क्षणभगुर और अनित्य हैं। इसलिए हे भरतवशी अर्जुन! उनको तू तितिक्षा कर, अर्थात् उन्हें सहन कर।"

स्वामी राम जन्मजात तितिक्षु थे। छात्र-जीवन में ही उन्होने तितिक्षा का अत्यधिक अभ्यास किया था। ग्रीष्म काल की चिलचिलाती धूप से तप्त लाहौर की सडको पर वे नगे पैर भ्रमण करते थे। पर उनकी सहज मुसकान अक्षुण्ण बनी रहती थी। सन्यासावस्था में तो उनकी यह तितिक्षा चरमसीमा पर पहुँच गयी थी। केवल एक धोती और एक चादर के सहारे उन्होने घनघोर बर्फानी यात्रायें की थी, इसका उल्लेख किया जा चुका। अपने सन्यास जीवन में ऐकान्तिक साधन में उन्होंने केवल उबले हुये आलुओ पर अपना जीवन निर्वाह किया था। इस महान् तितिक्षा का उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव भी पडा, किन्तु वे अपनी तितिक्षु-वृत्ति से तनिक भी चलायमान नही हुये। तितिक्षा सन्यासियो का भूषण माना जाता है। स्वामी राम इस गुण से पूर्ण रूप से परिपूर्ण थे। इस प्रकार उनकी ज्ञानयोग की साधना में षट् सम्पत्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अब उनकी मुमुक्षुत्व वृत्ति पर विचार करना है। मुमुक्षु का अर्थ है, 'मोक्ष प्राप्ति का सच्चा अभिलाषी।' ससार की अनित्यता, नश्वरता एव दु खों की प्रत्यक्षानुभूति करके उससे त्राण अथवा मुक्ति पाना वास्तविक मुमुक्षुत्व है। मुमुक्षु को ससार से त्राण पाने के लिये ठीक वैसी ही छटपटाहट होती है, जैसे जल में डुबोये हुये व्यक्ति को जल से निकल आने की तडफडाहट होती है। स्वामी ने ससार के विषयो और भोगो को अनित्य, क्षणभगुर और बन्धन का हेतु भलीभाँति हृदयङ्गम कर लिया था, इससे उनमें उच्च कोटि की मुमुक्षु-वृत्ति जाग्रत हुई

थी। वह इतनी तीव्र थी कि वे परमात्म प्राप्ति के लिये, आत्म-साक्षात्कार के लिये दिन रात छटपटाते रहते थे। आत्म-स्वरूप की प्राप्ति के लिये वे रात रात भर रोते रहते थे। सवेरे उनका बिस्तर आँसुओं से तर-बतर पाया जाता था। स्वामी राम सच्चे अर्थ में मुमुक्षु थे।

श्रवण, मनन एव निदिध्यासन आत्मज्ञान के अन्तरग साधन माने जाते ह। इन तीनो का अन्योन्याश्रित सबध है। तीनो प्राय एक साथ ही रहते है। श्रवण का अभिप्राय होता ह ब्रह्मनिष्ठ आचाय एव शास्त्रो द्वारा आत्मा के विषय का श्रवण करना। सुने हुये विषय का तक द्वारा मनन किया जाता है। श्रवण एव मनन के अनन्तर, जा निश्चयात्मक बुद्धि से किया जाता है, उसको निदिध्यासन कहा जाता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य जी ने अपनी सहधर्मिणी मैत्रेयी से इन तीनों को आत्मसाक्षात्कार के लिये परमावश्यक साधन माना है—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दशनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेद सव विदितम्।

—बृहदारण्यकोपनिषद्, अध्याय २, ब्राह्मण ४, मत्र ५

अर्थात, "अरी मैत्रेयि! यह आत्मा ही दशनीय, श्रवणीय, मननीय और निदिध्यासन किये जाने योग्य है। हे मैत्रेयि! इस आत्मा के दशन, श्रवण, मनन एव विज्ञान से इस सब का ज्ञान हो जाता है।"

स्वामी राम के आत्माविषयक साधनो में ये तीनो साधन चरमोत्कप रूप में पाये जाते हैं। उन्होने अपने गुरु भक्त धन्नाराम एव वेदान्त-ग्रन्थो के द्वारा आत्मा के सबध में अत्यधिक श्रवण किया था। उसकी उपादेयता हृदयगम करके अपने विवेक एव तर्क बुद्धि द्वारा अहर्निश इसके मनन में व्यतीत किया। पूण रूप से आत्मा को सबका उपादान एव निमित्त कारण समझ कर, उसकी प्राप्ति के लिये तन मन से निदिध्यासन में जुट गये। स्वामी राम ने पवित्र, एकान्त स्थल में रहकर अनन्य भाव से आत्मा का निदिध्यासन किया। उनके जीवन प्रसगा में यह बात हम भलीभाँति देख चुके हैं।

अन्त में स्वामी राम ने 'तत्पद' एव 'त्व पद' के अथ का भलीभाँति शोधन किया। इस शोधन के फलस्वरूप उन्होंने ब्रह्मज्ञान की श्रेष्ठतम और उच्चतम अवस्था प्राप्त की। उन्होने अद्वत स्थिति की दिव्यानुभूति की और उसी स्थिति में सदैव के लिये आरूढ हो गये।

अब हम स्वामी राम की ज्ञानयोग साधना पर एक दूसरे पहलू से विचार करने का प्रयत्न करेंगे। योगवासिष्ठ आदि अद्वैत ग्रन्थो में ब्रह्मज्ञान की सात भूमिकायें मानी गयी हैं। योगवासिष्ठ के निर्वाण प्रकरण के एक सौ ग्यारहवें सग

से लेकर एक सौ छब्बीसवें सर्ग में, अर्थात् सोलह सर्गों में इन सात भूमिकाओं का विशद वर्णन किया गया है। वे सात भूमिकायें इस प्रकार हैं—१ शुभेच्छा, २ सुविचारणा, ३ तन्मनसा, ४ सत्वमवाप्ति, ५ असग भावना, ६ पदार्थाभावनी और ७ तुरीय। सूक्ष्म विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि ब्रह्मज्ञान प्राप्ति की ये सातों भूमिकायें सात सोपान हैं। प्रथम तीन भूमिकायें, अर्थात् शुभेच्छा, सुविचारणा और तन्मनसा ये तो मन, बुद्धि एव चित्त की शुद्धि के सोपान हैं। इन तीनों साधनों से मन, चित्त और बुद्धि में सात्विकता आ जाती है। एक प्रकार ये उस उवर-भूमि के समान हैं, जिसमें ब्रह्मविद्या रूपी बीज बोया जा सके।

गुरु वाक्य एवं शास्त्रों के श्रवण से पुरुषार्थी साधक मनुष्यों में सात्विक एव शुभ इच्छायें उद्भूत होती हैं। उसे यह प्रतीत होता है कि यह ससार नश्वर है और इसके भोग नश्वर और क्षणभगुर हैं। इस प्रतीति के बाद साधक सुविचारणा की भूमिका में आकर बार-बार दृढ़तापूर्वक ससार की अनित्यता एव आत्मा की अमरता पर विचार करने लगता है। उसे तीर्थस्थल और एकान्त प्रिय लगते हैं। पवित्र स्थलों पर बैठकर वह बार-बार ससार और आत्मा के सबध में विचार करता है। निरतर विचार करने से उसका अन्तःकरण उसे तीसरी भूमिका, अर्थात् 'तन्मनसा' की ओर अग्रसर करता है। 'तन्मनसा' भूमिका में स्थित होकर साधक ध्यान और निदिध्यासन में तन्मय हो जाता है। ध्यान और निदिध्यासन के फलस्वरूप साधक के मल और विक्षेप नष्ट हो जाते हैं। अब उसका हृदय ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये तैयार हो जाता है। स्वामी जी छात्र—एव प्राध्यापक जीवन काल में इन तीनों भूमिकाओं से गुजर चुके थे। उनके मन में शुभेच्छा और सुविचारणा ये दो भूमिकायें भलीभाँति उतर चुकी थी। इन दोनों के बाद वे अहर्निश ध्यान और निदिध्यासन करके 'तन्मसा' की भूमिका में स्थित हो गये थे। इस कारण उनके हृदय में वैराग्य का अपार सागर हिलारें मारने लगा था।

ब्रह्मज्ञान की चौथी भूमिका है 'सत्वमवाप्ति'। विवेक, वैराग्य, ध्यान, धारणा के अनन्तर जब 'तत त्व' का बोध होता है, तब 'अहं ब्रह्मास्मि' का दृढ बोध होता है। इस दृढ़ ज्ञान को 'सत्वमवाप्ति' भूमिका माना गया है। तपोवन की ऐकान्तिक साधना से स्वामी रामं ने इस चौथी भूमिका की प्राप्ति कर ली थी। इस भूमिका की प्राप्ति के पश्चात प्रारब्धानुसार ब्रह्मज्ञानी 'प्रवृत्तिमार्गी, अथवा निवृत्तिमार्गी' होते हैं। जो गृहस्थ धर्म में रहते हैं, वे प्रवृत्तिमार्गी कहलाते हैं और जो सन्यास धर्म में रहते हैं, वे निवृत्तिमार्गी। स्वामी राम 'सत्वमवाप्ति'

की प्राप्ति के अनन्तर अपने पूर्व जन्मों के सस्कारों एव प्रारब्ध के अनुसार निवृत्ति-मार्ग में आरूढ हो गये।

इस चौथी भूमिका के बाद कोई-कोई ऐसे ब्रह्मज्ञानी होते हैं, जिन्हें ससार भासता है, किन्तु उनके अन्त करण में यह दृढ बोध रहता है कि 'ससार मृगतृष्णा के जल के समान ही है। इसका पृथक् अस्तित्व नही है।' चौथी भूमिका में पहुँच कर, मोक्षप्राप्ति में रचमात्र, भी सशय नही रहता। हाँ, आगे की तीन भूमिकाएँ न प्राप्त करने पर जीवन्मुक्ति नही प्राप्त होती।

चौथी भूमिका प्राप्त करने पर स्वामी राम, उस स्थान पर रुके नहीं, बल्कि अपनी प्रबल साधना पर वे निरन्तर आगे बढते गये। 'सत्वमवाप्ति' भूमिका प्राप्त करने पर वे ब्रह्मज्ञान की पाँचवी भूमिका—असग-भावना—में स्थित हुये। हिमालय के एकान्त सेवन एव दृढ अभ्यास से उन्होंने ससार के सभी व्यक्तियों, पदार्थों से अपने को नितान्त असग बना लिया। उनकी स्थिति 'पदमपत्रमिवाम्भसा' हो गयी। इसी स्थिति में उन्होने जापान एव अमेरिका देश की यात्रा की। इस भूमिका में स्थित होने के कारण स्वामी राम जो कुछ बोलते थे, वह सब वेदवाक्य के समान हो गया। उनकी दृष्टि, वाणी और मन में अलौकिक चमत्कार हो गया। सभी लोग ज्ञात अथवा अज्ञात भाव से उनकी दैवी प्रतिभा और आकर्षण के सम्मुख नतमस्तक होने लगे। निवृत्तिपरायण स्वामी राम की इस लोक सग्रह भावना से ससार और भारत का बहुत कल्याण हुआ। भारत की नाडियों में आध्यात्मिकता का सचार हुआ। 'असगभावना' भूमिका में स्थित होने पर, स्वामी राम द्वारा जगत का अत्यधिक आध्यात्मिक कल्याण हुआ, इसे ईश्वरीय चमत्कार ही समझना चाहिये।

अमेरिका से लौटने पर स्वामी राम ने फिर हिमालय में एकान्त की शरण ली, क्योंकि उन्हें एकान्त से परम अनुराग था। जीवन्मुक्त पुरुष का एकान्त मे अनुराग होना अत्यन्त स्वाभाविक है। अन्त में उन्होंने छठी भूमिका—'पदार्थाभावनी' प्राप्त कर ली। इस भूमिका में जगत के समस्त पदार्थों का नितान्त अभाव हो जाता है, मात्र आत्मस्वरूप शेष रहता है। मुण्डकोपनिषद् में इस स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

> ब्रह्मैवेदममृत पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
> अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥
>
> —मुण्डकोपनिषद् खण्ड २, मुण्डक २, मत्र ११

अर्थात्, 'अमृत स्वरूप ब्रह्म ही आगे-पीछे, दायें बायें, बाहर भीतर, ऊपर

नीचे सर्वत्र फैला हुआ है। इस विश्व-ब्रह्माण्ड के रूप में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है।"

इस प्रकार उनकी ब्रह्म भावना—आत्म भावना इतनी प्रबल हो गयी थी कि संसार के सारे पदार्थ उसी में मिलकर ब्रह्मरूप हो गये थे। उनकी पृथक् सत्ता रह ही नहीं गयी थी।

ब्रह्मज्ञान की अन्तिम भूमिका—सातवीं भूमिका 'तुरीय' है। कहते हैं इस भूमिका में आरूढ होने पर ब्रह्मज्ञानी को अपने शरीर की भी सुध-बुध नहीं रहती, उसे सच्चिदानंद के अनन्त सागर के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु का भान ही नहीं रहता। किसी किसी के मत में यह भूमिका अत्यन्त दुर्लभ है और इस भूमिका में स्थित रहने पर शरीर तीन दिनों से अधिक नहीं चल सकता, और किसी किसी के मत में शरीर इक्कीस दिन तक चल सकता है। हमारा अनुमान है कि स्वामी राम अन्तिम समय में इस भूमिका में आरूढ हो गये थे।

स्वामी राम की आध्यात्मिक साधना प्रणाली में हमें अनेकरूपता और सर्वांगीणता के दर्शन होते हैं। एक ओर वे हमें निष्काम कर्मयोगी के रूप में दिखलायी पड़ते हैं, तो दूसरी ओर परम अनन्य भक्त के रूप में। तीसरी ओर वे महान् राजयोगी के रूप में भासते हैं, तो चौथी ओर उच्चकोटि के ब्रह्मज्ञानी के रूप में। पर हमारी राय में उनकी समस्त साधनाओं का पर्यवसान ब्रह्मज्ञान में हुआ था। कारण यह है कि स्वामी राम चाहे कर्म, भक्ति अथवा किसी भी विषय का प्रतिपादन करते रहे हों उनका आत्मा-विषयक भाव सबसे अधिक प्रबल रूप में दृष्टिगोचर होता है।

अन्त में स्वामी राम के ही शब्दों में उनकी सिद्धावस्था की बात कह कर हम इस विषय का समाप्त करते हैं—

"राम आपसे कहता है कि राम भय से, चिन्ता से, रोष से परे है। किन्तु निरन्तर साधन से इसकी प्राप्ति हुई है। निर्बलता और अन्धविश्वास के अत्यन्त गहरे गड्ढे से अभ्यास ने राम को ऊपर निकाला है। एक समय राम अत्यन्त अन्धविश्वासी था। हवा का हर एक झकोरा राम के चित्त की समता बिगाड़ देता था। पर अब सभी अवस्थाओं में चित्त अचल और सम रहता है। यदि एक आदमी ऐसा कर सकता है, तो आप भी वैसा कर सकते हैं।"

पचदशीकार के तृप्तिदीप प्रकरण के निम्नलिखित श्लोक स्वामी राम की इस साम्यावस्था के सम्बन्ध में पूर्णरूप से चरितार्थ होते हैं—

धन्योऽहं धन्योऽहं नित्यं स्वात्मानमञ्जसा वेद्मि।
धन्योऽहं धन्योऽहं ब्रह्मानन्दो विभाति मे स्पष्टम् ॥२९२॥

धन्योऽहं धन्योऽहं दु ख सांसारिक न वीक्षेऽद्य ।
धन्योऽहं धन्योऽहं स्वस्याज्ञान पलायित क्वापि ॥२६३॥
धन्योऽहं धन्योऽहं कर्त्तव्य मे न विद्यते किञ्चित् ।
धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्य सवमद्य सम्पन्नम ॥२६४॥
धन्योऽहं धन्योऽहं तृप्तेर्मे कोपमा भवेल्लोके ।
धन्योऽहं धन्योऽहं धन्यो धन्य पुन पुनधन्य ॥२६५॥
अहो पुण्यमहो पुण्य फलित फलितं दृढम ।
अस्य पुण्यस्य संपत्ते रहो वयमहो वयम ॥२६६॥
अहो शास्त्रमहो शास्त्रमहो गुरुरहो गुरु ।
अहो ज्ञानमहो ज्ञानमहो सुखमहो सुखम ॥२६७॥

—पचदशी, तृप्तिदीपकरणम, श्लोक २६२–२६७

भावार्थ, ' मैं धन्य हूँ, क्योकि मै अपने आत्मतत्त्व को साक्षात जान गया हूँ । आत्मा को समझ लेने से मुझे परम हर्ष है । ब्रह्म नाम का जो आनन्द है, वह अब मुझे स्पष्ट ही प्रतीत होने लगा है । यो आत्मज्ञान के फल मिलने से मैं परम धन्य हो गया हूँ ॥२६२॥

"आज तो मुझे कोई भी सासारिक दु ख नही दीखता । इस कारण अनिष्ट की निवृत्ति हो जाने से भी मै धन्य हो गया हूँ । आज मेरा अज्ञान (अनेक कर्मों की वासनाओं का पुज) न मालूम कहाँ भाग गया है ? (यही कारण है कि अब मुझे कोई दु ख प्रतीत नही होता । इसी से मैं कृतार्थ हो चुका हूँ ।) ॥२६३॥

"मै धन्य हूँ, आज तो मुझे कुछ कर्त्तव्य ही नही रहा है । मैं धन्य हूँ, क्योकि जो मुझे प्राप्तव्य था, वह सब आज मिल चुका है ॥२६४॥

"मै धन्य हूँ । आज मेरे समान तृप्ति किसको है ? इससे अधिक और क्या कहूँ ? कि मैं धन्य हूँ, मै धन्य हूँ, मै बार-बार धन्य हूँ । (मुझे अब तृप्ति ही तृप्ति अनुभव हो रही है ।) ॥२६५॥

"वे मेरे अनन्त कोटि जन्मों के अनन्त पुण्य आज निश्चय ही फलरूप में आ गये । पुण्यो की इस राशि के प्रताप से आज मैं आनन्द-सागर की लहरो में हिलोरें ले रहा हूँ । आज मेरे पुण्यो के प्रताप से यह सारा ससार मुझे सतोष ही सन्तोष रूप में दिखलायी पड रहा है ॥२६६॥

"उन शास्त्रों और उन गुरुओ को स्मरण करके भी आज मुझे बडा हर्ष हो रहा है जिनके प्रताप से मेरे हृदय की ग्रंथि खुली है । ब्रह्मज्ञान के प्रताप से मै इस हर्षातिरेक में आया हूँ और आनन्दित हो रहा हूँ, उस ज्ञान और उस सुख की महिमा का मैं क्या वर्णन करूँ ? ' ॥२६७॥

परिशिष्ट

(क) स्वामी राम की उपदेशामृत-लहरी

निम्नलिखित रत्नकण स्वामी राम क अग्रेजी निबन्धा, अमेरिकन भाषणा, उर्दू की रचनाओं एव उनकी वार्ता से सकलित किये गये हैं। ये उनके भाव प्रवण हृदय एव उवर मस्तिष्क की अमूल्य निधिया ह। इनमें से किसी एक को भी श्रद्धापूवक धारण करने से मनुष्य के जीवन में आमूल चूल परिवत्तन हो सकता है—

सच्चा धम ईश्वर-विश्वास मात्र नही है, बल्कि मनुष्य की अच्छाइयो में पूण निष्ठा एव विश्वास है।

* * *

जहाँ मनुष्य की जिह्वा बोलने में असमथ हो जाती है, वहाँ पत्थर बोलना प्रारम्भ कर देते ह।

* * *

बहिर्जगत में जाने से नही, बल्कि अन्तजगत् में प्रविष्ट होने पर तुम सुरक्षित रह सकते हो।

* * *

अन्तरात्मा के आदेशानुसार कम करना ही परमात्मा का आज्ञा पालन है।

* * *

आपके हृदय में (आनन्दानुभूति की) ऐसी मदिरा होनी चाहिये, जिसमें ससार की कोई वस्तु पडकर, तद्रूप हो जाय।

* * *

तुम्हारे हृदय में सशय रहने की अपेक्षा, गालो का रहना अधिक श्रेयस्कर है।

* * *

शरीर के लिये जो रात्रि का समय है, आत्मा के लिये वही दिन का समय है।

* * *

विभिन्न सम्प्रदाय धर्म के व्याकरण मात्र है।

* * *

सब पर विजय पाने के लिये, हमें सब कुछ दे देना पड़ता है।

* * *

परमात्मा से भय करना, तत्त्वज्ञान का श्रीगणेश है।

* * *

भाग्य उसी का महान मित्र होता है, जो भाग्य को चुनौती देता है।

* * *

जो समस्त संसार के साथ एकता की अनुभूति करता है, सारा संसार उस व्यक्ति के इर्दगिर्द चक्कर काटता फिरेगा।

* * *

मानसिक एकता दर्शन है।

भावगत तादात्म्य कविता है।

जीवन और व्यवहार की एकरूपता धर्म है।

* * *

परमात्मा से बढ़कर किसी भी वस्तु का मूल्य नहीं होना चाहिये। भगवान् की समानता में कोई भी वस्तु मूल्यवान् नहीं है।

* * *

सत्य की संस्थापना में गलतियों का भी महत्त्व होता है।

* * *

तुलना और वैषम्य ही समस्त बुराइयों की जड़ हैं।

* * *

शक्ति का गलत दिशा में प्रयोग ही पाप है।

* * *

परमात्मा एवं मनुष्य, इन दोनों की इच्छाओं का एकीकरण करना ही प्रार्थना का सार है।

* * *

विजय की अपेक्षा सत्य का अधिक प्रेम करो।

* * *

सभी सत्य विरोधाभासी होते हैं—

समस्त काल = अभी।

समस्त दूरी = यहाँ।

समस्त विचार = ईश्वरीय ज्ञान ।

* * *

यदि तुम अकेले रहने के लिये बाध्य किये जाते हो तो सत्य में जिओ और सत्य में ही प्राण विसजन करो।

* * *

अपने को पारदर्शी (पवित्र) बनाओ, तो तुम्हारे अन्तगत प्रकाशो का प्रकाश (परमात्म ज्ञान) उद्भासित होगा।

* * *

जैसा तुम सोचते हो, वैसा ही हा जाते हो।

* * *

पाने की अपेक्षा देने की भावना श्रेयस्कर सौदा ह।

* * *

प्रकाश की भाँति अपने स्थान पर अडिग और अचल रहो। पतिंगा को आने दो और भस्मीभूत होकर अपने में मिल जाने दो।

* * *

मनुष्य वा उसी सहजता और नैसर्गिकता से मरना सीखना है, जिस सहजता से बच्चा चलना सीखता है।

* * *

अनिवचनीय (आनन्द) समुद्र में कूद पडा, उसमें सारी वस्तुयें फक दा, प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु से अपना नाता तोड दो, कुछ भी शेष न रखो।

* * *

मनुष्य जहा रहता है, वहो उसका सबसे उपयुक्त स्थान है।

* * *

यदि कोई कुत्ता भूकता है, तो मनुष्या को उसकी चिन्ता नहो करनी चाहिये, क्योंकि भूकना इस बात का प्रमाण है कि वह काटेगा नही।

* * *

सभी प्रकार के भयो की तह में स्वाथपरायणता निहित रहती है।

* * *

ठीक प्रकार के ध्यान से नतिकता उदभूत होती ह।

* * *

प्रम ही जीवन है।

* * *

यदि किसी व्यक्ति को तुम पहले प्रेम नही करते, तो तुम उसे नही जान पाते ।

* * *

प्रतिद्वन्द्विता की अपेक्षा सहयोग अधिक अच्छा है ।

* * *

परिवर्तन, प्रगति का नियम है ।

* * *

प्रसन्नता से बढकर कोई भी शक्तिदायिनी औषधि नही है ।

* * *

बन्धन में कष्ट की अनुभूति स्वतन्त्रता का पूर्वाभास है ।

* * *

अपनी ही आत्मा में ईश्वर के दर्शन का एक ही उपाय है—समस्त इच्छाओ का परित्याग ।

* * *

अपनी स्त्री से जितना प्रेम करते हो, यदि उसस आधा ही प्रेम ईश्वर से करते तो तुम्हें इसी क्षण उस परम सत्य के दर्शन हो जाते ।

* * *

तुम्हें बन्धन में कौन डाले हुये है ? किसने तुम्हे गुलाम बना रखा है ? तुम्हारी इच्छाओ ने—इसमें किसी और का हाथ नही ।

* * *

सारे धर्मो का तात्पर्य केवल इतना है कि अपने आप को खोलने की चेष्टा करो और स्वय अपने स्वरूप की व्याख्या करो ।

* * *

एक बात समझ लो और तुम्हें किसी चीज की आवश्यकता नही । तुम इच्छाओ और आवश्यकताओं से ऊपर हो । इस तथ्य का अनुभव करो और सम्पूर्ण विश्व तुम्हारा है ।

* * *

कृष्ण क्या बशी को प्यार करते और चूमते थे ? उसे क्यो इतना महत्त्व दिया ?

बशी का सीधा सादा उत्तर था—"मुझमें एक विशेषता है । मने अपने अन्तर से सारा द्रव्य निकाल कर अपने को शून्य बना डाला है ।"

* * *

स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है।

*　　　　　*　　　　　*

प्राम् में जादू है, प्रभाव है, और उसमें ऐमा गुण है कि उसका जप करनेवाले माधक का मन तुरन्त एकाग्र और वश में हो जाता है। उसके गायन से हमारी भावनायें, हमारे विचार एक सामजस्यपूर्ण स्थिति में पहुँच जाते हैं, उसके द्वारा आत्मा की शान्ति और विश्रान्ति मिलती है। हृदय उस दशा में पहुँच जाता है, ईश्वर के साथ तदात्मीयता होती है।

*　　　　　*　　　　　*

वास्तविक आत्मा पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शक्ति है। वही एकमात्र अटल तथ्य है। उसके सामने दुनिया की इस कृत्रिम और दिखावटी सच्चाई का कही पता नही चलता। ओम इसी सत्य का नाम है।

*　　　　　*　　　　　*

ओम का भावार्थ ग्रहण करो और उसे अपनी भावना की भाषा में गाओ, उसे अपनी क्रियाओ में उतारो, अपने शरीर के रोम-रोम से उसे गाओ। वह तुम्हारी धमनियो में दौडने लगे। तुम्हारे शरीर के प्रत्येक अग से, तुम्हारे रक्त के बिन्दु बिन्दु से सत्य की यह झकार उठे कि तुम प्रकाशो के प्रकाश, सूर्यो के सूर्य, ब्रह्माण्डो के शासक, स्वामियो के स्वामी स्वय सत्यस्वरूप हो।

*　　　　　*　　　　　*

तुम इधर सासारिक सुखो का उपभोग करो, छोटी-छोटी सासारिक सुखो वासनाओ, विषयान द और भोग विलास के चक्कर में पडे रहो और इधर अपने ब्रह्मत्व का भी दावा करो—यह हो नही सकता, यह हो नही सकता।

*　　　　　*　　　　　*

अधकार से लडकर अँधेरा दूर नही होगा। प्रकाश लाओ, अधकार काफूर हो जायेगा।

*　　　　　*　　　　　*

पैगम्बर, कवि, अन्वेषक, आविष्कारक, कला और विज्ञान के आचार्य, दर्शन शास्त्र के विचारक, आत्मज्ञानी महात्मा जिन्हें भी दिव्य प्रेरणा प्राप्त हुई है, वे सब केवल प्रेम के ऋणी है। अन्य सभी उदाहरणो से प्रेम का उदाहरण अधिक स्पष्ट है। कृष्ण, चैतन्य, ईसा, तुलसीदास, शेक्सपियर और रामकृष्ण, ये सब के सब प्रेम से अनुप्राणित थे। वे सब प्रेम के पागलपन में मस्त रहते थे।

प्रेम जिसमें विषयवासना की गन्ध नहीं, आध्यात्मिक प्रकाश का ही दूसरा नाम है।

*　　　*　　　*

जहाँ सारा सौन्दर्य मेरे ही स्वरूप में समा जाता है, वहीं सच्ची पवित्रता रहती है।

*　　　*　　　*

यदि कोई एक शब्द में मेरे दर्शनशास्त्र का मर्म पूछे तो मैं कहूँगा—आत्म-विश्वास और आत्मज्ञान।

*　　　*　　　*

मनुष्य को व्यसनों पर विजय प्राप्त करनी होगी या मरना होगा।

*　　　*　　　*

पुस्तकों का पढ़ना और सभी प्रकार की विद्या प्राप्त करना एक बात है और सत्य को प्राप्त करना दूसरी बात है। तुम सभी धर्मग्रन्थों का अध्ययन कर डालो फिर भी तुम सत्य से अनभिज्ञ रह सकते हो।

*　　　*　　　*

प्रेम यदि आत्मा की स्वतन्त्रता में बाधक है, तो वह रोग के सिवा और कुछ भी नहीं। उसको अपने वश में कर लो और प्रकृति के सारे अद्भुत व्यापार तुम्हारी मुट्ठी में आ जायेंगे।

*　　　*　　　*

अपने मन और बुद्धि को सुखद स्मृतियों से, विचारों से सुखमय तारतम्य से भर दो, जिससे वह सदा आनन्दपूर्ण विचारों और दिव्य भावनाओं में डूबा रहे। फिर कभी तुम्हारे सामने दुःख भोगने अथवा पछताने का अवसर न आयेगा।

*　　　*　　　*

जो आत्मा भीतर है, वही बाहर भी है। कौन आत्मा? सच्ची और वास्तविक आत्मा, न कि इन्द्रियों की दासता करनेवाली झूठी आत्मा।

*　　　*　　　*

दुखी व्यक्ति को चुपचाप अपना दुख भोग लेना चाहिए। बाहर धुआँ उड़ाने से लाभ? भीतर ही भीतर जब तक धुआँ प्रकाश में परिणत न हो जाय, तब तक किसी से कुछ कहना-सुनना व्यर्थ है। और धुएँ के बाद अग्नि अवश्य जल उठेगी—यह प्रकृति का नियम है।

*　　　*　　　*

भारत का पतन वेदान्त के अभाव से हुआ।

*   *   *

वेदान्त हमें शक्ति और बल प्रदान करता है, न कि कमजोरी और शिथिलता।

*   *   *

वेदान्त रसायनशास्त्र के समान प्रयोगात्मक विज्ञान है।

*   *   *

यदि बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ मनुष्य आध्यात्मिक प्रयोग नही करता, तो वह वेदान्त के विषय में कुछ नही जान सकता।

*   *   *

जगलो में वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करके साधक को ससार में आकर काम करना चाहिये और उसे अपने दैनिक जीवन में उतरना चाहिये।

*   *   *

वेदान्त निराशावाद नही है, वह तो आशावाद का सर्वोच्च शिखर है।

*   *   *

यदि आप वेदान्त का साक्षात्कार कर लेते है, तो नरक भी आपके लिए स्वर्ग बन जायेगा। जीवन सचमुच जीने योग्य होगा, कभी कोई चिन्ता, कोई परेशानी नही हो सकती। चित्त सदैव एकाग्र, प्रसन्न, तत्पर और प्रफुल्लित रहेगा।

*   *   *

तुम परम निर्गुण सत्य हो, जिसमें यह समस्त ससार समस्त ब्रह्माण्ड केवल लहरो या भँवरो के समान है। उस सत्य का साक्षात्कार करो और स्वतत्र हो जाओ, सर्वथा मुक्त।

*   *   *

राम आपको स्वतन्त्रता, विचार-स्वतन्त्रता, कार्य-स्वतन्त्रता प्रदान करता है। आपको बन्धन मुक्त करता है।

*   *

अपने विश्वासों के पीछे मरने की अपेक्षा उनके लिये जीवित रहना कठिन है।

*   *   *

यदि दर्शनशास्त्र का लक्ष्य यह हो कि हम शान्तिपूर्वक मृत्यु का आलिंगन कर सकें, तो उसके लिये वेदान्त दर्शन के अध्ययन से बढकर और कोई तैयारी नही हो सकती।

(ख) नीति-कथायें

ससार के सभी रहस्यवादी, आध्यात्मिक एव धार्मिक साहित्य नीति-कथाओ से परिपूर्ण ह । सारी भौतिक अथवा आध्यात्मिक विधायें चार प्रमाणों से जानी जाती ह । वे चार प्रमाण हैं—१ प्रत्यक्ष प्रमाण, २ अनुमान प्रमाण, ३ उपमान प्रमाण और ४ शब्द प्रमाण ।

प्रत्यक्ष प्रमाण अत्यन्त महत्त्वपूण एव विश्वसनीय हैं । अग्नि की हमने प्रत्यक्ष अनुभूति की हैं कि वह उष्ण और प्रकाशमय हैं । यदि करोडों व्यक्ति यह कहे कि आग ठंडी और अधकारपूण है, तो हमें रचमात्र भी प्रतीति नही होगी, क्याकि हमने आग की प्रत्यक्षानुभूति की है । अत यह प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

अनुमान प्रमाण वह हैं जहा अनुमान के द्वारा सत्य तक पहुँचा जाता हैं । उदाहरणार्थ वहाँ से धुआँ निकल रहा है, अत' आग होगी, क्योंकि आग से धुआ निकलता ह ।

उपमान प्रमाण वह है, जहा किसी उपमा द्वारा सत्य तक पहुँचने का प्रयास किया जाता हैं । उदाहरणार्थ किसी ने आग से धुआँ निकलते हुये नही देखा है, किन्तु मरुस्थल से धूल उडती हुई देखी हैं । उस व्यक्ति से आग से धुआँ निकलने की बात ऐसे उपमान प्रमाण से बोध करायी जायेगी "जसे मरुस्थल स धूल उडती हैं, वैसे आग से धुआँ निकलता है ।' —यह उपमान प्रमाण है ।

शास्त्रीय ज्ञान शब्द प्रमाण हैं । किन्तु इसे आख मूद कर स्वाकार नही किया जा सकता । विवेकपूर्ण एव न्यायसगत तर्क इसे स्वीकार करने के लिए आव श्यक हैं ।

सामान्य व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों स प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता हैं । किन्तु अध्यात्म विद्या इन्द्रियातीत हैं । अत अधिकाश व्यक्त उपमान प्रणाली—तुलनात्मक प्रणाली से अध्यात्म ज्ञान ग्रहण करते हैं । इसी उपमान प्रणाली, अथवा तुलनात्मक परम्परा का सुदृढ़ करने के लिये नीति-कथाओं का विकास हुआ । इन नीति कथाओं के माध्यम से अध्यात्म एव धम की गूढातिगूढ़ एव सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातें बतलायी जाती हैं । स्वामी राम नीति-कथाओं के अप्रतिम आचाय थे । वे तक और शास्त्राथ की अपेक्षा नीति कथाओं के द्वारा—तुलनात्मक शैली के माध्यम से दशन के गूढ़ रहस्य आसानी से हृदयगम करा देते थे । अग्रेजी भाषा के माध्यम से उनकी इन नीति-कथाओं का सकलन किया गया । उसमें ४७२ पृष्ठ हैं । वे नीति कथायें बड़ी ही उपदेशात्मक और साथ ही मनोरजक और आकर्षक हैं । उनकी नीति-कथायें, पौराणिक, ऐतिहासिक, लौकिक आख्यानों पर अवलम्बित हैं । उन्होंने

अपनी कल्पना द्वारा इस प्रकार की अनेक नीति-कथाओ का निर्माण किया। इस स्थल पर हम उनकी कतिपय नीति-कथाओं से सन्तोष करेंगे और उनकी सहज प्रतिभा का अनुमान करेंगे।

महत्त्वाकाक्षा का वास्तविक कारण
(शाहजहाँ कारागार मे)

भारत में एक महाराजा की कथा प्रचलित है। महाराजा था 'शाहजहा'। वह अपने पुत्र औरगजेब द्वारा कारागार में डाल दिया गया। औरगजेब सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी बनने का अभिलाषी था। इसीलिये उसने पिता, शाहजहाँ को बन्दीगृह में बन्द कर दिया। पुत्र ने धन की भूख मिटाने के लिये अपने पिता को जेलखाने में डाला था। एक बार पिता ने अपने पुत्र—औरगजेब को कुछ विद्यार्थी भेज देने को लिखा, ताकि विद्यार्थियो को पढ़ाकर वह अपना मनोरजन कर सके। इस पर पुत्र ने कहा, "इस मनुष्य, अर्थात् मेरे पिता की बात सुनते हो? वह इतने वर्षो तक साम्राज्य का शासन करता रहा है। अब भी हुकूमत करने को पुरानी आदत उससे नही छोडी जाती। वह अब भी विद्यार्थियो पर शासन करना चाहता है, कोई न कोई उसे शासन करने के लिये चाहिये ही। वह अपनी पुरानी आदतें नही त्याग सकता।"

यही बात है। हम अपनी पुरानी आदतें कैसे त्याग सकते है? पुराना अभ्यास हमसे चिपटा रहता है। हम उसे दूर नही कर सकते। आपका वास्तविक आत्मा अथवा सम्राट् शाहजहाँ (इस शब्द का अर्थ है, 'सारे ससार का शासक' और इस प्रकार उस सम्राट् शाहजहाँ के नाम का अथ है, सम्पूण विश्व का सम्राट) विश्व अर्थात् ब्रह्माण्ड का सम्राट ह। अब आपने सम्राट् का एक बन्दीखाने में, अपने शरीर की अन्धी कोठरी में, अथवा अपने परिच्छिन्न-आत्मा की हदबन्दी में डाल रखा है। वह वास्तविक आत्मा, वह विश्व का सम्राट् अपने पुराने अभ्यासो को भला कैसे भूल सकता है? वह अपने स्वभाव को कैसे त्याग सकता है? किसी में भी अपनी प्रकृति को दूर कर देने की शक्ति नही है। इसी प्रकार आत्मा, अर्थात आपका असली स्वरूप, अथवा आपका असली तत्त्व अपने स्वभाव को भला कैसे छोड सकता है? आपने उसे कारागार में बन्द कर रखा है, किन्तु कारागार में रहते हुये भी, वह सारे ससार पर अधिकार करना चाहता है, क्योकि समग्र ब्रह्माण्ड उसका था। वह अपनी पुरानी आदता को नही छोड सकता। यदि आप चाहते हैं कि आकाक्षा का यह भाव, अथवा यह लोभ दूर हो जाना चाहिये, यदि आपकी इच्छा है कि इस ससार के लोगो का लिप्सा भाव जाता रहे, तो क्या आप उन्हें ऐसा करने का उपदेश दे सकते है? असम्भव।

सच्ची आस्था

(नियाग्रा मे फँसे दो व्यक्ति)

नियाग्रा की तीव्र धार में दो व्यक्ति बहे चले जा रहे थे । उनमें से एक को एक विशाल लट्ठा मिल गया जिसे उसने अपने को बचाने की इच्छा से पकड लिया । दूसरे व्यक्ति को एक छोटी सी रस्सी मिली, जो तट पर स्थित लोगो ने उन्हें बचाने के निमित्त फेंकी थी । सौभाग्य से दूसरे व्यक्ति ने यह रस्सी पकडी, जो लट्ठे की भाँति भरकम नही थी, और वह रस्सी देखने में अस्थिर और नाजुक थी, तथापि वह व्यक्ति बच गया । किन्तु जिस व्यक्ति ने लकडी के विशाल लट्ठे को पकड रखा था, वह लट्ठे के साथ प्रचण्ड धार में बहकर गजते हुये प्रपात के नीचे उमडते हुये जलसमूह की समाधि में समा गया ।

ठीक इसी प्रकार तुम इन बाहरी नामो—प्रसिद्धि, धन-सम्पत्ति, मान मर्यादा ऐश्वय—में विश्वास करते हो । ये सब उस काठ के लट्ठे के समान विशाल तो प्रतीत होते हैं, किन्तु वे वास्तविक रक्षा के साधन नही हैं । रक्षा का वास्तविक साधन तो महीन सूत के समान है । यह साधन भौतिक नही है । तुम इसे न तो इन्द्रियो से ग्रहण कर सकते हो, न हाथ में ले सकते हो और न इसका स्पश ही कर सकते हो । यह सूक्ष्म सिद्धान्त, यह सूक्ष्म सत्य अत्यन्त बारीक है । यह वह रस्सी है, जो तुम्हारी रक्षा करेगी । ये समस्त सासारिक वस्तुयें, जिन पर तुम इतना भरोसा करते हो, केवल तुम्हारे विनाश का कारण बनेंगी और तुम्हें निराशा, चिन्ता तथा पीडा के गहरे गर्त में गिरा देंगी । सावधान ! सावधान !

सत्य के दृढ दुग में शरण लो । वाह्य वस्तुओ की अपेक्षा, सत्य में अधिक विश्वास रखो । प्रकृति का यह अटल नियम है कि जब कभी मनुष्य व्यवहार में वाह्य पदार्थों एव धन-सम्पत्ति पर भरोसा करता है, तब वह अवश्य असफल होता है । यह अटल नियम है । ईश्वरत्त्व में दृढ विश्वास रखो, फिर तुम सुरक्षित हो ।

आन्तरिक पवित्रता की महत्ता

(एक चोर की कहानी)

राम अब आपको भारतवष के एक बडे नामी चोर की उसी के मुख से कही कहानी सुनाता है । राम उस समय निरा बच्चा था और उसने उस नामी चोर को अपने मित्रो में यह कहानी कहते हुए सुना था । राम उस अवसर पर वहाँ स्वय उपस्थित था । राम उस समय अपने ग्राम के जगल में था, ह तब बहुत छोटा था । छोटे लडके को कुछ न समझ कर, नादान जान कर चोर ने इस छोटे बालक की उपस्थिति में अपने मित्रा से कहने में कुछ छिपाया नही और खुले दिल

से सारी कहानी कह डाली। इस कहानी से आप पर पूर्णत सारे विषय का रहस्य खुल जायेगा। किस प्रकार एक बार वह एक धनी के घर में घुसा था और वहाँ से जवाहरात चुरा कर भागा था, उसका उस चोर ने वर्णन किया। चोर ने कहा, "जो जवाहरात उस धनी ने हाल ही में लाकर अपने घर में रखे थे, उनका किसी प्रकार मुझे पता लग गया था। उसके घर में मैं घुसने को चला, किन्तु उसका कोई उपाय या तरीका न सूझ पडा। किन्तु बार-बार सोच सोचकर मैंने राह निकाल ली। मैंने देखा कि उस धनी के घर के पास ही एक बडा भारी वृक्ष है। और वह घर की तीसरी मजिल के सामने है। मैंने रात को अँधेरे में उस पेड पर एक झूला डालने की युक्ति सोची। उस पेड की चोटी पर एक रस्सा डाला और एक प्रकार का झूला बना लिया। बस, उस झूले पर मैं झूलने लगा। इस प्रकार मैं कुछ काल तक निरन्तर झूलता रहा। गरमी की ऋतु थी और यह मुझे भली-भाँति मालूम था कि घर के लोग पाँचवी मजिल की छत पर सोये हुये हैं, वे तीसरी मजिल वाली छत पर नही है। जब झूला झूलते झूलते खिडकी के पास पहुँचा, तो मैंने चटाक् से एक लात मारी, फिर दूसरी लात जमायी और तीसरी बार खिडकी के किवाड फट से खुल गये। इस प्रकार सातवें आठवें प्रयत्न के बाद जब खिडकी के किवाड खुलकर पीछे गिर गये, तब मैं घर में जा घुसा। मेरे पास कुछ और रस्से थे। मैंने उन रस्सो को नीचे लटकाकर दो या तीन साथियो को ऊपर खीच लिया। तब मैं अपने चित्त में सोचने लगा कि जवाहरात के मिलने की सम्भावना कहाँ हो सकती है। मैंने मन का एकाग्र किया। उस समय मैंने मन में कहा कि लोग अपने जवाहरात ऐसे स्थानो पर नही रखते, जहाँ चोरो को उनके मिल जाने की सम्भावना हो सके। लोग जवाहरात को ऐसे स्थान पर रखते है, जहाँ दूसरो को उन्हें पा सकने की किंचित् भी सम्भावना न हो सके। बस, मैं एक जगह खोदने लगा, जहा उनके पा लेने की कोई भी सम्भावना न थी। जवाहरात जमीन में गडे थे। उन दिनो भारतवष में यही तरीका था, और कुछ लोग आजकल भी वहाँ ऐसा ही करते है। परन्तु अब बहुत से लोग अपने रुपयो को बैंको में रखने लग गये हैं। लोग अपने धन को भूमि में गाड रखते थे। मैंने जब धन पा लिया, तभी मैंने सीढियो पर एक आवाज सुनी।" उस समय अपने मन की हालत का जिस ढग से चोर ने वर्णन किया, उसे राम भूल नहीं सकता। चोर ने फिर कहा, "जब मैंने और मेरे साथियो ने धन प्राप्त करते ही, आवाज सुनी, तो उस आवाज ने हमारे शरीरो में कँपकँपी पैदा कर दी। हम लोगो की सारी देह काँपती, थरथराती, भयभीत होकर चूर-चूर हुई जाती थी। हम लोग सिर से लेकर पैर तक थरथरा रहे थे। तब मैंने

कहा कि जान पडता है कि शायद यह मृत्यु की घडी है। हमने अपने आप को मृतवत् पाया। उस समय हम सोच रहे थे कि एक नन्हा सा चूहा भी आकर हमारा खातमा कर सकता है।" वह आवाज वास्तव में केवल चूहो की आवाज थी। चोर ने अपना कहना जारी रखा, "मै उस समय बहुत पछताया, ईश्वर की प्रार्थना करनी प्रारम्भ कर दी। और अपने शरीर का ध्यान छोड कर मैंने आत्मसमर्पण किया। पश्चात्ताप करके ईश्वर से क्षमा-याचना की। उस समय मैं समाधि अवस्था में था, जहाँ मन, मन नही था, जहाँ सारे स्वार्थ दूर हो गये थे। उस समय मैंने इस प्रकार प्रार्थना की, 'हे भगवान्, मेरी रक्षा करो। मै योगी हो जाऊँगा, मैं सन्यास ले लूगा, मैं साधु बन जाऊँगा, मै अपना समस्त जीवन आपकी सेवा में अर्पित कर दूँगा। हे प्रभो! मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो।' यह अत्यन्त व्यग्रतापूर्ण आन्तरिक और मार्मिक प्रार्थना थी। बडी ही सच्ची विनय थी। यह मेरे हृदय की तह और अन्त करण से निकल रही थी। यह प्रार्थना मेरे सारे तन के भीतर से, रोम-रोम के भीतर से गूज रही थी। मैं उस समय मनसा, वाचा, कर्मणा ईश्वर के ध्यान में निमग्न था। फल क्या हुआ? सब आवाजें शान्त पड गयी। अर्थात् सारे शब्द बन्द हो गये और मैं और मेरे साथी घर से साफ बाहर निकल आये। सब के सब घर से सकुशल बाहर निकल आये।"

अब ध्यान दीजिये। बाह्य कर्मों से ही किसी के विषय में विचार मत स्थिर कीजिये। मनुष्य वह नही है, जो उसके बाह्य कर्म है, मनुष्य वह है, जो उसके भीतर के विचार हैं। यह सम्भव है कि वेश्या के घर में रहने वाला मनुष्य भी भीतर से साधु हो। हम जानते हैं कि भगवान् बुद्ध एक वेश्या के घर में रहे थे, किन्तु वे निष्पाप थे हम जानते हैं कि हजरत ईसा मेरी मैग्डलीन के घर रहे थे, जिस स्त्री को लोग पत्थर से मारने जा रहे थे, किन्तु हजरत ईसा ईश्वर थे। हमें मालूम है कि भारत में भी क्राइस्ट के समान बहुत से महापुरुष लोकोद्धारक हुये हैं, वे निन्दित जनो के साथ रहे थे। पर वास्तव में वे ईश्वर के स्वरूप थे। मत आदमी को केवल उसकी सगति से मत जानने की कोशिश कीजिये। किसी मनुष्य पर केवल उसके कर्मों से ही अपना निर्णय मत दीजिये। जल्दी जल्दी में किसी के सम्बन्ध में अपनी धारणा मत स्थिर कर लीजिये। मनुष्य वह है जैसे उसके आन्तरिक विचार हैं।

व्यर्थ का रोदन

(एक अर्ध-विक्षिप्त की गाथा)

भारत के एक गाँव में एक अर्ध-विक्षिप्त रहता था। जैसे यहाँ, अमेरिका में अप्रैल के महीने में दूसरों को उल्लू बनाने की प्रथा है, वैसे ही भारत में मार्च के

महीने में (होली के अवसर पर) लोग अपने यार-दोस्तो के साथ तरह-तरह के हँसी-ठट्ठा किया करते है। उस ग्राम के कुछ हँसमुख नवयुवको ने उस अध-पगले से मजाक उडाने का यह बहुत उपयुक्त अवसर समझा। बस, उन सभो ने उसे कुछ शराब पिलाकर मस्त बना डाला। तत्पश्चात उसके परम विश्वस्त, परम हार्दिक मित्र को उसके पास भेज दिया। उस अध पगले मित्र के समीप आते ही, उसका मित्र गला फाड फाड कर चिल्लाने लगा, आँखो से कृत्रिम आसुओ की धारा बहाने लगा, रोने धोने लगा और कहा, "भाई, मैं तुम्हारे घर से अभी अभी आ रहा हूँ, वहा मैने देखा कि तुम्हारी स्त्री विधवा हो गयी है, मैंने उसे विधवा देखा।" इस पर वह अध पागल भी अपनी पत्नी के वैधव्य पर रोने चिल्लाने और हाय-तोबा मचाने लगा। वह फूट-फूट कर रोने और आसू बहाने लगा। अन्त में दूसरे लोग आकर पूछने लगे, "अरे भाई, तुम रोते क्यो हो ?" पगले ने उत्तर दिया, "मेरी स्त्री विधवा हो गयी है, इसी से मैं रो रहा हूँ।" उन लोगो ने उस पगले को समझाया, "भाई, यह कैसे हो सकता है ? तुम तो जीवित हो और कह रहे हो कि मेरी स्त्री विधवा हो गयी है। जब तक, तुम—उसके पति नही मरते, तब तक वह विधवा किस प्रकार हो सकती है ? तुम मरे नही, तुम स्वय अपनी स्त्री के वैधव्य पर शोक कर रहे हो, यह तो बिलकुल बेतुकी बात है।" पर वह पागल कहने लगा, "अरे जाओ, तुम सब नही जानते, तुम नही समझते, हमारे उस अत्यन्त विश्वासपात्र मित्र ने कहा है, जो अभी हमारे घर से होकर आ रहा है। उसने मेरी स्त्री को वहाँ विधवा देखा है। वह इस बात का साक्षी है। वह देख आया है कि मेरी स्त्री विधवा हो गयी है।" लोगों ने कहा, "देखो, यह कैसा भारी अनथ, बेहूदापन है।" (हँसी)

अभी हम इस मूढ की कहानी पर हँस रहे थे कि वह अपनी स्त्री के वैधव्य पर रो रहा था और लोगों की बात नही मानता था कि उसके जीवित रहते उसकी स्त्री किसी भी प्रकार विधवा नही हो सकती। मानो अपने व्यवहार से यह कह रहा है—

तुम तो कहते हो सच मेरे भाई।
पर घर से आया है मोतबर नाई॥

किन्तु याद रहे जगत् के मत-पथ, धर्म तथा सभी दम्भी, अभिमानी और फैशनेबुल लोग ऐसी ही विकट असभव बातें कर रहे है। न तो वे अपनी आँखो से देखते हैं और न अपने दिमाग से सोचते है। यहाँ ही देखिये, आपकी अपनी आत्मा, आपका सत्यस्वरूप, प्रकाशों का प्रकाश, निरजन, परम पवित्र, स्वर्गों का स्वर्ग, आपके भीतर विद्यमान है। आपका अपना आप, आपका आत्मस्वरूप सर्वदा

जावित, अजर अमर, नित्य उपस्थित हैं, फिर भी आप रो रोकर आँसू बहाते हुये कहते फिरते हो, "अरे, हमें सुख कब प्राप्त होगा ?" और देवताओं का आवाहन करते हो कि वे आकर तुम्हें विपत्ति से उबार दें। आप देवताओं के आगे प्रणिपात करते हो, नीच भिखारी का अवलंबन करते हो और स्वयं अपने को तुच्छ समझते हो। क्योंकि अमुक लेखक, अमुक उपदेशक या महात्मा अपने को पापी कह गया है वह हमें कीड़े-मकोड़े कहकर पुकारता है, इसलिये हमें भी वही करना चाहिये, इसलिये अपने को मृतक समझने में हमारी मुक्ति है। इसी तरीके से लोग सभी वस्तुओं पर दृष्टि डालते हैं, पर इससे काम चलने का नहीं। अपने निज जीवन का अनुभव करने लग जाओ, अपने निजात्मा को मान करना प्रारम्भ कर दो। इस नशे की हालत का विदा कर दो जो आपको अपनी मृत्यु पर व्यर्थ रोदन करा रही है। अपने पैरों पर आप खड़े हो जाओ। चाहे आप छोटे या बड़े, चाहे आप उच्च पद पर हो अथवा नीच पद पर, इसकी रचमात्र परवाह न कीजिये। अपनी प्रभुता का, अपनी दिव्यता का साक्षात्कार कीजिये। चाहे कोई भी हो, उसकी ओर निर्भय और निश्शंक दृष्टि से देखिये, हटिये मत। अपने आपको औरों की दृष्टि से मत देखिये, बल्कि अपने आप में देखिये। आपका अपना आप आपको बारबार यह उपदेश देगा कि "सारे संसार में आप सबसे महान आत्मा हो।"

आत्म-सम्मान

(एक सज्जन का दुखड़ा)

एक सज्जन राम के पास आये और कहने लगे कि मेरा बड़ा अफसर मेरे साथ सदैव बुरा बर्ताव करता है। राम ने उनसे कहा, "आपका अफसर आपको इसलिये नीच दृष्टि से देखता है कि आप स्वयं अपने को नीच दृष्टि से देखते हैं। यदि हम अपना सम्मान स्वयं करें, तो प्रत्येक व्यक्ति अवश्य हमारा सम्मान और सत्कार करेगा। यदि इस छोटी-सी पुस्तक पर एक आना मूल्य लिखा हो तो इसके लिये कोई दो आने नहीं देने जायेगा। पर इस छोटी-सी पुस्तक का मूल्य एक रुपया रखा गया है, तो सभी इसके लिये एक रुपया देने को राजी होंगे।"

इसी तरह अपना मूल्य कम कर दो और देखो, और कोई भी तुम्हारा मूल्य नहीं समझेगा। स्वयं अपना अधिक से अधिक मूल्य निर्धारित करो, आत्म-सम्मान करो, अपने देवत्व, अपने ईश्वरत्व का मान करो, और प्रत्येक व्यक्ति को वह मूल्य चुकाना ही पड़ेगा।

अपना स्वामी
(एक राजा और एक अपराधी)

एक बार एशिया के एक राजा ने एक आदमी को अपराधी समझा, उसको अपराधी इसलिये समझा कि उसने राजा को सलाम नही किया था। उस बूढ़े राजा को जब कोई सलाम न करता, तो वह बहुत क्रोधित हो जाया करता था। उस अपराधी से राजा ने कहा, "तू नही जानता कि मैं कितना प्रतापी और कठोर शासक हूँ ? तू इतना धृष्ट है। तुझे मालूम नही कि तुझे मार डालूगा ?" उस मनुष्य ने राजा के मुह पर थूक दिया और इतनी कडी दृष्टि से उसकी ओर देखा कि वह राजा घबडा गया। फिर वह बोला—"अरे मूर्खता के पुतले ! वह तेरी शक्ति, तेरे अधिकार में नही कि तू मुझे मार सके। मैं आप अपना स्वामी हूँ। तेरा अपमान करना मेरी शक्ति में है, यह मेरे अधिकार में है कि मै तेरे मुह पर थूक दूँ और यह भी मेरे अधिकार में है कि इस शरीर को सूली पर चढ़ा हुआ देखू, अपने शरीर का मैं आप स्वामी हूँ। तेरा अधिकार पीछे है, मेरा अधिकार पहले है।"

इसी प्रकार अनुभव करो, यह महसूस करो कि आप सदा अपने स्वामी है। निज आत्मा की दृष्टि से सभी वस्तुओ को देखिये, दूसरो की आखो से नही। अपनी स्वतन्त्रता का अनुभव कीजिये। अनुभव कीजिये कि आप ईश्वरो के ईश्वर, स्वामियो के स्वामी हैं, क्योकि आप वही है, 'तत्त्वमसि'।

लोग क्यो दु ख सहते हैं ? वे दु ख भोगते है निजात्मा की अज्ञानता के कारण, जिससे उन्हें अपना सत्य स्वरूप भूल जाता है और जो कुछ दूसरे लोग उनसे कहते हैं, वही वे अपने को मान लेने है। यह दु ख तब तक बराबर बना रहेगा, जब तक मनुष्य आत्मा का साक्षात्कार नही कर लेगा, जब तक यह अज्ञान दूर नही हो जायेगा।

सासारिक प्रेम ही दु ख का मूल है
(श्रीकृष्ण और अघासुर की कथा)

हिन्दू धम ग्रथ में एक कथा है कि भारत के प्रसिद्ध अवतार, भगवान् श्रीकृष्ण को एक बडा दैत्य (अघासुर) निगले जा रहा था। उन्होंने अपने हाथ में एक खजर ले लिया। वे पूरी तरह से निगल लिये गये। अपने को उस भीषण अजगर (अघासुर) के पेट में देखकर उन्होने (श्रीकृष्ण ने) उसका हृदय बेध दिया। उसका हृदय विदीण हो गया, वह घाव से परिपूण हो गया और मर गया। भगवान् श्रीकृष्ण उसके उदर से बाहर निकल आये।

ठीक यही मामला है। प्रेम क्या है ? प्रेम कृष्ण है, अर्थात् प्रेम परमेश्वर है प्रेम ईश्वर है और वह हृदय में प्रवेश करता है, विषयलोलुप मनुष्य के चित्त में वह पैठ जाता है, वह हृदय में घुस जाता है और जब वह आसन जमा लेता है, जब हृदय के भीतर उसे स्थान मिल जाता है, तब वह वार करता है। और, परिणाम क्या होता है ? हृदय फट जाता है, हृदय घायल हो जाता है। फलस्वरूप व्यथा और शोक हाथ लगते हैं। सासारिक प्रेम मे प्रत्येक मामले में रोना और दाँता का किट-किटाना रहता है। यही रीति है। यही दैवी विधान है। यही घटना है। किसी भी सासारिक पदार्थ से ज्योंही, आपने दिल लगाया, किसी भी लौकिक वस्तु को ज्योंही आप उसी के लिये प्यार करने लगे, त्योंही कृष्ण भगवान् आप में प्रवेश कर जाते है और आपको घायल कर देते हैं, हृदय फट जाता है, आप शोक-पीड़ित हो जाते हैं, आप विलाप और रुदन करने लगते हैं, "अरे यह प्रेम तो बड़ा निष्ठुर है, इसने मुझे तबाह कर दिया।"

यह एक दैवी विधान है—"इस ससार में जो कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति या लौकिक पदार्थ में अपना चित्त लगायेगा, उसे अवश्य कष्ट उठाना पड़ेगा। या तो वह प्रियजन अथवा प्रिय पदार्थ उससे छीन लिया जायेगा, या उनमें से एक मर जायेगा, या उनमें कलह हो जायेगो।"—यह अनिवार्य नियम है।

प्रतिकूल परिस्थितियो मे मानसिक सन्तुलन
(एक सज्जन मालिक और दुष्ट नौकर की कहानी)

एक बड़ा सज्जन पुरुष था। उसके पास एक बहुत लुच्चा और बदमाश नौकर था। वह प्रत्येक काम को उल्टा ही किया करता था। अपने मालिक की आज्ञाओ के पालन करने का उसका ढग बड़ा निराला था। वस्तुत उसके काय करने की शैली ऐसी थी कि सहिष्णु एव गभीर से गभीर मनुष्य भी उससे झल्ला उठता। पर वह धर्मात्मा मालिक उस नौकर पर कभी क्रुद्ध न होता, उल्टे वह सज्जन उस दुष्ट नौकर के साथ बड़े प्रेम का बर्ताव करता। एक बार उसके एक अतिथि ने उस नौकर के विरुद्ध बहुत-सी शिकायतें की। वह उसके कामो से बहुत ही खिन्न और क्षुब्ध हुआ था। उसने उसके मालिक से उसे निकाल देने को कहा।

पर मालिक ने उत्तर दिया, "आपकी सम्मति अत्युत्तम है और आपने शुभेच्छा पूवक यह सम्मति दी है। मैं जानता हूँ कि आप मेरे परम हितैषी और शुभचिन्तक है और मेरे कार्यों की वृद्धि चाहते है, इसीलिये आप मुझे ऐसी सम्मति दे रहे है। पर मैं इस बात को अधिक समझता हूँ। मैं जानता हूँ कि इस नौकर के

कारण मेरा काम-काज खराब हो रहा है। इससे मेरे व्यापार को हानि पहुँच रही है। किन्तु मै उसे इसीलिये रखता हूँ कि वह इतना अवज्ञाकारी और अविश्वासी है। यह उसका दुष्ट आचरण और खराब स्वभाव है, जिससे वह मुझे इतना प्रिय हो रहा है। वह पापी, दुष्ट और नमकहराम है, इसी से मै उसे अधिक प्यार करता हूँ।" उस मालिक का यह कथन सचमुच ही बडा आश्चर्यजनक था।

वह मालिक फिर बोला, "ससार में जितने लोगो से मेरा वास्ता पडा है, उन सब में मे एक यही मनुष्य ऐसा है, जो मेरी आज्ञाओ का उल्लघन करता है, जो मेरे प्रति अप्रिय, अकीर्तिकर और हानिकर काम करता है। और जितने लोगो से मेरा वास्ता पडा है, वे सबके सब इतने कोमल स्वभाव वाले, इतने अच्छे और इतने प्रेमी है कि वे कभी मुझे रुष्ट करने का साहस नही करते। इसलिये मेरा यह नौकर असाधारण है। यह एक तरह का मुगदर है, जो मेरी आध्यात्मिक शिक्षा का साधन बन रहा है। जिस प्रकार बहुत से व्यक्ति अपना शारीरिक बल बढाने के लिये मुगदर आदि घुमाते है, उसी प्रकार यह नौकर मेरे आत्मिक बल की वृद्धि के निमित्त मुगदर का काम देता है और इससे मेरा आध्यात्मिक शरीर पुष्टि पाता है। इस नौकर द्वारा मुझे आध्यात्मिक बल प्राप्त होता है। सक्षेप में इस नौकर के साथ मुझे एक प्रकार की कुश्ती लडनी पडती है, जिससे मुझे शक्ति प्राप्त होती है।"

अत राम इस तथ्य को आपके सामने उपस्थित करता है और इसकी ओर आपका ध्यान इसलिये आकर्षित करता है कि यदि आपको गृहस्थी बन्धन आपकी उन्नति के माग में विघ्न रूप अथवा अडचन-पत्थर मालूम पड़ें, तो भी आपको खिन्न और क्षुब्ध होने की आवश्यकता नही। ठीक उसी धर्मात्मा मालिक का अनुकरण करें। मानसिक सतुलन ठीक रखें। भेदभावा और कठिनाइयो को शक्ति और बल का नवीन स्रोत बना लें।

छाया के पीछे मत पडो

(एक बच्चे की सत्य-कथा)

राम एक ऐसे बच्चे की घटना जानता है, जिसने अभी अभी रेंगना अथवा घुटनो के बल चलना सीखा था। बच्चे ने अपनी छाया देखकर समझा कि यह तो कोई विचित्र वस्तु है। बच्चे ने छाया का सिर पकडना चाहा और वह उसकी ओर रेंगने लगा। छाया भी रेंगने लगी। इधर बच्चा खिसका और उधर छाया भी खिसकी। छाया का सिर पकडने में असमर्थ होकर वह रोने लगा। बच्चा गिर पडता है, छाया भी उसके साथ गिर पडती है। बच्चा फिर उठता है और

छाया का पीछा करता है। इतने में माता को उस पर दया आ गयी। उसने बच्चे के हाथ से उसी का सिर छुमा दिया। अब देखिये, छाया का सिर भी हाथ में आ गया। अपना ही सिर पकड़िये और छाया भी पकड़ में आ जाती है।

स्वर्ग और नरक आपके ही भीतर है। शक्ति आनन्द और जीवन का मूल आपके भीतर है। मनुष्यो! प्रकृति और राष्ट्र या ईश्वर आपके भीतर है। ऐ संसार के मनुष्यो! सुनो, सुनो यह पाठ मकानों की छतों से, बड़े-बड़े नगरों के चौराहों से सब राजमार्गों से घोषित होने योग्य है। यह पाठ उच्च स्वर से घोषित होने के योग्य है। यदि तुम किसी वस्तु को प्राप्त करना चाहते हो, किसी पदार्थ की अभिलाषा करते हो तो छाया के पीछे न पड़ो। अपना ही सिर छुओ। अपने ही भीतर प्रवेश करो। यह अनुभव होते ही आपको जान पड़ेगा कि सारा संसार आप ही का हस्तकौशल है। आप देखेंगे कि प्रेम की सभी वस्तुयें, समस्त मनोहर और लुभाने वाले पदार्थ आपके ही प्रतिबिम्ब या छाया मात्र है। यह कितनी अनुचित बात है कि 'एक टोपी या घड़ियों जैसी छोटी चीजों के लिये हम अपने प्राण न देते और जी-तोड़ परिश्रम से हम केवल जल-बुद्‌बुद कमाते है।"

आसक्ति—बंधन का हेतु

(अटलाटा की सुन्दर कथा)

प्राचीन इतिहास में अटलाटा की एक बड़ी ही सुन्दर कथा है। उसमें ऐसा कहा है कि जो मनुष्य उससे ब्याह करना चाहता था, उसे उसके साथ दौड़ की बाजी लगानी पड़ती थी। कोई भी मनुष्य दौड़ में उससे आगे नहीं निकल पाता था। एक मनुष्य ने अपने देवता जूपिटर की सहायता ली और दौड़ में अटलाटा से आगे निकल जाने के लिये अपने इष्टदेव से प्रार्थना की। देवता ने उसे एक बड़ी ही विलक्षण राय दी। उसने इस मनुष्य से कहा कि दौड़ के रास्ते पर यत्र तत्र सोने की ईंट बिछा दो। सच तो यह है कि दौड़ में अटलाटा को जीत लेने के लिये कोई और सहायता जूपिटर अपने इस भक्त को नहीं दे सकते थे। अखिल विश्व में सबसे तेज और बलवान होने का वरदान अटलाटा को जूपिटर से पहले ही मिल चुका था।

बस जूपिटर के इस भक्त ने दौड़ के पूरे चक्कर पर सोने की ईंटें डाल दी और अटलाटा को अपने साथ दौड़ने के लिये चुनौती दी। दोनों ने दौड़ना प्रारम्भ किया। यह मनुष्य स्वभावतः अटलाटा से बहुत दुर्बल था। एक क्षण में वह उससे आगे निकल गयी। किन्तु जब यह मनुष्य उसकी नजर से ओझल हो गया, तब उसकी दृष्टि रास्ते पर पड़ी हुई सोने की ईंटों पर गई और वह उन्हें बटोरने

के लिये रुक गयी। इस प्रकार जब वह सोने की ईटें बटोरने में लगी थी, तब भक्त उससे आगे निकल गया। इसके एक या दो मिनट बाद अटलाटा ने फिर उस व्यक्ति को पकड लिया। किन्तु फिर दौड के चक्कर की बाईं तरफ उसे दूसरी ईंट दिखायी दी। वह उस इट को उठाने गयी और ले आई। इस बीच में जूपिटर का वह भक्त उससे आगे निकल गया। किन्तु कुछ ही देर में अटलाटा ने उस व्यक्ति को फिर पकड लिया। फिर उसे कुछ और सोने की इटें मिली। वह उन्हें उठाने के लिये रुकी। इस बीच में वह आदमी फिर आगे निकल गया। यही होता रहा। दौड समाप्त होते होते अटलाटा के पास सोने का बडा भारी बोझ हो गया। इस बोझे को ढोकर दौड में आगे निकल जाना उसके लिये बडा कठिन हो गया। अन्त में वह आदमी जीत गया और अटलाटा हार गयी। शर्त्त के अनुसार अटलाटा के साथ उसका विवाह हो गया। अटलाटा उसे मिल गयी। अटलाटा की बटोरी हुई सोने की इटें भी उसे मिल गयी। उसे सब कुछ मिल गया।

धम के रास्ते पर और सत्य के माग पर जो लोग चलना चाहते हैं, उनमें से अधिकाश का यही ढग है। सत्य के मार्ग पर जब तुम चलना शुरु करते हो, तब तुम्हें अपने आसपास अनेक प्रकार के मायिक आकपण और लौकिक प्रलोभन मिलते है। किन्तु ज्योही, तुम उन सासारिक प्रलोभनो तथा सुखा को भोगने के लिये तैयार होगे, ज्योही तुम अपने को पिछडा हुआ पाओगे। तुम दौड में हारने लगोगे। अपना समय व्यथ गँवा दोगे और अपना पथ कटकाकीण बना लोगे, नही, नही, अन्त में अपना सवस्व खो बैठोगे। अत सासारिक आसक्ति और भौतिकता से सतक रहो। सासारिक सुखों को भोगते हुये, तुम कदापि सत्य को नही पहुँच सकते। कहावत है कि "यदि तुम सत्य को स्वीकार करोगे, तो सासारिक सुखो को भोगने के योग्य न रह जाओगे। सासारिक सुखो को तुम भोगो, तो सत्य तुम्हारे हाथ से निकल जायेगा, मसे आगे बढ जायेगा।"

[ग] स्वामी राम की कुछ कवितायें

कवि के रूप में स्वामी राम का मूल्यांकन एक पृथक अध्याय में किया जा चुका है। उन्होंने लगभग १५० कवितायें उर्दू में लिखी थी और १०० अंग्रेजी में। ये अंग्रेजी की कवितायें हैं, और इनका अनुवाद हिंदी के प्रसिद्ध कवि शम्भुनाथ सिंह ने किया है—

दुनिया

मैंने जग को देखा, जाना, अध्ययन किया,
इस बालबोध पुस्तक ने कविता सिखलाया।
थे चित्र खिलौनों से चित्रित—इसके अक्षर
यों विविध भाँति से इसने सब कुछ बतलाया।
तब थे इतने आश्चर्यजनक जो चित्राक्षर
मैं त्याज्य समझ अब इन्हें फेंक देता भू पर।
पुस्तक के पन्ने फाड़ - फाड़ अब दुनिया को,
हूँ जला रहा अपना हुक्का मैं एकाकी।
कश खींच उड़ाता धूयें का बादल मुख से,
लखता फिर चक्करदार उसे उड़ाता सुख से।

●

सभ्यता के प्रति

सभ्यता एक उद्देश्यहीन है सपना भर
ऊपर से ऊँचे नाम रूप, पर क्या भीतर?
तुम उठा रहे रजमय आंधी कृत्रिमता की,
तम से अपना ही ज्ञान नहीं तुम में बाकी।
तुम शैल शिखर पर बैठ वेश विन्यास निरत,
चिन्ताओं के हित आत्मा की हत्या में रत।
करने को जग को खुश, पाने को व्यर्थ मान,
अपवित्र बनाते हो तुम निज आत्मा महान्।

*　　　*　　　*

तुम नीच गुलामों की - सी लम्पटता में रत,
तुम फैशन के हो दास, धूर्त तुम बाइज्जत।

अनुकरण कर रहे तुम कपि से पर-धर्म रीति,
तुम तो निर्मित करते कृत्रिम आचार नीति।
'होगा तो इससे लाभ'? प्रश्न यह पग-पग पर,
'जाने क्या लोग कहेंगे'? तुमको प्रति पल डर।
तुम कितने कातर, क्षुद्र, वेत्रवत निर्बल तन,
हर एक मोड़ पर जीवन के तुम पीत वदन।

●

तथाकथित सभ्यों से

ओ सभ्यो! आलस के प्रति इतना आकर्षण!
तुम तो निर्बलता और कपट के सम्मिश्रण!
तुम सूक्ष्मदृष्टि भावुक, होते झट तप्त अरुण,
जैसे हो शोथ युक्त कोई भारी सा व्रण!

*　　*　　*

कैसी घबरायी भीड़! मूढ़ लाखों जन गण!
औरों के मति अनुसार तुम्हारा है जीवन।
निज आत्मा ही सम्राट, उसे क्यों ठुकराते?
बहुमूल्य वस्तु से क्या सच तुम गौरव पाते?

*　　*　　*

तुम घड़ी पेण्डुलम् सदृश झूलते इधर-उधर,
विस्तार किया करते लघु बातों को नश्वर।

*　　*　　*

ले रहे प्रेम की जगह नीच व्यापारिक हित,
आत्मा का हस बँधा जाता लक्ष्मी से नित।
जन-गण न रहा अब हँसने रोने को स्वतन्त्र,
करने को मुक्त न प्यार, न सोने को स्वतन्त्र!

*　　*　　*

छद्म ही बना आच्छादन, लज्जा, अवगुंठन,
यश और नाम की चिन्ता सता रही प्रतिक्षण।
अस्वास्थ्य तुम्हारा स्वास्थ्य, बुरा ही तुम्हें भला,
अनुचित धन-संचय तुमको है नित रहा जला।

*　　*　　*

हैं वस्त्र तुम्हारे कफन, मन्त्र से और भवन,
आत्मा का दफना कर करते प्रलाप-क्रन्दन।
तन की रक्षा हित करते आत्मा को कलुषित
खो रहे समूचा, एक भाग की रक्षा-हित

*　　　　*　　　　*

तत्त्व अधीनस्थ हो सभी तुम्हारे हैं स्वामी,
निज कटु पीडक इच्छाओं के तुम अनुगामी!
तव तन हैं जड विस्तार मात्र, जीवन विहीन,
कुण्ठा, तनाव से भरा और भावनाहीन।

*　　　　*　　　　*

जागो, जागो, तुम बन जाओ जगकर चेतन,
अब दूर करो तन्द्रा, फेंको निज अवगुण्ठन।
हो तुम्हीं विश्व के स्वामी, जन-जन के ईश्वर,
फिर क्या यह नतन प्रेतों के सम्मुख झुककर?

*　　　　*　　　　*

अभिलाषा की छायाओं को तुम दूर करो,
रवि, तारक, अग्नि सभी से बढ़कर ज्योति भरो।
चिन्ता, ममता, सब दूर करो, मृत वस्तु मान,
लो, सुनो, देवदूतों का यह आनन्द गान।

*　　　　*　　　　*

मुझमें न रहा अब भौतिक वैभव हित आदर
सब भेदभाव से शून्य बना मेरा अन्तर।
रह गयी न ईर्ष्या, भय, चिन्ता मेरे भीतर,
अब मैं हूँ प्रिय का स्नेह पात्र सबसे बढ़कर।

*　　　　*　　　　*

सारे रहस्य-गोपन मेरे हित आज प्रकट,
मेरे हित दोनों एक दूर हो या कि निकट।
मैं पहुँच गया हूँ अब असीम की सीमा पर
निस्सग हुआ, मैं उठ सम्बन्धों के ऊपर।
मैं हूँ जीवन, मैं अप्रादिक वैभव महान्,
ओ त्राहि माम्! ओ त्राहि माम्!!

तारो को जैसे मन्द बना देता दिनकर,
ज्यों डूब नगाड़े-स्वर में जाता वीणास्वर।
जैसे सरितायें सागर में होती विलीन,
जागरण क्षणों में लुटते त्योंही स्वप्न दीन।

*　　*　　*

है सत्य, प्रेम अग्नि में सभी भय जाता जल,
धो धो कर निज को बना रहा मैं भी निमल।
मैं मिटा रहा हूँ दुख, ईर्ष्या निबलता अब,
निज मृत्यु, अहभावना, दीनता सब की सब।
धरती माँ! ओ रवि, चन्द्र देव! तुमको प्रणाम,
ओ त्राहि माम्! ओ त्राहि माम्!!

*　　*　　*

ओ पृथ्वी! सातो सागर ओ,
तुम मेरी पुत्र पुत्रियाँ हो
ओ सभी वनस्पति! पशु-पक्षी!
टूटे सब सीमा-बन्धन लो!
गाओ, अजस्र स्वर में गाओ!
ओ त्राहि माम्, ओ त्राहि माम्!!

●

सर्वान्विति

मेहराबदार ये नयन द्वार,
इनसे बहता बन अश्रुधार।
या बैठा रहता हृदय-स्वग में मैं सुखकर,
मैं वहाँ बैठकर गौरवमय।
पथ का सबको देता परिचय,
कोई न वहाँ से जाता कभी मुझे तज कर।

*　　*　　*

इस जग के सारे नारी-नर,
सोते इन बाँहो में आकर।
मुझमें ही वे श्रम खोते या चलते फिरते।

छूता उनके उर-तार मृदुल,
वे बह उठते बन ध्वनि छलछल।
मुझमें मेरे ही स्वर से वे बातें करते।

* * *

सुखमय परिणय या मिलन मधुर,
स्वर्ग में या कि इस धरती पर,
ये तो है बस धुंधले प्रतीकवत माया से।
मौलिक मेरा सम्पूर्ण मिलन,
सारे मनुजों से आलिंगन,
इस क्षिप्र और दृढ़ बन्धन को वे छाया से।

* * *

जैसे मैं स्वर्ण किरण बन कर,
निकला रवि की सी दृष्टि प्रखर,
सुमनों के कोमल उर का हूँ करता भेदन।
फिर मैं प्रसन्न ज्यों रजत किरण,
पूरनमासी के शशि का बन,
निज शून्य भवन में सागर का करता कर्षण।

* * *

सुन्दर प्रभात का मैं मनहर,
ज्यों सुरभित मलयानिल बनकर,
चिटकाता चुम्बन से गुलाब को जगा सरल।
देखता स्वप्न उद्दाम प्रखर,
जैसे टेढ़ा मेढ़ा निर्झर,
ज्यों उदर बीच धारण करता ब्रह्माण्ड सकल।

* * *

ओ विद्युत्! ओ प्रकाश गतिमय!
मन के विचार! ओ ज्योतिर्मय!
आओ, तुम गति में मेरे हो अब प्रतियोगी।
पूरी गति से तुम बढ़ो, बढ़ो,
चाहे तुम कितना तेज उड़ो,
पर व्यर्थ तुम्हारी होड़, विजय मेरी होगी।

* * *

भौतिक तत्वो ! श्रो तूफानो !
श्रो वज्र, दिग्गजो, बलवानो !
श्रालिगन हित फैलाता मैं अपनी बाँहें।
तुम अश्व जुते मेरे रथ में,
ले चलो दूर, अति तुम पथ में,
आगे-पीछे सब ओर, जहाँ तक हों राहें।

तब रुक न हँसी मेरी पाती !

(१)

आघात लगा भीषण कटुतर,
बेसुध, भयभीत हुआ जीवन,
जिसने आघात किया निष्ठुर,
वह झिलमिल कम्पित छाया तन,
जब भ्रम की ही छाया से व्याकुल हो जाता तन का स्वामी,
तब रुक न हँसी मेरी पाती !

(२)

छीनने चला जब श्वान मास,
सर में लख बिम्बित निज छाया,
जा था भी, उसको खो बैठा,
सब सुख को खो, धोखा खाया।
जब जब घटती जग में ऐसी कटु हास भरी अघटन घटना,
तब रुक न हँसी मेरी पाती !

(३)

अब सफर खतम, आयी मजिल,
पथ के कटु श्रम का हुआ अन्त।
था सृष्टि - लक्ष्य इतना ही, अब
स्वागत रत रवि-तारक अनन्त।
लखता इनको फैला चरागाहों में ज्यों मेषों का दल,
तब रुक न हँसी मेरी पाती।

(४)

मैं महाशक्ति अब अमर प्रेम,
मुझमें असीम में क्या अन्तर ?

मिल सर्वात्मा से हुआ एक,
मुझमें विलीन अब स्वर्गिक स्वर।
हो ऊँच, नीच, समकक्ष, सभी से शान्ति भरी ममता अघोर।
ऊपर-नीचे, मैं सभी ओर।

(५)

यह खुशी, शान्ति आनन्द परम।
रस लेता सकल प्रकृति में रम।
मैं सृष्टि गीत गाता, देता,
तारों के संग नर्तन फेरी।
सिन्धु में कूद करता घनरव
है तुमुल युद्ध क्रीडा मेरी।
कितना आनन्द, अहा! मेरी गति तीव्र, तीव्रतर ह कितनी!
अब रुक न हँसी मेरी पाती।

(६)

उगते रवि क्यों लज्जा, कम्पन
दूँगा न चपत गाल पर अरुण,
आ, प्रकृति, अरी नन्ही बिटिया।
मम रक्त-मांस से निर्मित तन,
मेरी गोदी में आ चपले, मेरा उर जग में कोमलतम।
अब रुक न हँसी मेरी पाती।

(७)

क्या प्यार करूँ? मैं स्वयं प्यार,
कामना नहीं कुछ जीवन में,
जन-जन कण-कण का उर मैं ही,
इच्छा की जगह खुशी मन में,
निज-सा ही मैं रमता सब में,
जीवन प्रकाश भरता सब में,
जन-जन जीवन-नौका का मैं, अब एकमात्र हूँ कर्णधार!
अब रुक न हँसी मेरी पाती।

●

अतीन्द्रियता

बाला के खिलते जब गुलाब से गाल सुघर,
मँडराने लगते ग्रासपास तब रसिक भ्रमर।
लेने को मधुर सुधा-रस बनते वे पागल,
इन सब में है मेरे ही आकर्षण का बल।
हिम हीरक बन जाता जगमग मैं ही जमकर,
मेरे संग ही ज्योतित वह ज्वलित हृदय सुन्दर।
कहता मैं तुमसे तनिक न तुम होना चिन्तित,
लखकर यह प्रकृति रहस्यमयी बहुविधि गोपित।
सब प्रकट मुझे तव प्रकृति, पहेली का आशय।
मुझसे करलो परिणय, मुझमें हो जाओ लय।
मत ऐसी बात कहो, प्रभु महामहिम! क्षणभर,
तुम स्वयं सभी स्वामी तुम हो ईश्वर!

प्रत्येक और सब की सब स्थितियों में स्वामी,
हैं सभी सृष्टि शक्तियाँ तुम्हारी अनुगामी!
तुम स्वयं प्रकृति हो, स्वयं सृष्टि हो, स्वयं नियम।
फिर भी हो विश्व, विचार, सभी से परे परम!
ओ! तुम नाना सन्देहों से हा पीडित,
ओ! तुम नाना जर्जर रूढि विधान ग्रसित।
ओ! तुम जो दुःख वेदनाओं से ही ताडित,
ओ! तुम जो कल की झूठी आशा से वंचित।

ओ! तुम जो प्रिय परिजन का लेकर मोह विकल,
ओ! तुम जिसकी हैं अब तक हुई न बुद्धि विमल।
हो रहे दुखी तुम व्यर्थ आज होकर निराश,
ओ मत्स्य! सिन्धु में भी न तुम्हारी बुझी प्यास?
है परम स्वर्ग का धाम तुम्हारे ही भीतर,
है बाह्य जगत् में बुद्धि तुम्हारी भ्रमती, पर।
तुम अन्तर्मुख हो आत्म ब्रह्म का पहचानो,
भ्रम के भय होंगे दूर सभी, तुम सच मानो।
आत्मस्थ राम का बोध करो अपने भीतर,
ओ! है कितना यह सुखद गंध रस लेप सुघर।

भ्रम - प्रेत - भाव को दूर भगाने वाला भव—
कितना विचित्र, रुकती न हँसी है मेरी अब !
कैसी मरीचिका ! सिन्धु - फेन को भूमि मान,
दलदल में फँस मानव दे देता व्यर्थ प्राण !
भ्रम सत्य मान आत्मा को अपमानित करता,
वैसे ही दुखभागी मानव भ्रम में मरता !

वेदना, भावना, अभिलाषा, उत्कट साधें,
चाहें घेरें मुझको, निज बन्धन में बाधें !
चाहे आ काम लिपट जाये लिपटन फन बन,
पर ज्योंही सत्यात्मा का करता हूँ दर्शन—

भागते दूर मुझसे वे जैसे रवि से तम,
मुझसे वे होते अलग फुहारा के ज्यों कण !
पक्षी के चिकने पंखों से गिरते तत्क्षण !
है पहले या कि बाद में कलुषहीन हरदम।

रुक न हँसी पाती, मेरी यह निस्संभ्रम !
साक्षी स्वरूप होता न प्रभावित जो प्रकाश,
रस भाव न उसमें करते हैं क्षण भर निवास।
उनके सम्मुख ज्योंही मैं दृष्टिपात करता,
क्षण में विचित्र इन बेचारों का दल मरता।

व्यक्तिक आत्मायें भिन्न स्वरूपों में जो स्थित,
जो प्राण नसों में आत्मायें बहु भाँति ग्रथित।
सब भेद, यह आवृत हो गया अब विनष्ट,
मेरे ही हैं अब सभी रूप आकार स्पष्ट।
मूसला भरी यह चालाकी, दुख भाव सरित,
जो आत्माओं का कर लेती है आच्छादन।
बहु शत्रु - मित्र के रूप - भाव का कर पूजन,
उलझाती, चुभती, दुख देती चालाकी यह।

रह गयी न मुझमें भेद - वृत्ति अब बाकी यह,
करता न राम व्यक्तिगत कभी आक्षेप अत।
जग में तन जितने हों, आत्मा है एक मगर,
आत्मा महान् वह और कौन मुझको तजकर !

मैं कर्त्ता, साक्षी, और स्वय मैं निर्णायक,
मैं स्वय प्रशसक और स्वय मैं आलोचक।
स्वाधीन सभी, सब है स्वतन्त्र मेरे हित अब,
बन्धन, सीमा, अपराध मिटें मेरे हित सब।
मै हूँ स्वतन्त्र, जग के स्वतत्र नारी नर,
मै हूँ ईश्वर, तुम हो ईश्वर, वह है ईश्वर।
रह गये न ऋण-कर्तव्य, मिटे सब धोखा भय,
मै ही परमात्मा, दिशाकाल मैं निस्संशय।
हूँ अन्तिम स्रोत सभी आवेगो का मैं ही,
उत्थान-पतन भावो का होता मुझसे ही।
मै हृदय प्यार का, सुन्दरता का मैं हूँ घर,
मैं स्वग विहग की, हस, मोर की, आत्मा वर।
मै अन्त केन्द्र सभी मन की इच्छाओं का,
मैं हूँ प्रेरक उर-उर के सक्रिय भावो का।
मै प्रबल शक्ति हूँ, इस पृथ्वी का आकर्षण
मै सत्य स्रोत उसका, जो है सब का कारण।
प्रत्येक वस्तु में मैं अपनी साँसें पाता,
रवि, शशि, पृथ्वी, सब में मै ही चक्कर खाता।
मैं पवन बीच बहता, बढता पौदे बनकर,
सरि में बहता, फेंका जाता बन वस्तु निकर।
मैं स्वय उपस्थित, अनुपस्थित, मै दूर, पास,
मैं भूत, भविष्यत स्वय कुसम तारक सहास।
मोहक आँखें, बेसुध करने वाले गायन,
आवेगपूर्ण, आकर्षक मन के अभिव्यजन।
अति मधुर रजत के ढले शब्द मधुसिक्त अधर,
रेशमी अलक, आलिंगन प्रेमभरा सुखकर।
ये मुझसे औ मेरे ही प्रति सुखदायक सब,
आनन्द परम यह, मै कितना आनन्दित अब।
मम राज्य विचारो की सीमा के भी बाहर,
कितना खुश मैं, रुक रहा न मेरा हास प्रखर।

●

ओम्! ओम्!! ओम्!!!

अति प्रसन्न, अति प्रसन्न, अति प्रसन्न राम!
शान्तिमय, अचचल, स्थिर, नित्य, पूर्णकाम!
मेरा आनन्द अनवरुद्ध अनश्वर!
बाधायें टिक न सकेंगी, इस पथ पर!
मेरे अनुचर हैं सुर-नर, पक्षीगन!
महानन्द मेरा है अनिवच सघन!
रमता यह राम यहाँ, वहाँ, सभी ओर,
वहाँ, जहाँ, कहाँ, शब्द को न मिला ठौर!
अब, तब, आगे, सदैव मैं हूँ सब काल,
मैं तब, जब, 'कब' का उठता, नहीं सवाल!
'यह', 'वह', 'किसका', 'क्या', ये शब्द जहाँ अन्ध,
मैं हूँ वह, जो 'क्या' के प्रश्न से अबन्ध!
पहला, अन्तिम, मध्यम, उर्ध्वग मैं ही,
'एक' वह जिसे छूता कौन है नहीं।
एक, पाँच, सौ, सब से मैं सदा गृहीत,
एक और सब मैं, फिर भी सख्यातीत!
मैं कर्त्ता, कर्म, दृष्टि, ज्ञान, मैं सभी,
परिभाषा किन्तु यह अपूर्ण है अभी!
था, हूँ, मैं सदा रहूँगा—अविनश्वर,
पर हूँ 'स्थिति' की भी सीमा के बाहर!
'मैं, हूँ प्रियतम आत्मा 'म' अह महान्,
मैं न 'मैं', न तुम 'मैं', वह 'मैं' न, यही ज्ञान!

असीमता

हम दख रहे जो कुछ, यह, वह, सभी अनन्त!
सम्मुख वह, उससे भी आगे सभी अनन्त!
निकला अनन्त में से ही जा रहा अनन्त!
पर अविकारी सा ज्या का त्या वचा अनन्त!

* * *

यह बाह्य हानि से धोखा खा रहा अनन्त!
फिर बाह्य लाभ भी कुछ दिखला रहा अनन्त!

यह आगमन गमन घटना-बढ़ना उसका,
सब बाह्य रूप, पर अव्यय सत्य वह अनन्त !

* * *

ओ ! फैला कितना सौंदर्य चमत्कार !
हर एक पहाड़ी पर, घाटी में, उस पार !
आश्चर्यजनक मेरा है मृदुल बिछौना,
यह लाल, हरा, नील, पीत रंग का प्रसार !

* * *

है यह अनन्त फैलाता तेजमय,
सब चीर घोर आँधी औ उपल वृष्टि-धार !
सुन्दर, कितना सुन्दर यह विश्व है अनन्त !
सुनता हूँ स्वर्गिक मैं वरदानमय पुकार !

खुशी का प्याला

भर गया खुशी से मेरे मन का प्याला,
परिपूर्ण हुई मेरी इच्छायें सारी !
मेरा अनुचर प्रात समीर मतवाला,
सुमनों के चुम्बन पर मैं हूँ बलिहारी !

मेरे हैं इन्द्रधनुष के रंग वसन वर
सन्देश-दूत विद्युत, प्रकाश, वैश्वानर !
मैं व्याप्त स्वयं सब ओर सर्व प्रियतम मैं,
मैं स्वयं कामना, स्वयं भावना भ्रम मैं !

मुसकान गुलाबी मोती ओस कणों के,
ये तार नये ताजे स्वर्णिम किरणों के !
जो रवि-प्रकाश में तिरते मधु भीगे वन,
यह रजत-चन्द्र, स्वच्छता भरे मधु कण कण !

खेलती लहरियाँ और झूमते तरुवर,
लिपटी लतिकायें, भ्रमरों का गुंजन-स्वर !
ये सब मेरी अभिव्यक्ति, साँस ज्यों तन में,
ये प्राणवायु ज्यों जीवन और मरण में !

जो कुछ है जग में, भला-बुरा, कटु मधुकण,
मैं व्याप्त सभी में, बन नस-नस की धड़कन !

मैं भला करूँ क्या, और कहाँ, क्यों जाऊँ ?
मैं सभी जगह भर रहा, जगह कहाँ पाऊँ ?
सन्देह करूँ क्यों ? करूँ कामना मन में ?
मैं कालपुरुष, मैं ज्वाल शक्ति कण-कण में।
मैं द्वन्द्वशील हूँ नहीं, न दुख का मारा,
मैं कारण, जग होता मेरे ही द्वारा।

इस क्षण में सारा काल, यहीं सब दूरी,
सब हुईं समस्यायें हल, बातें पूरी।
सब स्वार्थहीन मैं, रहे ना नाता-बन्धन,
मेरे परिचायक जग के जन जन कण-कण !
मैं हूँ तटस्थ, प्रभु सभी दोस्त दुश्मन का।
मुझको प्रणाम मिलता जग के कण-कण का।

महत् अहं

बिखरो। बिखरो। बिखरो।
शिलाखण्ड। चरणों पर ओ सागर।
बिखरो। बिखरो। बिखरो।
अरे अनागत जग इन चरणों पर।
ओ सूर्यो - तूफानो। ओ भूकम्पो। युद्धो।
स्वागत अभिनन्दन, तुम करो यत्न,
मुझ पर दो अपनी सब शक्ति लगा।
भड़को, ओ टारपीडो सुन्दर, ओ मधुर खिलौनो फूटो।
टूटते हुए तारो। मेरे तुम तीर, उडो।
ओ जलते अग्नि। जला सकते तुम क्या मुझको ?
तडपती बिजलियो, मुझसे ही तुम ज्वलित हुइ।
तुम ओ अंगार-धार, खडग, तोप के गोलो।
मेरी यह शक्ति तुम्हें करती भू लुण्ठित।
मेरा यह तन मिलकर बन धूलि पवन में उडता,
पर असीम - आवरण मुझे वेष्ठित कर लेता,
फिर सब के श्रवण, श्रवण मेरे ही।
सब की आँखें मेरी ही आँखें।

सबके कर ही मेरे कर, सबका मानस मेरा मानस,
मैंने मृत्यु का किया भक्षण, पी डाली सब भेद-वृत्ति ।
कितना बलदायक, सुमधुर है मेरा भोजन,
अब न भय, न वेदना, मुझे न कष्ट है कोई !
अब सब आनन्द यहाँ धूप हो कि हो वर्षा ।

सिहरा अज्ञान अन्धकार ।
काँपा, दहला, फिर हो गया सदा को विनष्ट,
मेरी तीव्रतम ज्योति ने उसे जला डाला,
मेरा आनन्द अनिवच, कितना मैं प्रसन्न ।
नाचो ओ सूर्य - तारको, नाचो,
तीव्रतम प्रकाशों के ओ प्रकाश ।
ओ सूर्यों के सूरज, नाचो मेरे भीतर ।
ओ खगोल पिण्डो, तुम मात्र भँवर और लहर ।
पर मेरे भीतर लहराते विस्तृत सागर,
धर धर उठते, गिरते लहरें ले, नतनिरत ।

घूमो तुम लोको ।
धुरी-लग्न ओ ग्रहपिण्डो ।
नाचो, मेरे जीवन के प्रकाश में आकर,
मुझको सब निज अणु अणु, अग अग दिखला दो ।

लोरी

सो जा, ओ मेरे शिशु, सो जा,
सिसकी, क्रन्दन कर बन्द सभी ।
नयनों से अश्रु न यो बिखरा ।
बाधा-विहीन, विश्राम निरत, निश्चिन्त सभी विधि तू अब बन ।
सब देवदूत नभ में करते हैं, तेरा ही तो गुणगायन ।
जो सभी विभव, सौन्दर्य, सुखों का प्रभु दाता औ निर्णायक ।
वह निष्कलंक है तेरी ही आत्मा, जो शासक उन्नायक !

(२)

कोमल गुलाब, ये चाँदी के से ओसबिन्दु सुन्दर सुन्दर,
यह मधु-सौरभ, यह प्रात पवन, अति सुखदायक यह धूप सुघर ।

पक्षीगन का यह कल-कूजन, कितना प्रिय यह उनका गायन,
वे वस्तु सकल जिनके कारण आप्यायित होते श्रवण-नयन!
वे सभी वहाँ से आते, जो तेरा स्वर्गिक सुखपूर्ण धाम,
तू है विशुद्ध निष्कलुष परम, तू निर्विकार है 'ओम्' नाम!
सो जा, ओ मेरे शिशु, सो जा!

(३)

तू शत्रु मित्र से परे सदा, तुझसे हैं दूर सदा खतरे,
वे छू न कभी सकते तुझको, तू ही है शाश्वत एक अरे!
रत्नों से जडित चँदोवा ज्यों, यह तारोंवाला नील व्योम!
तूने ही तो निर्माण किया इसका, ओ मेरे 'प्राण' 'ओम्'!
सो जा, ओ मेरे शिशु, सो जा!

(४)

तेरी क्रीडा के कन्दुक से ये दोनों चन्द्र और दिनकर,
तेरे महलों की मेहराबों जैसे ये इन्द्रधनुष मनहर!
तेरे ही आने-जाने को ज्यों नभगंगा का पथ उज्ज्वल,
तेरी यश-चर्चा होती जब, मिलते नभ में उड़ते बादल!
तेरी गुड़िया ग्रह-तारक ये, भ्रमते, गाते, नर्तन करते,
'जय ओम् धाम तरतम' कहकर वे तेरा ही कीर्तन करते!
सो जा, ओ मेरे शिशु, सो जा!

(५)

इन रंग बिरंगे फूलों में, सर में औ निर्झर में सुन्दर,
तेरी ही निद्रारत निर्मल छवि का दर्शन होता प्रियवर!
लिपटा सोया है तू प्यारे दिक्काल उष्ण कम्बल लेकर,
दे इन्हें हटा मुख से सोते ही बाँहों से झटका देकर!
जैसा सोये शिशु करते हैं, तू भी तो देख जरा तिर्यक,
प्रिय नटखट शिशु, अधखुले किन्तु सोये निज नयनों से अपलक!
सो जा, ओ मेरे शिशु, सो जा!

(६)

कोकिल की तारा कूक जो निर्जन में होती प्रतिध्वनित अगर,
वह है तेरी ही किलकारी दोनों सीटी की ध्वनि मनहर!

ये गौरैये, यह पवन और नभ में जगमग करते तारे,
य सभी खिलौने और खेल की गाडी है तेरी प्यारे!
यह दुनिया तो है बस, तेरी ही हँसी खुशी का सपना भर,
वह तो है तेरे भीतर ही, भ्रम है यह जग जो बाहर!
सो जा, आ मेरे शिशु, सो जा!

(७)

प्यारे शिशु, ओ विश्राम और मधुनिद्रा के चिर जाग्रत घर,
प्यारे शिशु ओ गम्भीर बुद्धि के क्रियाशील उदगम सुदर!
तू है जीवन और कर्मों का अति शान्तिपूर्ण सुदर निर्झर,
सघर्षों और विरोधो का तू ही तो है कारण मनहर!
तू सीमाओ से घिरे हुये घन तम को कर चिर नमस्कार!
अलविदा, अलविदा, राम राम, अतिम प्रणाम ओ! अधकार!
सो जा, आ मेरे शिशु सो जा!

(८)

इस जग में है जितने सुदर पदार्थ जितनी वस्तुयें सुघर,
हैं सब तेरी उडती पाँखो की ध्वनि प्रीतिकर और मनहर!
ओ देवलोक का पछीवर, ओ महाभाग सम्राट विमल,
वे सब तेरी ही पाँखो की भागती हुई छाया चचल!
जादू से भरा हुआ तेरा सौदर्य प्रखर यह अद्ध प्रकट,
है जिसको आधा छिपा रहा तेरे मुख का यह घूघट पट!
इस घूघट को धारण करने वाला भी तो है मधुर ओम्,
है वही सत्य अपना स्वरूप आत्मा निज तत्मत ओम् ओम्,
सो जा, ओ मेरे शिशु, सो जा!

प्रियतम की छवि

(१)

निज प्रियतम की छवि को बाँधू किस उपमा-बधन में
क्या उसका उपमेय कभी भी समा सकेगा मन में?
कौन कैमरा ग्रहण कर सकेगा उस छवि का दर्शन?
चित्रकार की तूली क्या कर सकती उसका अकन?
रगों से आकृति में उसका होगा क्या आलेखन?
भौतिकता का यत्र कैमरा गल कर गया तरल बन—

इतनी थी तीव्रता अलौकिक उस प्रकाश वर्षण में,
निज प्रियतम की छवि को बांधू किस उपमा-बंधन में ?

(२)

निज मन को केन्द्रित कर, करना चाहा प्रिय का चित्रण,
नयनों को साधा कि करूँ मैं बिम्ब-ग्रहण, छवि अंकन।
पर मेरा यह हृदय कैमरा बिम्ब ग्रहण का साधन—
ये सब भौतिक यन्त्र बह चले गल कर बस दो क्षण में।
इतनी थी तीव्रतम ज्योति की धारा प्रिय दर्शन में।
निज प्रियतम की छवि को बाधूं किस उपमा-बन्धन में ?
क्यों न उसे फिर निरुपमेय मैं मानूं अपने मन में ?

(३)

जग कहता है, वह रवि ही है उसका चित्र मनोहर।
जग कहता है, मानव भी तो है उसकी छाया भर।
जग कहता है, वह चमका करता है तारागण में।
जग कहता है, वही सदा मुसकाता सुरभि-सुमन में।
सुनता हूँ, बुलबुल का गायन ही है उसका मधु-स्वर,
सुनता हूँ, है पवन गगन में उसकी सांस निरन्तर।
सुनता, घन से झरता उसके ही नयनों का पानी,
सुनता, जाडे की रातें हो उसकी नींद सुहानी।
सुनता, कलकल निर्झर है उसका ही गतिमय धावन।
इन्द्रधनुष के झूले पर वह झूल रहा मन भावन।

शान्ति

मुझमें आ मिलती शान्ति सरित धारा बन कर,
मुझमें हिलकोरें लेता शान्ति महासागर
है शान्ति बह रही मुझमें ज्यों गंगा निर्मल,
प्रति रोम, उँगलियों से झरती है शान्ति धवल।
ओ, लाओ मेरे परिणय के सब चुने वसन
वे ज्योति विनिर्मित, स्वर्ण किरण से बुने वसन।
गिर गया सदा को खिसक मेरे घूँघट-चंचल
तुम बहो, बहो, ओ अश्रुमाल निर्भय, निर्मल !

तुम बहो, अरे आनन्द अश्रुधारा खुलकर
कितना गौरवमय ज्योतिन्ताज, मुद्रिका सुघर!
यह जीवन सुधा और जादू की यह मदिरा,
इनसे पूरित इस तन मन के सब छिद्र शिरा!
मछलियाँ और कुत्ते, जो चाहें सब खायें,
सब प्रकृति शक्तियाँ, पशु-पक्षी, जिनको भायें
आ पियो रक्त-मधु मेरा, मास सभी खा लो,
आओ, मेरे विवाह-उत्सव में हँस गा लो!
मैं नाच रहा, मैं नाच रहा, हँस नाच रहा!
तारो में, रवि में, महा सिन्धु मुक्त अहा!
शशि में, घन बीच, प्रभजन में मैं नतन रत,
कामना-भावना बुद्धि बीच मैं नृत्य निरत।
मैं गाता हूँ औ मैं ही हूँ सगीत अमर,
सम्पूर्ण समन्वय का असीम मैं हूँ सागर!
कर्त्ता, वह पुरुष कि जो करता है बिम्ब ग्रहण,
औ कम, जगत् यह जो बनता अनुभूति गहन!
यो दोनों सिन्धु-तरगा से मेरे भीतर!
लगता जग मुझको केवल एक बुलबुला भर!

प्यार

ओ प्यारे नन्हें कुसुम! सुनो!
निज ओस-कणा से भरे नयन से देखो तो—
मुझसे सच-सच यह बतलाओ,
जब कोई और न पास तुम्हारे होता है—
उस समय तुम्हारा सत्य रूप क्या होता है?
उत्तर में भर कर कोमल 'आह' कुसुम बोला—
एकाकी मैं क्या हाता हूँ?
यदि मुझको बतलाना ही हो—
दुख में स्वीकार करूँगा मैं—
मैं क्या हूँ, इसे न जान कभी भी तुम सकते!
जब मैं एकाकी होता हूँ,
तब भी सब भाई-बहिन मुझे घेरे रहते,
बन सुरभि पवन में या झड़कर ही भू-लुठित।

●

(घ) स्वामी राम—महान् पुरुषो एवं मनीषियों की दृष्टि में

महात्मा गांधी

स्वामी रामतीर्थ की शिक्षाम्रों का प्रचार परमावश्यक है। वे भारत की नही, अपितु समस्त ससार की एक महान् आत्मा थे। मुझे उनके आदर्श अत्यन्त प्रिय हैं।

महामना मदनमोहन मालवीय

स्वामी रामतीर्थ का नाम ही ऐसा है, जो मेरे हृदय को अलौकिक आनन्द से परिपूर्ण कर देता है। उनसे बढकर कोई आत्मनिष्ठ महात्मा मुझे आज तक नही मिला। आत्म-सुधार और आत्मज्ञान विषयक उनका संदेश देश की भावी सतान के लिए महान् वरदान सिद्ध होगा।

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

(सस्थापक-अध्यक्ष, दिव्य जीवन समाज)

स्वामी रामतीर्थ एक ऐसे महान् सत है, जो भारतीय आकाश में जगमगाते हुए ध्रुवतारा के समान प्रकाशमान ह। उन्होंने व्यावहारिक दर्शन को अपने जीवन में उतारा और वेदान्त-साधना के उदाहरण के रूप में समस्त विश्व को दिखा दिया कि आत्मानन्द का रसास्वादन मनुष्य इसी जीवन में कर सकता है और प्रत्येक के लिए इस आनन्द की उपलब्धि सम्भव है, आवश्यक शर्त केवल सच्चे प्रयास की है।

सर तेज बहादुर सप्रू

अपनी युवावस्था में मैंने एक बार स्वामी रामतीर्थ का भाषण सुना था। निस्सन्देह आज से चालीस वर्ष पूर्व वे देश के आध्यात्मिक उत्थान के बडे शक्तिशाली उन्नायक थे और आज भी उनका प्रभाव ज्यों का त्यों अक्षुण्ण बना हुआ है।

आचार्य जे० बी० कृपलानी

स्वामी रामतीर्थ का जीवन और उनकी शिक्षायें देशवासियों के लिए सदैव

स्थायी प्रेरणा का स्रोत बनी रहेंगी। उनकी ब्रह्मानन्द विभोर आत्मा ने सवत्र एव समस्त मानव-जाति में ईश्वर की प्रत्यक्षानुभूति की थी। वे जहा कही भी जाते थे, उनकी दिव्य मुस्कान और उनका देदीप्यमान मुखमण्डल आनन्द की किरणें बिखेर देता था।

डॉ० अमरनाथ झा

स्वामी रामतीर्थ इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में भारत के एक परम तेजस्वी पुरुष थे। अपनी वाणी और लेखनी द्वारा तथा सबसे अधिक अपने आध्यात्मिक व्यक्तित्व के चुम्बकीय प्रभाव द्वारा उन्होने अपनी समकालीन पीढी के ऊपर चिरस्थायी प्रभाव डाला।

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

स्वामी रामतीर्थ का जीवन और उनके द्वारा किया हुआ काय भविष्य में बहुत दिनो तक हमें प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

श्री तुषारकान्ति घोष

स्वामी रामतीर्थ उन महान् सन्ता में से एक ह, जिन्होने हमारी मातृभूमि को अपनी उपस्थिति से पवित्र बनाया है। उनको यह भौतिक ससार छोडे हुए बहुत समय हो गया, किन्तु उनका आध्यात्मिक प्रभाव सदैव बना रहेगा। उन जैसे महापुरुषा ने भारत को आन्तरिक महानता प्रदान की है।

श्री श्रीप्रकाश

महान् स्वामी रामतीथ बहुत लोगो के लिए प्रेरणा स्रोत रहे हैं। मेरी कामना है कि उनका प्रभाव चिरस्थायी हो और मनुष्यो के जीवन में आनन्द और उल्लास को सृष्टि तथा सम्पूण मानव समाज में सच्चे भ्रातृत्व एव एकत्त्व की भावना का प्रसार करे।

प्रो० तान युन शान (शान्ति निकेतन)

स्वामी रामतीथ के उदात्त सदेश को जीवित रखना, उसका सवर्द्धन करना और उसका प्रचार प्रसार करना एक महान् काय है। व सत, चित, आनन्द के मूर्तिमान स्वरूप थे।

डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी

स्वामी रामतीथ की शिक्षाओं का प्रचार और प्रसार पूरी शक्ति लगा कर करना चाहिये।

सन्त निहालसिह

मेरे हृदय में तीथराम गोस्वामी (जो बाद में स्वामी रामतीथ के नाम से विख्यात हुए) के प्रति अत्यधिक प्रेम एव आदर का भाव था।

श्री जयरामदास दौलतराम

हमें स्वामी रामतीर्थ के संदेश को भारत की वर्त्तमान आवश्यकता की पृष्ठ भूमि में समझने का प्रयास करना चाहिये। अभावग्रस्त और निर्बल-वर्ग में आत्म निर्भरता के भाव उत्पन्न करके उनकी निस्वार्थ सेवा में ईश्वर और सत्य की अनुभूति करनी चाहिये।

डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी

स्वामी रामतीर्थ का जीवन मानवता के लिए एक महान् आशा का स्रोत है। उनका जीवन पंक में उगे हुए सुन्दर खिले कमल के समान अति साधारण परिस्थितियों में मानव के महामानव में विकसित होने का एक जीवन्त और ज्वलन्त उदाहरण है।

डॉ० राधाकमल मुखर्जी

स्वामी रामतीर्थ का जीवन स्वतः एक आध्यात्मिक कविता है, गहन, संक्षिप्त एवं गेय, किन्तु उदात्त, विशद एवं व्यापक। संसार पृष्ठ है और उनका जीवन कविता है और दीप्तिमान सुवर्ण जिसमें उस कविता के अक्षर अंकित किये गये हैं, वह सहज एवं सृजनात्मक आनन्द है, जो विराट अभिव्यक्ति का सार है। 'आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते'—काश! हम सभी उस आनन्द के भागी होते।

दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज

स्वामी रामतीर्थ का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ, जब शिक्षित भारतीयों का मस्तिष्क धार्मिक सत्य के संबंध में एक गम्भीर अस्थिरता से उद्वेलित था, जब भौतिक जीवन की वाह्य अपेक्षायें उसे प्रायः अभिभूत कर रही थी। भारतीय विश्वविद्यालयों में पश्चिमी विज्ञान की शिक्षा धार्मिक संस्कारों और मान्यताओं से विहीन होने के कारण बहुधा व्यक्ति को धर्म से पूर्णरूपेण उदासीन बना देने वाली सिद्ध हुई है।

धनोपार्जन एवं धन के व्यय में सारी शक्ति के अपव्यय करने के इस वातावरण में स्वामी राम के अलौकिक व्यक्तित्त्व का उदय हुआ, जिसने अपने वैशिष्ट्य (विपरीत गुणों) के बल पर सबका ध्यान आकर्षित किया। उनकी उपस्थिति में कोई भी व्यक्ति बिना यह अनुभव किये नहीं रह सकता था कि जीवन का सर्वोच्च आनन्द शरीर में नहीं, बल्कि आत्मा में ही प्राप्त हो सकता है।

●●

इस माला की अन्य पुस्तकें

• • •

- विवेकानन्द   रोमा रोला
  'अज्ञेय' एव रघुवीर सहाय द्वारा अनूदित
- रामकृष्ण परमहस   रोमा रोला
  डॉ० रघुराज गुप्त द्वारा अनूदित
- महर्षि दयानन्द
  यदुवश सहाय
- उत्तर योगी (श्री अरविन्द)
  शिवप्रसाद सिंह
- गुरु नानक
  डॉ० जयराम मिश्र
- चैतन्य महाप्रभु
  अमृतलाल नागर
- महात्मा गाधी   रोमा रोला
  प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' द्वारा अनूदित
- सत कबीर
  डॉ० उर्वशी सुरती
- रवीन्द्रनाथ ठाकुर
  डॉ० विश्वनाथ नरवणे

इस माला की अन्य पुस्तकें

• • •

- **विवेकानन्द** रोमा रोला
  'अज्ञेय' एव रघुवीर सहाय द्वारा अनूदित
- **रामकृष्ण परमहस** रोमा रोला
  डा० रघुराज गुप्त द्वारा अनूदित
- **महर्षि दयानन्द**
  यदुवश सहाय
- **उत्तर योगी** (श्री अरविन्द)
  शिवप्रसाद सिंह
- **गुरु नानक**
  डॉ० जयराम मिश्र
- **चैतन्य महाप्रभु**
  अमृतलाल नागर
- **महात्मा गाधी** रोमा रोला
  प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' द्वारा अनूदित
- **सत कबीर**
  डॉ० उर्वशी सुरती
- **रवीन्द्रनाथ ठाकुर**
  डॉ० विश्वनाथ नरवणे